प्रकाशकः-
चन्दुलाल जमनादा
संचालक, श्रीलब्धिसूरीश्वरजैन
छाणी. (वडोदरा राज्य)

मुद्रकः—
रामचन्द्र येसू शेडगे,
निर्णयसागर प्रेस, २६-२८ कोलभाटस्ट्रीट मुंबई.

धन्यवाद अने आभार



श्रीश्रेयांसनाथचरितना प्रस्तुत प्रकाशनमां, सदर ग्रन्थनी अढीसो प्रतो पोताना तरफथी प्रकाशित करवा माटे, सुरतनिवासी ओशवाल-वंशीय धर्मश्रद्धालु सुश्रावक श्रीयुत् बाबुभाई प्रेमचंद झवेरीए, पू. जैनरत्न व्या. वा. आचार्यदेव श्रीमद् विजयलब्धिसूरीश्वरजी महाराजना विद्वान् शिष्यरत्न पू. पन्यासप्रवर श्रीमत् प्रवीणविजयजी गणिवरना सरलहृदयी सुशिष्य पू. मुनिपुंगव श्रीमत् महिमाविजयजी महाराजना सदुपदेशथी अमने आर्थिक साहाय्य आपी छे ते बदल उपदेशक पू. महाराजश्रीना तथा साहाय्यक सज्जनना अमो अत्यन्त आभारी

—प्रकाशक

निवेदन

वर्तमान अवसर्पिणीमां थयेल अगीयारमा तीर्थपति श्रीश्रेयांसनाथ भगवंतनु जीवनचरित्र संस्कृत भाषाभिज्ञ विद्वानोना हस्तकमलमां समर्पित करतां अमने अत्यन्त आनन्द थाय ए स्वाभाविक छे श्रुतभक्तिना पुनित मार्गे धीमी पण मक्कम गतिए प्रगति करी शकीए छीए ए पण अमारे माटे गौरव लेवा जेवी वस्तु छे

आ ग्रन्थनु संपादन संशोधन अनेक हस्तप्रतिओने आधारे पू. आचार्य देव श्रीमद् विजयलब्धिसूरीश्वरजी महाराजना शिष्य पू. मुनिराज श्रीविक्रमविजयजी महाराजाए तथा पू. गुरुदेवना स्वर्गत शिष्य पू. मुनिराजश्री रत्नाकरविजयजी महाराजना शिष्य पू. मुनिराजश्री भास्करविजयजी महाराजे अतिपरिश्रमपूर्वक करी आप्यु छे ते माटे अमो तेओना आभारी छीए

आ ग्रन्थना प्रकाशनमां पू. पंन्यासप्रवरश्री प्रवीणविजयजी गणिवरना शिष्यरत्न पू. मुनिराज श्रीमहिमाविजयजी महाराजना सदुपदेशथी जे श्रुतभक्त सज्जनोए अमने आर्थिक सहाय्य आपी छे ते सौना तथा उपदेश आपनार पू. महाराजश्रीना पण अमे ऋणी छीए आ आर्थिक सहायना प्रतापे आवु सुंदर प्रकाशन करवाने अमे शक्तिशाली बन्या छीए

वांचको, यथायोग्य लाभ लई सौना परिश्रमने सफल करे !

—प्रकाशक

प्रस्तावना

द्रव्यानुयोग, चरणकरणानुयोग. गणितानुयोग अने धर्मकथानुयोगः एम चार अनुयोगोमां जैन श्रुतज्ञान विभक्त करायेलुं छे. आ चारेय अनुयोगोमां धर्मकथानुयोग अतीव जनादरणीय बन्यो छे. द्रव्यानुयोग आदि अनुयोगोने न स्हमजवानी तथा प्रकारनी बुद्धि-शक्ति धरावता सामान्य वर्गने माटे धर्मकथाओ ए बोध आपवानुं अमोघ साधन छे. तेथीज अन्य अनुयोगो करतां धर्मकथानुयोगने अवलंबीने लखायेलुं साहित्य अति विपुल प्रमाणमां आपणने प्राप्त थाय छे. संस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश अने देश्य आदि विविध भाषाओमां, गद्य पद्य उभय शैलीए लखायेली धर्मकथाओ घणी म्होटी संख्यामां, कालदेवना विकराल पंजामां पडी विनष्ट थयेली होवा छतांय, आजे पण दृष्टिगोचर थई रही छे. अनेकानेक स्थलोएथी सेंकडोनी संख्यामां प्रकाशित थयेली होवा छतां, कुशल संपादकना संपादनकौशल्यनी राह जोती अने प्रकाशनां किरणो जोवाने आतुरताभरी मीट मांडी रहेली अनेको महत्त्वनी कलाकृतिओ ग्रन्थागारोना वेष्टनोमां बंधीयार हालतमां पडी रही छे.

जीवन-घडतर माटे उच्चतर आदर्शो पूरां पाडतां जीवनचरित्रो, जगत्कल्याणकर साहित्यमां अनेरूं स्थान धरावे छे. मानव स्वभावज एवो छे के, एने जेवा संयोगो अगर जेवा संस्कारो मले तेवा थवामां तेने जराय विलंब लागतो नथी. आथीज तेने सुसंस्कारोनुं अमीपान कराववा माटे आपणा प्राचीन कविवरोए, महापुरुषोनां आदर्श अने साधुचरित जीवनचरित्रोना घडतरमां पोताना कौशल्य अने बुद्धिप्रतिभाने कामे लगाडी लोकोद्धारनुं पुण्यकार्य करवामां पोतानो अपूर्व फालो नोंधाव्यो छे.

श्री तीर्थंकर देवो, महापुरुषोनां मुकुटमणी छे. विंशति स्थानकपदनी तथा प्रकारनी आराधना द्वारा अने 'सवी जीव करुं शासन रसी' ए उदात्त भावनाना जोरे सम्यक्त्व प्राप्तिना भवथी विशिष्ट प्रकारे आरंभाएली परार्थव्यसनिता तीर्थंकर थवाना त्रीजा भवपूर्वे वलवत्तर बनतां श्री तीर्थंकरनामकर्म निकाचित थाय छे. श्रीतीर्थंकरदेवो, तीर्थंकरनाम कर्मनो उदय थतां जगत जीवोना निःस्वार्थ कल्याणार्थे शासन प्रवर्तावी स्वतीर्थनी स्थापना करे छे प्रत्येक उत्सर्पिणी अवसर्पिणीमां आवा चोवीस तीर्थंकरदेवो थाय छे.

प्रस्तुत श्री श्रेयांसनाथ चरितः

संस्कृतभाषाविद विद्वज्जनोना हस्तकमलमां समर्पित कराता अने प्रथम ज प्रकाशित थता प्रस्तुत श्री श्रेयांसनाथ चरितमां, वर्तमान अवसर्पिणीमा थयेला श्री ऋषभदेवादि चोवीश तीर्थंकरदेवो पैकी अगीयारमा तीर्थपति श्री श्रेयांसनाथ भगवंतनुं जीवन-चरित्र विस्तृत रीतिये आलेखवामां आव्युं छे. ओ तारक तीर्थपतिना सम्यक्त्व प्राप्तिथी आरंभी त्रण भवोनुं वर्णन आ चरित्रमां करायुं छे. प्रत्येक भवोमां तेमने प्राप्त थयेलां वैभव संपत्ति आदिनुं तथा तेओश्रीना अपूर्व एवा परोपकारवृत्ति, धर्मानुरागिता आदि सद्गुणोनुं यथार्थ वर्णन तथा तेमने प्राप्त थयेली पदवीओ आदिनां वृत्तान्तो साथे ते ते भवमां संबद्ध अनेक अवांतर कथाओ आपी विद्वान् चरित्रकारे चरित्रने वधु रोचक बनाव्युं छे. श्री तीर्थंकर भगवंत तरीकेना भवमां प्रभुनां पांचे कल्याणकोना देव-देवेन्द्रो आदिए करेला महोत्सवो, केवल्य प्राप्ति पछी समवसरणनी रचना, तीर्थस्थापना तथा गणधरादि परिवार अंगे विस्तारथी वर्णन आपवामां आव्युं छे. समवसरणमां विराजी दान, शील, तप अने भावः धर्मना ओ चार भेद उपर प्रभुए आपेलो हृदयस्पर्शी उपदेश अने ते उपर कहेली कथाओ, साचेज लोकोने ते ते धर्मानुष्ठानमां अपूर्व प्रेरणा अर्पे तेवी छे.

श्री श्रेयांसनाथ भगवान कया स्वर्गथी च्यवी आव्या ? ते संबंधी जैन साहित्यमां मतभेद छे. कलिकालसर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य, त्रिषष्ठिशलाका पुरुषचरित्रना चतुर्थ पर्वना प्रथम सर्गमां श्रेयांसनाथनुं च्यवन महाशुक्र (ते नामक सप्तम स्वर्ग) थी थयुं एम जणावे छे ज्यारे 'सप्ततिशतस्थानक प्रकरण' नी पञ्चावनमी गाथामां, तेना कर्ता श्री सोमतिलकसूरिजी चोवीशे भगवानना च्यवन स्थानोनो निर्देश करतां श्री श्रेयांसनाथ प्रभु अच्युत (ते नामक बारमा) स्वर्गथी च्यव्या एवो निर्देश करे छे. आ चरित्रकार परमर्षि, भिन्न-भिन्न स्थलोए बन्ने स्वर्गनो भगवानना च्यवनस्थान तरीके निर्देश करी ते बन्ने मतो स्वीकारता होय तेम जणाय छे. ग्रन्थारम्भमां प्रथम सर्गना पंदरमा श्लोकमां 'गत्वा शुक्रमथ च्युत्वा' आम अनेक स्थलोए शुक्र (तेनोज बीजो पर्यायशब्द 'महाशुक्र' छे) नो तथा पांचमा सर्गमां २१४ मा श्लोकमां 'प्रतिपद्य परिव्रज्यामच्युतसर्गमेष्यति' एम अच्युत सर्गनो पण उल्लेख कर्यो छे. आ बे मतमां कयो मत प्रामाणिक छे ते विशिष्ट साधनना अभावे निर्णीत करवुं मुश्केल छे.

प्रस्तुत चरित्रनी रचना, श्री देवभद्राचार्य विरचित प्राकृत श्रेयांसनाथ चरित्रना आधारे थयेली होय तेम ग्रन्थारम्भमांज ग्रन्थकारे लखेला नीचे मुजबना बे पद्यो द्वारा जणाय छे.

उन्मुद्रयन्तु भद्राणि देवभद्रगुरोर्गिरः । कौतुकादिविधात्र्यो मां बालमालापयन्ति याः ॥ [सर्ग-१-१८]

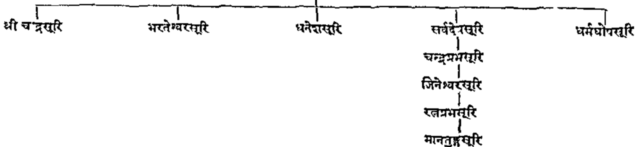
'श्रेयांसचरिते देवभद्रोद्यानेऽत्र निस्त्रपः । गृह्णामि भागं गोत्रत्वात् पदार्थसुमनः फलैः ॥ [सर्ग-१-१३]

आ ग्रन्थना तेर सर्गो छे. प्रत्येक सर्ग अनुष्टुप् छन्दमां अने सर्गना अन्तमां अन्य छन्दोमां ग्रन्थनी रचना करायेली छे. आ एक महाकाव्य छे. महाकाव्योमां होवां जोईतां लक्षणोमांना अनेक लक्षणो आ काव्यमां घटे छे. सामान्य रीते चरित्र-कथाना

वर्णनोमां अलङ्कारोनो उपयोग करवो अति कठीन होय छे तेम छता आ ग्रन्थमां विद्वान् कर्ताए, अनेक स्थलोए उपमा, अन्योक्ति, अनुप्रास, वक्रोक्ति, विरोधाभास इत्यादि शब्दालङ्कारो अने अर्थालङ्कारोनो उपयोग करी सुन्दर काव्यग्रन्थनु निर्माण कर्युं छे. चरित्र-वर्णनात्मक काव्यसाहित्यमा आ ग्रन्थ पोतानु मानभर्युं स्थान प्राप्त करे तेवो छे, एमा जराय शकाने स्थान नथी ज.

ग्रन्थकार श्रीमानतुङ्ग सूरिजी

प्रस्तुत ग्रन्थ श्रीश्रेयांसनाथ चरितना कर्ता श्रीमानतुङ्गसूरिजी छे ग्रन्थना अन्तमां आपेली प्रशस्तिमां तेमणे शीलभद्रसूरिजीथी शरु करीने पोतानी गुरुपरंपरा आपी छे आना आधारे तेमनी गुरुपरंपरा आ प्रमाणे बने छे.–



प्रभावक चरित्रना कर्ता प्रभाचन्द्रसूरिए पोतानी जे गुरुपरंपरा तेनी प्रशस्तिमां आपी छे ते आ प्रशस्तिमां अपायेली गुरुपरंपरा साथे घणी रीतिये मळती थाय छे तेम केटलीक हकीकतमां अलग पण पडे छे. प्रस्तुत ग्रन्थकारे शीलभद्रसूरिनां पांच शिष्यो नोंध्या छे, ज्यारे प्रभावकचरित्रकार चार शिष्यो होवानुं नोंधे छे. प्रभावक चरित्रमां धनेश (? धनेश्वर) सूरिनो नामोल्लेख नथी. प्रभावक-चरित्रमां चन्द्रप्रभसूरिजीने, श्रीचन्द्रसूरिना शिष्य अने जिनेश्वरसूरिना गुरुभ्राता श्रीपूर्णभद्रसूरिना शिष्य जणाव्या छे, ज्यारे प्रस्तुत ग्रन्थकारे श्रीचन्द्रप्रभसूरिने सर्वदेवसूरिना शिष्य लख्या छे. अने तेमना शिष्य तरीके श्रीजिनेश्वरसूरिनो उल्लेख कर्यो छे. आ फेरफार संबधी अन्य पुस्तकोमां तपास करतां कोई निर्णयात्मक खुलासो प्राप्त थतो नथी. संभव छे के, प्रभावक चरित्रमां अने प्रस्तुत ग्रन्थमां उल्लेखायेल चन्द्रप्रभसूरि भिन्न भिन्न व्यक्तिओ होय.

प्रस्तुत ग्रन्थनी प्रशस्तिना पांचमा श्लोकमां सर्वदेवसूरिजी संबधी एक महत्त्वनी घटनानो ग्रन्थकारे उल्लेख कर्यो छे. तेओ लखे छे के, "भालीजमां श्रीमहावीर स्वामीना चैत्यमां व्याख्यानावसरे सर्वदेवगुरुनी भूजाओनुं आर्यादेवीना वज्रे रक्षण कर्युं." आ उल्लेखनुं समर्थन अन्य कोई पण स्थले थयुं होय तेम अमारा तो जाणवामां नथी. सर्वदेवसूरि नामक अनेक गच्छमां अनेक आचार्यो थया छे. पण तेमांना कोई पण आचार्य साथे प्रस्तुत घटनानो संबंधनिदर्शक कशोज उल्लेख प्राप्त थतो नथी. अहिं उल्लिखित भालीज अंगे पण, ते क्यां आव्युं अने वर्तमानमां तेनु शुं नामान्तर छे इत्यादि माहिती उपलब्ध नथी. तज्ज्ञ विद्वानो आ संबंधमां विशेष प्रकाश नांखे एम इच्छीये छीये. अत्यारे भाळज नामथी गुजरातमां गाम छे ते होय तो संभवे छे पण आधार जोइये.

ग्रन्थकारे पोताना विषे प्रशस्तिमां विशेष उल्लेख कर्यो नथी. अन्य साधनो द्वारा पण तेमना जीवन संबंधी वृत्तान्त प्राप्त थतुं नथी. प्रशस्तिमांज तेमने पोते त्रैपुरागमथी उद्धृत करी सूत्रबद्ध कोई ग्रन्थ अने तेनी स्वोपज्ञवृत्ति बनाव्यानो उल्लेख कर्यो छे, पण ते

ग्रन्थना नामनो स्पष्ट निर्देश कर्यो नथी. त्रैपुरागम ए शुं हशे ? 'त्रिपुरारहस्य' नामक वैदिक तान्त्रिकग्रन्थ मळे छे. तेना कोई वैदिक तान्त्रिक ग्रन्थनो आमणे उद्धार कर्यो हशे ? आ संबंधी स्पष्ट प्रमाण प्राप्त न थाय त्यां सुधी चोकस निर्णय पर आववुं कठीन छे. आ उपरात तेमनी अन्य कृतिओ छे के केम ? ते विगेरे विगत प्राप्त थती नथी. तेमज तेमना जन्मस्थान, मातापिता आदि संबंधी हकीकत पण उपलब्ध थती नथी.

श्री देवानन्द सूरिना शिष्य श्रीकनकप्रभना शिष्य श्री प्रद्युम्नसूरिए आ ग्रन्थनुं संशोधन कर्युं छे. श्री प्रद्युम्नसूरिजी अनेकानेक विशिष्टतर ग्रन्थरत्नोना संशोधक तरीके अने अनेकोने विद्याभ्यास करावनार तरीके खूब ख्यातिप्राप्त छे.

प्रस्तुत ग्रन्थनी रचना संवत् १३३२ ना, माघ वद पंचमीना दिने थई छे ग्रन्थनी समग्र श्लोकसंख्या ५१२४ छे.

ग्रन्थकार राजगच्छना छे. चन्द्रगच्छनुं नाम श्री धनेश्वरसूरिथी राजगच्छ थयुं एवो उल्लेख प्रभावकचरित्रनी प्रशस्तिमां पांचमा श्लोकमां मळे छे. चन्द्रगच्छ अने राजगच्छ आ बन्ने एक ज गच्छना नाम होवाथी आ ग्रन्थना सर्गोना अन्तमां आवती पुष्पिकाओमां कोईक स्थळे राजगच्छ अने कोईक स्थळे चन्द्रगच्छ एवा बन्ने उल्लेखो थयेला छे तेमां कोई जातनो विरोध आवतो नथी. अने एटले ज अमे ज्यां जे उल्लेख प्रतिमां आवतो त्यां ते ज उल्लेख रहेवा दीधो छे.

प्रस्तुत ग्रन्थकार सिवाय अन्य पण आ नामना आचार्यो आ प्रमाणे थया छे.—

१ भक्तामरस्तोत्रना कर्ता २ परिग्रहपरिमाणना कर्ता. (पी. परि पृ. ९४) ३ वडगच्छना सर्वदेवसूरि-जयसिंह-चन्द्रप्रभ-धर्मघोष-शीलगुण सूरिना शिष्य अने 'जयन्तीप्रश्नोत्तरसंग्रह' ना कर्ता. एमना शिष्य मलयप्रभे सं. १२६० मां उक्त 'जयन्तीप्रश्नोत्तरसंग्रह' उपर 'सिद्धजयन्ती' नामक वृत्ति रची हती (पी. ३, ३७) अने ते वृत्ति पोरवाड ज्ञातिना श्रेष्ठि धवलमरुनी पुत्री नाउ नामनी श्राविकाए

अणहीलपुरपाटणमां पंडित मुंजाल पासे लखावी अजीतप्रभसूरिने समर्पित करी सं. १२६१ आश्विन वद ७ रविवारे पुष्य नक्षत्रमां, अणहीलपुरपाटणमां पंडित मुंजाल पासे लखावी अजीतप्रभसूरिने समर्पित करी

हती. (पी. ३४५ अने शान्तिनाथ ज्ञा. भं. खंभात) ४ अंचलगच्छना जयशेखरसूरिजीकृत उपदेशचिंतामणिनी टीकाना कर्ता. आ

उपरांत चन्द्रकुलना मानदेवसूरिना वंशमां, त्रीजी चोथी पाटे मानतुंगसूरि एवुं नाम अनेक वखत आव्या करे छे.

संशोधन, संपादन अने उपयुक्त हस्त प्रतिओ.

आ पुस्तकना संशोधन-संपादनमां नीचे मुजबनी चार हस्तलिखित प्रतिओनो उपयोग कर्यो छे.

१ खंभातनी श्रीनीतिविजयपुस्तकालयनी पत्र १०२, डाभडा नं. १६, प्रति नं० ७. आ प्रति समयनी दृष्टिए, अमारी पासे आवेली सौ प्रतिओमां प्राचीन छे. प्रति अतीव जीर्ण थई गयेली छे. जरा पण असावधानताथी उपाडवामां आवे तो पानांओने चूर्णीभूत थतां जराय वार लागे तेम नथी. केटलांक पानांओ तो आवी स्थितिने प्राप्त करी चूक्यां छे. प्रतिनी लीपी पडीमात्रा छे. अन्तमां आ मुजबनी ग्रन्थलेखनपुष्पिका छे.

"संवत् १६१८ वर्षे मार्गशी(र्ष) वदी ६ गुरू श्री ॥

२ श्री केशरबाई ज्ञान मन्दिर-पाटणमां आवेला पू. आचार्य श्रीमद्विजयलब्धिसूरीश्वरजी संगृहीत पू. आचार्य श्रीमद्विजयकमलसूरीश्वर-शास्त्रसंग्रहनी १०० पानांनी प्रति. प्रथमनुं पत्र गुम थयेलुं होई शरूआतना चोवीश श्लोको नथी. आ प्रति नवीज लखायेली छे. ग्रन्थलेखनपुष्पिका आपवामां आवी नथी. आ प्रतिनां प्रारंभनां अर्धा उपरांत पानांओ पू. स्वर्गत गुरुदेवश्रीविजयकमलसूरीश्वरजी महाराजाए पोतेज लख्यां छे. ज्यारे बाकीना पानांओ कोई लहीयाए लख्यां होय तेम लागे छे.

३ शेठ सुराजी रघुचंद जैनविद्याशाला-अमदावादनी ११५ पानानी प्रति. आ प्रति अमने अमदावादस्थित पू. शान्ततपोमूर्ति आचार्य श्रीमद्विजयसिद्धिसूरीश्वरजी महाराजानी कृपाथी प्राप्त थई छे. प्रतिना अन्तमां लेखकादि संबंधी पुष्पिका आ प्रमाणे छे.

“पुराणसिद्ध षोडशमजिनेशप्रासादादिजिनालयविभूषितश्रीवीरमग्रामनगरनिवासिना श्रेष्ठिवरेण भूराभाइतनुजेन पेथडलाले-तिताभ्यां लेखयित्वा स्थापितमाचार्यश्रीमद्विजयसिद्धिसूरीश्वरजीशास्त्रसंग्रहे ॥ छ ॥ श्रीरस्तु ॥ शुभं भवतु ॥ कल्याणमस्तु ॥ छ ॥ संवत् १९९४ ज्येष्ठ शुक्ल पक्षे १ बुधवारे ली० नागोरमध्ये हगराज

४ जैनानन्द पुस्तकालय सुरतमां राखवामां आवेला ‘आचार्य श्रीमद् विजयकमलसूरीश्वर प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकोद्धार फंड’ नी, न. ११६०. २०९ पत्रवाली प्रति. आ प्रति वि. सं. १९९२ मां पाटणना भंडारनी हस्तप्रत उपरथी लखावायेली छे. पाटणनी जे प्रतिउपरथी आ नकल थई छे ते प्रतिमां आ मुजबनी पुष्पिका छे.–

‘संवत १४८९ वर्षे अषाढवदी चतुर्थ्यां सोमे श्रीखरतरगच्छे श्रीजिनभद्रविजयराज्ये श्रीः श्रेयोऽस्तपरिग्रवार प्रति शुद्धं चिरं नन्दतात् ॥

उपरिनिर्दिष्ट प्रतिओमांथी पे अने त्रण नंबरनी प्रतिओनो प्रेसकोपी अने संशोधनादिमां अमे वधारे उपयोग कर्यो छे. आ बन्ने प्रतिओ नवीन लखायेली होवा छतां प्रमाणमां ठीक शुद्ध छे न. ४ वाळी प्रति शुद्ध न होवा छतां कोईक कोईक स्थळे पाठनिर्णय करवामां घणी सहायभूत थई छे. ज्यां अन्य प्रतिओ अशुद्ध अने भ्रान्त पाठवाळी रहेती त्यां केटलेक स्थळे आ प्रति शुद्ध पाठ पूरो पाडे छे. खंभातवाळी प्रति अतिजीर्ण होवाथी खास आवश्यक स्थळोए ज पाठनिर्णयमां तेनो उपयोग कर्यो छे. आ बधी प्रतिओ

आम तो लगभग समान ज—एक प्रति उपरथी उतरेली होय—तेम लागे छे. प्रतिलिपीकारो अलग अलग होई क्यांक क्यांक पाठभेद थयेल देखाय छे. प्राचीन हस्तलिखित प्रतिओमां केटलांक अक्षरोमां लगभग समानता होवाने लीधे लेखकनी असावधानता अथवा स्हमजफेरथी आवा पाठभेदो वधवानो घणो ज संभव होय छे. केटलांक स्थलोए प्रतिओमां पाठो छूटी गयेला छे. आवा भ्रष्टपाठो बधी प्रतिओमां एकसरखाज मळे छे. अमे ते स्थलो आवी [............] निशानी मूकी खाली राख्यां छे. जेथी विद्वान् वांचको तेमने कोई प्राचीन हस्तप्रति प्राप्त थई जाय तो तेना आधारे पाठोनी पूर्ति करी शके. वधी प्रतिओमां सरखा ज पाठो छूटेला मलता होवाथी आ प्रतिओ कोई एक ज प्रतिनी प्रतिलिपीओ छे एवा अमारा अनुमानने विशेष समर्थन प्राप्त थाय छे. अमारा पासे आवेली प्रतिओमां महत्त्वना पाठभेदो न होवाथी अमे अहीं पाठान्तरो आप्या नथी. जे प्रतिनो पाठ अमने वधारे शुद्ध अने संगत लाग्यो ते अमे त्यां ज आपी दीधो छे. ज्यां चारे प्रतिओमां व्याकरणनी, अर्थसंगतिनी के छंदोभंगनी दृष्टिए पाठो ठीक न जणाया ते अमे सुधारी लीधा छे. अनुस्वार अने मात्राओ तो अनेक स्थलोए अमारे मूकवा पड्यां छे. ग्रन्थमां आवतां कठीन शब्दो उपर तेना सरल पर्याय शब्दोनी टीप्पणी पण सौ कोईने ग्रन्थवांचनमां साहाय्यक थाय ए उद्देशथी नीचे आपी छे. प्रत्येक पाना उपर ते पानांना मुख्य विषयनी नोंध आपेली होवाथी अनुक्रमणिका आपवानुं अमने योग्य लाग्युं नथी.

आभार-दर्शन अने क्षमा याचना

वि. सं. २००१ ना मुंबई लालबाग जैन उपाश्रयना चातुर्मास निवास दरमियान प्रकाशन कराववानी इच्छाथी केटलांक, ज्ञानभंडारोमांथी केटलीक हस्तपोथीओ अमे मंगावी हती. तेमांथी प्रस्तुत श्रेयांसनाथचरितनी प्रति जोईने तेनुं प्रकाशन करवानी

प्रबल इच्छा, पू. प्रशांतमूर्ति पंन्यास प्रवर श्रीमद् प्रवीणविजयजी गणिवरना विनेय महिमासंपन्न मुनिपुंगव परम सुहृद्वर्य श्रीमन् महिमाविजयजी महाराजाने थवाथी, तेमनी प्रबल प्रेरणाना प्रतापेज अमे आ ग्रंथनुं संपादन-संशोधन करी शक्या छीए. ग्रन्थप्रकाशन माटे आवश्यक आर्थिक साहाय्य पण तेओश्रीए पोताना गुरु-सहोदर सदुपदेश द्वारा आ ग्रन्थनी प्रकाशक संस्थाने अपावी छे. तेओश्रीनी ममताळु प्रेरणाना बळे अमे यथाशक्ति श्रुतभक्ति करी शक्या छीए एटले तेओश्रीना अमे अत्यन्त आभारी छीए.

आ ग्रन्थना संपादनकार्यमां, प्रुफोना संशोधनमां तथा टीप्पणोना आलेखनमां अमारा परमपूज्य गुरुदेव श्रीमद्विजयलब्धि-सूरीश्वरजी महाराजाए प्रदान करेली कृपा-साहाय्यनी नोंध अमारे क्या शब्दोमां आलेखवी ए अमारा माटे मुंझवणनो विषय छे. तेओश्रीना अनेक उपकारोथी उपकृत थयेला अमे, तेओश्रीना अमारा उपरना उपकारोनुं पुनः पुनः स्मरण करीए छीए.

ग्रन्थकारना आशयथी विरुद्ध जतो कोई पण सुधारो अमाराथी मतिमंदता के प्रमादादिना योगे थई गयो होय तो अमे ग्रन्थकार आचार्यश्रीना अन्तःकरणपूर्वक क्षमाप्रार्थी छीए.

आ ग्रन्थना संपादनादिमां जे कांई अपूर्णता रहेवा पामी होय तेने हंसक्षीरनीरन्याये सुधारीने, श्रीजिनेश्वरदेवना चरित्रामृतनुं पान करी, वाचको अनन्त आनन्दना भोक्ता बनो एज शुभेच्छा राखीये छीए.

पू. आचार्यदेवश्रीविजयलब्धिसूरीश्वरचरणचञ्चरीक
मुनि विक्रमविजय
मुनि भास्करविजय

जैन उपाश्रय : पूना केम्प
वि. सं. २००५ : महा वद ६
वीरसं २४७५ : आत्मसं. ५३

श्रीलब्धिसूरीश्वरजैनग्रन्थमाला

प्रकाशितग्रन्थसूची

१ जैनव्रतविधिसंग्रह	०—८—०	१३ तत्त्वन्यायविभाकरः (सटीकः)	५—०—०
२ हीरप्रश्नोत्तराणि	०—१२—०	१४ दीपालिकाकल्पः	भेट
३ श्रीपालचरित्रम्	भेट	१५ सम्मतितर्कसोपानम्	५—०—०
४ तत्त्वन्यायविभाकरः (मूलः)	०—८—०	१६ सूत्रार्थमुक्तावलिः	५—०—०
५ पञ्चसूत्रम्	भेट	१७ सकलार्हत्स्तोत्रम् (सटीकम्)	भेट
६ हरिश्चन्द्रकथानकम्	भेट	१८ आत्मानन्दस्तवनावली	०—४—०
७ वैराग्यरसमञ्जरी	भेट	१९ धन्य नारी	भेट
८ चैत्यवन्दनचतुर्विंशतिः	०—२—०	२० द्वादशारनयचक्रम् १ भागः	६—[illegible]—०
९ कविकुलकिरीट	०—८—०	२१ प्रवाहिनी दिशा.	३—०—०
१० मूर्तिमंडन (गुजराती)	०—४—०	२२ [illegible]	४—०—०
११ मूर्तिमंडन (हिन्दी)	भेट	२३ [illegible] (गुर्जरानुवाद)	५—[illegible]—०
१२ आरम्भसिद्धिः (सटीका)	२—८—०	२४ [illegible]चरित्रम्	भेट

प्रकाश्यमानग्रन्थसूची

द्वादशारनयचक्रम् द्वितीयो विभागः



प्राप्तिस्थानम्

श्रीलब्धिसूरीश्वर जैन ग्रन्थमाला

छाणी (वडोदरा)

श्रीशंखेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ।

श्रीआत्म–कमल–लब्धिसूरीश्वरेभ्यो नमः ।

राजगच्छीय-आचार्यश्रीमानतुङ्गसूरिविरचितम्

श्रेयांसनाथचरितम् ।



प्रथमः सर्गः ।

अश्रमः श्रमणश्राद्धवृषपोषमनीषया । कुन्तलच्छलदूर्वालिशालिस्कन्धोऽवताज्जिनः ॥ १ ॥ अगाद्यदङ्कगः खड्गी मृगेषूदग्रशृ-
ङ्गताम् । विश्राणयतु स श्रेयः श्रेयांसः श्रेयसां निधिः ॥ २ ॥ श्रीमते शान्तिनाथाय नमः शान्तिविधायिने । त्रैलोक्यस्यामराधीश-
मुकुटाभ्यर्चिताङ्घ्रये ॥ ३ ॥ सप्तद्वीपाधिपो दीप्त्या सप्तार्ची श्रीजिनोऽवतात् । रत्नाढ्यसप्तपाथोधिसेव्यः सप्तफणच्छलात् ॥ ४ ॥
सिद्धार्थजातं सिद्धार्थजातं तं श्रीजिनं स्तुमः । सिद्धार्थजातं यस्याज्ञा शीर्षे दोषप्रमोषकृत् ॥ ५ ॥ जिनास्यकौमुदीनाथकौमुदी-
सङ्गमेन मे । तमः शमयतु स्वान्तनिशान्तस्थं सरस्वती ॥६॥ यत्कृतेऽष्टापदभ्रान्तिः केवलश्रीः प्रियापि सा । गुरुभक्त्या कृता दूरे येन
तं स्तौमि गौतमम् ॥ ७ ॥ उन्मुद्रयन्तु भद्राणि देवभद्रगुरोर्गिरः । कौतुकादिविधात्र्यो मां वालमालापयन्ति याः ॥८॥ श्रीदेवा-
नन्दशिष्यश्रीकनकप्रभशिष्यकः । श्रीप्रद्युम्नश्चिरं जीयाद्ग्रन्थस्यास्य विशुद्धिकृत् ॥ ९ ॥ श्रीजिनेश्वरविनेयश्रीरत्नप्रभशिष्यकः ।

श्रीशंखेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ।

श्रीआत्म–कमल–लब्धिसूरीश्वरेभ्यो नमः ।

राजगच्छीय-आचार्यश्रीमानतुङ्गसूरिविरचितम्

श्रेयांसनाथचरितम् ।



प्रथमः सर्गः ।

अश्रमः श्रमणश्राद्धवृषपोषमनीषया । कुन्तलच्छलदूर्वालिशालिस्कन्धोऽवताज्जिनः ॥ १ ॥ अगाधदक्षगः खड्गी मृगेषुस्पृष्ट-
ञ्जताम् । विश्राणयतु स श्रेयः श्रेयांसः श्रेयसां निधिः ॥ २ ॥ श्रीमते शान्तिनाथाय नमः शान्तिविधायिने । त्रैलोक्यप्राग्भाराधीश-
मुकुटाभ्यर्चिताङ्घ्रये ॥ ३ ॥ सप्तद्वीपाधिपो दीप्त्या सप्तार्ची श्रीजिनोऽवतात् । रत्नाढ्यसप्तपाथोधिरोचयः सप्तफणच्छलात् ॥ ४ ॥
सिद्धार्थजातं सिद्धार्थजातं तं श्रीजिनं स्तुमः । सिद्धार्थजातं यस्याज्ञा शीर्षे दोषप्रमोषकृत् ॥ ५ ॥ जिनास्यकौमुदीनाथकौमुदी-
तङ्क्रमेन मे । तमः शमयतु स्वान्तनिशान्तस्थं सरस्वती ॥६॥ यत्कृतेऽष्टापदभ्रान्तिः केवलश्रीः श्रियापि सा । गुरुभक्त्या कृता दूरे येन
तं स्तौमि गौतमम् ॥ ७ ॥ उन्मुद्रयन्तु भद्राणि देवभद्रगुरोर्गिरः । कौतुकादिविभाज्यो या बालपालागमन्ति गाः ॥ ८ ॥ श्रीदेवा-
नन्दशिष्यश्रीकनकप्रभशिष्यकः । श्रीप्रद्युम्नश्चिरं जीयाद्ग्रन्थस्यास्य विशुद्धिकृत् ॥ ९ ॥ श्रीजिनेश्वरनिर्नेयश्रीरत्नप्रभविभाव्यकः ।

प्रकाश्यमानग्रन्थसूची

द्वादशारनयचक्रम् द्वितीयो विभागः



प्राप्तिस्थानम्

श्रीलब्धिसूरिश्वर जैन ग्रन्थमाला

छाणी (वडोदरा)

श्रान्तमपि वप्रं न तृप्यति ॥ २७ ॥ तत्रास्ते भुवनभानुर्भानुर्भानुर्भुवो विभुः । अन्धकार इवारातिवारस्त्रस्तो यतोऽनशत् ॥ २८ ॥
वक्षसि श्रीर्भुजे भूमिश्चन्द्रो वक्त्रे गुरुर्मतौ । कर्तुं निजयशःस्थैर्यमिवैते यमशिश्रियन् ॥२९॥ विजितो यस्य रूपेण जगज्जेतापि मन्मथः ।
मदं विमुच्य सङ्कुच्याऽदृश्योऽभूजनतादृशाम् ॥ ३० ॥ यत्प्रतापानलो हस्तिकर्णतालानिलाहतः । आक्रान्तभूतलो भूमीभृतां वंशान-
भसयत् ॥ ३१ ॥ कलङ्ककलितं चन्द्रं कमलं कण्टकाकुलम् । परिमुच्याऽभजद्यस्य मुखं निर्दोषमिन्दिरा ॥ ३२ ॥ शमेन कलितं
रूपं क्षान्त्या शूरत्वमाश्रितम् । कृतज्ञत्वेन नाथत्वं ज्ञानं गम्भीरया गिरा ॥३३॥ इति यस्य निरीक्ष्यन्ते गुणप्रसविनो गुणाः । तत्तेषां
वर्णने वाचोऽवाचो वाचस्पतेरपि ॥ ३४ ॥ प्रचुरान्तःपुरस्मेरलोचनाञ्चलवीजितः । भुवं बिभर्त्यनायासः स दिवं वासवो यथा
॥ ३५ ॥ अन्यदा पद्मिनीखण्डं विषमेषोरिपुव्रजम् । सज्जयन्ती समागच्छत् सरस्याग्रेसरा शरत् ॥३६॥ राजा राजाश्वमारूढः पुरी-
परिसरं वरम् । द्रष्टुं विनिर्ययौ युक्तः सुबुद्ध्यादिकमन्त्रिभिः ॥ ३७ ॥ पश्यन्नितस्ततो भूपो भावान् सेवकदर्शितान् । दूराच्छालेय-
मध्यस्थं मृगमेकमलोकत ॥ ३८ ॥ चरन्तं वीक्ष्य तं रत्नकिङ्किणीमालभारिणम् । शालिशीर्षाणि भूपालो विस्मयादित्यचिन्तयत्
॥ ३९ ॥ किं मृगोऽयं मृगाङ्केनोज्झितः स्वाङ्कात् कलङ्ककृत् । किं वा स्वेनाययौ शालिगोपी[2]गीतश्रुतेरयम् ॥४०॥ तदाऽऽददाम्यमुं
क्रीडाहेतोरिति विचिन्तयन् । पृष्टे तस्य कुरङ्गस्य तुरङ्गममुचन्नृपः ॥४१॥ कृष्णसारोऽपि तं भूपमापतन्तं निरीक्ष्य सः । पलायत क्व-
चिद्दूरेऽदूरे च स्वं प्रकाशयन् ॥४२॥ अपश्यन्नुच्चनीचानि वायुवाजेन[3] वाजिना । पृष्ठलग्नोऽस्य कान्तारमविशत् काश्यपीपतिः ॥४३॥
प्रतीक्ष्य च चिरं तत्र भूपादर्शनदुःखितम् । सुबुद्धिमन्त्रिणा सार्धं चचाल त्वबलं बलम् ॥४४॥ मन्त्रिणाभ्येत्य नगरे नरेशान्वेषणे नराः ।

१ कामदेवस्य । २ क्षेत्रसंरक्षिण्यः ग्राम्याः स्त्रियः । ३ पवनवेगेन ।

धेमासनरिले मानत्तुङ्गाणार्यमनोऽस्यलम् ॥ १० ॥ गुणर्णपटनाकाशं मालझारं करोति यः । सौपर्णिकमणेरिव रत्नगतं राजनं
जनम् ॥ ११ ॥ दीपवत् दुर्जनो दोषाधमतः स्फुरति स्निग्धा । कुर्वन् गुणागम्यशुद्धा काम्यभिर्नि दहन् गुणान् ॥ १२ ॥ धेमास-
नाभिधे देवगत्रोधानेऽत्र निग्रणः । गृह्णामि मार्ग मोगस्वात् पदार्थगुणनाफलैः ॥ १३ ॥

पुराऽभूत्पुष्करद्वीपप्राग्विदेहे शुभा पुरी । नृपतिर्नलिनीगुल्मनामा धाम यशोऽधिगाम् ॥१४॥ गत्वा शुभंगमं च्युत्वा जम्बूभर-
तमण्डले । पुरे सिंहपुरे विष्णुनृपदेवपालनृपः ॥ १५ ॥ श्रीश्रेयांसोऽभिधानेन तीर्थनाथो भविष्यति । भवरसमयमिदं पद्ये जातं
मुनोक्तो ॥ १६ ॥ द्वीपोऽस्ति पुष्करद्वीपो यस्यार्धं मानुषाद्रिणा । विभज्येपार्ध्यां नृणामगोऽग्र पद्मुतः परम् ॥१७॥ पुष्करे यस्य
मध्यगं मिलश्रोऽर्धश्वरोऽक्ताः । गाधिगा गाधिर्मं निर्भरस्येतीव विस्तारम् ॥१८॥ यन्मध्यगमनुष्याद्रौ सिद्धायतनपद्धतिः । पिण्डी-
भूय तदीयवातिकीर्तिः राजते ॥१९॥ प्राच्यार्धे यत्र सन्देहसन्दोहद्रोहिभिर्जनैः । प्राग्विदेहमसन्देहं सदास्तिपत्नुमसिव(?शुभोऽस्ति
भ) ॥ २० ॥ कल्याणभूपराम्यर्णभावादिव महीतले । यत्र सर्वत्र कल्याणमालाऽकालारम्भति ॥ २१ ॥ रमणीगाम्यगा यत्र
विजयो विजयोद्धतः । स्वर्गलोकस्य तत्रासिजनानां भर्गदर्शनात् ॥ २२ ॥ मदीयरमणीयत्वभीयते फलतापलः । द्विगतिग्मांशुने-
त्राम्भाधुर्यः शिशिरस्थलात् ॥ २३ ॥ पुरी तत्र शुभा नाम जनैः शुभैः श्रुता भुवि । अशुभं विधिपन्तीव चलचैत्यध्वजैर्ध्रुवं
॥ २४ ॥ यत्र चैत्यध्वजप्रान्तैः क्षुब्धं स्वर्गधुनीपयः । तत्पतद्वारिभिः श्रीता उन्मुखा दिवि नायकाः ॥ २५ ॥ यत्रोत्सवोत्सवतस्य
रैणाननरेशितुः । अधोभूमौ स्थितचन्द्रो भवे श्वेतातपत्रताम् ॥२६॥ धवपत्रमुखी यत्र परिला निमिषाधिभिः । पवनन्दी कान्तम-

1 नवामा नाम: स्वतेः । 2 मानतुङ्गाचार्यः ।

श्रान्तमपि वप्रं न तृप्यति ॥ २७ ॥ तत्रास्ते भुवनभानुर्भानुर्भानुर्भुवो विभुः । अन्धकार इवारातिवारस्त्रस्तो यतोऽनशत् ॥ २८ ॥
व्यधारि श्रीर्भुजे भूमिश्चन्द्रो वक्त्रे गुरुर्मतौ । कर्तुं निजयशःस्थैर्यमिवैते यमशिश्रियन् ॥२९॥ विजितो यस्य रूपेण जगज्जेतापि मन्मथः ।
मदं विमुच्य सङ्कुच्याऽदृश्योऽभूज्जनतादृशाम् ॥ ३० ॥ यत्प्रतापानलो हस्तिकर्णतालानिलाहतः । आक्रान्तभूतलो भूमीभृतां वंशान-
भसयत् ॥ ३१ ॥ कलङ्ककलितं चन्द्रं कमलं कण्टकाकुलम् । परिमुच्याऽभजद्यस्य मुखं निर्दोषमिन्दिरा ॥ ३२ ॥ शमेन कलितं
रूपं क्षान्त्या शूरत्वमाश्रितम् । कृतज्ञत्वेन नाथत्वं ज्ञानं गम्भीरया गिरा ॥३३॥ इति यस्य निरीक्ष्यन्ते गुणप्रसविनो गुणाः । तत्तेषां
वर्णने वाचोऽवाचो वाचस्पतेरपि ॥ ३४ ॥ प्रचुरान्तःपुरस्मेरलोचनाञ्चलवीजितः । भुवं बिभर्त्यनायासः स दिवं वासवो यथा
॥ ३५ ॥ अन्यदा पद्मिनीखण्डं वि[1]षमेषोरिपुव्रजम् । सज्जयन्ती समागच्छत् सस्याग्रेसरा शरत् ॥३६॥ राजा राजाश्वमारूढः पुरी-
परिसरं वरम् । द्रष्टुं विनिर्ययौ युक्तः सुबुद्ध्यादिकमन्त्रिभिः ॥ ३७ ॥ पश्यन्नितस्ततो भूपो भावान् सेवकदर्शितान् । दूराच्छालेय-
मध्यस्थं मृगमेकमलोकत ॥ ३८ ॥ चरन्तं वीक्ष्य तं रत्नकिङ्किणीमालभारिणम् । शालिशीर्षाणि भूपालो विस्मयादित्यचिन्तयत्
॥ ३९ ॥ किं मृगोऽयं मृगाङ्केनोज्झितः स्वाङ्कात् कलङ्ककृत् । किं वा स्वेनाययौ [2]शालिगोपीगीतश्रुतेरयम् ॥४०॥ तदाऽऽददाम्यमुं
क्रीडाहेतोरिति विचिन्तयन् । पृष्ठे तस्य कुरङ्गस्य तुरङ्गममुचन्नृपः ॥४१॥ कृष्णसारोऽपि तं भूपमापतन्तं निरीक्ष्य सः । पलायत क्व-
चिद्दूरेऽदूरे च स्वं प्रकाशयन् ॥४२॥ अपश्यन्नुच्चनीचानि [3]वायुवाजेन वाजिना । पृष्ठलग्नोऽस्य कान्तारमविशत् काश्यपीपतिः ॥४३॥
प्रतीक्ष्य च चिरं तत्र भूपादर्शनदुःखितम् । सुबुद्धिमन्त्रिणा सार्धं चचाल त्वचलं बलम् ॥४४॥ मन्त्रिणाभ्येत्य नगरे नरेशान्वेषणे नराः ।

१ कामदेवस्य । २ क्षेत्रसंरक्षिण्यः ग्राम्याः स्त्रियः । ३ पवनवेगेन ।

प्रेषिताः शिक्षयित्वेति देवं पश्यत सर्वतः ॥ ४५ ॥ त्यक्त्वा सर्वाणि कार्याणि लोकः शोकतमोर्णवे । मग्नो युक्तं हि भुवनभानौ
स्थानान्तरे गते ॥ ४६ ॥ न पण्यं पण्यशालासु न नाट्यं नाट्यवेश्मसु । न पाठः पाठशालासु निशीराडपि गोपतेः ॥४७॥ सचि-
वोऽचिन्तयच्चित्तेऽसत्तः श्लाघ्यः पशुर्मृगः । मृगाङ्केन समं यस्य विपदः सम्पदोऽपि च ॥४८॥ एकेन्द्रिया अपि सतां स्तुत्यास्ते कमला-
कराः । वियोगे निजनाथस्य दूरमुज्झन्ति ये श्रियम् ॥४९॥ धिग्मां तिग्मांशुतुल्येऽपि गते स्वामिन्यदृश्यताम् । हहा! जीवन्मृतमपि
प्राणत्राणपरायणम् ॥ ५० ॥ इति चिन्तयतस्तस्य दिनैः कतिपयैरथ । अस्फुरद्दक्षिणं चक्षुर्नृत्यद्भाविशुभादिव ॥ ५१ ॥ किं भाव्यं
भव्यमित्येतद्ध्यायन्नानन्दवेत्रिणा । स व्यज्ञपि नरः कोऽपि समेतो लेखवाहकः ॥ ५२ ॥ दिदृक्षते स युष्माकं पादानथ ससम्मदात् ।
प्राह प्रवेश्यतां शीघ्रं स तेनाथ प्रवेशितः ॥ ५३ ॥ नत्वा तमुचितस्थाने निविष्टं सचिवोऽवदत् । कुशलं तव स प्राह युष्मत्पाद-
प्रसादतः ॥ ५४ ॥ उक्त्वेति राजमुद्राङ्कं लेखमेष समर्पयत् । उन्मुद्रितमुदुन्मुग्य सचिवस्तमवाचयत् ॥ ५५ ॥ स्वस्तिश्री श्रीपु-
राद्विद्याधरचक्रित्वभाजनम् । महाभूमीन्द्रभुवनभानुर्भानुरिव त्विषा ॥ ५६ ॥ श्रीशुभायां महामात्यं सुबुद्धिं निजकौशलात् ।
आनन्द्य सप्रसादं तमाज्ञापयति यत्त्वया ॥५७॥ गजवाज्यादिराज्याङ्गसौस्थ्ये यत्यं निरन्तरम् । वयं तत्र समेष्यामो दिनैः कतिपयैरिति
(त्रिभिर्विशेषकम्) ॥ ५८ ॥ वाचयित्वेति देहोत्थकण्टकेनासुरं तुदन् । दध्यौ धन्योऽसि यस्येदृग्भाग्यभूमिः प्रभुः प्रभुः ॥५९॥
क्वेयं पुरी क्व विद्याभृच्चक्रित्वं तत्र चित्रकृत् । प्राच्यपुण्यवतां पुंसां किं किं सम्पद्यते न वा ॥६०॥ ध्यात्वेति खेचरं प्राह कथं कथम-
भूदिदम् । उज्जीवय मनोऽस्माकं तद्वृत्तान्तसुधारसैः ॥६१॥ विद्याधरोऽवदद्विद्याधरेन्द्रस्य निशम्यताम् । तच्चित्रं च पवित्रं च चरित्रं

१ द्वारपालेन ।

मन्त्रिशेखर! ॥ ६२ ॥ युष्माकं विदितो देवो मृगपृष्ठे प्रधावितः। अथ कान्तारगे देवे कुरङ्गोऽदृश्यतां गतः ॥ ६३ ॥ तत्कान्तारं
दुरुत्तारं भीषणेभ्योऽपि भीषणम्। तुरङ्गस्थोऽभ्रमन्भूपश्चित्तस्थ इव चेतनः ॥६४॥ पृथ्वी तरुदलच्छन्ना पृथ्वीशे नाथसङ्गमे। सत्रपेव न यत्र
स्वं प्रकाशं कुरुतेतराम् ॥ ६५ ॥ यत्र वन्दनमालार्थमिव भूपसमागमे। भज्यन्ते वानरैः शाखिशाखा हर्षप्रकर्षतः ॥ ६६ ॥ चपेटा-
पातितैः कुम्भिकुम्भस्थलरसोद्भवैः। मृगराजो नृपराजस्य प्राभृतं यत्र कुर्वते ॥६७॥ सतृष्णः पथखिन्नः सन्नयो पाथो विलोकयन्।
पृथ्वीनाथः सरोऽपश्यत् फुल्लाम्भोजोपशोभितम् ॥ ६८ ॥ उल्लोलजलकल्लोलभुजैरिव नभःश्रियम्। यदालिङ्गति राजीवलोचनैश्च[1]
विलोकते ॥ ६९ ॥ उत्तीर्य तुरगात्तूर्णं यावद्वारि विगाहते। तावदश्वोऽपि सहसा लोचनागोचरं गतः ॥ ७० ॥ श्रुत्वेति सचिवः
पीठादलुठत्सहसा भुवि। मरुदाहतशाखीव सेवकानां सहाश्रुभिः ॥ ७१ ॥ ततः परिजनेनासौ सिक्तः श्रीखण्डवारिभिः। मुख्या-
वस्थोऽभवद्ग्रीष्मक्षीणवृक्ष इव क्षणात् ॥७२॥ इत्यमात्यस्तदा दैवं व्यक्तं वक्ति हहाधम!। स्वामिनं विपिने क्षिप्त्वा किमश्वोऽपि हृत-
स्त्वया ॥७३॥ किञ्च चिन्त्यमिदं किञ्चित्पट्टाश्वः सोऽत्र तिष्ठति। यत्रारूढः प्रभुर्यातः स तु नष्टो महाद्भुतम् ॥७४॥ इत्थं विलप्य
बहुधा मन्त्री चेलाञ्चलेन च। प्रोन्मृज्य नेत्रे तं प्राह महाभाग! पुरो वद ॥७५॥ ततो दध्यौ नृपश्चित्रं यद्दैवं मम पश्यतः। कुरङ्गोऽपि
तुरङ्गोऽपि गतः केनापि हेतुना ॥ ७६ ॥ तत्स्वप्नोऽयमथो सत्यमिन्द्रजालमथो विधेः। तदहं दलयिष्यामि तन्मरट्टं घरट्टवत् ॥७७॥
ध्यात्वेति स जलक्रीडां कृत्वाऽऽसीनस्तरोस्तले। दध्यौ मद्विरहे भावी पुरीलोकः कथं कथम् ॥ ७८ ॥ अथवा यत्र मन्त्रीशः सुबुद्धिः
कार्यचिन्तकः। स्वामिभक्तश्च शक्तश्च स्याच्चिन्ता तत्र कीदृशी ॥७९॥ अथ यः किल मध्यस्थः स विश्वोपरि जायते। इत्याख्यातुमिवा-

1 कमलनेत्रैः।

ध्यास्त नभोमध्यं नभोमणिः ॥ ८० ॥ हंसैरथो धृतविसदंडैर्दोःस्थैरिवोद्यतैः । कथितावसरो भूपः फलान्यन्वेषयद्वने ॥ ८१ ॥ उद्यानमथ स स्वर्गमिव रम्भामनोहरम् । अपश्यंस्तापसीमेकामर्द्धवृद्धामलोकत ॥८२॥ बहिश्चक्रे यया रागो रक्तवस्त्रच्छलाद्धृदः । भूतिच्छलादिव यशः परिवेषस्तथात्मनः ॥८३॥ मनोव्यालस्य बन्धाय जटापाशं बिभर्ति या । हृदि कामस्य रक्षार्थमिव रुद्राक्षमालिकाम् ॥८४॥ नृपस्तां वीक्ष्य साह्लादो गतः सा पीठमत्यजत् । पदानि कतिचिच्चैत्य दत्त्वार्घ्यं स्वासनं ददौ ॥८५॥ सा निविश्य नृपस्याग्रे प्रोवाच पुरुषोत्तम ! । स्वागतं ते नृपः प्राह स्वागतं तव दर्शनात् ॥८६॥ पुरा दुरागतमभूद्दुःखतप्तस्य मे पुनः । त्वद्दर्शनसुधास्यन्दात्तापः सर्वोऽप्युनाऽनशत् ॥ ८७॥ यथा न सीमा दुःखानां दत्तानामस्ति वेधसा । तथा सज्जनसंयोगे सुखानामपि भूतले ॥ ८८ ॥ युष्मद्दर्शनमातिथ्ययुतं भगवति ! ध्रुवम् । यतः सारयति द्राक्षारसं मे सितया सितम् ॥८९॥ सोचे त्वं मम रूपेणाख्यातः सत्पुरुषः पुरा । अधुना तु निपुणया गिरा कोऽपि नराधिपः ॥९०॥ तदाख्याहि स्ववृत्तान्तं मम यद्यस्ति योग्यता । नृपः प्राह न कथ्येत युष्माकं किं भवद्विधाम् ॥९१॥ आत्मा यद्यपि कालेऽत्र कथ्यमानस्त्रपावहः । तथापि कथयामीति प्रोच्य सर्वं नृपोऽवदत् ॥ ९२ ॥ श्रुत्वेति तापसी प्राह कार्यः खेदो न मानसे । युष्माभिः सर्वमप्यत्र यतो भव्यं भविष्यति ॥ ९३ ॥ किञ्च कालागुरोरग्निसङ्गे परिमलः स्फुरेत् । तेजश्च धारपानीये मणीनामनणीयसां ॥९४॥ पवनान्दोलने गाढे स्थैर्यं स्वर्णाचलस्य च । यथा तथा महाराज ! सर्वमस्यां तवापदि (युग्मम्) ॥ ९५ ॥ नृपः प्राह विषं तावत् यावन्नामृतसम्पदः । तावद्दावश्च नो यावत् वारिवाहः प्रवर्षति ॥ ९६ ॥ न नागदमनी यावच्चानल्पसर्पः प्रसर्पति । तावच्च दुःखिनां दुःखं सतां यावन्न कथ्यते ॥९७॥ तापसी तापशीतत्वं कुर्वाणा प्राह भूपतिम् । तावद्वि-

१ परिपूर्णम् । २ महताम् ।

श्रम्यतां यावत्फलान्यहमुपानये ॥ ९८ ॥ सा पत्रपुटिमादाय तरुमूलं गताऽवदत् । भिक्षां देहीति सहसा विस्मितो राट् पुटीभृतौ
॥ ९९ ॥ दध्यौ तपःप्रभावोऽयं किञ्च मङ्गलमेव मे । यदस्या दर्शनं जज्ञे धन्यायाः निर्जने वने ॥ १०० ॥ इति ध्यायति भूपा-
लेऽभ्येत्य सा तं न्यमन्त्रयत् । प्राणवृत्तिं फलैः कर्तुं स तथा विदधे ततः ॥ १०१ ॥ प्राणवृत्तिं विधायैषा शेषैर्विश्रम्य च क्षणम् ।
तापस्यागान्नृपं जज्ञे मिथः सम्भाषणं तयोः ॥ १०२ ॥ प्रस्तावं प्राप्य पृथ्वीशोऽवदत् पृच्छामि किञ्चन । पूज्याया एव वात्सल्यं
प्रश्ने प्रेरयतीह माम् ॥ १०३ ॥ किंनिमित्तो वने वासः परलोको हि सिध्यति । गृहस्थत्वेऽपि दानाद्यैस्तदिदं मे निवेद्यताम्
॥ १०४ ॥ तापस्युवाच भूपाल! शल्यतुल्येन मेऽधुना । किं चालितेन वृत्तेन स्वपराऽसुखदायिना ॥ १०५ ॥ तथापि तेऽतिथेरा-
यातस्याश्चर्याच्च पृच्छतः । आख्यामि यत्सतां याञ्चाभङ्गः कर्तुं न शक्यते ॥ १०६ ॥
समस्त्यत्रैव विजये शिवाधारा शिवाभिधा । नगरी युक्तमेवैतन्नगराजसमुद्भवा ॥ १०७ ॥ तत्रास्ति धनदप्रायः सार्थवाहो
धनाधिपः । तद्गृहस्वामिनी लक्ष्मीरिति का नाम वर्णना ॥ १०८ ॥ तयोरतोकयोराद्यं तोकं जातास्म्यहं सुता । चन्द्ररेखाभिधा
चन्द्ररेखावल्लक्ष्म्यवर्जिता ॥१०९॥ पित्रोः प्रसादतो बालकालयोग्यं ममाखिलम् । सम्पद्यते स सद्योऽपि वचसा भूपतेरिव ॥११०॥
अथ कन्दर्पराजस्य दूतीव निपुणा गिरि । आज्ञाः कारयितुं तारा तारुण्यश्रीर्ममाविशत् ॥१११॥ बालकालोचितानेषा निषेध्य निखि-
लानपि । नियोगान्स्वोचितांश्चक्रे साज्ञेव नवभूपतेः ॥११२॥ अथ पत्रलतालीभिर्दिङ्मुखानि विभूषयन् । प्रावर्त्तत वसन्तर्तुः कर्तुमु-
न्मादिनं जनम् ॥११३॥ स्वच्छन्दखेलने तत्र जनेऽहं जनकाज्ञया । सखीवृता गतानङ्गसदनेऽनङ्गमार्चितुम् ॥११४॥ चन्दनागरुकर्पूर-

१ अपुत्रयोः ।

कस्तूरीकुङ्कुमादिभिः । विलिप्य पूजितः कामः कुसुमैरसमैरथ ॥ ११५ ॥ अमानबहुमानेन प्रमोदापूर्णचेतसा । प्रणामः पञ्चबा-
णस्य पञ्चाङ्गो निर्ममे मया ॥११६॥ इन्द्रियेष्विन्द्रियार्थेषु कौसुमेषु शरेषु च । पञ्चत्वं दधतेऽपि त्रिजगज्जीवन ! ते नमः ॥११७॥
स्तुत्वेत्यथोचं तुष्टोऽसि चेन्नाथ ! रतिनाथ ! मे । तदात्मनः समं दद्या वरं रूपवरं मम ॥११८॥ उक्त्वेति नत्वामुं यावन्निर्यामः काम-
धामतः । पश्यामः सहसा तावन्नरं प्रत्यग्रयौवनम् ॥११९॥ तं निध्याय मयाऽध्यायि ध्रुवमेष सुधामयः । दृष्टोऽपि शीतयत्यङ्गं यत्कार्यं
कारणानुगम् ॥१२०॥ अथवा मन्मथः साक्षाद्देवः प्राप्तो मधूत्सवे । ध्यात्वेति चन्द्रकान्ताख्या भाषिता स्वसखी मया ॥१२१॥ सखि !
प्रत्यक्ष एवायं स्मरः सा प्राह सुन्दरि ! । सत्यमेतद्युतो रत्या भवत्या चेद्भविष्यति ॥१२२॥ ततः सखीसमक्षं स ग्रहीतुं मम मानसम् ।
गतव्याजः स्मितव्याजात्सत्यङ्कारमिवार्पयन् ॥१२३॥ मयोचे सखि ! किं नैषोऽर्च्यते युष्माभिरादरात् । सा प्राह वरलाभेन कृतार्थाः
सख्यमर्चय ॥१२४॥ यदेतस्य प्रसादेन तव सर्वं समीहितम् । भविष्यति पराः सख्योऽन्वमोदन्त तदीरितम् ॥१२५॥ ऊचुश्च मां
सखी तेऽसौ यत्सुभाषितभाषिणी । तदस्यां प्रीतिदानेन प्रसादः क्रियतामिति ॥ १२६ ॥ रत्नावली मया तस्याः कण्ठे न्यस्ताऽथ साऽ-
वदत् । न योग्याऽस्या अहं पुष्पबाणं त्वं पूजयानया ॥ १२७ ॥ सा विज्ञातमदाकूता न्यास्थत्तत्कण्ठकन्दले । दन्दूतीनिपुणा चक्रेऽथ
नौ चित्तविपर्ययम् ॥१२८॥ अथ दुर्जनचेतोवत् तुच्छेऽन्याह सखीजनः । लीलां धामिव वीक्ष्यालि ! दिनमोऽपि निशाऽमिलत् ॥१२९॥
तद्गम्यते त्वद्विरहे पितरौ हि सुदुःखिनौ । दृक्पुटीभिस्त्वया पेयं प्रेयोवीक्षामृतं पुनः ॥१३०॥ मयोचे पीयमानेऽत्र तृप्तिर्नैव प्रजायते ।
सप्तानां येन वस्तूनां तृप्तिं कोऽपि न मन्यते ॥१३१॥ श्रियः गुणस्य कीर्तेश्च सद्गीतेर्जीवितस्य च । प्रेयःसमागमानां च सूक्तानां च
न तृप्यते ॥१३२॥ अथ सख्युपरोधेन जनयित्रीभयेन च । द्वारावलगकं चित्तं मुक्त्वा स्वभुवनं गता ॥१३३॥ सोऽपि चन्द्राभिधः

समं स्वमित्रवर्गेण स्वकमावासमासदत् ॥१३४॥ मम तु स्वगृहोद्देशा रुचिरा अपि नारुचत् । तमेव प्रेयसा
श्रेष्ठिधनसारस्य नन्दनः । समं स्वमित्रवर्गेण ... चित्तकुण्डे बहुस्नेहे प्रज्वलद्विरहानलः ॥ १३६ ॥
स्पृष्टं प्रदेशं संसराम्यहम् ॥ १३५ ॥ अथ तापो बभूवाङ्गे प्रज्वलज्ज्वलनाधिकः । चित्तकुण्डे बहुस्नेहे प्रज्वलद्विरहानलः ॥ १३६ ॥
यावदसीदृशी तावद्द्वारि काप्यागमद्वशा । सखीपार्श्वान्मया पृष्टा का त्वं केन च हेतुना ॥१३७॥ सा प्राह योऽर्चितः कामो युष्माभिस्तेन
तोपतः । युष्माकं प्रहिता पार्श्वे तन्मे सख्या निवेद्यत ॥१३८॥ मयोचे न यथाऽम्बापि वेत्त्यमुं त्वरितं तथा । प्रवेशय तथा चक्रे सख्या
दक्षावतंसया ॥१३९॥ अभ्युत्थाय मया दत्ते निविष्टा विष्टरे वशा । मया कृतनतिः प्राह पूर्यन्तां ते मनोरथाः ॥१४०॥ सोचे च प्रहि-
तस्तेन हारस्तापापहारकृत् । मया च बहुमानेन प्रियवन्निहितो हृदि ॥१४१॥ अथो मृगमदक्षोदलिखिताक्षरमालिकम् । आर्पयल्लेख-
मेषा मेऽनिमेषाक्ष्यहमैक्षिषि ॥१४२॥ तद्यथा मन्यमानस्त्वां रतिं तन्वि ! रतिप्रियः । अनुरक्तं त्वयि जनमिमं क्रुद्धः प्रविध्यति ॥१४३॥
वाचयित्वेति सा पृष्टा तद्वृत्तान्तमथाऽवदत् । उद्यानादागतः प्रैपीत्प्रदोषे स सुहृज्जनम् ॥१४४॥ गत्वोर्ध्वभूमिकां चित्रशालापल्यङ्कमा-
स्थितः । यावदस्ति गता तावदहं तद्वत्सलत्वतः ॥१४५॥ अहं हि धात्रिका तस्य तत्कृत्यं चिन्तये सदा । जनयित्रीमिवातीव स मां
मनसि मन्यते ॥१४६॥ तिष्ठाम्यलक्षिता यावत्स मया तावदीक्षितः । अरत्या कलितो मीन इव तप्तशिलातले ॥१४७॥ वदंश्च निभृतं
तन्वि ! कथं रुद्धं मम त्वया । कलामात्रेण सकलं विशालमपि मानसम् ॥१४८॥ त्वद्वियोगेन पीयूषकरो विषकरोऽभवत् । तस्य नान्यः
शमोपायो विना त्वदधरामृतम् ॥१४९॥ उक्त्वेति विरते तस्मिन् मयाऽऽत्मा ज्ञापितः क्षणात् । ससम्भ्रमः स चाज्ञाततत्त्वयेव मयोदितः
॥१५०॥ तवाङ्गे वत्स ! कल्याणं स्वं भावं वद मे पुरः । स विचिन्त्य व्यतिकरं मम सर्वं न्यवेदयत् ॥१५१॥ मयोचे युक्तमेवेदं सा

१ गृहप्रदेशाः ।

कन्या त्वं च पुनकः। अदृष्टदारवक्त्राब्जस्तत्कुतः कुरुषे भयम् ॥१५२॥ स प्राहाम्ब! भये हेतुः श्रूयतां जनकेन यत्। प्रहितोऽस्म्यब्धियात्रायां प्रातःप्रस्थानमङ्गलम् ॥ १५३ ॥ पण्यं पोते च निक्षिप्तं बहु लोकश्चचाल च। उद्याने सा कुरङ्गाक्षी गुरङ्गाक्षी च वीक्षिता ॥ १५४ ॥ तच्चिन्ताख्ये समुद्रेऽहमपतं तातपोतकः। विकल्पपूर्णः पोतस्तु पण्यपूर्णस्तथैव मे ॥ १५५ ॥ एकतस्तातपादानामाज्ञा मान्या परत्र सा। ताताज्ञासङ्गतः कार्यं धिकार्यं हि स्वकं जनैः ॥१५६॥ तातो हि दुष्प्रतीकार आराध्यो देवतेव च। कुर्वतश्चास्य वाचं मे मृगाक्षी मोक्ष्यतेऽसुभिः ॥१५७॥ जीवन्त्यपि हि निःस्नेहा भाविनी दर्शनं विना। गन्त्वा प्राक्षनरा पित्रादेशात्परकरं च सा ॥१५८॥ अदर्शनं ततोऽमुष्या अभविष्यत्सुसुन्दरम्। शेवधिं स्वेक्षणैर्वीक्ष्य दुःक्षमा विगताश्रता ॥१५९॥ हारार्पणच्छलात्तत्र गत्वा वरणकं कुरु। एतस्याः सर्वमाख्येयं रक्ष्या चित्तद्रुतिस्तथा ॥१६०॥ वाच्यं न चाहकं ज्ञेयो निःस्नेहो नीरसोऽकृपः। अकृतज्ञः स्वकार्यैकपरायणमना इति ॥ १६१ ॥ सुदूरं प्रस्थितस्यापि मम तातनिदेशतः। रत्नावलीव हृदये सर्वथापि त्वमेव मे ॥ १६२ ॥ तन्निशम्य मया प्रोचे दृषल्लेखेव मे वचः। ईदृक्ष्यां वीक्ष्य मां याति विनीतत्वेन यातु तत् ॥ १६३ ॥ मया सास्रं सनिःश्वासमिति प्रोच्य कथञ्चन। तस्याः सन्मानमाधाय वाचि वाचिकमादधे ॥१६४॥ त्वत्सान्निध्यपवित्रा मे तरवोऽपि सुदुस्त्यजाः। मुमोच भवतः सर्वमपि धीरस्त्वमेव तत् ॥१६५॥ स्वाङ्गानामेव पापानां प्रकुप्यामि पुनः पुनः। प्रस्थाने चित्तवधानि न भवन्ति तवाग्रतः ॥१६६॥ सन्दिश्येति विसृष्टा सा महाराज! मयाथ च। पृष्टा सखी ममाचख्यौ यामयुग्मं गतं निशः ॥१६७॥ मयोचे यात यूयं स्वस्थाने रात्रिर्महत्यभूत्। निद्रा ममैति प्रोच्येति व्यसृक्षमखिला अपि ॥ १६८ ॥ सशङ्का चन्द्रकान्ता तु वाचिकश्रवणान्मयि। अलक्षिता मया तस्थावहमेवं त्वचिन्तयम् ॥१६९॥ वेधसा घटितं मन्ये वज्रेण हृदयं मम। यदतीव भृतं दुःखैः सहसैव न भिद्यते ॥१७०॥ धन्या

यतिन्यस्ता वालकालेऽप्यङ्गीकृतव्रताः। यासां मनसि न प्रेमनटोत्थं कूटनाटकम् ॥१७१॥ तज्जीवितं त्यजाम्येतद्ध्यात्वेत्युपवनं गता।
वकुलद्रुमशाखायां पाशं बद्ध्वा ततोऽवदम् ॥१७२॥ अमुना मनसोऽभीष्टं लभ्यते साहसेन चेत्। ईदृक्षदुःखपात्रं मां मा विधेहि विधे!
ततः ॥ १७३ ॥ इत्युक्त्वा पाशकं न्यस्य कण्ठे स्वमसुचं शुचा। अपश्यंश्च ततः काष्ठामण्डलं निखिलं भ्रमत् ॥१७४॥ केनाप्यथ च
पाशो मे छिन्नश्छुरिकया स्यात्। उत्सङ्गे मां निवेश्याथ सोऽङ्गसंवाहनं व्यधात् ॥१७५॥ ततोऽहं लब्धचैतन्या चन्द्रं चन्द्ररुचैव तम्।
मत्वा चन्द्राश्मपाञ्चालीवद्धर्माम्बुप्लुताऽभवम् ॥ १७६ ॥ स प्रोवाच पुरा रत्नावल्याऽथो जीवितव्यकृत्। कृशोदरि! परिक्रीतस्तवा-
देशवशोस्म्यहम् ॥१७७॥ मयोचे कथमत्रागाद्भवान् स प्राह सुन्दरी। धात्र्यास्त्वद्वाचिकं श्रुत्वा वामाक्षि स्फुरति स्म मे ॥ १७८ ॥
अनिष्टशङ्की निर्यामि यावत्तावत्सखी तव। सम्मुखी सास्रमाख्यान्मे साहसोपक्रमं स्फुटम् ॥ १७९ ॥ ततोऽहं द्रुतमायातोऽशृणवं
वचनं तव। अथागाच्चन्द्रकान्ताऽपि ततोऽहं सत्रपाऽभवम् ॥१८०॥ बहुधा शपथैः सोऽथ मरणाध्यवसायतः। मां निषिध्य प्रचलितो
मयोचे प्रेमनिर्भरम् ॥ १८१ ॥ असौ तव शरीरस्य नयनोत्सवदायिनः। सागरो भगवानस्तु कल्याणकुशलावहः ॥ १८२ ॥
एवमस्त्विति भाषित्वा गतेऽस्मिंश्चन्द्रकान्तया। सहिताऽहं समेताऽस्मि गृहं दुःखसुखाश्रया ॥ १८३ ॥ प्रातर्निर्वर्तिताशेषमङ्गलोऽनु-
गतो जनैः। कुल्यानामाशिषः शिक्षाः पितुश्च दधदादरात् ॥१८४॥ अर्णवस्यार्हणां कृत्वा विसृज्य च पुरीजनम्। प्रणम्य च पितुः
पादौ पोतः पोतमशिश्रियत् (युग्मम्) ॥ १८५ ॥ अथाहं प्रथमं प्रेमविरहं मरणाधिकम्। सहमाना कृशाऽभूवं स्वचित्तविरहादिव
॥ १८६ ॥ पित्रोरविदितं चन्द्रकान्तादिकसखीजनैः। कुशलैः पृच्छयाम्यस्याश्वासनायस्त्वचेतसः ॥ १८७ ॥ वीक्ष्योपयमयोग्यां
मामनुरूपवरेच्छया। पितरौ नितरां चिन्ताक्रान्तचित्तौ बभूवतुः ॥१८८॥ अथो दिनैः कतिपयैः सुवर्णद्वीपतः पुमान्। मदीयमातु-

लेनाशु प्रहितः प्राप नो गृहम् ॥१८९॥ स नत्वा तातपादानामदात्कुङ्कुमपत्रिकाम् । ततोऽप्यवाचयत्स्वस्ति शिवायां नैगमेशितुः ॥ १९० ॥ श्रीधनावहस्य पादपद्मान्मणिपुराद्धनी । धनदेवाभिधो नत्वा विज्ञो विज्ञपयत्यदः ॥ १९१ ॥ भावी चन्द्रश्रियाः पुत्र्याः पाणिग्रहमहामहः । मान्यस्तदहमभ्येत्य प्रसद्य सपरिच्छदैः ॥ १९२ ॥ तातस्तं प्राह कोऽप्यस्ति चन्द्ररेखानुरूपभाक् । वरस्त्वत्ताऽथ मे जज्ञे तदा रतिविपर्ययः ॥ १९३ ॥ विलोमं मम दैवं किं किंचिदन्यद्विधास्यति । निर्भाग्यवैभवानां किं भवेच्चित्तसमीहितम् ॥१९४॥ स प्रोवाचानुरूपोऽस्या रूपमुख्यगुणालयः । आगच्छता मया दृष्टश्चन्द्राख्यः कुलपुत्रकः ॥ १९५ ॥ तातः प्राह स योग्योऽभूद्गतस्त्वम्बुधियात्रया । प्रौढाऽसौ पितृदूरस्था कथयान्यं ततो वरम् ॥१९६॥ स प्रोचे तं विना नान्योऽनुरूपोऽस्या जगत्यपि । तद्गिराऽथ ममानन्दो न माति स्म महीतले ॥१९७॥ एकं तत्कुशलं ज्ञातं निश्चितश्च वरः परम् । इति द्विगुणितो हर्षो मम दैवानुकूल्यतः ॥१९८॥ ततोऽथ परिवारेण सम्भारेण च सम्पदाम् । कलितश्चलितः पोतमारुह्याम्भोधिवर्त्मना ॥१९९॥ कालक्रमान्मणिपुरं प्राप्तोऽस्यामोदमेदुरः । धनदेवकृतप्रत्युत्थानःस्वावासमानयत् ॥२००॥ प्रतिपत्त्या स मम्पत्त्यालापैस्तापैकनाशनैः । सप्रमोदैर्विनोदैश्च तत्र नो वासरा ययुः ॥२०१॥ अथ तातान्तिके केचिदागत्य पुरुषा जगुः । सार्थनाथ! सुरेखा ते चन्द्ररेखाभिधा सुता ॥२०२॥ प्रदीयतां धनदाय धनपत्यङ्गजन्मने । कुलशीलकलालक्ष्मीरूपयौवनशालिने ॥ २०३ ॥ हारयष्टिः प्रकृष्टाऽपि नायकेन विराजते । चन्द्रोऽपि कौमुदीमङ्गचङ्गः सङ्गम्यते श्रिया ॥ २०४ ॥ चन्द्रोऽपीति गिराऽगर्भां शकुनग्रन्थिमात्मनः । अहं स तु नरः प्राह प्राप्यन्ते चापि कन्यकाः ॥ २०५ ॥ भवद्भिः सह सौजन्यं स्यादिति प्रार्थना ह्यसौ । प्रागपि स्वर्णकोट्या वः सन्मानं च विधास्यते ॥ २०६ ॥ कन्याऽन्यस्यापि देया नः स्वाजन्यं मन्यतां ततः । यत्कन्याऽन्योपकाराय सुरधेनुद्रुरत्नवत् ॥२०७॥ विचिन्त्य वक्ष्यामीत्युक्त्वा तान्

सम्मान्य विसृज्य च । मन्त्रयामास किं कुर्मः सुताया नोचितो हि सः ॥२०८॥ युक्तं यदेतकैश्चक्रे तदीयगुणवर्णना । सर्वस्व वहु-मानो हि वहुर्निजगुणव्रजे ॥ २०९ ॥ इयमस्माकमेकैव सर्वस्वं जीवितं धनम् । एतस्यामसुखिन्यां तदसुखं केवलं हि नः ॥२१०॥ पृष्टयाऽथ मयाऽऽख्याते चन्द्रनाथमनोरथे । तातः प्राहोचितं चन्द्ररेखा चन्द्रानुचारिणी ॥२११॥ तं परम्परया भावं ज्ञात्वा मे धनदः पुनः । धृतिं कुत्रापि न प्राप मरुन्यस्तमरालवत् ॥२१२॥ अन्यदा सहसा चन्द्रश्रियः कण्ठे मयैक्षत । सा रत्नमाला मत्पृष्टाऽथ मातु-लसुताऽवदत् ॥ २१३ ॥ पुमान् कतिपयानामप्यह्नां परत आगतः । तातस्याऽदर्शयत्तातः स्वर्णकोट्याऽग्रहीदिमाम् ॥ २१४ ॥ अपृ-च्छच त्वया भद्र! क प्राप्ता रत्नमालिका । सनिश्वासः स साश्रुश्चारेभे कथयितुं कथाम् ॥ २१५ ॥ चन्द्रे प्रणतकल्पद्रौ समुद्रान्तः समागते । पपात पोत आवर्त्ते कर्मावर्तविवर्ततः ॥२१६॥ कुलालचक्रवत्तत्र भ्रमदारूढमानसैः । भ्रमति स समं मृत्स्नापिण्डवद्दैव-दण्डतः ॥ २१७ ॥ अब्दैः श्यामा दिशोऽभूवन् यानारूढजनास्यवत् । जज्ञे च गर्जितं दीनहृदयस्फोटसन्निभम् ॥ २१८ ॥ विद्यु-द्द्युतदुत्क्षसकृतान्तरसनासमा । हाहारवो महानासीत्त्रासकृद्यादसां तदा ॥ २१९ ॥ मन्त्राद्यमसरन् धीराः केप्यन्ये तूपयाचितम् । मन्यन्ते स स्वदेवानां क्षणग्रहणपूर्वकम् ॥२२०॥ चन्द्रस्तु प्राह भगवन्! रत्नाकर मया यदि । भग्ना क्वापि न गुर्वाज्ञा तत्प्राणान् रक्ष मेऽक्षतान् ॥ २२१ ॥ जनानुवाच च स्वैरं गृह्णतां वस्तु पोततः । स्फुटति स ततो यानं नीचचित्तस्थगोप्यवत् ॥२२२॥ रत्नावली मयाऽग्राहि तदा भाग्यवशेन च । तरीभङ्गे तरीतुल्य प्राप्तं फलकमेककम् ॥ २२३ ॥ श्रुत्वेति मुक्तान्यश्रूणि मया मोजीविताशया । अध्यायश्च तदोद्याने मम क्वास्यावलोकनम् ॥ २२४ ॥ क चास्य दुस्तरा यात्रा जलधौ जनकाज्ञया । क्वाम्भोधिमध्ये यानस्य भङ्गः

1 जलजन्तुनाम् । २. मुक्ताजीविताशया ।

सङ्गजलाञ्जलिः ॥ २२५ ॥ विधे! विधेहि साहाय्यं प्राणत्यागे ततो मम। दृष्टं जीवितसौख्यं तन्मृत्युसौख्यं प्रदर्शय ॥ २२६ ॥
रत्नाकर! न रत्नैस्तैः पर्याप्तमपरैरभूत्। तदेतदपि दुष्प्रापं नररत्नं हृतं त्वया ॥ २२७ ॥ चन्द्रश्रीरथ मां वीक्ष्य साश्रुं सा तु जगाद
माम्। स्वसः! प्रसद्य मेऽऽख्याहि कथं जाताऽसि दुर्मनाः? ॥२२८॥ तद्दुःखस्य विभागं मे कुरु यद्यसि वल्लभा। श्लाघ्यः स एव
धन्यस्स येनात्मा तत्र वासितः ॥२२९॥ ततोऽहं तां लघुजामिं विधायोत्सङ्गसङ्गताम्। आश्लिष्य चावदं वत्से! फेदं वाग्मधु शिक्षि-
तम् ॥ २३० ॥ मन्येहं वेधसा वार्द्धिमध्यतः सुलभां सुधाम्। लब्ध्वा त्वं घटिता तत्ते सुधारसकिरो गिरः ॥ २३१ ॥ उपलाल्येति
सा तस्या नेत्राम्बून् मृज्य वाससा। व्यचिन्तयमहं मैषा मम दुःखेन तप्यताम् ॥२३२॥ रसे च विरसो मा भूत्तातो ज्ञात्वा च मां
बलात्। माऽदादन्यस्य कस्यापीति ध्यात्वा जगदे मया ॥ २३३ ॥ (युग्मम्) नाहं स्मरामि कस्यापि पोतलोकस्य दुःखतः। दुःखि-
ताऽसि पुनः साथ प्रत्येति स गिरा मम ॥ २३४ ॥ ततः पानीयमानीय प्रक्षाल्यारूक्षयन्मुखम्। पश्यन्त्यस्यास्तु सङ्गारं खिद्येऽहं
मरणोद्यता ॥ २३५ ॥ सुमुहूर्त्तेऽथ च श्रूयमाणतूर्यमहारवम्। मानितस्वजनं पूर्णमार्गणौघमनोरथम् ॥ २३६ ॥ गुणदेवस्य पुत्रेण
गुणचन्द्राभिधाभृता। अभूच्चन्द्रश्रियः पाणिग्रहणं बहुविस्तरम् ॥२३७॥ (युग्मम्) मम तु प्रेक्षमाणायास्तत्पाणिग्रहणोत्सवम्[1]। वरा-
व्यपि च युग्मानि चन्द्रः शल्यायते हृदि ॥ २३८ ॥ न भुञ्जे न च निद्रामि न शृङ्गारं करोमि च। ताम्बूलमुख्यमखिलं दूरे
परिहरामि च ॥ २३९ ॥ पृष्टा मुहुः पितृभ्यां तु वितथान्युत्तराण्यदाम्। चन्द्रश्रियो निवृत्तस्तु क्षेमेणोपयमोत्सवः ॥ २४० ॥
अथ कामप्रमादेन प्राप्तोऽयं प्रवरो वरः। तच्चन्द्रश्रीः स्मरं नन्तुं चचाल सपरिच्छदा ॥ २४१ ॥ नगराद् बहिरुद्याने समेत्य प्रणतश्च

[1] परिणयनमहोत्सवः।

॥ २४२ ॥ तावद्ध्यावहं वेलाऽधुना स्वार्थस्य साधने । सविशेषं ततोऽनङ्गपादौ
सः । तत्र चाविधवावर्गो यावद्गायति मङ्गलम् ॥ २४२ ॥ तावद्ध्यावहं वेलाऽधुना स्वार्थस्य साधने । सविशेषं ततोऽनङ्गपादौ
नत्वा मयोदितम् ॥२४३॥ मन्ये विरहदुःखानां नाभिज्ञोऽसि मनोभव ! । निर्दयं प्रहरस्यत्र तद्दुःखिन्यबलाजने ॥ २४४ ॥ उक्त्वे-
त्यलक्षितोद्यानमध्येऽहं विजने गता । उच्चैस्तत्र च दैवस्योपालम्भानित्यदां बहून् ॥ २४५ ॥ रे दैव ! किमहं सृष्टा निर्भाग्या भवता
भवे । तारुण्यं गमिता कस्मात्कस्मात्तद्दर्शनं कृतम् ॥ २४६ ॥ कस्मात्तद्विरहश्चक्रे पोतभङ्गः कुतः कृतः । भङ्गेऽपि फलकं तस्य करे
किं न समर्पितम् ? ॥ २४७ ॥ विरहेण समं किं न हृदयं स्फोटितं मम । तद्गृहाण मम प्राणान् मा भैः स्त्रीवधपातकात् ॥२४८॥
तं निघ्नता त्वया पाप ! हताशाऽहं पुरा हता । नारीणां प्राणनाथो हि प्राणत्राणाय नापरे ॥२४९॥ इत्युपालभ्य बहुधाऽवोचमन्य-
भवेऽपि मे । चन्द्र एव पतिर्भूयाद्युत्तरेणामुनाऽधुना ॥ २५० ॥ उक्त्वेति स्वस्य च द्रौश्च कण्ठेऽहं पाशकं न्यधाम् । एकचन्द्रार्थिनी
चन्द्रानपश्यं चाप्यनेकशः ॥२५१॥ तदा कश्चिदलं बाले ! चेष्टितेनामुना ब्रुवन् । नरः स्मर इवागच्छत्तदा भक्त्या स्तुतो मया ॥२५२॥
झटितिच्छिन्नपाशेन तेनाऽहमुपलक्षिता । अहं च दयितं मत्वा कण्ठलग्नाऽरुदं भृशम् ॥२५३॥ ततो बाष्पमिषाद्दुःखपटले गलिते-
ऽखिले । प्रियदर्शनपीयूषात्तापो निर्वापितो हृदः ॥ २५४ ॥ आश्वासिताऽथ तेनाहं खेदं तन्वङ्गि ! मा कृथाः । सदा कदापि संयोगः
शशिनो राकयाऽस्ति किम् ॥२५५॥ तत्पृष्टया मयाऽख्यायि वृत्तान्तो निखिलो निजः । अथ पृष्टो मया प्रेयान् कथामकथयन्निजाम्
॥२५६॥ यानभङ्गे मयाऽम्भोधितटे स्वात्मावलोकितः । चिन्तितं याचिताः प्राणा दत्ता मेऽम्भोधिना ध्रुवम् ॥२५७॥ ततो न्यचिन्त-
यमहो कीदृशं भवनाटकम् । सघनं वहनं तत्क स्थानमेकस्य मे क च ॥ २५८ ॥ सा विज्ञायेति तन्वङ्गी ध्रुवं प्राणान् विमोक्ष्यति ।
तद्वन्याः पक्षिणः शीघ्रं स्थानं ये यान्ति चिन्तितम् ॥२५९॥ तया मदर्थेऽब्रमतं जीवितं न मया पुनः । तस्याः किमप्युपकृतं धिगे-

तन्मम जीवितम् ॥ २६० ॥ तदक्षेमश्रुतेरर्वाक् तत्यजामि स्वजीवितम् । ततोऽश्रौषं नभोवाचं जीवन्निष्टमवाप्स्यसि ॥ २६१ ॥ ततो मृत्योर्निवृत्याहं चलितस्तापसाश्रमे । प्रसन्नं मुनिमद्राक्षं तं प्रणम्यान्वयोजयम् ॥ २६२ ॥ द्वीपः क एष स प्राह स्वर्णद्वीपोऽथ तेन मे । दर्शितोऽध्वा क्रमात्प्रापमिह यामेऽथ पश्चिमे ॥ २६३ ॥ कथं सा माविनी बाला यावदित्थं विकल्पये । तावच्चत्र गिरो दीनाः श्रुत्वा चित्ते व्यचिन्तयम् ॥ २६४ ॥ मम प्रियेव काप्येषा नाम्ना मम समं प्रियम् । स्मारं स्मारं ध्रुवं रोदित्यत्र क्व स्यात् प्रियागमः ॥ २६५ ॥

इतश्च चलिता चन्द्रश्रीर्मामनवलोकनात् । उवाच चन्द्ररेखा क्व जनो लग्नोऽथ वीक्षितुम् ॥२६६॥ दृष्टया पृष्टयाऽऽख्यातं सर्वं हित्वा त्रपां मया । चन्द्रश्रीः प्राह युक्तो हि श्रीनरोत्तमसङ्गमः ॥ २६७॥ पृष्टयाऽपि त्वया यन्नसन्धानो मे निवेदितः । तन्नचार्वथनाऽनेन रुद्धे चित्ते क्व माम्यहम् ॥ २६८॥ प्रसद्य वल्यतां गेहं मिलितैरपि गम्यते । उत्सवादुत्सवोऽतुच्छो ह्यद्य युष्माकमागमात् ॥ २६९ ॥ ततो मम मुखं वीक्ष्य सोऽचलद्वाचि निश्चलः । चन्द्रश्रीकथनात्तुष्टौ पितरौ नितरां मम ॥ २७० ॥ तमोपहारिणस्तस्य चन्द्रस्य पितरौ मम । प्रतिपत्तिं तथाऽकार्ष्टां नष्टकष्टो यथाऽभवत् ॥ २७१ ॥ ऊचे च वत्स! सर्वेयं श्रीस्ते विलसतां ततः । ततोऽथ गणकैर्लग्नं गणयामास सद्गुणम् ॥ २७२ ॥ द्युषु नाना विनोदेन गच्छत्स्वथ निमेषवत् । लग्ने पाणिगृहेऽभूत्नौ सुखं वाचामगोचरम् ॥ २७३ ॥ विवाहो जनकोऽपीदृगिति प्रश्नं मिथो जनाः । नाभूदिति वदन्तीर्न शिरसो धूननच्छलात् ॥ २७४ ॥ ममोपदिष्टं तातेन भवेस्त्वं पतिदेवता । सुप्ते शयीथा भुक्ते च भुञ्जीथाः पुत्रि! भर्त्तरि ॥ २७५ ॥ श्रेष्ठिना धनदेवेन मह्यं परिणयोत्सवे । रत्नमाला ददे सैव संतोषपरिपोषतः ॥२७६॥ तातेन तु सुतस्थाने त्वमेवासि सुते! मम । इत्युदित्वा स्वविभवः समग्रोऽपि समर्पितः ॥२७७॥

मया चन्द्रश्रियै दत्ता स्नेहाद्रत्नावली पुनः । प्रोचे तु मातुलः स्थेयं दिनान्यत्र कियन्त्यपि ॥ २७८ ॥ यज्ञामेयी ममामेयगुणनेत्र-
सुधाञ्जनम् । चन्द्रश्रियोप्यभ्यधिकां तुष्टिं जनयते मम ॥ २७९ ॥ तद्विज्ञसेन तातेन प्रार्थनाभङ्गभीरुणा । श्रेष्ठिनो धनदेवस्य प्रत्य-
पद्यत तद्वचः ॥ २८० ॥ अथोत्तमगुणश्लाघ्यप्रकारेणावयोर्दिनाः । क्षणवद्यान्ति विषयसेवामृतनिमग्नयोः ॥ २८१ ॥ धनदस्त्व-
नृजुः सात्म्यातपत्या मे सहजर्जुना । चक्रे समस्तवस्तूनामर्पणैः प्रेम कृत्रिमम् ॥ २८२ ॥ वक्ति नर्म मया सार्धं मौनात्तिष्ठाम्यहं
पुनः । निर्जने सदनेऽभ्येत्य चाटूनि च करोति मे ॥ २८३ ॥ मन्ये कृतार्थमात्मानं भद्रे! त्वद्दर्शनादपि । त्वदास्यदास्याकर्त्तेन्दुरि-
तीवाङ्क्षोऽस्य दृश्यते ॥ २८४ ॥ विचित्राः स्रस्तशीलानां कथाश्च कथयत्यसौ । प्रोत्साहयत्यकृत्यस्य करणे च सदाधमः ॥ २८५ ॥
ततोऽहं स्वगृहे तस्य प्रवेशं न ददे स तु । पत्युर्मम गिरा रुष्टो दुष्टच्छिद्राणि मार्गति ॥ २८६ ॥ अथाऽवयोर्महास्नेहाद्विशरीरैकचि-
त्तयोः । कियन्तोऽपि ययुर्मासाः समासादितसौख्ययोः ॥२८७॥ अन्यदा धनसारेणानेतुं तनुजानिं निजम् । पुरुषः प्रेषितोऽभ्यागात्तदा
मणिपुरे पुरे ॥ २८८ ॥ स प्राह देव! पित्रोस्ते नेत्रयोर्जलदागमः । त्वदागमेन शरदागमेन यदि शाम्यति ॥ २८९ ॥ अथ
स्वस्थानयानाय तातेन मम मातुलः । उक्तो मामनुमन्यस्वानिच्छन्नप्यन्वमंस्त सः ॥ २९० ॥ यानाय क्रियमाणेषु प्रगुणेष्वथ
वस्तुषु । अज्ञासीद्धनदो मायी स च प्रोवाच मे प्रियम् ॥ २९१ ॥ मित्र! न त्वद्वियोगेऽहं स्थातुं क्षणमपि क्षमः । तदागच्छाम्यह-
मपि तवादेशात्त्वया सह ॥२९२॥ स्वभावसरलत्वाच्च प्रतिपन्नं प्रियेण तत् । यतः सन्तोऽप्यसन्तोऽपि मन्यन्ते स्वसमं परम् ॥२९३॥
स च स्वल्पपरिवारोऽसद्याने विपुलेऽचटत् । व्यधाद्दानादिना वश्यं सर्वं चासत्परिच्छदम् ॥ २९४ ॥ सोऽथ सन्मार्गमर्यादायशो-
धर्मान् विदूरयन् । कायचिन्तास्थितं पूर्वं पापस्तातमपातयत् ॥ २९५ ॥ क्षणाच्च मम भर्तारमथ शोकं वृथाऽकरोत् । तदुर्वृत्तं जनै-

र्शीतं गुप्तं पापं न जातुचित् ॥ २९६ ॥ द्वयोरमङ्गलं ज्ञात्वा मूर्च्छया पतितास्म्यहम् । पापा न तु मृता लब्धा चेतना चोप-
चारतः ॥ २९७ ॥ रत्या ततः परित्यक्ता दूरं सौख्यैः समुज्झिता । अतनुस्तनुलक्ष्मीश्च तमनुप्रगतौ च मे ॥ २९८ ॥ पुण्यान्यपि
समं ताभ्यां पतितानीव नीरधौ । निखिलं निर्जनं यानमभवन्मम भाग्यतः ॥२९९॥ धृद्धाः शुचा सह श्वासाः कम्पेन च सहासुखम् ।
ललितालकमाला च समं दृग्युगलीलया ॥ ३०० ॥ वार्द्धौ पिपतिषुं मां तु वादं पाति स पातकी । विलापानथ कुर्वेऽहं स्मारं स्मारं
तयोर्गुणान् ॥ ३०१ ॥ मदेकापत्य हा! तात! मदेकप्रिय हा प्रिय । युवां क्व मां परित्यज्य पापामेकाकिनीं गतौ ॥ ३०२ ॥
विधाय मयि कारुण्यं तात! दत्से न किं वचः । दुःखिते हि निजेऽपत्ये गुरवो न पराङ्मुखाः ॥३०३॥ मम केनापराधेन रुष्टोऽसि
प्राणनाथ! हा । मम मन्युजुषो मन्युं क्षमस्वैकं प्रसद्यताम् ॥ ३०४ ॥ तातं पतिं च मे रक्ष जलधे! मां गृहाण च । संपूर्णमपि दुःखैः
किं न रे हृदय भिद्यसे? ॥३०५॥ दुराशयाभिभूतोऽथ स मां प्राह दुराशयः । मा सुन्दरि! भृशं कार्षीः खेदमेदस्विमानसम् ॥३०६॥
नेत्रे नीलोत्पले यत्ते वाष्पखेदसहे नहि । मृदुर्निःश्वासतापेन शुष्यत्यधरपल्लवः ॥ ३०७ ॥ लोकाचारेण शोकोऽयं कृतः संप्रति
पूर्यताम् । प्रियं कार्यं हि सर्वस्य जनस्य न जनः पुनः ॥३०८॥ यद्यन्यथापि कार्यं स्यात्तत्तः सुमुखि! किं शुचा । अयं जनस्तवा-
देशं सविशेषं करिष्यति ॥ ३०९ ॥ ततः शोकसहितयोस्तयोर्देहि जलाञ्जलिम् । जीवदर्थे क्रियमाणं दुःखं हि सफलं भवेत्
॥ ३१० ॥ तस्य श्रुतिकटु श्रुत्वेति वचो विषसोदरम् । संजातचित्तसंघट्टा मूर्च्छया पतितास्म्यहम् ॥ ३११ ॥ क्षणं मूर्छितवत्तस्थौ
सोऽपि मां वीक्ष्य तादृशीम् । जातास्म्यहं पुनः सुस्था चन्दनादिकसेचनात् ॥३१२॥ अचिन्तयच्च पतिता कीदृशी व्यसनेऽस्म्यहम् ।

---

१ काम. । २ शोकपुष्टं मनः ।

यदिष्टविरहेऽनिष्टयोगः क्षार इव क्षते ॥ ३१३ ॥ तत्रातव्यं कथं शीलरत्नमसान्मलिम्लुचात् । स्वायत्तोऽपि परायत्तो ह हा! मृत्युर्माऽभवत् ॥ ३१४ ॥ मयि ध्यात्वेति मुक्तान्नपानायां स पुनर्जगौ । प्रसद्यापि वभुङ्क्ष्व त्वं ताम्बूलं च समानय ॥ ३१५ ॥ शृङ्गारं कुरु च स्फारं मधुरं च मया वद । मयोचेऽन्यस्त्रियः सङ्गं विद्धि लोकद्वयाहितम् ॥३१६॥ स प्राहाऽत्र हितं मे त्वद्दर्शनाश्लेषणादिभिः । तवाधरसुधापानादमृताशनताऽपि मे ॥ ३१७॥ मयोचे किमसम्बद्धं वक्षि विश्वस्तघातकः । कथंचन विना शिक्षां न त्वं मौनं श्रयिष्यसि ॥ ३१८ ॥ उक्त्वेति मयकाम्भोधिर्विज्ञप्तश्चेद्विना पतिम् । नान्यो धृतः पुमांश्चित्ते तत्पापात्मैष शिक्ष्यताम् ॥ ३१९ ॥ तावच्च सहसा स्फाल्य गिरौ यानमभज्यत । अहं चात्मानमद्राक्षं तीरे नीरेशितुः स्थितम् ॥३२०॥ दध्यावद्यापि जीवामि कुलक्षयकृदप्यहम् । न नाम घ्नन्ति व्याघ्रेभसिंहा अपि हि पापिनीम् ॥३२१॥ तदत्राद्रौ समारुह्य मुञ्चामि तनुमित्यगाम् । शनैः शनैः पुरोऽपश्यमेकं सौम्यं तपस्विनम् ॥३२२॥ दृष्टेऽपि तत्र मन्नेत्रे सुधयेवाभिषेचिते । मया नतश्च स प्राह वत्से! त्वं कुत आगमः ॥ ३२३ ॥ मयाऽथाश्रूणि मुञ्चन्त्या स्ववृत्तान्ते निवेदिते । यद्येवं तव तातस्तत्कनीयान्मे सहोदरः ॥ ३२४ ॥ ततो ममाश्रुभिः सिन्धुरपरेवाब्धिमागमत् । दुःखिनां हि निजे दृष्टे वाढं नेत्राम्बु वर्धते ॥ ३२५ ॥ पृष्टो मुनिर्मया किं स्तः पितृप्रियतमौ मम । वत्से! यशःशरीरेणस्तस्ताविति मुनिर्जगौ ॥ ३२६ ॥ मयोचे पर्वते गत्वा मोक्तुमिच्छाम्यहं तनुम् । स प्राह शोकं माकार्षीर्दुर्लङ्घ्या भवितव्यता ॥ ३२७ ॥ तुच्छं विषयजं सौख्यं मधुविन्दुसमं सुते! । संयोगाश्च वियोगान्ता नाखण्डं च सुखं भवे ॥ ३२८ ॥ स्वघातेऽपि महापापं मरणात्तन्निवृत्यताम् । गृहाण व्रतमस्माकं दुःखद्रुमपरश्वधम् ॥३२९॥ तदागमन्ममाम्बाऽपि तामुपालक्षयन्मुनिः । तयोपलक्षितश्चैष नतश्चानत-

---

१ पश्चात्ताप ।

शीर्षया ॥ ३३० ॥ ततो मयाऽम्बया सार्धं विलप्य सुदृढं गले । रुदत्या तारनादेन रोदिता हरिणा अपि ॥ ३३१ ॥ भगवानपि
तद्वीक्ष्यागदद्गद्गदया गिरा । धिक् धिक् समारसौख्यानां क्षणनष्टप्रनष्टताम् ॥ ३३२ ॥ क्व बालिकायास्तारुण्यं क्व चाऽन्स्थेयमी-
दृशी । फलयोग्यवने दुष्टवेधसा ज्वालितोऽनलः ॥ ३३३ ॥ कथञ्चिदथ सम्याप्य गुरुणा करुणानता । प्रोचे युक्तं कुलस्त्रीणां मत्र
सौख्यक्षये व्रतम् ॥ ३३४ ॥ अथ मन्त्रनिधेस्तस्य सन्निधौ जगृहे व्रतम् । आवाभ्यां सदनुष्ठानं कुर्वे निर्वेदतस्तथा ॥ ३३५ ॥ गते
कतिपये काले दत्ता मे मन्त्रमुत्तमम् । विधाय प्रायमन्ते स शिश्राय त्रिदशाश्रयम् ॥३३६॥ तद्गृहाणाऽखिलक्षुद्रोपद्रवाणां निवारणम् ।
मन्त्रं यस्य प्रसादेन तिष्ठावो निरुपद्रवम् ॥ ३३७ ॥ नृनाथेनाऽथ जगृहे भक्तिश्रद्धापुरस्सरम् । स मन्त्रस्तापसीदत्तः सर्वोपद्रवविद्रवः
॥ ३३८ ॥ अथ सूर्यो निरालम्बगतिश्रान्त इवाऽश्रयत् । अस्ताग्र्यालम्बनं छायाभूच्छायावच्च दीर्घताम् ॥३३९॥ ततस्तयोचे भूपाल !
नलिनाः सङ्कुचन्त्यमी । सुजनागमसपन्नसुखेन सह सम्प्रति ॥ ३४० ॥ नयावधाति नार्योऽस्तं तावद्विजयतां भवान् । योजना-
न्परतः कार्यो वासकश्च त्वया निशि ॥३४१॥ यतो श्वसुरपक्षस्य भूरसौ तापसान्विता । यो वसेदत्र कान्तारे स तेनाऽतिविडम्ब्यते
॥ ३४२ ॥ असत्पूर्वैः प्रपञ्च च वासो देयोऽतिथेर्न यत् । अक्षमो वः स मन्त्राणां साऽन्यथा स्यात्तु पूर्ववाक् ॥३४३॥ नृपः प्राह
भगवति ! श्लाघ्ये वो जन्मजीविते । युष्मद्दर्शनतोऽरण्यपातो मे श्लाघ्यतामगात् ॥ ३४४ ॥ किं चेदृशेषु स्थानेषु विशेषेण वसा-
म्यहम् । स्वपौरुषप्रकाशाय न साधेद्वः पुराणवाक् ॥३४५॥ तां प्रणम्याऽथ लब्धाशीः सोऽगात्तद्दर्शिताऽध्वना । अनुगम्य निवृत्ता
सा तं पश्यन्ती मुहुर्मुहुः ॥ ३४६ ॥ अथो निभाल्य भुवनभानुतेजः स्वतोऽधिकम् । लज्जयेवाल्पतेजस्त्वाद्भानुर्द्वीपान्तरं गतः

१ भवतनम् ।

श्रूयन्ते सिंहनादाश्च चित्रकायाश्चरन्ति च ॥३४८॥ अपश्यन्नृपतिर्भ्रान्तकुल-
॥ ३४७ ॥ प्रसृतं तिमिरं दिक्षु फेत्कुर्वंति च फेरवः । नृपस्य विशतस्तत्र यक्षस्य प्रतिमाऽहसत् । विस्मिते च नृपेऽजल्प-
दीपः सदीपकम् । गतस्तदभियक्षौकः स रत्नमयमैक्षत ॥ ३४९ ॥ किं च कथ्यं कथ्यतां तु मम स्वं हास्यकारणम्
नृपं स्वागतमस्ति ते ॥ ३५० ॥ दिनं सुखमगच्छच्च स प्रोचे दिव्यचक्षुषाम् । न स्वोप्यश्वोऽपि यत्रातस्तन्मे हास्यस्य कारणम् ॥ ३५२ ॥ नृपः प्राह
॥ ३५१ ॥ यक्षोऽजल्पदिलानाथ ! त्वं रक्षस्यखिलामिलाम् । यक्षश्चमत्कृतश्चित्ते प्राहाऽश्वं कोऽपि नाऽहरत् ।
श्ववत्कश्चिदश्वहृत्केन गण्यते । स दर्श्यतां यथा तस्य दर्शयामि स्वपौरुषम् ॥ ३५३ ॥ नाम्ना शृङ्गारमञ्जर्या कल्येऽर्चि-
मयैवाऽश्वस्वरूपेण पुर्याः कार्यात् हृतोऽसि तु ॥ ३५४ ॥ तच्चाऽऽकर्णय खेचर्याराधना मे चिरं कृता । ततो हृतो मया कुर्वे न ते विघ्नं स्वभूस्थितौ ॥ ३५६ ॥
त्वार्थितोऽसि च ॥ ३५५ ॥ तथा विधेहि भुवनभानुरेति यथा नृपः । पुराहं तापसोऽभूवं मां शुश्रूषति च प्रिया ॥ ३५७ ॥ मयाऽप्रकाशगर्भा सा पृष्टा
नृपः प्राह कुतो हेतोर्यक्षोऽजल्पन्निशम्यताम् । मया स स्थानमार्पयत् । विविक्तं स
प्राह पुराऽसकौ । मासमात्रोऽभवद्दीक्षाविघ्नत्वात्कथितो न तु ॥ ३५८ ॥ ततः कुलपतेः ख्याते मया स स्थानमार्पयत् । विविक्तं स
प्रसूता च पुत्रीं नाम्ना सुदर्शनाम् ॥ ३५९ ॥ दृष्टा मया सा तन्माताऽनुचिताऽऽहारतोऽस्तमैत् । मात्रेव वनदेव्या सा वृद्धिं निन्ये
स्वपुण्यतः ॥ ३६० ॥ करात्करं चरन्ती सा यतीनां वर्धते सुता । तद्दर्शनं विना नाहं क्षणार्धमपि हि क्षमे ॥ ३६१ ॥ वनदेव्य-
पिंतैः सा च वाला खेलति खेलनैः । गतबाल्या नयति सा पूजार्थं कुसुमादि मे ॥३६२॥ तापसैर्निर्जितस्याथ कन्दर्पचरटस्य सा ।
बभूव जङ्गमं दुर्गं खेचरक्षोभकारिणी ॥ ३६३ ॥ कोऽप्यन्यदा युवा तत्र नृपोऽश्वापहृतः समैत् । तस्या रूपनिरीक्षाऽर्थं सहस्राक्ष इव
स्वयम् ॥ ३६४ ॥ ततस्तदा तया तस्य शीघ्रमर्घ्याञ्जलिच्छलात् । आत्मा समर्पितो रूपगुणावर्जितचित्तया ॥ ३६५ ॥ स दध्यौ किं

सरे दग्धे हरेणेहाऽऽगता रतिः । मुनिक्षोभाय वा रम्भां प्रैषीच्छक्रः सशङ्कहृत् ॥ ३६६ ॥ तयोरित्येकचित्तत्वाद्गते वर्षसमे दिने ।
समाधिस्थे मुनिजने स जहार सुदर्शनाम् ॥३६७॥ मयाऽथ पूर्णध्यानेन शब्दिता नाऽऽगमत्सुता । मूर्छितोऽहं जलैः सिक्तः कथञ्चि-
त्प्राप चेतनाम् ॥ ३६८ ॥ सर्वत्र तापसैर्वीक्ष्यमाणैरपि न सेक्षिता । सुदर्शनामयं सर्वं वीक्षेऽहं शून्यमानसः ॥ ३६९ ॥ दुःखैर्ग्रस्तः
शुचा त्यक्तक्रियोऽहं मृत्युमासदम् । यक्षोऽभवं च मोहेन वनमेतत्पुनः श्रितः ॥ ३७० ॥ स्मृत्वा सुताहृतिं नृणां न प्रवेशं ददे
वने । उक्तोत्थमतिथीनां कृते मुनिजनैरहम् ॥ ३७१ ॥ मया दिने स्थितिस्तेषु भक्त्याऽमन्यत नो निशि । अथ येन हृता पुत्री
स ज्ञातो ज्ञानतो मया ॥ ३७२ ॥ जयकीर्त्यभिधस्यास्य राज्ञश्चन्द्रपुरे पुरे । रजोवर्षन्नुवाचाऽहं क्रुद्धः स्मरत दैवतम् ॥ ३७३ ॥
जनोऽथ तुमुलं कुर्वन् धूपं च प्रोक्षिपन्मम । उवाच रक्ष रक्ष त्वं यक्ष नः शरणागतान् ॥ ३७४ ॥ ततोऽध्यायि मया किं नु हतै-
रेतैर्निमन्तुभिः[1] । जंतुभिर्मन्तुमन्तं तमन्तयाम्येकमेव नु ॥ ३७५ ॥ ध्यात्वेति गदितो भूपो हन्मि त्वां पुत्रिकाहरम् । सुदर्शनाथ मां
शाह तात ! मन्तुर्मेऽस्य कौ ॥३७६॥ मनागपि हि नत्वस्य ममापि न यतः श्रुतौ । सुता स्वयंवरा प्रोक्ता प्रोचेऽथ वनदेवता ॥३७७॥
मा भैषीः पुत्री ! मा भैषीरित्युक्त्वा मां जगाद सा । यक्षाप्रसादं माकार्षीरसौ दत्ता मयैव यत् ॥ ३७८ ॥ अश्वच्छलादिमं
नीत्वा वने वदनयोर्द्वयोः । न कोऽपि दोषस्त्वं दूरं प्रसीद स्वर्णवर्षणात् ॥ ३७९ ॥ ततः स्वर्णश्रिया वृष्टं मया सलिलवाहवत् ।
सत्ये चन्द्रपुरे तत्र जज्ञे वर्धापनं ततः ॥ ३८० ॥ तदा पुरं सुवर्णेन तुष्ट्या च नृपमानसम् । कीर्त्या विश्वंभराऽऽपीडं पुपुपे युगप-
न्मया ॥ ३८१ ॥ सुदर्शनागुणैस्तस्य राज्ञो रुद्धं मनस्तथा । यथाऽन्यस्य न कस्यापि प्रवेशस्तत्र जायते ॥ ३८२ ॥ स मयोचेऽथ

1 निरपराधैः ।

जामाता किं करोमि तव प्रियम् । स प्राह दुर्लभाद्युष्मद्दर्शनात् किं परं प्रियम् ॥ ३८३ ॥ तथापि यदि संतुष्टाः पूज्या मय्यल्प-
सेवके । ततः कार्यं तथा नैव यथाऽयं प्रणयस्त्रुटेत् ॥ ३८४ ॥ ततोऽहं वनदेवी च समेतौ स्थानके निजे । सुदर्शनगिरा तेन कारितं
मेऽत्र मन्दिरम् ॥ ३८५ ॥ प्रतिमाऽप्रतिमाचाऽत्र मदीया तेन निर्ममे । तदहं न ददे वासं नृणामेतेन हेतुना ॥ ३८६ ॥ राजा प्रोवाच
राजंस्त्वां याचेऽहं यदि मन्यसे। यक्षः प्राहाऽप्रमाणं न करिष्ये त्वं तदर्थय ॥३८७॥ नृपः प्राहेति चेद्यक्ष! तद्रोषोऽयं विमुच्यताम्।
जनो हि व्यसनादत्र समेतः पालनोचितः ॥ ३८८॥ विधातुमपकारं हि क्षमा विषधरा अपि । उपकारः पुनः कर्तुं शक्रेणाऽपि हि
दुष्करः ॥३८९॥ तत्त्वं मे जीवितमपि लात्वा रक्ष परान्नरान् । यक्षः प्राह चिरं जीव कुर्वे सर्वं गिराऽपि ते ॥ ३९० ॥ तवागमन-
तो ह्येतत् सकलं पावनं वनम्। सफलं जीवितमपि नराधीश! ममाजनि ॥३९१॥ यतो ममानुबन्धेऽत्र विरतिर्भवतोऽभवत्। तदन्यदपि
याचस्व यथा तुभ्यं ददाम्यहम् ॥ ३९२ ॥ नान्यत्प्रार्थ्यं किमप्यस्ति राज्ञोक्ते प्राह गुह्यकः । चिन्तारत्नं गृहाणेदं सद्यो भोगादि-
पूरकम् ॥३९३॥ उक्त्वेति तुन्दादाकृष्य यक्षप्रतिमया तया। नराधीशकराम्भोजे रत्नमेकं समर्पितम् ॥३९४॥ स्मित्वा नृपोऽवदत्तुन्दं
स्थूलं वः किं मणीगणात् । यक्षः स्मित्वाऽवदत्पूर्णं त्वदागममुदा हृदः ॥ ३९५ ॥ अन्यच्च तव साहाय्यं स्मृतः कर्ताऽस्मि सङ्कटे ।
नृपो दध्यावथो पुण्यैर्व्यसनानि स्युरुत्सवा ॥३९६॥ आराधनां विना यन्मे यक्षः प्रत्यक्षतामितः। उपद्रवद्रवो मन्त्राद्रत्नाद्भोगपरम्परा
॥३९७॥ गते यक्षे च यक्षस्याऽऽदेशाद्रात्रीमतीत्य सः। हृष्टहृत् पुरतोऽयासीद्विभाताऽथ विभावरी ॥३९८॥ छायाभृतमवच्छायमिव
वीक्ष्य कुमुद्वती । दुःस्था कुमुदनेत्राणि पतिदुःखान्यमीलयत् ॥३९९॥ स्पृष्टा चन्द्रकरेणेव दूता हरिर्हरेर्हरित् । संध्यारागमिषाद्रोषा-
रक्तेव प्रतिभापते ॥ ४०० ॥ नृपो व्रजन्नथो यामयुग्मे वीक्ष्य सरोवरम् । जलकेलिं व्यधान्मार्गश्रमव्यपगमेच्छया ॥४०१॥ पाणौ

बकुलपुष्पाणि गृहीत्वा गुह्यकार्पितम् । तद्रत्नं पूजयामास भक्तिलालसमानसः ॥ ४०२ ॥ अथाऽपश्यन्नृपस्तत्र प्रासादं सप्तभूमि-
कम् । पल्यङ्कतूलिकायुक्तं नारीं चैकां मनोहराम् ॥ ४०३ ॥ सा नृपस्य पुरो भूत्वा प्राह पुण्यनरोत्तम ! । दिव्या रसवती वारि
स्वादु शीतं मनोरमम् ॥ ४०४ ॥ नीयतां निजभोगेन सफलत्वं कलानिधे ! । नृपो नृप इवाभुङ्क्त ततः प्रमदमेदुरः ॥ ४०५ ॥
भोजनाऽनन्तरं दिव्यं यक्षपङ्कविलेपनम् । कर्पूरमिश्रताम्बूलं नरेन्द्रस्य समर्पितम् ॥४०६॥ तस्यां नार्यामदृश्यायां नृपो विस्मितमा-
नसः । किंचिद्विश्रम्य पल्यङ्के दध्यौ शून्येऽत्र का स्थितिः ॥ ४०७ ॥ ध्यात्वेति चलिते तत्र न पल्यङ्को न मन्दिरम् । ततो ज्ञात-
मिदं रत्नमियन्मात्रफलप्रदम् ॥ ४०८ ॥ अचिन्त्यो हि मणीमन्त्रौषधीनां महिमा मतः । ध्यायन्नित्यतिचक्राम तां वनीमवनी-
पतिः ॥ ४०९ ॥ वनान्तर्वल्लकीनादं पञ्चमश्रुतिबन्धुरम् । चित्रन्यस्तैरिव मृगैः श्रूयमाणं नृपोऽशृणोत् ॥ ४१० ॥ ततस्तदनुसारेण
व्रजन् रजतपर्वतम् । अपश्यन्नृप उत्पश्यो हसन्तमिव दर्पतः ॥ ४११ ॥ स्फुरन्मृगमदामोदैः कर्पूरागुरुपादपैः । विभाति यः परि-
मलपटलेनेव निर्मितः ॥ ४१२ ॥ शिखण्डिमण्डलोद्दण्डताण्डवाडम्बरेण यः । स्वनेन कीचकानां च स्वागतं कुरुतेऽतिथेः ॥४१३॥
तत्राऽऽरूढो नृपः सप्तभूमिं प्रासादमैक्षत । गिरिरम्यतयाऽऽयातं विमानमिव नाकिनः ॥४१४॥ तत्र पल्यङ्कमारूढां प्रौढां स्त्रियम-
लोकत । मेलयन्ती स्वविज्ञानगुणवीणागुणौ मिथः ॥४१५॥ तां वीक्ष्य नृपतिर्दध्यौ रूपमस्या नवो विधिः । चक्रे कम्प्रकरो वृद्धः
कर्तुं हीदृक्षमक्षमः ॥४१६॥ मन्येऽङ्घ्रिलक्ष्मीं वीक्ष्याऽस्याः पद्मानि न्यपतञ्जले । क्षाराब्धौ विद्रुमलता नखशोणत्वनिर्जिता ॥४१७॥
ऊरुशोभामिव प्राप्तुं रम्भा वसति कानने । अभ्यस्य सिन्धुपुलिने श्रोणिमस्या विधिर्व्यधात् ॥ ४१८ ॥ अस्या मध्यः सुमध्याया
अनुमानेन मन्यते । न ह्या तं विना न स्याद्यतो वक्षःस्थलस्थितिः ॥ ४१९ ॥ किल विश्वत्रयीरूपजेतृत्वेन वलित्रयी । ऊरूरुहौ

॥ ४२० ॥ कथं मृदू भुजौ तुल्यौ मृणालैः कण्टकाकुलैः । वीणावाद्यकलौ हस्तौ निष्कलाशोकपल्लवः
मनोजन्माभिषेककलशाविव ॥ ४२१ ॥ कण्ठो रेखात्रयेणैवं वक्ति यामत्रयज्ञताम् । पैन्नद्धाभृदिवाभाति शशाङ्कोऽस्या मुखस्य च ॥ ४२२ ॥ आस्यसौरभ्य-
तोऽभ्येतो भाति भोगी कचोच्चयः । कान्त्येव विजितं स्वर्णमस्याः पतति पावके ॥४२३॥ इति ध्यायति भूपालेऽभ्युत्थाय सहसाऽपि
सा । कृत्वोचितां प्रतिपत्तिं नृपस्यासनमर्पयत् ॥ ४२४ ॥ पुरस्तस्य निविश्यैषा तं विचिन्त्योत्तमं नरम् । उवाच स्वागतं चोऽस्ति
ततो नरपतिर्जगौ ॥ ४२५ ॥ वनदेव्या विदः स्वेन तवाग्रे किमु कथ्यते । सा प्राह देवता नाहमस्मि विद्याधरी पुनः ॥ ४२६ ॥
मत्वा निमेषतः सत्यं नृपः प्राह ततः कुतः । युष्माकं सुकुमाराणां वासोऽस्मिन्निर्जने वने ॥ ४२७ ॥ असौ विभाति मे जातिमु-
कुले मुसलाहतिः । पैरश्वधप्रहारश्च सुरद्रुमलतां प्रति ॥ ४२८ ॥ अथो विमुच्य साऽश्रूणि निःश्वस्य च जगाद तम् । कस्याग्रे निज-
दुःखानि कथ्यन्ते पुरुषोत्तम ! ॥ ४२९ ॥ स्वदुर्विलसितं किं वा कथयामि तवाग्रतः । येन दुःखे महाभीमे पातितोऽतिप्रियो जनः
॥ ४३० ॥ तद्येनैव कृतो मन्तुः स एव सहते जनः । कथं रहस्यमज्ञातशीले ख्यातुं च शक्यते ॥ ४३१ ॥ तस्याग्रे कथ्यते दुःखं
यश्छिनत्त्याछिनत्ति वा । सा वदन्तीति वामांसस्फूर्तिप्रीता पुनर्जगौ ॥ ४३२ ॥ मम सुन्दर ! वामांसस्फूर्त्या सम्प्रति तेऽग्रतः ।
कथिते सुन्दरं भावि सकर्णाकर्ण्यतां ततः ॥४३३॥ सर्वतो रजताढ्योऽस्ति वैताढ्यो नाम पर्वतः । यत्कान्तिजाह्नवीलग्ना घना भान्ति
यैमीसमाः ॥ ४३४ ॥ समस्ति तत्र कनकपुरं नाम पुरं वरम् । विद्याधरेन्द्रः कनकरथस्तत्र महारथः ॥४३५॥ जाते समरसम्मर्दे
जयलक्ष्मीर्निलीयते । यस्य खड्गं सपानीयं जलकेलिकृते किल ॥ ४३६ ॥ सर्वान्तःपुरसाराऽस्य कनकश्रीरिति प्रिया । यया स

१ पन्नद्धा उपानत् तस्याः धारकः 'सेवक' इति भाषायाम् । २ कुठारप्रहारः । ३ यमुनासमानाः ।

मन्यते राज्यं सकलं सफलं हृदि ॥ ४३७ ॥ तयोर्बहूनां पुत्राणामूर्द्ध्वं जातास्म्यहं सुता । भृङ्गारमञ्जरीत्याख्या पितृभ्यां मम
निर्ममे ॥४३८॥ अहं सत्स्वपि पुत्रेषु तातस्यातीववल्लभा । बान्धवाः कलहायन्ते वित्तस्येव मम गृहे ॥४३९॥ ततस्तातसमक्षं मे
भूवन् खेलनवारकाः । वर्धेऽद्रिगह्वरोत्पन्नकल्पवल्लीव जङ्गमा ॥ ४४० ॥ कियताप्यथ कालेन तयोर्जज्ञे सुता परा । तदङ्गकान्तिः
सूर्याभा स्फुरति स्म जनिक्षणे ॥४४१ ॥ ततः पितृभ्यां नामास्या भानुश्रीरिति निर्मितम् । साऽदरन्मातपितृस्नेहं तथापि मम वल्लभा
॥ ४४२ ॥ तदीयमन्मनोल्लापैः श्रुतैः सफलतां श्रुतेः । जनोऽमन्यत दृष्टेश्च साफल्यं दृष्टया तया ॥ ४४३ ॥ स्पर्द्धयेव तया सार्धं
वर्धते स्वजने मुदा । तद्रूपाग्रे च मे रूपं स्वर्णाग्रेऽङ्गारसन्निभम् ॥ ४४४ ॥ श्रुत्वेति नृपतिर्दध्यावुद्भूतमिदमद्भुतम् । अस्या अप्य-
धिका तस्या रूपश्रीः श्रूयते यतः ॥ ४४५ ॥ तां वीक्षे चेन्न तन्नेत्रनिर्माणमपि निष्फलम् । द्रष्टव्यदर्शनेनैव दर्शने सफले नृणाम्
॥ ४४६ ॥ कथं वीक्ष्या कुरङ्गाक्षी तत्सा संच्छायरूपभृत् । अस्या रूपान्नुरूपा सा नैवं मे मनुते मनः ॥ ४४७ ॥ ध्यात्वेति तां
स पप्रच्छ सत्यं सुन्दर्यदः किमु । किं वार्थवाद एवायमाक्षेपाय कृतस्त्वया ॥४४८॥ तयोचे सज्जन ! स्वल्पं मयोचे भवतोऽग्रतः ।
तद्रूपवर्णने न स्युर्वाचो वाचस्पतेरपि ॥ ४४९ ॥ लावण्यामृतपूरेण या जीवयति हेलया । क्रुद्धत्रिनेत्राग्निस्पृष्टप्लुष्टगात्रमपि स्मरम्
॥ ४५० ॥ यदि प्रत्येपि मे न त्वं तद्रूपं फलकस्थितम् । दर्शये दर्शनीयानामवधिं तव सुन्दर ! ॥ ४५१ ॥ यतो न तां विना
स्थातुं शक्तास्मि क्षणमप्यहम् । तस्यास्तल्लेखितं रूपं मया वीक्षणहेतवे ॥ ४५२ ॥ उक्त्वेति पट्टिकां राज्ञे साऽऽर्पयन्नृपतिस्ततः ।
स्वचित्रफलके बिम्बं फलकादलिखत्तराम् ॥ ४५३ ॥ दध्यौ च वेधसाङ्गानामानुरूप्यमहो कृतम् ॥ पदयोः सदृशं येनोरुयुगं तस्य

१ जन्मसमये। २ सूर्यरूपभृत्।

भुजेऽङ्गुलियुते कण्ठो मुखाम्भोजं शिरस्तथा ॥४५५॥ अन्यच्चाङ्ग
सन्निभः ॥ ४५४ ॥ नितम्बस्तस्य मध्यं च वक्षोजौ तस्य तत्समे । विधिना वज्रलेपेन किमेपाऽघटि वर्णिनी ।
तथा भाति कोमलं रुचिरं यथा । अत्यन्तं पश्यतां मन्ये नयनैरपि दूयते ॥ ४५६ ॥ विलोकते स नृपतिर्बद्धस्पर्ध
गन्तुं नान्यत्र शक्नोति चक्षुर्मग्नमितो यतः ॥४५७॥ चित्ते तां निर्निमेपाक्षीं निर्निमेपाक्ष एव सः । तातादेशा-
ङ्गवादरात् ॥ ४५८ ॥ चिरं विलोक्य राज्ञोचे भद्रे! सत्यं वचस्तव । अथ स्वरूपं स्वं ब्रूहि मन्मनोधृतिहेतवे ॥ ४५९ ॥ दध्यौ नृपोऽभवत्सेयं सौभा-
दथावाभ्यां कला नारीजनोचिताः । शिक्षिता मेऽधिका सा तु [1]विपञ्च्यां सुविशेपिता ॥ ४६० ॥ यौवनश्रीर्मञ्जरीव
ग्योपरि मञ्जरी । स्वर्णं सुरभि संजातं बकुलैर्वासनासवे ॥ ४६१ ॥ व्यजृम्भताऽऽवयोः कालेऽथ चूतलतयोरिव । अहं
युवभ्रमरते[2]पदा ॥ ४६२ ॥ अन्यदावगतावावामुद्याने रतिमन्दिरे । सखीयुक् तत्र भानुश्रीः [3]सुमान्यवचिकाय च ॥ ४६३ ॥
तु नातिदूरस्थद्रुमपुष्पाणि गृह्णती । भ्रमरेणाधरे दष्टा धृष्टात्मा न स याति च ॥ ४६४ ॥ ततः कथञ्चन मया भ्रमरो दूरतः कृतः ।
विद्याधरो विमानस्थो युवा तत्सर्वमैक्षत ॥४६५॥ ततः स्मित्वा स दृष्टिं च निवेश्य वदने मम । ऊचे भ्रमर! मा रोदीः किं बहुले-
भ्यते सुधा ॥ ४६६ ॥ त्वं कृतार्थोऽसि यल्लब्धो लीलयापि सुधारसः । अयं येन तु न प्रापि जनः सोऽधन्य एव हि ॥ ४६७ ॥
स मामुवाच कल्याणि! त्वमस्मै माकुपो[4]ऽलिने । यत्त्वं लतासि वक्षोजगुच्छा साधरपल्लवा ॥ ४६८ ॥ श्रुत्वेति तस्य गीर्भङ्गीं
विद्धाहं मन्मथेपुभिः । न दत्तमुत्तरं तस्य मया कम्प्रशरीरया ॥ ४६९ ॥ रोमाञ्चितवपुर्यष्ट्या लज्जासज्जात्मना तथा । नखैः प्रमार्ष्टु-
मारेभे चन्दनं करभूषणात् (?णम्) ॥ ४७० ॥ किमयुक्तं मया प्रोक्तं-दत्से प्रतिवचो न यत् । अयुक्तं चेत्क्षमस्वैतदुत्तमा नत-

---

१ वीणावादने । २ आकर्षिका । ३ पुष्पाणि । ४ भ्रमराय ।

वत्सला: ॥ ४७१ ॥ गच्छामि कुसुमे पुरे ममादेशोऽस्तु तावकः । तातः कुसुमसारोऽस्ति दुःखार्तो विरहे मम ॥ ४७२ ॥ उक्त्वेति
प्रेरिते तेन विमाने किंकिणीरवम् । श्रुत्वाहमूर्ध्वं दीनास्यापश्यत्पश्चाच्च सोऽपि माम् ॥ ४७३ ॥ स सक्रोधं मया दृष्टः स्मित्वाऽऽ-
गत्याह सुन्दरि ! । सहसाऽऽगस्तवादेशं प्राप्य यास्याम्यतः परम् ॥ ४७४ ॥ ततः प्रणयकोपेन कृतार्थः सर्वथास्म्यहम् । हित्वा मानं
विधायोर्ध्वं भुजं पुष्पाण्यथार्पयम् ॥ ४७५ ॥ पुष्पाणि पाणिना सार्धमादाय सुचिरं स च ॥ कथञ्चिदमुचत् क्षीरदाडिमार्पणपूर्वकम्
॥ ४७६ ॥ नभःश्रीमध्यमाक्रामत्तरुणस्तरणिस्तदा । त्रिवलीकलितं गङ्गातरङ्गावलिभिः किल ॥ ४७७ ॥ सखीयुक्ताथ भानुश्रीश्च-
लिता पार्श्वगामपि । नापश्यन्मां द्रुबाहुल्यात्ततः शब्दमकारयत् ॥ ४७८ ॥ शब्दं श्रुत्वाहमायाता तदभ्यासं ससम्भ्रमा । स्वपुरं
सोऽगमद्वीक्ष्यमाणो मां तु मुहुर्मुहुः ॥४७९॥ भानुश्रीः प्राह भगिनि ! किं न दत्तः स्वरस्त्वया । किमागो मे सखिवर्गो विनयो वा
सुमोच्चयात् ॥ ४८० ॥ व्यग्रत्वं वाऽभवत्प्रेक्षे न पुष्पाणि तवान्तिके । लग्ना च महती वेला विनापि कुसुमोच्चयम् ॥४८१॥ सत्य-
मुक्तं पुरोऽस्याश्चेत्तदम्बाग्रे वदिष्यति । नृवार्ता च न मात्यस्याः कुर्वेऽलीकं तदुत्तरम् ॥ ४८२ ॥ ध्यात्वेत्यकथयत्पुष्पंधयो मामधरेऽ-
दशत् । तदार्तिविह्वला वक्तुमक्षमा नोत्तरं ददे ॥ ४८३ ॥ पुष्पोच्चयं च नाकार्षं तत्राजिगमिषुः पुनः । तद्वीक्षार्थमहं श्राद्धे तस्यो-
द्यानस्य रम्यताम् ॥ ४८४ ॥ विमानेन चयन्तीनां पृच्छन्तीनां किमप्यहम् । सखीनां शून्यहुंकारं ददे तद्ध्यानमानसा ॥ ४८५ ॥
र्तं चित्रफलके न्यस्य ध्यायामीष्टसदेववत् । तच्चिन्ताविमुक्तद्वाक्यं नालीनामपि भाति मे ॥ ४८६ ॥ सम्भाषयामि भगिनीं न च
प्राणाधिकामपि । भानुश्रीरथ मां प्राह स्वसस्त्वं शून्यहृत्कुतः ॥ ४८७ ॥ न वक्षि रुचिरं नैव स्मयसे वद मेऽग्रतः । कार्यं संपाद-

१ तदम्बिके । २ उन्मनाव । ३ भ्रमरः । ४ सखीनाम् ।

याम्येवं व्याधौ ज्ञाते हि भेषजम् ॥ ४८८ ॥ ततो द्विधापि सा चारुवदनाश्लिष्य भाषिता । मया न गृह्यते कोपि पीडया स्वजनं
विना ॥ ४८९ ॥ मया हियं विमुच्याथ परमार्थो निवेदितः । तस्याः सा लघ्व्यपि कुले मन्यते स्वगुणैर्गुरुः ॥ ४९० ॥ आस्थानस्थे-
ऽन्यदा ताते वेत्र्या[2]ऽऽगत्य व्यजिज्ञपत् । राज्ञः कुसुमसारस्य प्रधानो द्वारि तिष्ठति ॥ ४९१ ॥ तातादेशाद्विमुक्तोऽयं नत्वाऽऽसामास
चासने । स्वदृष्ट्यामृतवृष्ट्या तं तातो निर्वाप्य चावदत् ॥ ४९२ ॥ अप्यसत्प्रेमसारस्य वन्द्यसारस्य वैरिभिः । क्षेमः कुसुमसारस्य
दत्तसारस्य चार्थिषु ॥४९३॥ स विनितोऽवदद्देवसाहाय्यान्मत्प्रभोः शुभम् । किञ्चिद्विज्ञप्यमस्तीति देवो दत्तां रहो मम ॥ ४९४ ॥
तथा कृतेऽथ तातेन स विज्ञस्तं व्यजिज्ञपत् । शृङ्गारमञ्जरी रा[3]जतुके सिंहाय दीयताम् ॥ ४९५ ॥ एवं कृते हि स्नेहद्रोः स्यात्प्राच्य-
स्यापि मञ्जरी । तातपृच्छितया प्रोचे मया तातप्रमाणता ॥ ४९६ ॥ अध्यायि च विधेरानुकूल्यात्कार्यमजन्यदः । मिष्टं वैद्योपदिष्टं
च विशिष्टं तदिदं ध्रुवम् ॥४९७॥ तातस्तमवदत्कथ्यं त्वया स्वस्य विभोरिति । नावमन्यामहे क्वापि युष्माकं प्रणयं वयम् ॥४९८॥
सागरेण समं सङ्गं गङ्गायाः कोऽवमन्यते । तत्त्वं वद समेत्याशु कल्याणं क्रियतामिदम् ॥ ४९९ ॥ इत्यादिश्याथ सम्मान्य तातस्तं
व्यसृजन्मुदा । ततोऽहमभवं तोपभाग्यसौभाग्यभागिव ॥ ५०० ॥ ततो दिनैः कतिपयैः सिंहः सिंह इवागमत् । युतो गम्भीरनादेन
महाबलपराक्रमः ॥ ५०१ ॥ अभ्युद्गम्य ततस्तातस्तस्यौचित्यं समाचरन् । इन्द्रवन्नन्दने सोऽस्थादुद्याने कुसुमाकरे ॥ ५०२ ॥ अथ-
विद्याधराधीशपटले मिलितेऽखिले । स्फूर्जत्तूर्यरवापूर्यमाणे व्योमहरीद्गणे ॥ ५०३ ॥ दीयमाने महादाने वन्दिनां पाठनन्दिनाम् ।
मनो धवलयन्तीषु धवलैः कु[4]लभीरुषु ॥५०४॥ ज्योत्स्नयेवेन्दुना सार्धं मया तेन सुराचलः । दक्ष! प्रदक्षिणीचक्रे प्रज्वलज्ज्वलनस्ततः

१ सभास्थिते । २ द्वारपालः । ३ राजपुत्राय । ४ कुलस्त्रीषु ।

॥ ५०५ ॥ (त्रिभिर्विशेषकम्) तदा खेदमिषात् दुःखमिव नौ गलितं क्षणात् । तस्याश्वेभमणिस्वर्णाद्यदायि करमोचने ॥५०६॥ तातः
श्रेयाच मां वत्से ! पत्युरेतस्य सर्वदा । सुखेन सुखिता भूयास्त्वं दुःखेन च दुःखिता ॥५०७॥ अथ नानाविनोदैर्नौ निशायसं निमेष-
वत् । याति सज्जनसङ्गाद्धि कालो न ज्ञायते व्रजन् ॥५०८॥ दिनैः कतिपयैस्तातादेशं प्राप्य मया समम् । स समेतो निजपुरं सम्मु-
खायातनागरम् ॥ ५०९ ॥ तत्र मञ्चप्रपञ्चाढ्यहट्टशोभोपशोभिते । राजमार्गमिलल्लोके गन्धाम्भः सिक्तभूतले ॥ ५१० ॥ स्वगुणास्तु
पुरस्त्रीषु विधातुं मङ्गलं कलम् । श्लाघमाने युवजने वरं प्राप्तवरस्त्रियम् ॥५११॥ सुभर्तृलाभतो मां तु व्याख्याति युवतीजने । दिव्यं
विमानमारूढो विमानैः परितो वृतः ॥ ५१२ ॥ चलत्पादातसञ्जातसङ्कीर्णश्रीपथो भुवि । स्तूयमानो नरैर्दृश्यमानोऽङ्गुल्या वरोरुभिः
॥ ५१३ ॥ वामभागनिविष्टाया मम रम्याण्यनेकशः । स्थानानि दर्शयन् पुण्यस्त्रीणां गृह्णंश्च मङ्गलान् ॥ ५१४ ॥ आगान्मणिमय-
स्तम्भशालभञ्जीविराजिते । स्वर्गलोकाधरीकारिसौन्दर्ये निजमन्दिरे ॥५१५॥ मया नतोऽथ श्वसुरः सारं कुसुमसारराट् । तावद्दौ मे
मण्यादि यावदन्तो न विद्यते ॥५१६॥ (षड्भिः कुलकम्) मौलौ मालेव मालत्या धार्यमाणा जनैरहम् । सुखेन गमये कालं वसन्तर्तु-
रथागमत् ॥ ५१७ ॥ वन्दिवृन्दवचःपुष्टपरपुष्टजयारवः । उद्दण्डपुण्डरीकश्रीर्यः सत्यमृत् रोजति ॥ ५१८ ॥ मञ्जरीचापविन्यस्त-
ध्वनन्मुखशिलीमुखः । जगज्जीगीषोः साहाय्यं करोतीव स्मरस्य यः ॥ ५१९ ॥ वनराजिं विलोक्येव यत्र श्यामत्वहारिणीम् ।
हृतश्रिय इव श्यामाः खिद्यन्ते स्म प्रतिक्षणम् ॥ ५२० ॥ दलैर्लाति श्रियं नोऽयं विरहे तापयत्यपि । तरुणीचरणैर्यत्रातीवाशोकः
प्रहन्यते ॥ ५२१ ॥ तदा मया प्रियः प्रोचे वनश्रीर्दर्श्यतां मम । तत्क्षणं तत्रपदैप विमानेन निनाय माम् ॥ ५२२ ॥ सुरभिं

१ अहोरात्रः । २ सैनिकः । ३ राजमार्गः । ४ काष्ठपुत्तलिका । ५ राजानमिवाचरति । ६ चम्पकवृक्षम् ।

सुरभेर्लक्ष्मीं पश्यावोऽथ यथारुचि । अथाऽदृष्टचरं दृष्टमुद्यानं रजताद्रिगम् ॥ ५२३ ॥ नन्दनप्रतिमे तत्र चम्पकद्रुर्निरीक्षितः ।
मेरुशृङ्ग इवानीतस्तत्र केनापि कौतुकात् ॥ ५२४ ॥ यदीयगन्धमासाद्य नासा नासादयेत्परम् । विहिताश्चम्पकास्त्वन्ये तदीयपटलैरिव
॥ ५२५ ॥ मयोचे चम्पकस्यास्य प्रियैकं पुष्पमानय । अवतंसाय स प्राह प्रियेऽत्रास्ति महातपाः ॥५२६॥ प्रकृत्या रोपणश्चैपस्तद्दुःख-
फलदं सुमम् । आदातुं नोचितं प्रोचे मया कोऽपि न दृश्यते ॥ ५२७ ॥ दध्यौ प्रियो महानस्या व्यामोहोऽत्र ततो यदि । न कुर्वेऽ-
दोऽभिमानेन मानिनी तच्यजत्यसून् ॥ ५२८ ॥ इमामृते मृतिर्मेऽपि तदाऽकाले मृतिर्द्वयोः । तन्मे मुनिकृतानर्थाद्दुःखं माऽस्यास्त्व-
जायत ॥ ५२९ ॥ विचिन्त्येति स मां प्राह तवाहमनुरोधतः । झम्पाममृतकुण्डेऽपि वह्निकुण्डेऽपि वा ददे ॥५३०॥ दुःखे पतिष्यसि
त्वं तु मा वादीः कथितं न यत् । भयमेकं तु मे लोको वक्ताऽबद्धमुखो यतः ॥ ५३१ ॥ विज्ञोऽप्यज्ञः कथमयं विज्ञानां मरणं ह्रदः ।
यज्जनो वक्ति नैतेन हहा समुचितं कृतम् ॥ ५३२ ॥ मयोचे नामसिंहानां भवतां युज्यते भयम् [1] । अयं तदसहन् दत्तफालः कुसु-
ममग्रहीत् ॥ ५३३ ॥ दृष्टस्तपस्विना प्रोक्तः कथं रे पुरुषाधम ! । मम देवार्चनाहेतुस्त्रीहेतोरग्रहीः सुमम् ॥ ५३४ ॥ तन्मे तपः-
प्रभावेण त्वं सिंहोऽपि मृगो भव । सहसा हरिणो जज्ञे सोऽथ मद्दुष्टचेष्टितात् ॥ ५३५ ॥ अथ तद्दिनसञ्जातदुःखस्मृत्या न साऽग्रतः ।
आख्यातुमशकद्भूपोऽपि हि गद्गदगीरभूत् ॥ ५३६ ॥ नराणामुत्तमानां हि सहसिद्धमिदं विदुः । कातर्यं परदुःखेषु धैर्यं दुःखे
पुनर्निजे ॥ ५३७ ॥ अविच्छिन्नाश्रुधाराभिरभिषिच्यावनिं ततः । आश्वासितावनीशेन लग्ना कथयितुं पुनः ॥ ५३८ ॥ उक्ता न
तापसेनाहं विमुच्यैतस्य दर्शनम् । नान्यद्विपयजं सौख्यं गिरापि भविता तव ॥ ५३९ ॥ दध्यावहं विधिश्चक्रे मम दुश्चेष्टितोचितम् ।

१ वसन्ततों: । २ भयभवैः ।

प्रतिपिद्धाऽपि नैवास्यां सहजीवनिजं कृतम् ॥५४०॥ हा दैव ! भवता चक्रे यथायं मत्प्रियो मृगः । तथैव मां कुरु मृगीं यथाऽऽवां
स्वः सहै वहि ॥ ५४१ ॥ अथ स्फोटय मे वक्षो दुःखसान्तो यथा भवेत् । कस्येदं कथ्यते यस्य कथ्यते स मृगोऽभवत् ॥ ५४२ ॥
कृतः खेचरराजेन केनाऽप्यभिमतो भवेत् । यदि तत्कथ्यते तातस्याग्रे तस्य झगित्यपि ॥ ५४३ ॥ अमीषां तापसानां त्वनपेक्षाणां
वपुष्यपि । किमु कर्तुं क्षमोऽनन्तसामर्थ्योऽपि नराधिपः ॥ ५४४ ॥ हा कृतान्त ! न शक्तोऽपि प्रेम द्रष्टुं त्वमावयोः । यदेनं विदधे
पाप ! त्वयाऽकारणवैरिणा ॥ ५४५ ॥ कथं सहिष्ये लोकानां धिक्कारानधुनाऽहकम् । मया कलङ्कितोऽन्योऽपि स्त्रीजनो यदनार्यया
॥ ५४६ ॥ मत्वेति श्वसुरो मेऽद्य कथं कालं गमिष्यति । स्त्रीकार्येऽयमभूदित्थं कथं सोढा नृपाकरम् ॥ ५४७ ॥ सतामप्यथवा
स्त्रीभिः कलङ्कः क्रियते ध्रुवम् । मलिनीकुरुते सौधमपि धूमशिखा यतः ॥ ५४८ ॥ हा मयाऽधमया यस्य परोपकरणप्रियः ।
स्वप्रियः पातयाञ्चक्रे पातकिन्या क्व सङ्कटे ॥ ५४९ ॥ अमुमेवंविधं मुक्त्वा कथं प्राणांस्त्यजाम्यहम् । अधुनास्य विशेषेण कार्यं
शुश्रूषणं मया ॥ ५५० ॥ अथवा वह्निदग्धानां वह्निरेवौषधं मतम् । तद्याचेऽनुग्रहमितस्तापसादिति तं गता ॥ ५५१ ॥ उक्तश्च
भगवन् ! कृत्वा प्रसादं मम सह्यताम् । एको मन्तुर्ममैवात्र निग्रहोऽपि विधीयताम् ॥ ५५२ ॥ मम प्रेरणयैवायमादादेकं सुमं यतः ।
मुनीन्द्र ! ज्ञाननेत्रेण स्वयमेतद्विभावय ॥ ५५३ ॥ मद्वाक्यकरणात्तस्यापराधं यदि मन्यसे । तथापि क्षम्यतां कस्य स्खलितं न
भवेद्भुवि ॥ ५५४ ॥ वतात ! कथमद्यापि दीनां मामवमन्यसे । इत्युक्तो विगलत्कोपः स महर्षिरुवाच माम् ॥ ५५५ ॥ वत्से !
तव गिरा तुष्टः सर्वमेव करोम्यहम् । कदापि जायते किं तु नान्यथा ऋषिभाषितम् ॥५५६॥ तवोपरोधतस्त्वेकं करोम्यहमनुग्रहम् ।
जामि यदा ते भुवनमानुराट् परिणेष्यति ॥ ५५७ ॥ तव भर्ता तदा रूपं स्वकीयं लप्स्यते पुनः । नृपः श्रुत्वेति चक्रित्वप्राप्त्वेन

परितोषमैव ॥ ५५८ ॥ तच्चित्रपट्टिकारूपं निध्याय च विशेषतः । नृपः प्राह ततोऽभूत्किं प्राह शृङ्गारसुन्दरी ॥५५९॥ ततो विमा-
नमागत्य पतित्वा मृगपादयोः । प्रोचे मम क्षमस्वैकमपराधं मम प्रिय ! ॥ ५६० ॥ नानुबन्धं करिष्यामि पुनरेवंविधं क्वचित् । न
च चिन्त्यं मयाऽवस्थाऽप्यस्या वचसेदृशी ॥ ५६१ ॥ स तु वक्तुमशक्तस्तत्प्रतिपेदे शिरोधुतेः । ततोऽध्यायि मया युक्तो वनवासो
ममाधुना ॥ ५६२ ॥ कियतामुत्तरं दास्ये हसतामसतामहम् । ध्यात्वेत्यत्र निजक्रीडापर्वतेऽहं समागमम् ॥ ५६३ ॥ श्वशुरस्य पुरः
सर्वं मयैकान्ते निवेदितम् । उक्तश्च तात ! नार्थोऽयं ज्ञाप्योऽम्बायाः पुरोऽपि हि ॥ ५६४ ॥ इति प्रकाश्यं सर्वत्र विधां गिरिगुहान्तरे ।
युवराजः साधयति क्षुधातिप्रतिबन्धतः ॥ ५६५ ॥ मा सुतस्योपहासः स्यादिति तेन मतं च तत् । मया चागत्य विदधे वेणीबन्ध-
स्ततः स्वयम् ॥ ५६६ ॥ प्राप्तो निजरूपमिमां दयितश्छोटयिष्यति । प्रकल्प्येति प्राणवृत्तिं कुर्वे मूलफलादिभिः ॥ ५६७ ॥ आरा-
धोऽश्वमुखो यक्षः स्वमनोरथपूर्तये । उक्तश्च भुवनभानुं कथञ्चिन्नृपमानय ॥ ५६८ ॥ परमद्यापि किञ्चिन्न स मे प्रत्युत्तरं ददौ ।
प्रातरद्योत्तरं लब्ध्वा विना मोक्ष्यामि तन्नहि ॥ ५६९ ॥ अन्तःस्मितं नृपो दध्यौ मामायातं न वेत्त्यसौ । पुरा ममाग्रे यक्षेणाऽप्य-
यमर्थो निवेदितः ॥ ५७० ॥ सोचे च संशयो यक्षस्तमानेष्यति वा न वा । आनीते दर्शने शंका तत्रापि हि विवाहने ॥ ५७१ ॥
यन्न सा सासहिः पुंसां नाम यौवनवत्यपि । तेन संदिग्धमेवेदं सर्वं मे प्रतिभासते ॥ ५७२ ॥ रुद्ध्वा हासं नृपो यत्नात्प्राह जाने
निमित्ततः । राजा समैष्यत् कार्यं च भावि ते मा कृथाः खिदम् ॥ ५७३ ॥ बद्ध्वाथ शकुनग्रन्थिं सा प्राहाद्य गिरा तव । सुधा-
शीतलयाङ्गानि शीतानि मम जज्ञिरे ॥ ५७४ ॥ अथो मे स्फुरितं चक्षुर्वामं प्रथममेव हि । प्रार्थनां चेन्न मनक्षि ततः किञ्चन

१ विगतमाना यथा स्यात्तथा ।

च्म्यहम् ॥ ५७५ ॥ गृहाणौषधिवलयं तत्क्षणात् घातरोधकम् । राज्ञा सौजन्यतश्चित्रमाहात्म्यं च तदाददे ॥ ५७६ ॥ पृष्टा च ते मृगीभूतः प्रियः क्वास्ति तया तत । निविष्टो दर्शितोऽन्येषां मृगाणामन्तरे स्थितः ॥ ५७७ ॥ दध्यौ नरेन्द्रो यक्षेण मन्येऽसौ मे प्रदर्शितः । विचित्रकिंकिणीजालमालितो लोमनाकृते ॥ ५७८ ॥ पृष्टा केन विनोदेन समयं गमयस्यलम् । सोचे वीणाध्वनिर्गीति-रीतिर्यन्मृगनाक्षमा ॥ ५७९ ॥ नृपः प्राह ध्रुवं कर्मपरिणामो महाबलः । येन विद्याधरोऽप्येवं विहितो निजवाहनम् ॥ ५८० ॥ अथ प्रतीचीं प्रतियाति रागात्पूरेऽतिदूरे कृतसान्ध्यकृत्यः । मानुश्रियं निश्यपि स प्रपश्यंस्तल्पेऽतिनिद्रः शयितो नरेन्द्रः ॥ ५८१ ॥ इह भुवनभानुभूपस्यापहृतिस्तत्पुरस्तपस्विन्याः । यक्षस्य च खेचर्याः कथा च शृङ्गारमञ्जर्याः ॥ ५८२ ॥

इति श्रीराजगच्छे श्रीमानतुङ्गाचार्यविरचिते श्रीश्रेयांसचरिते महाकाव्ये भवत्रयनिबद्धे प्रथमभववर्णनो नाम प्रथमः सर्गः समाप्तः ।

१ लोमाप ।

द्वितीयः सर्गः ।

दध्यौ च कामधुकल्पद्रुमचिन्ता-
आज्ञापितात्माथ प्रातः प्राचालीदचलापतिः । खेचरी तमनुव्रज्य ववले तदनुज्ञया ॥ १ ॥ नत्वाऽर्चित्वा च तं प्रोचे
मणीसमः । कोऽप्येष दर्शयित्वा स्वं ममापुण्यवशाद्ययौ ॥ २ ॥ क्षणं रणरणाकीर्णा स्थित्वैवं यक्षमागमत् । निःपुण्यया
ममेष्टं कुरुषे न किम् ॥३॥ अथोल्ललास गीर्व्योम्नि कल्ये भुवनभानुराट् । त्वामागादथ सा सद्यः सानुतापमवोचत ॥४॥ त्वज्ञायि
मया तस्योचितं किमपि नो कृतम् । नामस्थानादि नो पृष्टं नवाद्य स्थापितो व्रजन् ॥ ५ ॥ भज्ञ्यात्मा कथितस्तेन मया कथितो हन्त!
नाज्ञया । निधिः सन्निधिसंस्थोऽपि निःपुण्यानां हि दूरतः ॥ ६ ॥ हा नृपाल! कृपाम्भोधे! परमार्थः कथं न मे ।
मुषासि दैवेन परमोपिणा ॥ ७ ॥ साख्यान्नाख्यातमेवाहं यक्षेश! किमुपेक्षिता । विलप्येति चिरं सानुतापा सा स्थानमागमत् ॥८॥
दध्यौ च नृपते रूपं ज्ञापयिष्ये निजस्वसुः । तावदुत्कण्ठिता तत्र भानुश्रीः स्वयमागमत् ॥ ९ ॥ ततः कृतप्रणामा सा मिलिता चिर-
कालतः । स्नेहादालिङ्ग्य संस्थाप्याङ्के च पृष्टा जगाद सा ॥ १० ॥ क्षेमोऽस्ति तातपादानां बन्धूनां नृपतिश्रियः । त्वददर्शनमक्षेम-
मेकोमम्बा च खिद्यते ॥ ११ ॥ विवाहयोग्यां मां प्रेक्ष्य मत्वा द्वेपं च मे नृषु । पृष्टस्तातेन दैवज्ञः कोऽस्या भावी वरो वरः ॥ १२ ॥
ध्यात्वोचे तेन भुवनभानुर्भर्त्ता भविष्यति । एतत्पाणिग्रहाच्चक्रिपदं चापि स लप्स्यते ॥१३॥ ततस्तुष्टेन तातेन स स्वर्णाद्यैः प्रपूजितः ।
तं विसृज्य ततस्तातोऽमन्त्रयन्मन्त्रिभिः सह ॥१४॥ कथं नृपः स आनेय एकोऽमात्यस्ततोऽवदत् । करिरूपं विधायैष ह्रियते सुखमेव
हि ॥ १५ ॥ परः प्राह ह्रियमाण इत्थं हन्ति स हस्तिनम् । तत्प्रासादशिरःसुप्तो ह्रियतां सविमानगः ॥१६॥ प्रैषि तातेन पवनगतिः

खेटोऽथ तत्कृते । विच्छायः स समायातः पृष्टस्तातेन चावदत् ॥ १७ ॥ देव ! तस्य पुरीं वीक्ष्य विच्छायां छन्नरूपिणा । अप्रच्छि
पुरुष एको विच्छायत्वस्य कारणम् ॥१८॥ स प्राह कल्ये केनापि पट्टाश्वीभूय मायया । पुरतो दर्शितैणेनापुण्यैर्नोऽपहृतो नृपः ॥१९॥
अश्वस्योऽश्वनियुक्तैस्तु दृष्टोऽत्रैव सविसयैः । तं विनैष जनः सर्वो यतो मग्नोऽसुखाम्बुधौ ॥ २० ॥ ततो दुःखादथ प्राह किं नैमित्ति-
फर्गीर्यथा । नैवं यद्गतेऽहन्यस्या दिव्यवाण्या निवेदितम् ॥ २१ ॥ यदस्यां परिणीतायां पतिश्चक्री भविष्यति । ध्यात्वेति परितः
श्रैपीचद्वीक्षणकृते खगान् ॥ २२ ॥ इति भानुश्रियाख्याते सा दध्यौ जनकः प्रियम् । यदीक्षते ततश्चिन्तोत्ततार मम मानसात्
॥ २३ ॥ ध्यात्वेति गदिता लध्वी किञ्चिदाख्यामि तेऽग्रतः । अमन्नभाग्यसौभाग्यः कल्येऽत्रागात्तव प्रियः ॥ २४ ॥ यदीयाङ्गस्य
लावण्यं कुम्भकैरिव गृह्यते । नेत्रशैत्यविधाता च यद्दर्शनसुधारसः ॥ २५ ॥ भास्करोऽयं निरीक्ष्यैवाक्रान्तानेकमहीधरम् । आक्रान्त-
क्षितिपद्वन्द्वस्तापं वहति दुःखितः ॥ २६ ॥ भानुश्रीरथ ससार नृपनाम मुहुर्मुहुः । चिरादवमतः कामः क्रुधाऽविध्यच्च तां शरैः
॥ २७ ॥ दध्यौ च सा वरं पृथ्वी पृथ्वीशेन कदापि या । यत्र तत्रापि यातेन तेनाऽमा न वियुज्यते ॥ २८ ॥ श्रवणे श्रवणेनास्य
संजाते सफले मम । भाविनी दर्शने त्वस्य दर्शनेन पुनः कदा ॥२९॥ ध्यात्वेत्यपृच्छद् भगिनी कथं सोऽत्र समागमत् । साथ यक्षस्य
वृत्तान्तं सकलं तत्पुरोऽवदत् ॥ ३० ॥ श्रुत्वेति विस्मिताचालीद्भानुश्रीः स्वपुरं प्रति । भानुश्रीरपि च व्योममध्यमध्यामधामभृत्
॥ ३१ ॥ इतश्च गच्छन् भूनेता नदीमेकामलोकत । कुर्वाणां स्वागतप्रश्नमिव द्राक् सारसारवैः ॥ ३२ ॥ तस्यास्तटस्य निकटकुञ्जे च
नरमैक्षत । हारकुण्डलकेयूरभूषितं रूपमन्मथम् ॥३३॥ मूर्च्छानिमीलिताक्षं च कन्धरार्धच्छिदांतुरम् । रुषा दष्टाधरं शत्रुं प्रत्युद्गूर्णा-

१ सह । २ मूर्तस्य प्रद्युम्नरिपि । ३ अक्षीणकान्तिमूल ।

सिमुद्यतम् ॥ ३४ ॥ ध्यात्वेत्यौषधीवलयजलेनासिक्त तं नृपः । स सुप्तबुद्धवत् खड्गव्यग्रपाणिरवोचत ॥ ३५ ॥ क रे प्रयासि मे
कान्तामपहृत्य खगाधम ! । पूर्वावेशवशादित्थं वदन् भूमेः स उत्थितः ॥ ३६ ॥ पुरो वीक्ष्य नृपं ह्रीणो नत्वोचे पुरुषोत्तम ! ।
क्रीतोऽस्म्यहं त्वया प्राणदानात् कर्मकरो यथा ॥३७॥ पूर्वोपकारिणस्तेऽहं स्वप्राणैरपि नानृणः । ममास्तताङ्गतो मर्त्यलोकः प्रकटित-
स्त्वया ॥ ३८ ॥ नृपः प्रोवाच मन्येऽहं स्वकृतोपकृतिं तदा । यदा तव प्रणयिनी समानीता भविष्यति ॥ ३९ ॥ स दध्यौ नैष
सामान्यो मान्यो मान्यैरपि ध्रुवम् । यतो मनोरथैरेवोत्तमताधमता मता ॥ ४० ॥ परदारं हरत्येकोऽहं तं रक्षितुमक्षमः । तदान-
यनचिन्तायामुत्तमस्त्वेष ताम्यति[1] ॥४१॥ राज्ञोक्तः स स्ववृत्तान्तं ब्रूह्युपायं करोम्यहम् । स प्राह युक्तमादिष्टं लक्ष्ये बाणो हि मुच्यते
॥ ४२ ॥ लक्ष्मीपुरेऽस्ति मकरकेतुर्नाम नराधिपः । तस्याहं प्रथमः पुत्रो नामतो मकरध्वजः ॥ ४३ ॥ तातो जयपुरे दूतं जय-
शेखरभूपतेः । प्रैषीत्तदीयतनयां याचितुं रतिसुन्दरीम् ॥ ४४ ॥ स विष्टो वेत्रिनिर्दिष्टो नृपं नत्वा निवेष्टवान् । उक्तो नृपेण मकरकेतु-
र्निर्विघ्नमस्ति यत् ॥ ४५ ॥ दूतः प्रोवाच युष्माभिर्मैत्रीर्यस्य प्रवर्धते । तस्य निर्विघ्नमेवायं तत्कार्यमवधार्यताम् ॥ ४६ ॥ मकरध्वज-
योग्या हि पुत्री वो रतिसुन्दरी । तत्तस्य दीयतां देव ! प्रोचेऽथ जयशेखरः ॥ ४७ ॥ इदं फलं हि कन्यानां स्वाजन्यं[2] ताभिरर्ज्यते ।
सम्बन्धेनामुना हृष्टा वयं गत्वा नृपं वद ॥४८॥ इति सम्भाष्य सम्मान्य विसृष्टे तत्र वेत्रिणाम् । विज्ञातं देव ! दूतोऽस्ति रत्नचूड-
खगेशितुः ॥४९॥ नृपस्यादेशतः सोऽपि प्रतीहारप्रवेशितः । नत्वा व्यजिज्ञपत् पुत्री मणिचूडाय दीयता ॥ ५० ॥ महान्सोपि नृप
इति दाक्षिण्याज्जयशेखरः । वचोऽमंस्त वचोमात्रात्कृत्वौचित्यं विसृष्टवान् ॥५१॥ ततो दध्यौ सुतार्थे मे रत्नचूडेन सङ्गरः[3] । भावी

१ दुःखी भवति । २ स्वजनता । ३ युद्धम् ।

तत्किं मया कार्यमिति ध्यायति यावता ॥ ५२ ॥ तावत्पुत्री समायाता न दृष्टा न च भाषिता । तयोचे तात ! किं चिन्ताचान्ता
मम निर्दिश्यताम् ॥ ५३ ॥ नृपेण कथिते सोचे तात ! चिन्तात्र मुच्यताम् । स्वयमेव करिष्यामि सुन्दरं सर्वमप्यहम् ॥ ५४ ॥
इत्युक्त्वा व्यसृजन्नृपः सा मत्वा सत्यवादिनीम् । देवीमाराधयामास नामतो भवितव्यताम् ॥ ५५ ॥ सा नित्यपूजया तुष्टा प्रत्यक्षा
प्राह किं प्रियम् । क्रियतां तव सा प्रोचे वरः को मे भविष्यति ॥ ५६॥ मकरध्वज इत्युक्ते देव्या कन्या पुनर्जगौ । यदा पृच्छति
कोऽप्येवं तदा वाच्यं पुनस्त्वया ॥५७॥ तत्प्रपद्याऽगमद्देवी कन्या हृष्टा गृहं ययौ । ततोऽहं मणिचूडश्चायातौ पुरमुभावपि ॥ ५८ ॥
जयशेखरराजेन द्वयोरप्युचितं कृतम् । सविशेषं पुनर्मानं मम दर्शयति स सा ॥ ५९ ॥ परस्य व्यवहारेणोचितं तु कुरुते नृपः ।
ततोऽद्यापि मयावश्यं मम दास्यत्ययं सुताम् ॥ ६० ॥ द्वयोरप्यावयोः पार्श्वे प्रधानौ प्राहिणोन्नृपः । तावूचतुर्वामेकस्य यस्य कन्या
न दीयते ॥ ६१ ॥ तत्प्रसादपरोऽस्माकं स्यादवश्यं पराङ्मुखः । तदत्र देवता सत्यास्ति नाम्ना भवितव्यता ॥ ६२ ॥ वधुवाभ्यां
वचस्तस्याः प्रमाणीक्रियतामिति । आवाभ्यां सम्मते ताभ्यामूचे तत्क्रियतामिदम् ॥ ६३ ॥ एकैको युवयोस्तत्र प्रधानो नस्तथैककः ।
स्थास्यन्ति तत्रायतने निश्यर्चिष्यन्ति देवताम् ॥६४॥ प्रतिपद्येति सम्मान्य प्रधानपुरुषाविमौ । प्रहितौ निश्यथैकैको नरो नौ राज्ञ
एककः ॥६५॥ कृत्वा प्रधानामर्चां ते प्रधाना योजितैः करैः । अपृच्छन् रतिसुन्दर्याः वरः कोऽस्या भविष्यति ॥ ६६ ॥ प्रत्यक्षी-
भूय देव्याख्यत् भविता मकरध्वजः । प्रातर्व्यज्ञपि च स्वस्वस्वामिनां तैर्नियोगिभिः ॥ ६७ ॥ विच्छायो मणिचूडोऽथ दिनेन्दुवद्-
जायत । दध्यौ च वक्ष्यति जनो मां पुण्येन विवर्जितम् ॥ ६८ ॥ परिवारस्य मित्राणां तातस्यापि कथं मुखम् । त्रपावान् दर्शयि-

१ प्याक्षाः । २ निर्युक्तैः । ३ निस्तेजः ।

ध्यामि हहा कीदृगभूदिदम् ॥ ६९ ॥ युक्त्या निषेधसङ्ग्रामो मम कर्तुं न युज्यते । गमने त्वधुना लोको वक्ति मत्सरिणं च माम्
॥ ७० ॥ प्रस्तावे तु चमत्कारं करिष्ये मकरध्वजे । तस्येति ध्यायतोऽभ्येयुर्जयशेखरमन्त्रिणः ॥ ७१ ॥ प्राहुर्धार्यं न कालुष्यं यतोऽ-
साकं न दूषणम् । ततो विधापनीयोऽयं मध्ये स्थित्वा महोत्सवः ॥ ७२ ॥ प्रपन्ने मम ते जग्मुरथ पाणिग्रहोत्सवः । जातो महाप्र-
बन्धेनाऽस्थां च कत्यपि वासरान् ॥ ७३ ॥

अथ प्रियान्वितो यावद्वनलक्ष्मीं विलोकये । तावच्छत्रं समभ्येत्य स घातं मम दत्तवान् ॥ ७४ ॥ प्रतिहन्तुमशक्तोऽहं जात-
तद्घातवेदनः । अश्रौषं ह्रियमाणायाः प्रियायाः करुणागिरः ॥ ७५ ॥ तथा मम न घातोपि व्यथते तद्गिरो यथा । नान्योऽपि
शक्यते द्रष्टुं विलपन् किं पुनः प्रियः ॥ ७६ ॥ निश्चयश्चात्र मम सा कदाचिन्नान्यथा भवेत् । राहुग्रस्तापि नो चन्द्रकला स्वं रूप-
मुज्झति ॥ ७७ ॥ मयैष तव वृत्तान्तः कथितो युक्तमाचर । किं च विद्या गृहाण त्वं सोऽप्रभुष्णुर्यथा भवेत् ॥७८॥ गृहीतास्तत्क्षणं
विद्या राज्ञा तस्य समीपतः । देवाधिदेवभक्त्यामूः सिद्ध्यन्तीति च सोऽवदत् ॥ ७९ ॥ तद्दर्शयामि तं कृत्वा यं स्वच्छे निजचेतसि ।
विद्याधरजनो विद्याः साधयत्येव हेलया ॥८०॥ विज्ञप्येति नृपस्तेन नीतश्चैत्ये वनस्थिते । सुधासमुज्ज्वले स्वर्णकलसामलसारके ॥८१॥
तस्य मध्ये च चन्द्राश्मप्रतिमा प्रतिमा रुचा । दर्शिता कर्शिताशेषदुष्कृता सुकृतावहा ॥ ८२ ॥ चन्द्रबिम्बनिभं बिम्बमिदं वीक्ष्य
क्षितिक्षितः । क्षणाच्चक्षुःकुवलये [3]विनिद्रत्वमुदूहतुः ॥ ८३ ॥ लसत्परिमलाढ्यानि कमलानि सरोवरात् । समासन्नात्समानीय पूजा
भूजानिना कृता ॥ ८४ ॥ अस्तौच्चेति कुवलयभूषण ! त्वं सरोनिभ ! । भवभ्रान्तिपरश्रान्तिभवां तृष्णां हर प्रभो ! ॥ ८५ ॥

---

१ सुवर्णकुम्भध्वजयुते । २ राज्ञः । ३ प्रफुल्लत्वं प्रापतुरित्यर्थः । ४ नृपेण ।

स्तुत्वेति तं कुवलयभूषणाख्यं जिनाधिपम् । प्रोचे प्रभो ! प्रसीदाशु विद्याः सिद्ध्यन्ति मे यथा ॥ ८६ ॥ एवमुक्त्वा समकर-
ध्वजोऽप्यमकरध्वजः । स विद्याः साधयामास विधिनैकाग्रमानसः ॥८७॥ विभीषिकाभ्योऽविभ्यच्चाभ्यासससंस्थितखेचरः । पुण्यात्मा
स्वल्पकालेन विद्यासिद्धिमवाप सः ॥ ८८ ॥ पुष्पवृष्टिः पपातास्य दिवि दध्वान दुन्दुभिः । जज्ञे जयजयारावश्चामराण्यलुठन् दिवि
॥ ८९ ॥ निरीक्ष्य तत्क्षणं सिद्धिं खेचरः प्राह भूपतिम् । आख्याहि मे प्रसद्याशु कोऽसि त्वं पुरुषोत्तमः ॥ ९० ॥ नृपेणात्मस्वरूपेऽथ
कथिते प्राह खेचरः । जयन्ति मम पुण्यानि त्वयि प्राणप्रदायिके ॥ ९१ ॥ किं च भानुश्रियः पुत्र्याः पाणिग्रहणहेतवे । युष्मान्
गवेषितुं प्रैषीत्खगाधीशः खगान् क्षितौ ॥ ९२ ॥ विशेषेणाधुना युष्मान् दिदृक्षति खगाधिपः । यतः श्रीश्रीपुराधीशो विद्याभुज-
बलोन्मदः ॥ ९३ ॥ श्रीकण्ठनामविद्याभृच्चक्री रूपश्रियं पराम् । श्रुत्वा भानुश्रियः प्रैषीत्प्रधानान् याचनाकृते ॥ ९४ ॥ तेषां च
याच्यमानानामुत्तरं विदधे नृपः । विचिन्त्याख्यास्यामीत्युक्त्वा सम्मान्य ते विसर्जिताः ॥ ९५ ॥ पृष्टा नृपेण भानुश्रीः प्राह किं
तात ! पृच्छथ । नैमित्तिकवचः किं वो विस्मृतं नान्यथा ह्यदः ॥ ९६ ॥ निर्बन्धमलघुं ज्ञात्वाऽस्या नृपः सर्वत्र खेचरान् । आदिशत्
भुवनभानुं यदानयत वेगतः ॥ ९७ ॥ कन्यारत्ने प्रधानर्घ्येऽसिद्धमुष्य समर्पिते । विसारितराजकार्यो चिन्तासाकं निवर्तते ॥ ९८ ॥
अथ नैमित्तिकवचो ज्ञात्वा चक्री कृतादरः । तामयाचद्वोचच्च स्वकीयबलगर्वितः ॥ ९९ ॥ मत्वा परिणिनीषुं मां कः परः परि-
णेष्यति । यस्य साऽजीविते वाञ्छाऽस्तु च्छात्सुसेव्यानपि ॥१००॥ भानुश्रियः पिता त्वां तु वाञ्छत्येकं वरं चरम् । तमोपहं दिव-
सवत् प्रतापकलितं रविम् ॥ १०१ ॥ स्वामी पितुर्मे कनकरथ एष क्रमागतः । एवं वर्धापयिष्यामि तत्रवागमनादहम् ॥ १०२ ॥
इत्यो नृप उवाचैनं तावत्त्वत्पितामहम् । मेलयाम्यथ पश्चात्तु कथयेस्त्वं मदागमम् ॥१०३॥ अधुना कथिते विज्ञः कार्यस्य भविता

तव । अपरत्रापि कार्ये न कालक्षेपः सुसङ्गतः ॥ १०४ ॥ यद्यप्येवं तथाप्यस्ति तत्र चिन्ता न कापि च । यतस्तत्र विधिरेव समस्ति
स्वयमुद्यतः ॥ १०५ ॥ भानुश्रीप्रार्थनां कुर्वन् श्रीकण्ठः कुण्ठधीः पुनः । त्याज्यो राज्यश्रियाऽवश्यमीर्ष्यारसवशादिव ॥ १०६ ॥
चिन्तया किं तया कुर्वे परार्थमिति भूपतौ । वदत्यासन्नचूतस्थं शुकद्वन्द्वमदृश्यत ॥ १०७ ॥ शुकी प्राह प्रिय ! कुतो दुःखार्त्त इव
लक्ष्यसे । शुकः प्राहान्यदुःखेन तयोचे कथ्यतां कथम् ॥ १०८ ॥ सोवदन्मणिनिधाननाम्नि क्रीडाचले मया । उद्यानसौधकस्थिता
रतिसुन्दरी नामतः ॥ १०९ ॥ रमणी मणिचूडेन प्रार्थ्यमानेति शुश्रुवे । स्वामिनि ! श्रीः परिजनोऽहं च सर्वमिदं तव ॥ ११० ॥
फलमेषां तदादेहि देहि दृष्टिं नते मयि । परासौ प्रतिबन्धं किं कुरुषे पुरुषे ननु ॥१११॥ इत्युक्त्वा प्राह सा नान्यः शरणं मकरध्वजात् ।
ज्वलतो ज्वलनाद्वापि ममायं हृदि निश्चयः ॥ ११२ ॥ विमुच्य खेचरीस्तस्या रक्षार्थं स गतस्ततः । सारं सारं रुरोदैषा पतिं प्रतिजनं
तथा ॥ ११३ ॥ खगानामपि नश्चित्तं यया दुःखेन पूरितम् । विद्याधर्योऽपि सर्वास्ता दुःखार्ता रुरुदुस्तराम् ॥ ११४ ॥ विलेपे
रतिसुन्दर्या निःपुण्याऽहं प्रियेण चेत् । त्यक्तासि तात ! तत्त्वं किं मम सारां करोषि न ॥ ११५ ॥ किं मया प्राग्भवे पापं स्वाहितं
विहितं यतः । मकरध्वजविरहोऽभूद्धूमध्वजदारुणः ॥ ११६ ॥ विलपन्तीति साऽऽस्थायि खेचरीभिः कथञ्चन । तत्र चूतद्रुमपश्यं
तदेतद्दुःखकारणम् ॥११७॥ नृपः कृपार्द्रचित्तोऽभूत्तच्छ्रुत्वा खेचरः पुनः । विमुच्याश्रूणि दध्यौ किमहं रोदिमि भीरुवत् ॥११८॥
स्त्रीणां हि रुदितं दुःखे नृणां तु रिपुनिग्रहः । तत्र गत्वा द्रुतं कुर्वे तदहं रिपुनिग्रहम् ॥ ११९ ॥ अथोचे नृपतिः कीरो वरमेष
कृपापरः । शक्त्याऽकृतप्रतीकारा वयमस्यापि नो समाः ॥ १२० ॥ काले लगाति सा बाला निराशा हि प्रजायते । तद्वेगाद्दृश्यते

१ मृते । २ असिरिव । ३ शुकः ।

ध्यात्वा चलितौ तौ विमानगौ ॥ १२१ ॥ तौ वीक्ष्य नष्टाः खेचर्यो दृष्ट्वा तु रतिसुन्दरी । विच्छाया रुदती क्षीणशरीरा लुलितालका ॥ १२२ ॥ खेचरः प्राह तां मुञ्च शुचं यदहमागतः । सम्यक् निशम्य सा पत्युः शब्दमभ्युत्थिता मुदा ॥ १२३ ॥ तदा तयोः सुखं किञ्चिदभूद्विरहोत्कयोः । परस्परं विजानीतस्तत्तावेव परो न तु ॥ १२४ ॥ स तां विमानमारुह्य प्राह सैष प्रणम्यताम् । प्राणदो मे श्वशुरस्ते सापतन्नृपपादयोः ॥ १२५ ॥ सम्भाविता भुवो भर्त्रा स्नुषा विशदया दृशा । द्वाःस्थः पृष्टो नृपेणाथ क्व सोऽगात् पारदारिकः ॥ १२६ ॥ स भीतः प्राह देवात्र मुक्त्वा निजपुरं गतः । खेचरः प्राह किं देव ! तमः स्यात्सम्मुखं रवेः ॥१२७॥ युक्तं हि यत्र वः सोऽगात् प्रतापाग्नौ पतङ्गताम् । शिक्षोचितोयमित्युक्ते नृपेण प्राह खेचरः ॥ १२८ ॥ नीतौ युद्धं निषिद्धं हि पुष्पैरपि धिया पुनः । रिपोः परिभवः कार्यः साम्प्रतं कृत एव सः ॥ १२९ ॥ न च कालविलम्बो वः कर्तुं सम्प्रति युज्यते । मातुश्रियं प्रतिदिनं श्रीकण्ठो याचते यतः ॥१३०॥ तत्प्राक् मे पुरमागम्य राज्यं नय कृतार्थताम् । दाक्षिण्यवान्नृपस्तेन सहाचालीद्विमानगः ॥ १३१ ॥ व्योम्नि यान्तश्च ते श्रुत्वा तुमुलं यावदग्रतः । पश्यन्ति तावदागच्छत्सैन्यं दृष्टं समुद्यतम् ॥ १३२ ॥ राज्ञोचे किमिदं प्राह खेचरो देव ! मन्यते । खेचरीकथनाद्योद्धुं स समेति नराधिपः ॥१३३॥ श्रुत्वेति रतिसुन्दर्या दृष्टिः कातरतामगात् । नृपः प्राह पश्यतां नः समेतोऽयं रणोत्सवः ॥१३४॥ त्वं स्नुषां रक्ष यत्नेन भलिष्याम्यखिले बले । स प्राह मयि भृत्ये किं युध्यन्ते प्रभवः स्वयम् ॥ १३५ ॥ तद्रूपतां सभृत्यस्य शक्तिरेवं वदन्नयम् । बद्ध्वा परिकरं खड्गे करं न्यास्यद्भुवं तथा ॥ १३६ ॥ यावदेवं मिथस्तौ स्तस्तावद्वियाभूदागतः । एको विमानगस्तेन श्लिष्टश्च मकरध्वजः ॥१३७॥ विनयेन पदोस्तस्यापतच्च रतिसुन्दरी । विस्मितस्य नृपस्याख्यं खगोऽयं मातुलो मम ॥ १३८ ॥ नाम्ना सङ्गरसिंहश्चेत्याख्याय प्राह मातुलम् । विजयः क्वैप किं कोऽपि तावसीमां

मञ्जर्यास्यं निरीक्ष्य च । प्राह सिंह ! त्वमेवासि सर्वकल्याणकृत्मम ॥ १७३ ॥ तत्किं तवोपकुर्वेऽहं स प्राह विनयानतः । तवप्रभा-
वतो देव ! सिंहन्ति हरिणा अपि ॥ १७४ ॥ तवाकल्पितकल्पद्रो ! स्तवः किं नाम वर्ण्यते । जनस्यालक्षितमिति सिंहोक्तेति नवा
वधूः ॥१७५॥ स्मित्वा शृङ्गारमञ्जर्या वीक्ष्यते स मुखं तदा । विज्ञाय कलितं च स्वं सोऽपि स्मितलवं व्यधात् ॥१७६॥ भानुश्रीः
शिक्षिता पित्रा वत्से ! ज्योत्स्नेव सर्वदा । राजानुगामिनीभूय जामातापि प्रभापितः ॥ १७७ ॥ कदापि नानया दृष्टमसुखं तत्तथा
त्वया । कार्यं यथा न स्मरति विन्ध्यमेषा करेणुवत् ॥१७८॥ (युग्मम्) स्वभावेनापि नालीकं परदोषं च वक्त्यसौ । उचितज्ञा सुशीला
च दयालुर्मृदुभाषिणी ॥ १७९ ॥ पात्रापात्रविशेषज्ञा प्रणयिप्रह्वमानसा । एतस्याः सम्मुखीनाया विमुखो मा स्म भूः क्वचित्
॥ १८० ॥ यद्वा शुद्धगुणौघस्य पुरः किं तव कीर्त्यते । प्रकृत्यैव नायुक्तं कुर्वतो यत्समेति ते ॥ १८१ ॥ अभाणीद्भुवन-
भानुः सौजन्यं वो निरर्गलम् । यतो मां निर्गुणमपि सगुणं ब्रूथ सर्वथा ॥ १८२ ॥ चेद्बालेन मया राज्यं प्रापि ताते दिवङ्गते ।
एतावतापि किं नाम तद्गुणित्वं ममाभवत् ॥ १८३ ॥ सन्तः कुर्वन्त्यणुमपि गुणं स्वर्णगिरिप्रभम् । हृद्दर्पणे सतां शुद्धे को वा न
प्रतिबिम्ब्यते ॥ १८४ ॥ स्वं मन्ये निर्गुणमपि सगुणं भवतां मतम् । श्रीतातेन श्रियं दत्वा गोपालः श्रीपतिः कृतः ॥ १८५ ॥
चिन्ता कार्या तदेतस्या युष्माभिर्नैव सर्वथा । कामधेनुं गृहायातां किं कश्चिदवमन्यते ॥ १८६ ॥ कृत्रिमो हि विसंवादी स्नेहो
भवति नापरः । एतस्यां हि ममस्नेहः पुरातनभवोद्भवः ॥ १८७ ॥ अथाह कनकरथः कन्यारत्नार्पणान्मया । राज्यं समर्पितं सर्वं
राज्ये सारमियं हि मे ॥ १८८ ॥ अथ प्रवरहस्त्यश्वविमानमणिमौक्तिकम् । ददौ विद्याधराधीशो जामात्रेऽमात्रतोषभृत् ॥ १८९ ॥

---

१ हस्तिनी । २ समुद्रेण । ३ कृष्णः ।

प्रकाशयन्नाशाः परितोऽपि तमोहरन् । उद्दण्डपुण्डरीकालिरागात् भुवनभानुराट् ॥ १५७ ॥ विमानकिंकिणीक्वाणैर्यस्य श्रुतिसुखप्रदैः । आकर्णितैः दिग्गजेन्द्रास्तस्थुरुत्कर्णिताश्चिरम् ॥ १५८ ॥ यद्गजगर्जितं श्रुत्वा परितो गगनाङ्गणे । पर्जन्यगर्जितभ्रान्त्या नृत्यन्ति शिखिनो मुदा ॥ १५९ ॥ ततश्च कनकरथस्तस्य सम्मुखमागमत् । उभयोरभवद्योग एतयोः पुष्पदन्तयोः ॥ १६० ॥ राकारात्रिमुखद्रवे ततश्चन्द्रोदयान्विते । कलिते तारकाभिश्च प्रसादेम्बरसुन्दरे ॥ १६१ ॥ पदार्थसम्पदा रम्यरूपे सुकविकाव्यवत् । प्रासादे भुवनभानुभूपालः समुपागमत् ॥ १६२ ॥ आयत्रकस्तु भुवनभानुभानुश्रियोर्मिथः । अन्योन्यदर्शने जज्ञे प्रेमदूती गिरापि च ॥ १६३ ॥ मिथः प्रतिदिनं प्रेष्यमाणैर्विविधवस्तुभिः । वस्तूनामिव चित्तस्याप्यभूद्विनिमयोऽनयोः ॥ १६४ ॥ तयोर्लग्नान्तरालस्था-दिनास्त्रिचतुरा अपि । अतुच्छमुत्सुकस्वान्तवतोर्वत्सरवद्ययुः ॥ १६५ ॥ अथो विवाहदिवसे खेचरेन्द्रागमोत्सवे । तत्र शृङ्गारमञ्जर्या-मेतायां दयिताज्ञया ॥ १६६ ॥ स्फूर्यत्तूर्यरवापूर्यमाणे च गगनाङ्गणे । संकेतेनैव कार्येषु क्रियमाणेषु सर्वतः ॥ १६७ ॥ कारितासु सपर्यासु चैत्येषु च विशेषतः । मान्यमानेषु मान्येषु गीयमाने च मङ्गले ॥ १६८ ॥ विवाहोचितनेपथ्यलक्ष्मीकलितयोस्तयोः । अजनि श्रीपतिश्रीवत्पाणिग्रहणमङ्गलम् ॥ १६९ ॥ (चतुर्भिः कलापकम्) तदा भानुश्रियो लाभात् प्राप्तविश्वत्रयश्रियम् । आत्मानं भुवनभानुः मन्यते स्म महीपतिः ॥ १७० ॥ प्राप्य राज्ञः करस्पर्शं तदा भानुश्रियोऽपि हि । विकस्वरे कुवलये इव नेत्रे बभूवतुः ॥ १७१ ॥ अथ प्राप्य निजं रूपं सिंहस्तत्र समागमत् । उत्सवादुत्सवं तेन मेने शृङ्गारमञ्जरी ॥ १७२ ॥ नृपः सित्वा च शृङ्गार-

१ छत्रश्रेणी । २ शब्दैः । ३ सूर्यचन्द्रमसोः । ४ समागतायाम् ।

मञ्जर्यास्यं निरीक्ष्य च । प्राह सिंह ! त्वमेवासि सर्वकल्याणकृत्मम ॥ १७३ ॥ तत्किं तवोपकुर्वेऽहं स प्राह विनयानतः । तवप्रभा-
वतो देव ! सिंहन्ति हरिणा अपि ॥ १७४ ॥ तवाकल्पितकल्पद्रो ! स्तवः किं नाम वर्ण्यते । जनस्यालक्षितमिति सिंहोक्तेति नवा
वधूः ॥१७५॥ स्मित्वा शृङ्गारमञ्जर्या वीक्ष्यते स मुखं तदा । विज्ञाय कलितं च स्वं सोऽपि स्मितलवं व्यधात् ॥१७६॥ भानुश्रीः
शिक्षिता पित्रा वत्से ! ज्योत्स्नेव सर्वदा । राजानुगामिनीभूय जामातापि प्रभाषितः ॥ १७७ ॥ कदापि नानया दृष्टमसुखं तत्तथा
त्वया । कार्यं यथा न स्मरति विन्ध्यमेषा करेणुवत् ॥१७८॥ (युग्मम्) स्वभावेनापि नालीकं परदोषं च वक्त्यसौ । उचितज्ञा सुशीला
च दयालुर्मृदुभाषिणी ॥ १७९ ॥ पात्रापात्रविशेषज्ञा प्रणयिप्रह्वमानसा । एतस्याः सम्मुखीनाया विमुखो मा स भूः क्वचित्
॥ १८० ॥ यद्वा शुद्धगुणौघस्य पुरः किं तव कीर्त्यते । प्रकृत्यैव नायुक्तं कुर्वतो यत्समेति ते ॥ १८१ ॥ अभाणीद्भुवन-
भानुः सौजन्यं वो निरर्गलम् । यतो मां निर्गुणमपि सगुणं ब्रूथ सर्वथा ॥ १८२ ॥ चेद्बालेन मया राज्यं प्रापि ताते दिवङ्गते ।
एतावतापि किं नाम तद्गुणित्वं ममाभवत् ॥ १८३ ॥ सन्तः कुर्वन्त्यणुमपि गुणं स्वर्णगिरिप्रभम् । हृद्दर्पणे सतां शुद्धे को वा न
प्रतिबिम्ब्यते ॥ १८४ ॥ स्वं मन्ये निर्गुणमपि सगुणं भवतां मतम् । श्रीतातेन श्रियं दत्वा [3]गोपालः श्रीपतिः कृतः ॥ १८५ ॥
चिन्ता कार्या तदेतस्या युष्माभिर्नैव सर्वथा । कामधेनुं गृहायातां किं कश्चिदवमन्यते ॥ १८६ ॥ कृत्रिमो हि विसंवादी स्नेहो
भवति नापरः । एतस्यां हि ममस्नेहः पुरातनभवोद्भवः ॥ १८७ ॥ अथाह कनकरथः कन्यारत्नार्पणान्मया । राज्यं समर्पितं सर्वं
राज्ये सारमियं हि मे ॥ १८८ ॥ अथ प्रवरहस्त्यश्वविमानमणिमौक्तिकम् । ददौ विद्याधराधीशो जामात्रेऽमात्रतोषभृत् ॥ १८९ ॥

१ हस्तिनी । २ समुद्रेण । ३ कृष्णः ।

परैरपि नृपैस्तस्य प्राभृतं निभृतं कृतम् । कृतोचिता नृपाः सर्वे स्वं स्वं नगरमभ्ययुः ॥ १९० ॥ जामाता सुविनोदेन कालं नयति सौख्यतः । स्वां पुनः परिणीतां तु मेने शृङ्गारमञ्जरी ॥१९१॥ सान्यदा परिहासेन भानुश्रीसम्मुखं जगौ । प्रियोऽयं गणकस्तेऽस्ति क्रीडाद्रौ प्रत्ययोऽस्य मे ॥ १९२ ॥ जानामि भुवनभानुः ममेतो युष्मदीहितम् । भविष्यति दिनैः कैश्चिदित्ययं विप्रवारकः ॥ १९३ ॥ त्वया भाव्यं न श्रध्या तद्वद् शुद्धान्तमध्यगम् । कृत्वा वह्ववरोधोपि त्वामयं वञ्चयिष्यति ॥ १९४ ॥ नृपेण स्मयमानेन प्रोचे शृङ्गारमञ्जरी । कथं त्वं सरलामेनां स्वां शिक्षयसि धूर्तताम् ॥ १९५ ॥ त्वं वद स्वेच्छया नैषा कोपिष्यति कदापि मे । भानुश्रीर्भ्रुकुटिं कृत्वाम्बुजेनाताडयत्पतिम् ॥१९६॥ शृङ्गारमञ्जरी प्राह ज्ञात्वैवं पृथिवीप्रिय ! । विदध्या अपराधांस्त्वं भानुश्रीरथ तां जगौ ॥ १९७ ॥ पृथ्वीप्रियेति जल्पन्त्या अग्रजाया निजस्वसुः । करोमि कीदृशं दण्डमुद्दण्डमहमत्र ते ॥१९८॥ विमुच्य मामप्यद्यापि किं काप्यस्ति परा प्रिया । महानरेन्द्र इत्येष तद्वाच्यो भगिनि ! त्वया ॥१९९॥ राज्ञा शीर्षं विधूयाथ प्रोक्ता शृङ्गारमञ्जरी । स्तोकेनापि हि कालेन भवत्या पाटितासकौ ॥२००॥ तथा यथा तवाप्येषा तन्वी दण्डं चिकीर्षति । सा प्रोवाच प्रभावोऽयं भवतामेव तेजसः ॥ २०१ ॥ पुरा तु भाष्यमाणापि ददौ प्रतिवचो न च । दिवाकरस्य माहात्म्यादातपश्रीः प्रतप्यते ॥ २०२ ॥ कामतत्त्वं स्वयमिदं देवेन परिभाव्यताम् । क्वापि प्रेम विना मानं मानिन्यो न प्रकुर्वते ॥ २०३ ॥ तत्त्वया नापराधोऽस्याः कार्यो या ते वचोऽपि हि । सहते न कथं सा ते मन्तुजातं सहिष्यते ॥ २०४ ॥ इति प्रतिदिनं कालमत्यैत्पत्नीं स लालयन् । निःसारं मन्यते स्वर्गमप्ययं वर्जितं तया ॥ २०५ ॥ आस्थानस्थोऽथ भुवनभानुर्व्यज्ञपि वेत्रिणा । देवास्ति मकरकेतोर्दूतो द्वारि निवारितः

१ अन्तःपुरमध्यवर्त्तिनीम् । २ वह्वः अवरोधाः–अन्तःपुराणि यस्य सः ।

...च्छत्रमण्डलम् ॥ २४४ ॥ दुःसञ्चरं पदातीनां हतारोहकहस्तिभिः । उदग्रमुद्गराघातसञ्चूरितमहारथम् ॥ २४५ ॥
...टत् करटिकं शुण्डादण्डविखण्डनात् । भटैः सुराङ्गनाभिश्च व्रियमाणमहारथम् ॥२४६॥ शिवारुतस्फुरद्गीतनृत्यद्रुटकबन्धकम् ।
मिलदुत्तालवेतालमुल्बणं समभूद्रणम् ॥२४७॥ (पञ्चभिः कुलकम्) नृपसामन्तहस्त्यश्वविघातादचलं बलम् । श्रीकण्ठः कुण्ठमुद्वीक्ष्य
दूतं प्रैषीत् विरोधिने ॥ २४८ ॥ स गत्वा प्राह भुवनभानुं लोकक्षयो मुधा । कथं विधीयते द्वावप्यावां युद्धावहे ततः ॥ २४९ ॥
नृपः प्राहाथ रे दूत ! वद तं स्ववलक्षये । दृष्टे विरम मन्यस्व ममाज्ञां चेज्जिजीविषा ॥ २५० ॥ अथवासन्नमृत्यूनां भवत्येव विप-
र्ययः । पिपीलिकानामुद्भूतिः क्षयकाले हि पक्षयोः ॥ २५१ ॥ तत्ते यया कयाप्यस्ति युधा योद्धुं समर्थता । तेन सज्जो भव
स्वेच्छात्रार्येऽदायि मया तव ॥२५२॥ दूतेन गत्वेत्याख्याते श्रीकण्ठोऽकुण्ठबुद्धिना । मतिसागरसंज्ञेन मन्त्रिणेति निगद्यते ॥२५३॥
निवर्तस्व युधो देव ! किञ्चित्तत्त्वान्तरं हि सः । यत्तेन कुम्भजेनेव निपीतस्ते बलोदधिः ॥ २५४ ॥ अर्जयेज्जयलक्ष्मीं हि स
पुण्यो विक्रमः क्रमः । स किलाविकलो नाथ ! प्रतिपक्षे निरीक्ष्यते ॥ २५५ ॥ माऽदा जलाञ्जलिं राज्ये नार्याः कार्यादितोऽल्प-
ज्ञात् । अन्यच्च न्यायिनां हार्दं कुर्वते देवता अपि ॥ २५६ ॥ नयो नायं परोढाजिघृक्षा यदिति स्फुटम् । खेपामपि खगेन्द्राणां

१ युद्धाय । २ ललन्वन् । ३ स्नेहम् ।

पौरैरपि नृपैस्तस्य प्राभृतं निभृतं कृतम्। कृतोचिता नृपाः सर्वे स्वं स्वं नगरमभ्ययुः ॥ १९० ॥ जामाता सुविनोदेन कालं नयति सौख्यतः। स्वां पुनः परिणीतां तु मेने शृङ्गारमञ्जरी ॥१९१॥ सान्यदा परिहासेन भानुश्रीसम्मुखं जगौ। प्रियोऽयं गणकस्तेऽस्ति क्रीडाद्रौ प्रत्ययोऽस्य मे ॥ १९२ ॥ जानामि भुवनभानुः समेतो युष्मदीहितम्। भविष्यति दिनैः कैश्चिदित्ययं विप्रतारकः ॥ १९३ ॥ त्वया भाव्यं न श्लथ्या वद्धु शुद्धान्तमध्यगाम्¹। कृत्वा वह्ववरोधोऽपि² त्वामयं वञ्चयिष्यति ॥ १९४ ॥ नृपेण स्मयमानेन प्रोचे शृङ्गारमञ्जरी। कथं त्वं सरलामेनां स्वां शिक्षयसि धूर्तताम् ॥ १९५ ॥ त्वं वद स्वेच्छया नैषा कोपिष्यति कदापि मे। भानुश्रीर्भ्रुकुटिं कृत्वाम्बुजेनाताडयत्पतिम् ॥१९६॥ शृङ्गारमञ्जरी प्राह ज्ञात्वैवं पृथिवीप्रिय!। विदग्धा अपराधांस्त्वं भानुश्रीरथ तां जगौ ॥ १९७ ॥ पृथ्वीप्रियेति जल्पन्त्या अग्रजाया निजस्वसुः। करोमि कीदृशं दण्डमुद्दण्डमहमत्र ते ॥१९८॥ विमुच्य मामप्यद्यापि किं काप्यस्ति परा प्रिया। महानरेन्द्र इत्येष तद्वाच्यो भगिनि! त्वया ॥१९९॥ राज्ञा शीर्षं विधूयाथ प्रोक्ता शृङ्गारमञ्जरी। स्तोकेनापि हि कालेन भवत्या पाठितास्त्वकौ ॥२००॥ तथा यथा तवाप्येषा तन्वी दण्डं चिकीर्षति। सा प्रोवाच प्रभावोऽयं भवतामेव तेजसः ॥ २०१ ॥ पुरा तु भाष्यमाणापि ददौ प्रतिवचो न च। दिवाकरस्य माहात्म्यादातपश्रीः प्रतप्यते ॥ २०२ ॥ क्षामतस्त्वं स्वपमिदं देवेन परिभाव्यताम्। क्वापि प्रेम विना मानं मानिन्यो न प्रकुर्वते ॥ २०३ ॥ तत्त्वया नापराधोऽस्याः कार्यो या ते वचोऽपि हि। सहते न कथं सा ते मन्तुजातं सहिष्यते ॥ २०४ ॥ इति प्रतिदिनं कालमत्यैत्पत्नीं स लालयन्। निःसारं मन्यते स्वर्गमप्ययं वर्जितं तया ॥ २०५ ॥ आस्थानस्थोऽथ भुवनभानुर्व्यज्ञपि वेत्रिणा। देवास्ति मकरकेतोर्दूतो द्वारि निवारितः

---

१ अन्तःपुरमध्यवर्तिनीम्। २ बहवः अवरोधाः—अन्तःपुराणि यस्य सः।

संख्यायादापयद्भेरीमसंख्यं त्वमिलद्बलम् ॥ २४० ॥ चतुरङ्गं ततः सैन्यं सरङ्गं समनह्यत । परोऽपि गरुडव्यूहं कृत्वास्याभिमुखं
स्थितः ॥ २४१ ॥ मिलितान्यथ सैन्यानि निर्दैन्यानि परस्परम् । अरणद्रणतूर्यैश्च मुखरं परितोऽम्बरम् ॥ २४२ ॥ ततश्च मार्गण-
गणच्छायाच्छन्ननभोमणिम् । प्रवृत्तेभघटाटोपमभ्युद्यत्सुभटोद्भटम् ॥ २४३ ॥ मिलिताश्वं मिथान्योन्यसंलग्नरथकूबरम् । कृत्तदण्ड-
समुद्दण्डपतितच्छत्रमण्डलम् ॥ २४४ ॥ दुःसञ्चरं पदातीनां हतारोहकहस्तिभिः । उदग्रमुद्गराघातसञ्चूरितमहारथम् ॥ २४५ ॥
कद्वाऽरटत् करटिकं शुण्डादण्डविखण्डनात् । भटैः सुराङ्गनाभिश्च व्रियमाणमहारथम् ॥२४६॥ शिवारुतस्फुरद्गीतनृत्यद्भटकबन्धकम् ।
मिलदुत्तालवेतालमुल्वणं समभूद्रणम् ॥२४७॥ (पञ्चभिः कुलकम्) नृपसामन्तहस्त्यश्वविघातादवलं बलम् । श्रीकण्ठः कुण्ठमुद्वीक्ष्य
दूतं प्रैषीत् विरोधिने ॥ २४८ ॥ स गत्वा प्राह भुवनभानुं लोकक्षयो मुधा । कथं विधीयते द्वावप्यावां युद्धावहे ततः ॥ २४९ ॥
नृपः प्राहाथ रे दूत! वद तं स्वबलक्षये । दृष्टे विरम मन्यस्व ममाज्ञां चेज्जिजीविषा ॥ २५० ॥ अथवासन्नमृत्यूनां भवत्येव विप-
र्ययः । पिपीलिकानामुद्भूतिः क्षयकाले हि पक्षयोः ॥ २५१ ॥ तत्ते यया कयाप्यस्ति युधा योद्धुं समर्थता । तेन सज्जो भव
स्वेच्छात्रार्थेऽदायि मया तव ॥२५२॥ दूतेन गत्वेत्याख्याते श्रीकण्ठोऽकुण्ठबुद्धिना । मतिसागरसंज्ञेन मन्त्रिणेति निगद्यते ॥२५३॥
निवर्तस्व युधो देव! किञ्चित्तत्त्वान्तरं हि सः । यत्तेन कुम्भजेनेव निपीतस्ते बलोदधिः ॥ २५४ ॥ अर्जयेज्जयलक्ष्मीं हि स
पुण्यो विक्रमः क्रमः । स किलाविकलो नाथ! प्रतिपक्षे निरीक्ष्यते ॥ २५५ ॥ माऽदा जलाञ्जलिं राज्ये नार्याः कार्यादितोऽल्प-
कात् । अन्यच्च न्यायिनां हार्दं[3] कुर्वते देवता अपि ॥ २५६ ॥ नयो नायं परोदूढाजिघृक्षा यदिति स्फुटम् । खेपामपि खगेन्द्राणां

१ युद्धाय । २ अत्यन्तम् । ३ स्नेहम् ।

॥ २२३ ॥ उत्फुल्लनयनैः सिद्धमिथुनैरवलोकितः । सौत्सुक्यं श्वशुरेणानुगम्यमानो जनैः सह ॥ २२४ ॥ स्वयं सम्भाष्य सम्भाष्य
ौरलोकं विसर्जयन् । स्वकीयहितवर्गस्य शिक्षां कर्णावतंसयन् ॥ २२५ ॥ (चतुर्भिः कलापकम्) अथानुगम्य कनकरथे निजपुरं
ाते । व्यजिज्ञपत्खचरो नत्वा श्रीकण्ठचक्रिणम् ॥ २२६ ॥ स देव ! भवतः शत्रुः स्त्रीरत्नं परिणीय तत् । निजस्थानं व्रजन्नास्ति
रमाणं देव एव तत् ॥ २२७ ॥ स श्रुत्वेति ससंरम्भः स्वकैर्भम्भां प्रताडयत् । तत्स्वनैः प्रगुणीभूतं चतुरङ्गमहाबलम् ॥ २२८ ॥
श्रीकण्ठोऽथ विमानस्थः पुरीपरिसरे स्थितः । शाह्वियोत्परितो दूतानाह्वातुं खचराधिपान् ॥ २२९ ॥ तेष्वागतेषु त्वरितं स प्रदाय
ायाणकम् । निवेश्य शिबिरं दूतं प्रैषीद्भुवनभानवे ॥ २३० ॥ स गत्वाह महाराजाक्रम्य पुम्भिः समर्जिता । स्त्रीश्रीर्विद्याश्च न
ापि पश्चाद्वयावहा भवेत् ? ॥ २३१ ॥ भानुश्रियं तदर्पित्वा सेवां नः प्रतिपद्य च । स्वपुरं व्रज निर्भीः श्रीकण्ठेनादिष्टमीदृशम्
। २३२ ॥ अथ भ्रुकुटीभीमास्यो मेघनिर्घोषया गिरा । उवाच भुवनभानुर्दुःप्रेक्ष्यः क्षयभानुवत् ॥ २३३ ॥ अरे क्रुद्धः कृतान्तः
को मत्कोपाग्नौ पतङ्गताम् । सिंहमालिङ्गितुं वाञ्छत्यादातुं फणिनो मणिम् ॥२३४॥ करं क्षिपति को वह्नौ कः कांकोलं जिघत्सति।
को विस्मृतं सारयति यमस्यात्मानमञ्जसा ॥ २३५ ॥ तद्रे ! दुःशिक्षितो दूत ! खेटखेटः क एषकः । यो मया विहितां शिक्षां
ूटच्छात्र इवेच्छति ॥ २३६ ॥ स किं पिशाचकी किं वा वातकी किं तु मद्यपः । असमञ्जसवाक्यानि यत्त्वां प्रेष्येत्यभापयत्
। २३७ ॥ निस्त्रपत्वमहो ! तस्याहो ! अनाचारकारिता । अहो ! काचिदमर्यादाप्यहो ! काप्यविवेकिता ॥ २३८ ॥ स क्षीणसुकृतो
मन्ये गत्वा तं कुमतिं वद । अहमागत एवास्मि युद्धसज्जो भव त्वकम् ॥ २३९ ॥ गत्वारूपातेऽथ दूतेन रोषपोषवशेन सः ।

१ सेनावासस्थानम् । २ विरम । ३ खेचराधमः ।

श्रीकण्ठं वीक्ष्य भुवनभानुः प्राह महामनाः ॥ २७४ ॥ जनान्न त्रपसे चेत्त्वं पलितेभ्योऽपि तन्न किम् । जराहतस्य ते हन्तुं
विमुञ्चन्पत्रिणं त्रपे ॥ २७५ ॥ मृतस्य मारणं कर्तुं सुभटानां न युज्यते । शीर्षे शेषामिवाज्ञां मे कृत्वा व्रज म्रियस्व मा
॥ २७६ ॥ अथ स्वर्गश्रियो वाञ्छा तदयं सुप्रथः पथः । अविलम्ब उपायोऽयं रणे हि मरणं मतः ॥ २७७ ॥ तथापि
बालवद्वृद्धविघातोऽपि न सङ्गतः । चक्री प्रोवाच रे बाल! दुःशिक्षाभृद्वदसद् ॥ २७८ ॥ वचसां तदयुक्तानामुक्तानां फल-
माप्नुहि । कन्यालाभेन तृप्तोऽसि सुखं सर्वं हरामि ते ॥ २७९ ॥ ब्रुवन्निति स आग्नेयबाणवर्षं क्षणाद् व्यधात् । खगस्वर्गिगणोऽन-
श्यजज्ञे कोलाहलो महान् ॥ २८० ॥ तानऽऽच्छिनत्तु भुवनभानुर्मेघशिलीमुखैः गगनं पूरितं मेघैर्नृत्यन्ति स्म च बर्हिणः ॥ २८१ ॥
चित्रमत्र तु यद्राजहंसा बाढं मुदं दधुः । सज्जनास्यानि च श्यामैरपि शुभ्राणि चक्रिरे ॥ २८२ ॥ स्मित्वा प्रोवाच भुवनभानुः
करुणया मया । क्रोधाग्निं ते समुच्छेत्तुं मेघास्त्रं मुमुचे जरिन्! ॥ २८३ ॥ न तु मे शस्त्रमस्त्रं वा किंचित्प्रभवति क्वचित् । प्रकाश-
यस्व सामर्थ्यं विश्वस्तस्त्वं पुनस्ततः ॥ २८४ ॥ पुनर्भवादृशं प्राप्यं क्व नु खेलनकं मया । इत्युक्तस्तु क्रुधाऽमुञ्चन्नागपाशान् भय-
ङ्करान् ॥२८५॥ तानयं गरुडास्त्रेण सद्योऽपि हि समापयत् । ऊचे च युगपत्सर्वास्त्राणि मुञ्चस्व मां प्रति ॥ २८६ ॥ श्रीकण्ठो वच-
नैरस्यवश्चनैश्च चमत्कृतः । तदेति ध्यातवान् यादृक् श्रुतो दृष्टस्तथायकम् ॥ २८७ ॥ तस्माच्चक्रं विना नैष जयो ध्यात्वेत्यचिन्तयत् ।
चक्रं तच्च करे तस्यारोहद्दीप्रविभ्रमम् ॥ २८८ ॥ ऊचे त्वं मेऽस्य चक्रस्य भाजनं रे! भविष्यति । मुञ्चावलेपं माऽकाले कालं कलय
बालक! ॥२८९॥ ऊचे च भुवनभानुर्लोहखण्डेन गर्वितम् । चाटुकारगिरा धिक् त्वामधमं! चक्रमानिनम् ॥२९०॥ भावि त्वमस्य चक्रस्य
भाजनं वदता त्वया । महामूढेन कथित एव स्वस्य पराजयः ॥ २९१ ॥ श्रीकण्ठेनाथ तच्चक्रं मुक्तं हाहारवोऽभवत् । गजाश्वादिपरित्रा-

श्रीकण्ठं वीक्ष्य भुवनभानुः प्राह महामनाः ॥ २७४ ॥ जनान्न त्रपसे चेत्त्वं पलितेभ्योऽपि तन्न किम् । जराहतस्य ते हन्तुं
विमुञ्चन्पत्रिणं त्रपे ॥ २७५ ॥ मृतस्य मारणं कर्तुं सुभटानां न युज्यते । शीर्षे शेषामिवाज्ञां मे कृत्वा व्रज म्रियस्व मा
॥ २७६ ॥ अथ स्वर्गश्रियो वाञ्छा तदयं सुप्रथः पथः । अविलम्ब उपायोऽयं रणे हि मरणं मतः ॥ २७७ ॥ तथापि
बालवद्वृद्धविघातोऽपि न सङ्गतः । चक्री प्रोवाच रे बाल! दुःशिक्षाभृद्वदस्यदः ॥ २७८ ॥ वचसां तदयुक्तानामुक्तानां फल-
माप्नुहि । कन्यालाभेन तृप्तोऽसि सुखं सर्वं हरामि ते ॥ २७९ ॥ ब्रुवन्निति स आग्नेयबाणवर्षं क्षणाद् व्यधात् । खगस्वर्गिगणोऽन-
श्यज्जज्ञे कोलाहलो महान् ॥ २८० ॥ तानऽऽच्छिनत्तु भुवनभानुर्मेघशिलीमुखैः गगनं पूरितं मेघैर्नृत्यन्ति स्म च बर्हिणः ॥ २८१ ॥
चित्रमत्र तु यद्राजहंसा बाढं मुदं दधुः । सज्जनास्यानि च श्यामैरपि शुभ्राणि चाक्रिरे ॥ २८२ ॥ स्मित्वा प्रोवाच भुवनभानुः
करुणया मया । क्रोधार्थि ते समुच्छेत्तुं मेघास्त्रं मुमुचे जरिन्! ॥ २८३ ॥ न तु मे शस्त्रमस्त्रं वा किंचित्प्रभवति क्वचित् । प्रकाश-
यस्व सामर्थ्यं विश्वस्तस्त्वं पुनस्ततः ॥ २८४ ॥ पुनर्भवादृशं प्राप्यं क्व नु खेलनकं मया । इत्युक्तस्तु क्रुधाऽमुञ्चन्नागपाशान् भय-
ङ्करान् ॥२८५॥ तानयं गरुडास्त्रेण सद्योऽपि हि समापयत् । ऊचे च युगपत्सर्वास्त्राणि मुञ्चस्व मां प्रति ॥ २८६ ॥ श्रीकण्ठो वच-
नैरस्तवञ्चनैश्च चमत्कृतः । तदेति ध्यातवान् यादृक् श्रुतो दृष्टस्तथायकम् ॥ २८७॥ तस्माच्चक्रं विना नैष जयो ध्यात्वेत्यचिन्तयत् ।
चक्रं तच्च करे तस्थारोहद्दीप्ररविप्रभम् ॥ २८८॥ ऊचे त्वं मेऽस्य चक्रस्य भाजनं रे! भविष्यति । मुञ्चावलेपं माऽकाले कालं कलय
बालक! ॥२८९॥ ऊचे च भुवनभानुर्लोहखण्डेन गर्वितम् । चाटुकारगिरा धिक् त्वामधमं! चक्रमानिनम् ॥२९०॥ भावि त्वमस्य चक्रस्य
भाजनं वदता त्वया । महामूढेन कथित एव स्वस्य पराजयः ॥ २९१ ॥ श्रीकण्ठेनाथ तच्चक्रं मुक्तं हाहारवोऽभवत् । गजाश्वादिपरित्रा-

मरुतां हर्तां मनोमुदाम ॥ २९२ ॥ तदा ग्रेथरुदेवीभिः मभ्रस्ताभिः ससम्भ्रमम् । चक्राग्निप्रोपभीताभिराश्लिष्टाः स्वस्य वल्लभाः ॥२९३॥
अथ प्रदक्षिणीकृत्य चक्र तस्य करान्बुजे । स्फुलिङ्गमङ्गरहितमारोहत् फलहंगवत् ॥ २९४ ॥ पुष्पवृष्टिस्ततो जज्ञे दिवि दुन्दुभयोऽनदन् । जज्ञे जयजयारवश्चैलोत्क्षेपश्च दिव्यभृत् ॥ २९५ ॥ जयताद्भुवनभानुरित्युक्तं खेचरव्रजैः । देव्या प्रोचे च मेरप्रमेनं नूतनचक्रिणम् ॥ २९६ ॥ ततः खगेन्द्राः सर्वेऽपि ते तस्य न्यपतन्पदोः । श्रीकण्ठः कुण्ठपुण्यस्तु चेतसैवमचिन्तयत् ॥ २९७ ॥ गशानेन कथं नाहं चक्रेणैतेन पातितः । अथवा हत एवास्मि यशोजीवितनाशनात् ॥ २९८ ॥ असि जीवन्मृतो जातो लक्ष्मी रिपुजनं श्रिता । वहामि कथमस्याज्ञामहं सर्वखगाधिपः ॥ २९९ ॥ किञ्चानयो बलिष्ठानामपि न स्यात् फलप्रदः । नयः मन्त्रतन्त्रादि दग्धे फलमसंशयम् ॥ ३०० ॥ नोऽत्रापि शुकतैरेव स्फुरेन्न तद्विपर्यये । तदर्जयामि पुण्यानि श्रीजिनोदितदीक्षया ॥ ३०१ ॥ ध्यात्वेति विदधे धीमान् स लोचं पञ्चमुष्टिकम् । अथ तस्यार्पयांचक्रे मुनिवेषं च देवता ॥ ३०२ ॥ ततश्च भुवनभानुप्रमुखा निखिला नृपाः । रीक्ष्य तं श्रमणं नेमुर्भक्तिभावितमानसाः ॥ ३०३ ॥ नम्रमूर्तिर्नभश्चक्री प्रोवाच रचिताञ्जलिः । जितोऽस्मि भवता सत्यमधुना भगवन्नहम् ॥ ३०४ ॥ तीक्ष्णायां खड्गधारायां त्वं हि चङ्क्रमणक्षमः । तत्क्षमस्वाखिलान्मन्तुन्मम जन्तुहितावह ! ॥३०५॥ मुनिः प्राह त्वमेवासि सत्यं मदुपकारकः । कथं संयमराज्यं मेऽन्यथा स्याद्भवदुःखहृत् ॥३०६॥ गस्य नामे निमित्तं हि भवानेव बभूव मे । लोकोऽप्यनुशयो नास्ति तेनात्रार्थे महानृप ! ॥३०७॥ भवद्भिस्तु तथा कार्यं कार्यं किमपि येन न । पेहिकामुष्मिकशर्मैकभाजनं स्युः सदा घन ॥ ३०८ ॥ इति दत्त्वोपदेशं स नृपाणां चारणो मुनिः । तीर्थानि वन्दितुं

१ °भिरुत्तर्षिणम् । २ भरा । ३ हेरः । ४ दुःखभाजनम् ।

व्योमन्युत्पपात विपातकः ॥३०९॥ चक्री हस्त्यश्वपत्तीनां स्वसैन्यपरसैन्ययोः । व्रणान् रोधयति सोच्चैरौपधिवलयाम्भसा ॥३१०॥
विहाय लक्ष्मीतिलकगतिं स श्रीपुरं गतः । पौरगौरवितस्तत्र स्थितश्च नगराद्बहिः ॥ ३११ ॥
अथ गन्धोदकैः सिक्ते भूतले प्रतिमन्दिरम् । तोरणेषु निबद्धेषु चतुष्केषु च मौक्तिकैः ॥ ३१२ ॥ सप्रपञ्चेषु मञ्चेषु मणि-
तोरणमालिषु । सुवर्णतारातारेषु प्रेक्षणक्षणशालिषु ॥ ३१३ ॥ कृतासु हट्टशोभासु पञ्चवर्णसिचाञ्चयैः (°चलाञ्चलैः ?) । शृङ्गारितेषु
हस्त्यश्वविमानेषु सहस्रशः ॥३१४॥ रणत्सु तारतूरेषु मिलति प्रेक्षके जने । दिव्यं विमानमारूढो देव्या भानुश्रिया समम् ॥३१५॥
चारुः सौभाग्यवान् पापहन्तेति पृथगाशयात् । बालावयस्थावृद्धाभिर्दृश्यमानो यथाक्रमम् ॥ ३१६ ॥ सुभटः पुण्यवांस्त्यागी
चतुरः सुकविर्बुधः । सदयः सरलो न्यायी गम्भीरो धीरमानसः ॥ ३१७ ॥ इत्थं निजनिजप्रेष्टगुणग्रहणतत्परैः । अप्राप्तगुणपर्यन्तो
जनैः कृतसभाजनैः[1] ॥ ३१८ ॥ अपूर्वामीक्षमाणश्च स श्रीपुरपुरश्रियम् । पदार्थान् प्रवरान् भानुश्रियः प्रेम्णा प्रदर्शयन् ॥ ३१९ ॥
प्रतीच्छन् मञ्चगाल्लाजं न्यञ्चत्पण्यस्त्रीमङ्गलम् । पश्यंस्तूर्यत्रिकं दानं ददानस्तेषु तोषतः ॥ ३२० ॥ चलत्प्रकीर्णकः श्वेतातपत्रपरिम-
ण्डितः । समन्ततः समेतैर्वा सुकृतैः परिवेष्टितः ॥ ३२१ ॥ आगच्छन् स्त्रीजनैः कैश्चिदेञ्जितैकविलोचनैः । श्लथकेशोच्चयैः कैश्चित्कै-
श्चिदर्धास्यमण्डनैः ॥ ३२२ ॥ धृतनीवीगुणैः कैश्चित्कैश्चिद्रक्तैकफक्रमैः । त्रुटद्धारलतैः कैश्चिद्वीक्ष्यमाणः ससम्भ्रमम् ॥३२३॥ गोशी-
र्षचन्दनालिप्तपरिकार्मितकुट्टिमे । न्यस्तसिंहासने दिव्यविताने स्रग्भिरातते ॥३२४॥ दह्यमानागुरुततौ प्रत्तमुक्ताचतुष्कके । विन्य-
स्तपूर्णकलशे समेतो राजमन्दिरे (चतुर्दशभिः कुलकम्) ॥ ३२५ ॥ स विद्याधरचक्रित्वे दूताहूतैः समागतैः । विद्याधरेशैः कनक-

[1] कृतसत्कारैः ।

रथाधिरूढमिवेक्षत ॥ ३२६ ॥ ममाङ्गसुन्दरायाः स राजा राज्यश्रियोऽधिकाम् । मूर्तं मन्मन्यते मातृश्रियमष्टाङ्गसुन्दराम् ॥३२७॥ प्रतापक्रान्त शत्रुक्ष्म कराक्रान्तमहीभुजः । आसन् परितो नित्यं सर्वलोकोपकारिणः ॥३२८॥ पञ्चाङ्गेषु परार्थेषु करीनाथेन लोपने । हीनकाले परं जाड्यं मदो मेदस्वलेषु च ॥ ३२९ ॥ भोगाभावो मुनिजने गौरवं नृपतेऽपि च । अमर्यादा गुणेष्वेव चापलं इति योषिताम् ॥ ३३० ॥ शब्दानुशासनेष्वेवोपसर्गाणां समागमः । सन्धिव्यागो निपाताश्च दृश्यन्ते क्वापि नान्यतः ॥ ३३१ ॥ इत्थं राज्यं करोत्येष चक्री चक्रीकृतादिकः । श्रीदाम्भ्यानानि सर्वाणि प्रेक्षते च समन्मदः ॥ ३३२ ॥ निधापयति नव्यानि जीर्णान्युद्धारयत्यपि । चैत्यानि रथयात्राश्च विचित्राः कारयत्यसम् ॥ ३३३ ॥ आस्थानेऽप्युपविष्टोऽयं सेवागतनृपाग्रतः । व्याख्याति धर्मसेवेकमाचार्य इव पर्षदि ॥३३४॥ तथा महीशराज्ये च धर्मस्यैकातपत्रता । यथा नियकारागाद्धर्मो दृष्टोऽजनन् ॥३३५॥ ज्योत्स्नीनिस्तन्यश्च सौधोपरिभूमिसमन्वितः । सिंहासनस्थो निजराजनिर्मितगणिधिः ॥३३६॥ प्रसादं मयि कुर्वाणो माधुराय विचक्षण ! । चन्द्रापुत्रावहं किं स्यात् किं मद्वच विहायगः ॥ ३३७ ॥ मयोर्च देव ! एतेदं वेद नान्यो जगत्यपि । तथापि कथयाम्येषणारणश्रमणोदितम् ॥ ३३८ ॥ श्रीजिनेन्द्रस्य वचनं चन्द्रादपि सुधायकम् । सज्जनानां मनीषा च महती गगनादपि ॥ ३३९ ॥ तैरेव विपक्षोपपरिभूतैः श्रमणैर्मम । संक्षेपात्स्वनिषिषयो दृष्टान्तः कथितो यथा ॥ ३४० ॥

समस्ति चन्दनपुरे जितारिनाम भूपतिः । हृदि शंस्यति योऽरीणां नारीणां च सकम्पनः ॥३४१॥ मन्त्री सुबुद्धिनामास्ति सम्यग्रिपोपकारकः । दुर्गतानां विशेषेण पक्षपातविधायकः ॥ ३४२ ॥ तत्रास्ति सार्थिकः श्रेष्ठी धनेश्वरमदोदरः । निःस्पृहो धनदेवाख्यो

१ सर्वेषु । २ सकलमितापदि । ३ दृष्टान्तात् ।

परमुद्धरति स यः ॥ ३४३ ॥ धर्मी परोपकारी च सरलः करुणामयः । गुणवांश्चेति यः प्राप प्रसिद्धिं परमां जने ॥ ३४४ ॥
कीर्त्तेः स्वस्य भ्रमन्त्या यो व्यपनेतुं परिश्रमम् । विश्रामस्थानकानीव दानशालास्ततान च ॥ ३४५ ॥ प्रभाकरेण मैत्री च तस्य
वाढं पुरोधसा । सरलात्मा पुनः श्रेष्ठी परस्तु कुटिलाशयः ॥ ३४६ ॥ तं सत्यं मनुते श्रेष्ठी स्वकीयसरलत्वतः । स रक्षति निज-
द्रव्यं भक्षयत्यपरस्य तु ॥ ३४७ ॥ लीलानिर्ललमानेन तेन सार्धं पुरोधसा । स्वधनं निधनं निन्ये पण्यस्त्रीव्यसनार्त्तवत् ॥ ३४८ ॥
अन्यदा सत्यकिर्दध्यौ कियदप्यस्ति मे धनम् । यावत्तावत्समुद्रस्य सेवां कुर्वे बहुप्रदाम् ॥ ३४९ ॥ चेन्न यास्यामि पाथोधिया-
त्रायां तद्धनत्रुटौ । महिम्नोऽपि त्रुटिर्दृश्याभिभवश्च पदे पदे ॥ ३५० ॥ अदायकोऽपि सश्रीको भवेल्लोकस्य वल्लभः । पश्य स्वर्ण-
गिरेः पार्श्वं ज्योतिश्चक्रं न मुञ्चति ॥ ३५१ ॥ बद्ध्वा नीलेन वस्त्रेण सत्यः सत्यकिरर्पयत् । प्रभाकरकरे रत्नपञ्चकं साक्षिणं विना
॥ ३५२ ॥ ऊचे चाहं गमिष्यामि धनार्जनकृतेऽम्बुधौ । रक्षाण्येतानि भवताऽर्पणीयानि ममागमे ॥ ३५३ ॥ मम त्वय्येव विश्वासः
सदा हित! पुरोहित! । तत्सङ्गोपय यत्नेन सर्वस्वमिदमेव मे ॥ ३५४ ॥ अक्षिपत्तत्समक्षञ्च मञ्जूषान्तः पुरोहितः । ऊचे च चिन्तां
मा कार्षीः सन्त्येतानि करे तव ॥ ३५५ ॥ सोऽथ पण्यान्युपादायाऽऽपृच्छ्य भूपं निजानपि । अर्थार्जनार्थमारोहद्यानपात्रं जनै-
र्युतः ॥ ३५६ ॥ अथ वायुवशात्पोतो रुप्यद्वीपमवाप सः । ततः पण्यानि सन्त्यज्य जगृहे रूप्यमिच्छया ॥ ३५७ ॥ उवाच कश्चन
स्वर्णद्वीपे स्वर्णमवाप्यते । लोभतस्तत्र यातेन स्वर्णराशिरवाप्यत ॥ ३५८ ॥ ततो रजतमुत्तार्य पोतः स्वर्णैरपूर्यत । कश्चिदाह पुरो
रत्नद्वीपे रत्नानि भूरिशः ॥३५९॥ एकेनापि हि रत्नेन जायन्ते स्वर्णकोटयः । श्रेष्ठिनानुमते पोतो रत्नद्वीपं गतः क्रमात् ॥ ३६० ॥

राशिं निरीक्ष्य रत्नानां त्यक्ता द्वाटककोटयः । रत्नौघेन भृतं यानं हृदयं प्रमदेन च ॥३६१॥ ततो निरर्तयामासुरिच्छां च यहन्
ते । आयान्ति च जवेनैते पवनस्यानुकूल्यतः ॥३६२॥ अथैतं रत्नसन्दोहं विनाहं रत्नवर्जितः । कथं भवितेति सञ्चिन्त्याशुगं रत्नाकरो
चत् ॥ ३६३ ॥ तीव्रेण प्रहतं तेनोच्छाल्यमानं समन्ततः । अभज्यत तदा यानं समं जनमनोरथैः ॥ ३६४ ॥ रत्नौघश्च जनौ
जगाम स दिशोदिशम् । श्रेष्ठी तु फलकं प्राप्य तरस्तीरमवातरत् ॥ ३६५ ॥ दध्यौ च क्व च रत्नौघः क्व चावस्था ममेदृशी । र
भमिच्छतो मूलक्षतिरेषा ममाभवत् ॥ ३६६ ॥ व्यवसायः प्रयासाय पुण्यपण्यं विना नृणाम् । पुण्येन सद्यो विधन्ते स्थानस्थाः
मपि श्रियः ॥ ३६७ ॥ पुण्यैस्तदैव मुक्तोऽहं महादिव्यप्रभाभृत् । यदा परकरे रत्नपञ्चकं तन्मयार्पितम् ॥ ३६८ ॥ प्रा
पुम्भिः ममाख्यायि यद्गृहे रत्नपञ्चकम् । स्थादिदं मुञ्चते लक्ष्मीस्तस्य सद्म न पभवत् ॥ ३६९ ॥ तद्दत्वा तानि शृङ्गाणि ध्यार
प्रस्थितः पुरम् । निजमेव निरीक्ष्य स्वं मेने पुण्यैकमन्दिरम् ॥ ३७० ॥ अक्षमः स्वं दर्शयितुं स सायं समये गृहम् । समेतस्तं
ज्ञात्वा प्रभुं वृत्तान्तमागमत् ॥ ३७१ ॥ ऊचे च ज्ञातवृत्तान्तो जनः खेदपरायणः । स्वर्णश्रीहीनता लोकशोकदा घनवत्तव ॥३७-
तथापि नासमाधानं धार्यं निजकचेतसि । पुनः सपल्लवो वृक्षः पुनश्चन्द्रो कलामलः ॥ ३७३ ॥ इति श्रेष्ठिनमाश्वास्य पौरलो
ऽखिलोऽगमत् । पुरोहितस्तु नैवागात्ततः श्रेष्ठी व्यचिन्तयत् ॥ ३७४ ॥ मां न वेत्यागतं येन मन्मित्रो न समागमत् । व्यग्रो
राजकार्येण तत्स्थिरयति ध्रुवम् ॥३७५॥ तमुत्तमर्णमायातं मत्वा स त्वधमर्णवत् । स्वगृहादेव निर्याति वहिर्न हि पुरोहितः ॥३७
अन्यदा सत्यकिर्लज्जासञ्जातमापि दिवा व्रजन् । प्रमारस्य सदनं निर्जैर्दृष्टोऽवदंश्च ते ॥३७७॥ स एष यः पुरो दौः

१ सुवर्णकोटय । २ कथाभिः निर्मीलः ।

किल ॥ ३७८ ॥ यो वीक्ष्य करुणापात्रं पुरासीत्करुणामयः । स एव
दुःस्थानां निरवासयत् । निरालम्बं तदस्यैव व्यलगद्रोपतः किल ॥ ३७८ ॥ यो वीक्ष्य करुणापात्रं पुरासीत्करुणामयः । स एव
करुणापात्रमधुना विधिना कृतः ॥ ३७९ ॥ शृण्वन् पीडाकराणीति वचांसि खलसंहतेः । जगाम सहसा तस्य गृहं दृष्टश्च तेन सः
॥ ३८० ॥ शिक्षिता स्वप्रियाऽऽख्यायि गृहे नास्ति पुरोहितः । अकृतप्रतिपत्तिः सा पृष्टाऽवादीदनादरात् ॥ ३८१ ॥ पुरोधा
विजयं चक्रेऽधुना राजकुलं प्रति । तामसंभ्रमविच्छायां वीक्ष्य दध्यौ च सत्यकिः ॥ ३८२ ॥ अहो निःश्रीकता स्वोऽपि यया
निर्मीयते परः । यन्मां जन्मान्तरायातमिवेयं नैव वेत्त्यपि ॥ ३८३ ॥ दुनोति न तथा चित्तं वित्तस्यापि परिक्षयः । क्रियमाणा
स्वलोकेनाप्रतिपत्तिर्यथा मम ॥ ३८४ ॥ तन्मे किमनया ध्यात्वाऽगमन्निजनिकेतने । कुटुम्बं दुःस्थितं पश्यन्मुञ्चन्निःश्वासधोरणिम्
॥ ३८५ ॥ द्वितीयेऽह्नि गतोऽद्राक्षीत्कुमित्रं शयनस्थितम् । स्वयमासनमादाय निविष्टस्तन्मुखाग्रतः ॥ ३८६ ॥ स भूतग्रस्तवत्तस्य
सम्मुखं न निरीक्षते । न च वक्ति वचःशक्तिविवर्जित इवाग्रतः ॥ ३८७ ॥ उवाच सत्यकिर्मित्र ! रत्नान्यर्पय तानि मे । स
प्राह कस्त्वं रत्नानि कानि वक्षि च वातकिन् ! ॥ ३८८ ॥ मंस्यते कोऽपि सत्यं ते वाक्यं निस्सर मद्गृहात् । परः प्रोवाच किं
मित्र ! लोभान्धः प्रलपस्यदः ॥ ३८९ ॥ ममाद्य दुःस्थावस्थस्य दूरेऽस्तु स्वधनार्पणम् । दत्से मदीयमपि न पतिते पार्ष्णिदोऽसि तत्
॥ ३९० ॥ समर्पयसि चेत्स्नेहात्तदर्पय धनं मम । प्रकारेणापरेणापि गृहीष्येऽहं तवाग्रतः ॥ ३९१ ॥ मादान्निजश्रियो हस्तं क्षण-
नाट्यकृतेवमा । क्षौरं कारय शीर्षे स्वे परस्वं मधुरं मुखे ॥ ३९२ ॥ मा ज्ञासीरसमर्थं मां परस्वेप्यादरस्तव । तदहं न करिष्यामि
स्वकीयेऽपि किमादरम् ॥ ३९३ ॥ इत्थं बहु ब्रुवन्नेष कुपितेन पुरोधसा । बहिर्निःसारितः कण्ठे दत्त्वोग्रालीकभूषणम् ॥ ३९४ ॥

१ पादाप्रहारकः 'पाडु–लातमारनार' इति भाषायाम् ।

श्रेष्ठी दध्यावथ ध्यामचित्तः किं जीवितोऽस्म्यहम् । एवंविधमहादुःखपात्रं यदधुनाऽभवम् ॥ ३९५ ॥ यतो झम्पा वरं वह्नौ न तु दुर्जनगङ्गमः । विश्वस्तस्य भवश्चित्तं यः करोति विरङ्गकम् ॥ ३९६ ॥ वरं खड्गप्रहारोऽपि वरं च विषमं विषम् । वरं वनान्तरे वासो मा नीचैः सह मित्रता ॥ ३९७ ॥ यस्तेनाभिभवश्चक्रे स विसरति किं मम । नासा वमयितव्योऽयं तत्तस्य सकलान्तरः ॥ ३९८ ॥ ध्यात्वेति गृहमायातो जनस्याग्रे च सोऽवदत् । पुरोधसाहं मुषितोऽन्यदा मन्त्रिणमैक्षत ॥ ३९९ ॥ पुष्पाणि प्राभृतीकृत्य नत्वा तं चाह सत्यकिः । अनाथोऽहमनाथोऽहमहो त्राता न कोऽपि मे ॥ ४०० ॥ मक्षका रक्षका एव कस्य पूत्क्रियते पुरः । मन्त्री प्राह ममावासमागच्छेर्मा कृथाः खिदम् ॥ ४०१ ॥ सादरं सचिवेनोचे प्रतिहारो यदासकौ । समायाति तदा शीघ्रं प्रवेश्यो मम सन्निधौ ॥ ४०२ ॥ इत्युक्त्वा सचिवोऽगच्छत् सौधं स तु निजं गृहम् । दध्यावयं [1]निकाराग्निदग्धान्यङ्गान्यशीवपत् ॥ ४०३ ॥ पुरुषैरीदृशैरेव धर्मोऽपि ध्रियते भुवि । अन्यथा तु निरालम्बो गच्छेत्पातालमेव सः ॥ ४०४ ॥ प्रातः सफलहस्तः स सचिवावासमागमः । सद्वास्थः स प्रविष्टश्च निविष्टो दापितासने ॥४०५॥ आख्यच्च पञ्चरत्नानि मया नीलेन वाससा । तदा बध्वार्पितान्यस्य ततो मन्त्रिवरोऽवदत् ॥ ४०६ ॥ कोऽपि साक्षीकृतोऽस्त्यत्र स प्राह न यतो मम । विश्वासस्थानमेकोऽभूत् प्राह्यमा त्योत्तमः पुनः ॥ ४०७ ॥ त्वयेदं न कृतं चारु विना कञ्चन साक्षिणम् । सर्वस्वं नार्प्यते बन्धौ निजेऽपि किमुतेतरे ॥ ४०८ ॥ प्रसिद्धा हि धने गृद्धिस्तरूणामप्यकार्यिणाम् । स्थाने स्थाने सकार्याणां मनुष्याणां तु का कथा ॥ ४०९ ॥ अथवा विहितं कर्म दूषयेन्न कदाचन । आस्थाने तत्त्वयाऽऽगम्यं त्वत्कार्यं साध्यते यथा ॥ ४१० ॥

१ संतप्तचित्तः । २ तिरस्कार वह्निः ।

अथ कर्पूरमादाय स राजद्वारमागतः । वीक्ष्य शीघ्रं करुणया मन्त्रिणा च प्रवेशितः ॥ ४११ ॥ राज्ञा कृतानतिः पृष्टः स
समागमनकारणम् । अथो '[1]विविक्ते विज्ञप्तोऽमात्येन निखिलं नृपः ॥ ४१२ ॥ अथ राज्ञा समाकार्य पृष्टः सत्रं पुरोहितः । बहु-
धापि न किञ्चित्तु सर्वथा मन्यते स सः ॥ ४१३ ॥ क्रुद्धेनाथ नृनाथेन प्रोचे सत्योऽसि चेत्ततः । कुर्वाज्ञां मम धृष्टत्वान्नृपस्याज्ञा-
मयं व्यधात् ॥ ४१४ ॥ ऊचे च वाणिजो देव! पोतभङ्गेन वातकी । जातोऽयं सचिवोऽपीदृक् देवपादाग्रतोपि यः ॥ ४१५ ॥
ग्रहिलस्य वचः ख्याति किं च देवो ममोपरि । धत्ते प्रसादं तेनास्य शिरः शूलं हि मन्त्रिणः ॥ ४१६ ॥ निरन्तरं मम छिद्रान्वेषणं
कुरुते च सः । लभते न तदन्यस्य मुखेनारोपयत्यदः ॥ ४१७ ॥ ततो यद्यस्य वचनं देव! कर्णे करिष्यति । ततः सर्वं जगदपि
प्राप्स्यतीव सदोषताम् ॥ ४१८ ॥ यतः स्वयं सदोषा तेऽन्यं पश्यन्ति दोषिणम् । प्रतिबिम्बं स्वतुल्यं हि पश्यन्ति छिन्ननासिकः
॥ ४१९ ॥ कालेन स्वयमेवास्य दोषान् देवोऽवभोत्स्यते । सन्ति छन्नानि पापानि समयं हि कियच्चिरम् ॥ ४२० ॥ तद्देव! तद्गिरा
मय्यप्रसादं प्रतनोतु मा । राज्ञोचे यदि शुद्धोऽसि पादौ स्पृशत भो मम ॥ ४२१ ॥ पापस्तदपि चक्रे स प्रतीतो नृपतिस्ततः ।
तं विसृज्याखिलं मन्त्रिपुरो व्यतिकरं जगौ ॥ ४२२ ॥ अमात्यः प्राह सत्येन स त्यक्तोऽ[2]ङ्कभयादिव । शिक्षायोग्यः स देवस्या-
बलानां हि बलं नृपः ॥४२३॥ यत्तेन मां प्रति प्रोक्तं तत्सत्यं देव! निश्चितम् । स्तोकमप्यन्यथा प्रोक्तं यदीदं मम जायते ॥४२४॥
तद्देव क्रियतां बुद्धिरत्रार्थे क्रीडतु प्रभुः । द्यूतेन सार्धमेतेन स्नेहसम्बन्धबन्धुरम् ॥ ४२५ ॥ स्वमुद्रिकां करे न्यस्य तस्यादायाथ
मुद्रिकाम् । तदीयां व्यपदेशेन क्रियतां स्वस्य हस्तगा ॥ ४२६ ॥ तत्तुल्यान्या [3]कैलादेन घट्यतां तत्र वासरे । यदुक्तं तेन तत्

१ एकान्ते । २ कलङ्कभयात् । ३ सुवर्णकारेण ।

ज्ञात्वा भृत्यः प्रेष्यः समुद्रिकः ॥ ४२७ ॥ नरेन्द्रोऽथ समं तेन रमते प्रतिवासरम् । स्नेहं गाढं विधायैनमतिविश्वासमानयत्
॥ ४२८ ॥ स च प्रमादपात्रं मां मन्यते स बहुस्मयः । अथान्यदिवसेऽमात्यप्रोक्तं कृत्वा नृपोऽखिलम् ॥ ४२९ ॥ रममाणः समं
तेन निशि प्रैषीन्निजं नरम् । स गत्वाह प्रियां तस्य प्रेषितोऽहं पुरोधसा ॥ ४३० ॥ युष्माकमन्तिके मुद्रामर्पयित्वा निवेद्य च ।
भुक्तमद्यतनं सोऽभिज्ञानेऽत्युत्सुककार्यतः ॥ ४३१ ॥ तथानि सन्ति रत्नानि यद्वान्यमितरामसा । मत्रूपान्तः समर्प्यन्तां तानि त्वरि-
तमेव मे ॥ ४३२ ॥ यदि कालविलम्बं त्वं करिष्यसि ततो ध्रुवम् । कार्यं विनंक्ष्यते मायार्पणान्यस्य तु करे ॥ ४३३ ॥ स
ममेत्यार्पयद्राज्ञे पुरस्थः स्वपुरोधसः । राज्ञोचे मन्यसेऽद्यापि न मां दुष्टविचेष्टितम् ॥ ४३४ ॥ समाज्ञां कुरुतेऽस्य रत्नमुद्रः स्वनामि
कर्मी । श्रेष्ठिनं विकलं वधि सचिवं च समत्सरम् ॥ ४३५ ॥ इत्याक्षेपसमुद्भूतभृकुटिं वीक्ष्य भूपतिम् । स दध्यौ छलितो राज्ञा
ततः कुर्वे किमुत्तरम् ॥ ४३६ ॥ ततो धृष्टतया प्राह ममैवैतानि देव चेत् । न प्रत्ययोऽत्र क्षिप्यन्तां स्वभाण्डे निजे ततः ॥४३७॥
प्रत्यभिज्ञाय चैतानि तस्य मध्याद्ग्रहीष्यति । तत्रत्यः सत्यकिः श्रेष्ठी ममैवेत्यथा पुनः ॥ ४३८ ॥ पुनः प्राह नृपो ज्ञातोऽभिज्ञा-
योऽयं मया तव । तथा कृतेन स ज्ञाता करिष्येऽहमदोऽपि हि ॥ ४३९ ॥ यथा न जल्पति जनो नैतस्य वचनं कृतम् । एवमेव
समुद्दण्डं दण्डं दण्डपतिर्व्यधात् ॥ ४४० ॥ तथा कृत्वा समाकार्य नृपः सत्यकिमब्रवीत् । गृहाण प्रत्यभिज्ञाय स्वरत्नान्यथ सोऽग्र-
हीत् ॥ ४४१ ॥ विज्ञाय सत्यकिं सत्यमसत्यं च पुरोधसः । प्राहामात्यं नृपोऽमुष्य सर्वस्वमपि गृह्यताम् ॥ ४४२ ॥ छेदयित्वा च
रसनां कुर्वेतं देशताडितम् । अमात्यस्तथा सर्वं नृपस्यादेशतो व्यधात् ॥ ४४३ ॥

१ सचिवं । २ राज्ञा ।

कृत्वा प्रसादमेतानि त्वमादेह्युपकारक ! ॥४४४॥ नापेक्षा मम रत्नानां दुःस-
श्रेष्ठी पञ्चापि रत्नानि मुक्त्वामात्याग्रतोऽवदत् । कृत्वा प्रसादमेतानि गृहाण तत् । एतैरुपा-
होऽभूत्पराभवः । उन्मूलितः स निर्मूलं कृच्छ्रुद्ध्या सचिवेश्वर ! ॥ ४४५ ॥ सचिवः प्राह दत्तानि मयैतानि गृहाण तत् । ततः प्रत्युपकारेच्छा वान्तखादनसोदरा
र्जय द्रव्यं कार्यमेभिर्न मे यतः ॥ ४४६ ॥ उपकारः सतामिष्टः क्रियमाणे ह्यनीहया । ततः प्रत्युपकारेच्छा वान्तखादनसोदरा
॥ ४४७ ॥ निर्बन्धं सर्वथाऽत्रार्थे तन्माकार्षीर्गृहं व्रज । रत्नान्येतान्युपादायाणुव्रतानीव धार्मिकः ॥ ४४८ ॥ श्रेष्ठिनोऽथ महामात्ये
प्रतिबन्धो महानभूत् । पुनर्व्यवहरन् रत्नप्रभावात्सोऽभवद्धनी ॥ ४४९ ॥ जनेऽजनि सुधाशुभ्रं यशः सत्यक्यमात्ययोः । इहापि
सहितं दुःखैरयशस्तु पुरोधसः ॥ ४५० ॥ इत्थं तारयति स्वं च परं च मतिमान्नरः । भीषणव्यसनश्रेणिवेणिमग्नं सुबुद्धिवत्
॥ ४५१ ॥ देवः सुबुद्धिनाम्ना त्वां स्मृत्वा मां प्राह यस्त्वया । सुबुद्धिः कथितो मे स सुबुद्धेरानुरूप्यभाक् ॥४५२॥ यतः सोप्यु-
पकारैकरसिको वेधसा कृतः । यदात्मा ज्ञापितो नास्मास्माभिस्तत्तु न सुन्दरम् ॥ ४५३ ॥ यदसद्विरहे भक्त्या त्यक्ष्यत्ययमसूनपि ।
तद्राजादेशभृद्याहि शुभां शीघ्रं विचक्षण ! ॥ ४५४ ॥ वृत्तं वृत्तान्तमाख्याहि सुबुद्धेश्च धृतिप्रदम् । इत्युक्ते हृष्टहृन्मन्त्री प्रधाना-
नाह्वयन्निजान् ॥ ४५५ ॥ दत्त्वा स्थानं तत्समक्षं लेखं पुनरवाचयत् । तच्छ्रुत्वा नगरं सर्वं बभूवानन्दमेदुरम् ॥ ४५६ ॥ वर्धा-
पनानि स्पर्धानुबन्धादासन्गृहे गृहे । स्वस्वदेवीपुरश्चोपयाचितानि जनो ददौ ॥ ४५७ ॥ लेखाः पुरेषु सर्वेषु प्रेषिताश्च सुबुद्धिना ।
मुदे निजनृदेवानां प्रस्तुतार्थप्रकाशकाः ॥ ४५८ ॥ चक्रे चक्रीक्षणेऽकुण्ठामुत्कण्ठामखिलो जनः । अथ प्राह महामन्त्री खेचरं तं
विचक्षणम् ॥ ४५९ ॥ स्वामिक्षेमं कथयता किं नास्माकं त्वया कृतम् । प्रतिपत्तिं चिकीर्षामि तत्तवात्मानुरूप्यतः ॥ ४६० ॥

१ जलप्रवाह० । २ समग्रम् ।

त्वत्कृतस्य सुदानं तु नागुदानमपि क्षितौ । इत्युक्त्वा शुभ्रमिर्[1]युग्मं परिधाय तमब्रवीत् ॥ ४६१ ॥ मया सर्वेश्मनो दत्ता तुभ्यं लक्ष्मीर्विचक्षण ! । स प्राहाकृत्रिमा भक्तिस्तव स्वामिनि नन्दति ॥४६२॥ प्रभुभृत्यमपि त्वं मां प्रभुवचेन मन्यसे । तवाहं वचनेनापि कृतकृत्योऽस्मि मन्त्रिप ! ॥ ४६३ ॥ मम त्वं ताततुल्योऽसि विज्ञप्तिः शीघ्रमर्प्यताम् । यथा स्वामिप्रमोदेन कृतकृत्यो भवाम्यहम् ॥ ४६४ ॥ मन्त्रिणाथ भुजे धृत्वा बलादपि समर्पितः । निजाङ्गलग्नाभरणसमुदायो मुदाऽस्य च ॥ ४६५ ॥ भानुश्रीभुवनभानुभूपयोरुचितौ परौ । आभरणसमुदायावर्पितौ तस्य मन्त्रिणा ॥ ४६६ ॥ प्रनिक्षिपे चात्र विचक्षणस्य विज्ञप्तिरग्रे सचिवेश्वरेण । तथा च कार्यं भवता यथा द्राग् देवः पुरीं पावयति स्वपादैः ॥ ४६७ ॥ मकरध्वजवृत्तान्तो राज्ञा भानुश्रियश्च परिणयनम् । श्रीकण्ठचक्रिराज्यादानं चास्मिन् सुबुद्धिकथा ॥ ४६८ ॥

इति श्रीराजगच्छे श्रीमानतुङ्गाचार्यविरचिते श्रीश्रेयांसचरिते महाकाव्ये भवत्रयनिबद्धे
प्रथमभवे श्रीभुवनभानुचक्रवर्तिपदवीवर्णनो नाम द्वितीयः सर्गः समाप्तः ।

---

१ वस्त्रयुग्मम् ।

तृतीयः सर्गः ।

अथो विचक्षणो विद्याधरः श्रीपुरमागमत् । द्वाःस्थेनावेदितो नत्वा चक्रिणं समुपाविशत् ॥ १ ॥ अप्यस्ति कुशलं मन्त्रि-
लस्येति नृपेण सः । पृष्टो व्यजिज्ञपद्देव ! देवपादप्रसादतः ॥ २ ॥ कुशलं मन्त्रिराजस्य राज्येन सह वर्त्तते । उक्त्वेत्यग्रेऽमुचत् विला-
सिकां चाभरणानि च ॥ ३ ॥ स्वनामाङ्कानि तान्येष पूर्वमेत्या निरीक्ष्य च । घटितानि तदैवाङ्गेऽघटयत् प्रीतमानसः ॥ ४ ॥
नृपः प्रसाधिकाहस्ते देवीनामाङ्कितानि तु । प्रैषयत्प्रेक्ष्य तान्याह भानुश्रीरिति विस्मिता ॥ ५ ॥ घटनाया विशेषस्य प्रसादाभरणै-
रिमैः । विद्याभृतामलङ्कारा जिता मणिकृता अपि ॥ ६ ॥ विलासिकामथोन्मुख्य नृपः शापमथानयत् । पुरोऽक्षपटलाधीशं क्षिते-
प्यायलङ्कान्वितः ॥ ७ ॥

स्वस्ति श्रीश्रीपुरे विद्याधरराजनिषेवितान् । चक्रवर्तिश्रीभुवनभानुपादसरोरुहान् ॥ ८ ॥ श्रीकुमाया महापुर्याः सचर्यानिभि-
पण्डितः । देवपादारविन्दानां चञ्चरीकपदं श्रयन् ॥ ९ ॥ देवभृत्यलवो मन्त्री श्रीमतिबुद्धिर्मुहुर्मुहुः । भक्त्या प्रणम्य साष्टाङ्गं विज्ञो
विज्ञपयत्यदः ॥ १० ॥ (त्रिभिर्विशेषकम्) मम देवप्रसादेन राज्यं चिन्तयतः सतः । कुशलं सकलं सर्वमितानन्दनन्दने ॥ ११ ॥
केवलं देवपादानामकुण्ठोत्कण्ठयाहकम्[1] । राज्यलक्ष्मीर्जनाश्चापि बाध्यन्ते तीक्ष्णया रुजा ॥ १२ ॥ देवन्देवमुखाननरेन्द्रेषु शिरो-
मणिः । दर्शनेन परित्राणं सत्वरं कर्तुमर्हति ॥ १३ ॥ प्रसादबुद्धिर्देवेन विधेया महती मयि । शेषं पुनर्यथावृत्तं कुशलं विज्ञपः

१ उत्कण्ठासहितः ।

॥ १४ ॥ स्वस्वामिचरणादेशसम्पादनविचक्षणः । समग्रं विज्ञपयिता देवपादाग्रतः स्थितः ॥ १५ ॥ (युग्मम्) विचक्षणोऽथ यादृक्षं
प्रथमं पुरमैक्षत । पश्चाद्यथा च सञ्जाता बहुशोऽपि महोत्सवाः ॥ १६ ॥ सन्मानं यादृशं चक्रे सचिवेन च सादरम् । समग्रमपि
विज्ञप्तं चक्रिणस्तद्यथास्थितम् ॥ १७ ॥ किञ्च देव! जनः सर्वः पूर्वमुत्कण्ठितोऽभवत् । स्वरूपे तु समाख्याते उत्कण्ठा द्विगुणाभवत्
॥ १८ ॥ अन्यच्चाश्चर्यभूते वश्चरिते नगरीजनः । शपथैरपि न श्रद्धां कुरुते कोऽपि कोऽपि च ॥ १९ ॥ वक्ति किं स्यान्मनुष्याणा-
मीदृशृद्धिः प्रसिद्धिदा । परे वदन्ति दृष्टे हि सर्वं मंस्यामहे वयम् ॥ २० ॥ परे प्राहुरमात्यस्य कल्पनेयं परे पुनः । कर्तुमिच्छन्त्य-
पसारमुत्खातप्रतिरोपिताः ॥ २१ ॥ ज्ञात्वाऽपहार भवता किञ्चित्स्वचरपूरुषैः । केनापि व्यपदेशेन यद्यापनविधायिनः ॥ २२ ॥
परे त्वमात्यप्रहितप्रधानानां महीभुजः । कर कालविलम्बेनार्पयन्ते याचतामपि ॥ २३ ॥ स्वगोत्रसम्भवक्षत्रकुमारादेव केचन । सर्वं
राज्यमधिष्ठातुं विचेष्टन्तेऽभ्युपायतः ॥ २४ ॥ अमात्यस्य भयात्कोपि प्रकटस्तु न जायते । तद्देव! विजयः कर्तुमुचितस्तत्र सम्प्रति
॥ २५ ॥ दध्यौ नृपो यदस्त्येष युक्तं गच्छामि तत्र तत् । सुजना दुर्जनाश्चापि यथा पश्यन्ति मे श्रियम् ॥ २६ ॥ करोमि तत्तथा
येन मनःशीतं सता भवेत् । असतान्तु ससन्तापमन्यान्याश्रयशालिनाम् ॥ २७ ॥

ततः श्रीमन्नरस्थराजमाकार्य कार्यवित् । सर्वं वृत्तान्तमाख्याय न्यस्य राज्यश्रियो भरम् ॥ २८ ॥ तस्मिन् शिक्षां जनस्यापि
दत्त्वा श्रीपुरवासिनः । खगेशानाञ्च सर्वेषां स्वस्वराज्यप्रवर्तने ॥२९॥ विमानानां सहस्रैस्तु सहितो महितोऽखिलैः । ऋद्ध्या महत्या
कलितश्चलितः श्रीपुरात् पुरात् ॥ ३० ॥ (युग्मम्) ततो विपक्षवर्गस्य दर्शनाय निजश्रियः । हर्षेणोपरि सर्वेषां नराणां स परिव्रजन्
॥३१॥ दर्पिष्ठानां नरेन्द्राणां स दर्पमवसर्पयन् । अर्पयन् विस्मयं तेषां तर्पयन् याचकं जनम् ॥३२॥ प्रतीच्छन् नृपसन्मानं मानं

मानभृतां हरन् । पार्थिवानां प्रणयिनां तोपपोपमुदीरयन् ॥३३॥ देशोयममुको देवि! नगरं चामुकामुकम् । इत्थं भानुश्रियो देव्याः
स्वयमेवमुदीरयन् ॥ ३४ ॥ ढकानां ताड्यमानानां प्रणादेन प्रसर्पता । ससाश्वाश्वपरित्रासादनूरुं परिखेदयन् ॥ ३५ ॥ कैश्चिद्वि-
मानैः शीतांशुबिम्बसोदररश्मिभिः । दिवापि दर्शयन्नुद्यत् शतचन्द्रनभस्तलम् ॥ ३६ ॥ विमानैर्निर्जितरविबिम्बमानैश्च कैश्चन । कुर्वन्
दिनश्रियं श्यामास्वपि श्यामासु कुत्रचित् ॥ ३७ ॥ भारं निःशेषसैन्यस्य शेषः सोढा कथं स्वयम् । इतीव गगनं दूराद्विमानैः परि-
पूरयन् ॥ ३८ ॥ शुभापुरीपरिसरोद्देशं कालादुपागतः । आरामेष्वभिरामेषु निजावासानदापयत् ॥ ३९ ॥ (दशभिः कुलकम्)
ततश्च रत्नखचितस्वर्णतोरणमण्डिताः । अनेकभङ्गिनिर्मीयमाणपुष्पगृहान्विताः ॥४०॥ नानामणिमयीमण्डपिकामण्डलमण्डिताः ।
मुक्तमुक्तावचूलाश्च ककुप्सु चतसृष्वपि ॥४१॥ मणिनिर्मितपाञ्चालीकलितस्तम्भशोभिताः । कलशैः कलिता मञ्चाः सुप्रपञ्चा विच-
क्रिरे ॥ ४२ ॥ (त्रिभिर्विशेषकम्) बध्यन्ते द्वारि माङ्गल्यमालाः किङ्किल्लिपल्लवैः । पूर्यन्ते स्वस्तिकाः स्वस्तिकाम्यमौक्तिकपङ्क्तिभिः
॥ ४३ ॥ कुङ्कुमागरुगोशीर्षद्रवैर्मिश्रैः सुगन्धिभिः । सिच्यते परितो नीरैर्विश्वा विश्वाधिपागमे ॥ ४४ ॥ देशान्तरागतैः पट्टांशुकैः
प्रस्फुरदंशुकैः । हट्टशोभा विधीयन्ते समन्तादपि वाणिजैः ॥४५॥ दूरं सिन्दूरपूरेण सिन्धुरा बन्धुराः कृताः । शृङ्गारितास्तुरङ्गाश्च
सुरङ्गाश्च प्रतिश्रिताः ॥ ४६ ॥ चक्रीश्रीभुवनभानुर्भानुश्रीशोभितो द्विधा । दिव्यं विमानमारूढः सितच्छत्रोपशोभितः ॥ ४७ ॥
शचीवरः शचीयुक्तोऽवतीर्णः किमयं स्वयम् । शङ्कां जनमनस्येवं कुर्वन् पुण्यानुभावतः ॥४८॥ अनेकतुर्यनादेन वाचालितविहायसा ।
समग्रस्यापि लोकस्य दुःखौघं त्रासयन्निव ॥ ४९ ॥ चेलोत्क्षेपं प्रकुर्वन्तं वदज्जयजयारवम् । प्रेक्षमाणः पुरीलोकं प्रसादोज्ज्वलया

१ सूर्यस्य सारथिं । २ रजनिष्वपि । ३ कृष्णासु । ४ पृथिवी ।

दृशा ॥ ५० ॥ किमाभ्या विहितं पुण्यमगम्य पूर्वजन्मनि । येनाभूदनयोर्योगस्तुल्यरूपगुणश्रियोः ॥ ५१ ॥ भृणनीतिजन-
गिरो गृह्णन् पण्यवधूकृतम् । अनर्घ्यमर्घं निर्विघ्नं प्रतिमं च मुदञ्चितम् ॥ ५२ ॥ अपि स्वस्य निमेषायाऽऽलोकविच्छेदकारिणे । कुप्य-
न्तीभिः पीयमानः स्त्रीभिर्नेत्रपुटैः स्फुटैः ॥ ५३ ॥ अपरा त्यजन्ती कर्णादब्जं कर्णावतंसितम् । आलोकविघ्नकार्येष्यत्पुष्पंधयमया-
श्रया ॥ ५४ ॥ परा नेत्रायाममित्रं पत्रमादाय पश्यतः । एकत्र नेत्रे न्यस्यन्ती साम्यं दर्शयितुं किल ॥ ५५ ॥ इत्थं वेषाभिरामाणां
रामाणां बहुभङ्गिभिः । चेष्टाः पश्यन्निजेष्टायाः स्पष्टयंश्च ससम्मदम् ॥ ५६ ॥ अदृष्टस्वपरं पात्रापात्रवीक्षाविवर्जितम् । दानं ददानो
दीनानां पर्जन्य इव नूतनः ॥ ५७ ॥ वल्गुचन्दनमालाढ्ये चित्रचित्रितभित्तिके । चारुचन्द्रोदयालम्बमानमौक्तिकमालिके ॥५८॥
विहितेन्द्रायुधे नानारत्नसिंहासनार्चिषा । प्रकटीकृतमाङ्गल्यपदार्थे सौध आगमत् ॥५९॥ (त्रयोदशभिः कुलकम्) निविश्य च क्षणं
भद्रासने भद्राणि भूरिशः । प्रतीच्छति स पण्यस्त्रीजनेन विहितानि सः ॥ ६० ॥

अथ कत्यपि चैत्यान्यर्चित्वा नत्वा च भक्तिमान् । स्वस्थानमागतश्चक्रे गृहचैत्यस्य पूजनम् ॥ ६१ ॥ ततः समं समेतानां
विद्याधरधराभृताम् । स्थानेषु प्रेषयामास शस्तं वस्तु यथोचितम् ॥ ६२ ॥ अथोपदा[2]मुपादाय सेवाहेवाकलालसाः । एयुर्नृपा नृपा-
धीशं निजकान्निजकात्पुरात् ॥ ६३ ॥ कतिचिद्दिनपर्यन्ते पैर्यन्तेनोचितेन सः । खेचरेन्द्राधरेन्द्रांश्च सम्मान्य व्यसृजन्नृपः ॥ ६४ ॥
अथ भानुश्रिया सार्धं वर्धमानस्य लीलया । सचिवार्पितभारस्य चक्रिणो यान्ति वासराः ॥६५॥ अन्यदा तु स भानुश्रीप्रभृत्यन्तः-
पुरान्वितः । जगाम भ्रमदवने जलकेलिविधित्सया ॥ ६६ ॥ राजहंसयुगं क्रीडावाप्यां निजकभाषया । जल्पच्चिरं स शुश्राव पक्षि-

१ भ्रमर०। २ उपहारम्। ३ सम्पूर्णेन।

उक्तं कालमियन्मात्रं किमाभ्यां मम कथ्यताम् ॥ ६८ ॥

भापाविचक्षणः ॥ ६७ ॥ विरुताद्विरते तत्र भानुश्रीः प्राह चक्रिणम् । इत्युक्ते सादरा साह किमकल्याण-
चक्री प्राह किमेतेन ज्ञातेनास्त्वेवमेव हि। असिन्नर्थे परिज्ञाते दुःखे त्वमपि मंक्ष्यसि ॥ ६९ ॥ रक्ष्यमाणमपि
कारणम् । किमप्येतन्ममाग्रे यत्त्वया नाथ! न कथ्यते ॥ ७० ॥ मङ्गलेऽमङ्गले वापि सर्वथास्ति न मे भयम् । विहिते हृदये उभे ॥७२॥
स्यात्तत् यत्पूर्वं कर्म निर्ममे ॥ ७१ ॥ केनापि कारणेनाथ यदि वक्तुं न वाञ्छसि । तत्त्वयाद्य महीनाथ! अथवा प्राणनाथ! स्याद्भ्रमरस्य
एकमेवावयोश्चित्तमित्यभूत्प्राक् मम भ्रमः । अधुना तु धुनात्येष विसंवादस्तमुत्तम! ॥ ७३ ॥ उवाच देवि!
कियच्चिरम् । स्वाधीने कुसुमेऽन्यस्मिन् मालतीकुसुमे मनः ॥ ७४ ॥ अथ तां प्रणयक्रुद्धां गाढमालिङ्ग्य भूपतिः । स्यात्कदाचन पराङ्मुखम्
माकार्षीरप्रसादं[2] कदापि मे ॥ ७५ ॥ अस्थाने कल्प मानल्पं विकल्पं भो वरानने! । प्रतिबिम्बं निजं किं ॥ ७७ ॥ (युग्मम्) तवा-
॥ ७६ ॥ किं त्वतः कथिते कार्ये तव भावी मनोरथः । स मया स्याच्च दुष्पूरस्तेन नाख्यामि मानिनी ॥ ७८ ॥ चटुभिः पटुभिः सा तु प्रोक्ता हंसेन
तिमात्रं निर्बन्धो यदि देवि! ततः शृणु । हंसी प्रणयकोपेन कुपितासीत्प्रियं प्रति । गतत्रपा पुनरहं जीवाम्य-
सादरम् । प्रियेऽद्य कथमुत्साहरहितेव निरीक्ष्यसे? ॥७९॥ सा प्राह त्वयि निःस्नेहे पर्याप्तं कथनेन मे । स्याज्जीवितमजीवितम् ॥ ८१ ॥ यन्मया
द्यापि पापिनी ॥ ८० ॥ अथवा परमार्थेन मृतेवास्मि यतो ह्यहम् । अपमाने प्रियाज्ञाते लघ्वीनामपि हंसीनां पश्यन्त्या अपि मे
त्वत्पुरः प्रोक्तं तथा कुरु यथा मम । जायते पुत्रसम्पत्तिरचिराद्रुचिरावहा ॥ ८२ ॥ ददन्त्यानीय पानी-
पुरः । यतो जातानि जातानि[3] नेत्रानन्दप्रदायकम् ॥ ८३ ॥ निजानि डिम्भरूपाणि लालयन्ति च ता मुदा ।

१ पतिष्यसि । २ अप्रसन्नम् । ३ शिशवः ।

यनिसानि परिपूरये ॥८४॥ अधन्याया मम पुनरेतावत्यप्यनेहसि । गते किमपि नो डिम्भो ह्यभवच्चित्ततोषकृत् ॥ ८५ ॥ तद्विना तनयं श्रान्ते वार्धक्ये सर्वबाधके । सुखिताहं भविष्यामि वद कस्य प्रसादतः ॥ ८६ ॥ अथाह राजहंसो मा कोपं कुरु मत्प्रिये ! । नैतन्नराणामायत्तमायत्तं किन्तु कर्मणाम् ॥८७॥ किञ्चास्ति नियमो नायं यत्पित्रोः पुत्रतः सुखम् । कोप्यनर्थकरो देवकुमार इव यत्पितुः ॥ ८८ ॥ सोचे देवकुमारः कस्तेनानर्थः कथं कृतः । इति पृष्टस्तया राजहंसोप्यकथयत्कथाम् ॥ ८९ ॥

पुरेऽभूत् कुसुमपुरे शूरनामा नरेश्वरः । विरोधिध्वान्तविध्वंसिकरप्रसरसुन्दरः ॥९०॥ तत्र दत्ताभिधः श्रेष्ठी यत्र सर्वभरक्षमे । मियो वियोगभीत्येव गुणाः सर्वेऽपि लिलियरे ॥९१॥ तस्य प्रिया महालक्ष्मी नाम्ना यां रूपसम्पदा । विनयः सह शीलेन न मुञ्चति कदाचन ॥ ९२ ॥ तयोर्विलसतोर्दूरमन्योन्यश्लिष्टचित्तयोः । कुलक्रमसमायातसुनयोपात्तवित्तयोः ॥ ९३ ॥ दीनेषु ददतोर्दानं सद्धर्मार्जनसज्जयोः । सुखेन समयो यात्यज्ञातरात्रिद्युभागयोः ॥९४॥ अन्यदा च महालक्ष्मीर्लक्ष्मीरिव गवाक्षगा । भक्तानुरक्तचेटीसंवाह्यमानक्रमाम्बुजा ॥ ९५ ॥ सर्वाङ्गाभरणाश्लिष्टा घनसारसमन्वितम् । खादमाना च ताम्बूलं निस्ताम्बूलं समुज्झती ॥९६॥ पल्यङ्कस्थां वयस्यां च प्रत्यासन्नगृहस्थिताम् । लालयन्तीं निजं बालं बालामेकामलोकत ॥९७॥ (त्रिभिर्विशेषकम्) ततोऽनन्तमयाम्यस्तमहामोहवशंवदा । सा ध्यामवदनाऽध्यायि बहुनाम्बुदेनेन किम् ? ॥९८॥ यदारोप्य निजोत्सङ्गे निजमङ्गजसुन्मुखम् । दुग्धलुब्धदशं नैव लालयामि स्मिताननम् ॥ ९९ ॥ मन्येहं भवनं प्रेतवनं पुत्रविवर्जितम् । सर्वमपि स्वं विना पुत्रं परकीयं प्रजायते ॥ १०० ॥ सुतं विना न वृद्धत्वे निर्वृतिः कापि जायते । न ज्ञायते च नामापि को देवानपि पूजयेत् ॥ १०१ ॥ श्यामास्यां सहसा वीक्ष्य

१ काले । २ कृशवदना । ३ धनमपि ।

तामेका चेटिकाऽवदत् । पराभिप्रायविज्ञानकुशला कुशलाभिधा ॥ १०२ ॥ स्वामिन्यकस्मात्कस्मात्त्वं चन्द्ररेखेव वासरे । चिन्ता-
यासि करमृन्दमालतीमालिकेव च ॥ १०३ ॥ स्वामिना विहितं किञ्चित्किमु स्मरसि विप्रियम् । अथाकुण्ठासमुत्कण्ठाबन्धुर्न
निरीक्षणे ॥ १०४ ॥ चिरजातस्य वित्तस्य विनाशः किमजायत । किं वा परिजने कोऽपि तवादेशं न च व्यधात् ॥ १०५ ॥
अथ किञ्चिच्छरीरस्थमसुखं ते विजृम्भितम् । चिरध्यातोऽथवा कोऽपि फलितो न मनोरथः ॥ १०६ ॥ कृत्वा प्रसादं सर्वं मे निवे-
दय यथातथम् । श्रेष्ठिनोऽग्रे यथाख्याय साधयामि समीहितम् ॥ १०७ ॥ अथ श्रेष्ठिप्रिया प्राह मम स्वामिप्रसादतः । सर्वमस्ति
भवसुखमेकं सुतसुखं विना ॥ १०८ ॥ इदं पूर्वार्जितैरेव कर्मभिस्तु प्रजायते । यत्नेनुरुपकारोऽत्र पुंसामल्पोऽपि नो पुनः ॥ १०९ ॥
तदेतस्य त्वयाख्येयो नैवार्थः सर्वथापि हि । सोऽपि मा भूदहमिव दुःखानां भाजनं परम् ॥ ११० ॥ यथा यथा पराभाणि रम-
माणानि पश्यति । भूपितालङ्कृतान्युच्चैः खिद्यते सा तथा तथा ॥ १११ ॥ खिद्यमानेति सा शोकासुधादीधितिमूर्तिवत्[1] । दिनैः
कतिपयैर्जाता वाढं कृशवपुर्लता ॥ ११२ ॥ तथारूपां निरीक्ष्यैतां श्रेष्ठी पप्रच्छ वल्लभे ! । ज्वलद्वानलस्थलतेव किमुदीक्ष्यसे
॥ ११३ ॥ मा भूदस्यासुखमिति न सा कथयति स्म तु । रमाकुलमनाः श्रेष्ठ्यपृच्छन्नैमित्तिकानथ ॥ ११४ ॥ गणयित्वा ग्रह-
बलं तैराख्यायि दिनाधिपः । एतस्याः कुरुते पीडां पूजया स प्रशाम्यति ॥ ११५ ॥ ततः श्रेष्ठी बहुद्रव्यं तेषां पूजार्थमार्पयत् ।
ते द्रव्यलिप्सयान्योऽन्यग्रहपीडां वदन्ति न ॥ ११६ ॥ बहुद्रव्यव्ययेनापि गुणमप्रेक्ष्य योगिनः । मौहूर्तिन दर्शयामास श्रेष्ठी तां
मन्त्रवादिनाम् ॥ ११७॥ तमुवाच प्रियाऽज्ञाने मा विधेहि धनव्ययम् । स्वयमेव भविष्यामि सज्जाहं क्रमयोगतः ॥ ११८ ॥ दग्धः

1 अमावास्याचन्द्रमूर्तिवत् ।

प्राह प्रिये! प्रेयः किं त्वत्तोपि धन मम। सुवर्णाद्वल्लभः किं स्यात् सुवर्णस्य मलो नृणाम्? ॥११९॥ यदा स वार्यमाणोपि न तिष्ठति धन व्ययन्। ततस्तया समग्रोऽपि सद्भावः स्वो निवेदितः ॥ १२० ॥ ततः श्रेष्ठी करौ धर्मन्नूचे चक्रे न सुन्दरम्। त्वया यदेवमर्थे खेदे स्वात्मा प्रपातितः ॥ १२१ ॥ तत्तथाहं करिष्यामि यथा तव सुतो भवेत्। नराणां व्यवसाये हि लाभः सर्वत्र जायते ॥ १२२ ॥ तद्वचः श्रवणात्तस्याः फुल्लान्यङ्गानि तत्क्षणात्। आरम्भतो वसन्तस्य प्रफुल्लन्ति लताः खलु ॥ १२३ ॥ शुचीभूताऽन्यदा श्रेष्ठी स्वल्पस्वकपरिच्छदः। दत्तप्रणयिनीशिक्षः पूजोपकरणान्वितः ॥ १२४ ॥ मनोरथास्ते पूर्यन्तामित्याशीर्वचनं मुदा। स्वगोत्रजरतीप्रत्तं प्रतीच्छन् स्वच्छमानसः ॥ १२५ ॥ नगराद्बहिरारामे महादेवकुलस्थिताम्। नाम्ना कामदुघां देवीमाराद्धुमचलन्मुदा ॥ १२६ ॥ (त्रिभिर्विशेषकम्) स्नपयित्वा विलिप्यैतां पूजयित्वा च सोऽवदत्। तवैव साम्प्रतं देवि! चरणाः शरणाय मे ॥ १२७ ॥ इत्युक्त्वा पावने स्थाने दर्भसंस्तरगर्भगः। सत्त्ववृत्तिं समालम्ब्योपवासान् कर्तुमुद्यतः ॥ १२८ ॥ तस्याथ च सप्तम्यामुपवासपूरनिःस्वनैः। सूचयन्त्यागमं स्वस्य प्रत्यक्षाऽजनि देवता ॥ १२९ ॥ उद्योतं भूषणैर्दिव्यैः सर्वतः कुर्वतीव सा। उवाच वत्स! तुष्टास्मि वर वृणु निजेच्छया ॥ १३० ॥ करौ किरीटीकृत्याथ दत्तो दत्तोरुसम्मदः। अवदत् दीयतां देवि! सुतो भारक्षमो मम ॥ १३१ ॥ देवी विषण्णमुख्याह विरूपे समये त्वया। प्रार्थिताहं ततः पुत्रो भविष्यति तवान्तकृत् ॥ १३२ ॥ कियन्त्यपि दिनानि त्वं यदि वत्स! प्रतीक्षसे। तत्पुत्रं प्रददे कीर्तिलक्ष्मीविनयशर्मदम् ॥ १३३ ॥ दध्यौ श्रेष्ठी प्रतीक्षेऽहं कियन्त्यपि दिनानि चेत्। ततः सा म्रियते लोके मम हास्यं च जायते ॥ १३४ ॥ कर्तुं नालमुपवासांस्तदेष कुरुते मिषम्। ततो भवतु माभ्यं मे सा जीवतु ममाऽऽयुषा ॥१३५॥ कालेन मृत्युः पुत्रान् मे रायस्तु दयितास्मृतिः। ध्यात्वेत्युवाच पुत्रं मे देहि देव्यधुनापि

हि ॥ १३६ ॥ नैव दोषो ममेत्युक्त्वा देव्यूचे पश्चिमे च मे। सहकारोऽस्ति तस्यैकं भवता गृह्यतां फलम् ॥ १३७ ॥ देव्यां तिरो-
हितायां स लोभादादाद्बहून् फलान् । भाविस्तेनसुतत्वेनेदृक् चेतः सतोऽप्यभूत् ॥ १३८ ॥ यावद्बहून्युपादाय फलान्युत्तराति स
सः । तावदेकं तदङ्केऽभूल्लग्नान्यन्यानि तु द्रुमे ॥ १३९ ॥ ततः सविस्मयः स्वस्यानुचितं चिन्तयन्नथ । तदाम्रमार्पयत् तस्यै सा
तुष्टा तच्चखाद च ॥ १४० ॥ तत्रैव दिवसे तस्या गर्भो देवीप्रभावतः । अभूत्तेन सहाङ्गान्यस्या उपचयं ययुः ॥ १४१ ॥ अति-
क्ताम्लकटुक्षाराहाराहाराच्च सानिशम् । मन्दमन्दगतिर्गर्भं पपौ तद्धनवर्द्धनम् ॥ १४२ ॥ तस्याश्च दोहदान्गर्भान्दोहदान् श्रेष्ठ्य-
पूरयन् । सम्पूर्णे समये देवतुल्यं सुतमसौदसौ ॥ १४३ ॥
ततश्च प्रस्फुरत्तूरगीतनृत्यमनोहरम् । आयदक्षतपात्रौघं मान्यमानमहाजनम् ॥ १४४ ॥ कुलसीमन्तिनीवर्गसीमन्तप्रत्तकुङ्कु-
मम् । स्थालक्षिप्तपत्रपूगनालिकेरदुकूलकम् ॥ १४५ ॥ दुःस्थे मनोरथातीतदीयमानमहाधनम् । विधीयमानदेवार्चं वर्धापनमजायत
॥ १४६ ॥ (त्रिभिर्विशेषकम्) मास्यतीतेऽस्य रूपेण देवतुल्यस्य सोत्सवम् । पितृभ्यामभिधा देवकुमार इति निर्ममे ॥ १४७ ॥
धात्रीभिः पञ्चभिरथ लाल्यमानवपुर्लतः । प्रवृद्धः प्रतिपच्चन्द्र इव स प्रतिवासरम् ॥ १४८ ॥ सुचित्राणि विचित्राणि वस्त्राण्याभ-
रणान्यपि । दत्तो व्यधापयत्तस्य चित्तवित्तानुरूप्यतः ॥ १४९ ॥ कलायोग्यं कलाचार्यायार्पयच्च सुतं पिता । तस्याभ्यासे कलाभ्या-
सस्तस्य शस्यः क्रमादभूत् ॥ १५० ॥ पित्राथ शिक्षाचार्याय दत्तं वित्तं तथा यथा । भुज्यमानमपि निष्ठां न यात्यासप्तमं कुलम्
॥ १५१ ॥ अथेभ्यकन्यया सार्धं समानकुलशीलया । पित्रा चित्रोत्सवं देवकुमारः परिणायितः ॥ १५२ ॥ वार्त्तामपि स

१ कृपणवत् । २ सुपुवे ।

प्राह प्रिये! प्रेयः किं त्वत्तोपि धनं मम। सुवर्णाद्वल्लभः किं स्यात् सुवर्णस्य मलो नृणाम्? ॥११९॥ यदा स वार्यमाणोपि न तिष्ठते
धनं व्ययन्। ततस्तया समग्रोऽपि सद्भावः स्वो निवेदितः ॥ १२० ॥ ततः श्रेष्ठी करौ घर्षन्नूचे चक्रे न सुन्दरम्। त्वया यदेव
र्थे खेदे स्वात्मा प्रपातितः ॥ १२१ ॥ तत्तथाहं करिष्यामि यथा तव सुतो भवेत्। नराणां व्यवसाये हि लाभः सर्वत्र जायते
॥ १२२ ॥ तद्वचः श्रवणात्तस्याः फुल्लान्यङ्गानि तत्क्षणात्। आरम्भतो वसन्तस्य प्रफुल्लन्ति लताः खलु ॥ १२३ ॥ शुचीभूतः
न्यदा श्रेष्ठी स्वल्पस्वरूपरिच्छदः। दत्तप्रणयिनीशिक्षः पूजोपकरणान्वितः ॥ १२४ ॥ मनोरथास्ते पूर्यन्तामित्याशीर्वचनं मुदा।
स्वगोत्रजरतीप्रत्तं प्रतीच्छन् स्वच्छमानसः ॥ १२५ ॥ नगराद्बहिरारामे महादेवकुलस्थिताम्। नाम्ना कामदुघां देवीमा-
द्रुमचलन्मुदा ॥ १२६ ॥ (त्रिभिर्विशेषकम्) स्नपयित्वा विलिप्यैतां पूजयित्वा च सोऽवदत्। तवैव साम्प्रतं देवि! चरणाः
शरणाश्च मे ॥ १२७ ॥ इत्युक्त्वा पावने स्थाने दर्भसंस्तरगर्भगः। सत्त्ववृत्तिं समालम्ब्योपवासान् कर्तुमुद्यतः ॥ १२८ ॥ ततस्ता-
मथ च सप्तम्यामुद्यन्नूपुरनिःस्वनैः। सूचयन्त्यागमं स्वस्य प्रत्यक्षाऽजनि देवता ॥ १२९ ॥ उद्योतं भूषणैर्दिव्यैः सर्वतः कुर्वती
सा। उवाच वत्स! तुष्टास्मि वरं वृणु निजेच्छया ॥ १३० ॥ करौ किरीटीकृत्याथ दत्तो दत्तोरुसम्मदः। अवदत् दीयतां देवि!
सुतो मारक्षमो मम ॥ १३१ ॥ देवी विषण्णमुख्याह विरूपे समये त्वया। प्रार्थिताहं ततः पुत्रो भविष्यति तवान्तकृत् ॥ १३२ ॥
कियन्त्यपि दिनानि त्वं यदि वत्स! प्रतीक्षसे। तत्पुत्रं प्रददे कीर्तिलक्ष्मीविनयशर्मदम् ॥ १३३ ॥ दध्यौ श्रेष्ठी प्रतीक्षेऽहं किय-
न्त्यपि दिनानि चेत्। ततः सा म्रियते लोके मम हास्यं च जायते ॥ १३४ ॥ कर्तुं नालमुपवासांस्तदेष कुरुते मिषम्। ततो भा
भार्यं मे सा जीवतु ममाऽऽयुषा ॥१३५॥ कालेन मृत्युः पुत्रान् मे सद्यस्तु दयितामृतिः। ध्यात्वेत्युवाच पुत्रं मे देहि देव्यघना

मन्येऽथ घटयाम्यहम् ॥ १६९ ॥ अपरेषां घटयतां न सा घाटे समागता । स देशान्तरसत्री तु घटयामास तामिमाम् ॥ १७० ॥
तस्यापि हि घटयतः समता किञ्चिदागता । अभूत् घुणाक्षरन्यायात्सा विधेरपि कुर्वतः ॥ १७१ ॥ आकर्ण्येति स पप्रच्छंस्तस्या
वेश्मानुरागवान् । ते प्राहुर्नातिदूरेऽस्ति गतस्तैः सह तत्र सः ॥ १७२ ॥ निध्याय [1]सेवधिमिव तमागच्छन्तमन्तिकात् । अक्का
सहक्काभिमुखं प्रेपितप्रेष्यकाऽजनि ॥ १७३ ॥ दह्यमानागुरौ पुष्पगृहमुक्तावचूलिनि । स्थितां वासगृहे चित्रविचित्रे मणिकुट्टिमे
॥ १७४ ॥ प्रेङ्खाशय्यासमारूढां करे कलितदर्पणाम् । रूपं निरूपयन्तीं स्वां सुतां सौभाग्यमञ्जरीम् ॥ १७५ ॥ दूराद्विधाय यां
चक्रेऽभ्युत्थानं सा ससम्भ्रमा । अदादभ्युक्षणं रत्नमयभृङ्गारधारया ॥ १७६ ॥ (चतुर्भिः कलापकम्) तत्प्रदत्तासने सोऽथ विसृज्य
स्वसुहृज्जनम् । निविष्टो वहुमानेन मानपूरितमानसः ॥ १७७ ॥ ततश्च स्वागतप्रश्नपूर्वमक्का पटून्यधात् । चटूनि तं रञ्जयितुं पटुः
कपटनाटके ॥ १७८ ॥ अथ जातानि नेत्राणि कृतकृत्यानि सुन्दर ! । पुण्यैरगण्यैर्जातं यद्दर्शनं दुःखकर्षणम् ॥ १७९ ॥
कृतार्थं चाद्य भवनं त्वत्पादाम्बुजपावनम् । अद्य सौभाग्यमञ्जर्या जयपत्रमवाप्यत ॥ १८० ॥ शृण्वन्निति वचस्तस्या वेश्यां
पश्यंश्च तत्सुताम् । सत्यं मित्रवचो मेने स्वर्गस्थं स्वं च दत्तजः ॥ १८१ ॥ दासीनामनुदासीनाऽऽदेशमक्का ततो ददौ । युष्मा-
भिर्मज्जनं देवकुमारः कार्यतामिति ॥ १८२ ॥ तं स्नानमण्डपे नीत्वाऽभ्यज्य ताः समवाहयन् । तथा यथातिसौख्येन न स किञ्चि-
दचेतयत् ॥ १८३ ॥ ततो मणिमयोत्तुङ्गासनस्थं गन्धवारिभिः । तास्तमस्नपयन् स्वर्णकलशैरलसैः करैः ॥ १८४ ॥ रूक्षयित्वाङ्गम-
ऽयङ्गवसनानि समर्प्य च । विलिप्य दत्त्वा कर्पूरमिश्रं ताम्बूलमप्ययम् ॥१८५॥ अक्कयोचेऽत्र पल्यङ्के तावद्विश्रम्यतां क्षणम् । यावद्र-

1 निधानमिव ।

नैतस्याः पृच्छति स ततः पिता । प्रचिक्षेप दुर्ललितगोष्ठ्यां तं भोगहेतवे ॥ १५३ ॥ स याति तैः समं देवकुलादिप्रेक्षणेक्षणे । पुन-
रार्यमाणोऽपि पण्यस्त्रीणां गृहेषु न ॥ १५४ ॥ श्रेष्ठी पृच्छति वृत्तान्तं सुतस्यैते यथातथम् । कथयन्ति वदन्तोऽथ दूयते तद्-
भोगतः ॥ १५५ ॥ सोऽन्यदा कारिते राज्ञा रम्ये रत्नैर्विनिर्मिते । गतो देवकुले मित्रैस्तैः सुदुर्ललितैः समम् ॥ १५६ ॥ स स्वर्ण-
तोरणास्यर्णे तत्रैकां शालभञ्जिकाम्[1] । हसन्तीमिव जल्पन्तीमिवैक्षत मणीमयीम् ॥ १५७ ॥ द्रष्टुं लग्नस्तदङ्गानि स निमेषविव-
र्जितः । कीलितस्तम्भितालेख्यलिखिताङ्ग इवोर्ध्वगः ॥ १५८ ॥ पञ्चेषुणेषुभिर्विद्ध इव भूम्यां स निश्चलः । उवाच तत्र
लावण्यं मयाऽपायि चिरं दृशा ॥ १५९ ॥ तदधुना कृतार्थत्वं यथा श्रवणयोर्भवेत् । अथवा न क्षमा वक्तुं नार्यः प्रथमसङ्गमे
॥ १६० ॥ तथापि हि त्वयात्मा मे ऋजुदृष्ट्या समर्पितः । न वीक्ष्येऽहं कटाक्षैस्तु भवत्या मर्मवेधिभिः ॥ १६१ ॥ वदन्निति
हसित्वा स मित्रैरूचे भवानिदम् । धक्ति कस्याः पुरो रत्नमयी पाञ्चालिका ह्यसौ ॥ १६२ ॥ तदप्रत्ययतः स्पृष्ट्वा तांस्त्रपानमिता-
ननः । स तस्यै गदितं मित्रैर्निषादं कुरु मित्र ! मा ॥ १६३ ॥ यदीयप्रतिरूपेण शिल्पिना घटिताऽसकौ । तामेव दर्शयामस्ते
किमस्याभादरस्ततः ॥ १६४ ॥ स प्राह प्राग्ग्रहेणेव रागेणाहं विडम्बितः । सुहृदोऽपि हि यूयं च विप्रतारयताधुना ॥ १६५ ॥
अतो बहुविधान् कृत्वा शपथांस्ते बभाषिरे । अस्या यथाभूदुत्पत्तिस्तथा त्वं मसृणः शृणु ॥ १६६ ॥
कियतामपि वर्षाणां परतोऽत्र समागतः । दूरदेशान्तरात्सूत्रधारो विज्ञानगर्वितः ॥ १६७ ॥ स च सौभाग्यमञ्जर्या वेश्याया
रूपनिर्मितौ । सिंहद्वारे नरेन्द्रस्य चक्रे पत्रावलम्बनम् ॥ १६८ ॥ कोऽपि सौभाग्यमञ्जर्याः प्रतिरूपं यथास्थितम् । घटयेद्यस्तं कुशलं

[1] पुत्तलिकाम् ।

अपरेषां घटयतां न सा घाटे समागता । स देशान्तरखत्री तु घटयामास तामिमाम् ॥ १७० ॥
मन्येऽथ घटयाम्यहम् ॥ १६९ ॥ आकर्ण्येति स पप्रच्छंस्तस्या
तस्यापि हि घटयतः समता किञ्चिदागता । अभूत् घुणाक्षरन्यायात्सा विधेरपि कुर्वतः ॥ १७१ ॥ आकर्ण्येति स पप्रच्छंस्तस्या
वेश्मानुरागवान् । ते प्राहुर्नातिदूरेऽस्ति गतस्तैः सह तत्र सः ॥ १७२ ॥ निध्याय [1]सेवधिमिव तमागच्छन्तमन्तिकात् । अक्का
सहक्काभिमुखं प्रेषितप्रेष्यकाऽजनि ॥ १७३ ॥ दह्यमानागुरौ पुष्पगृहमुक्तावचूलिनि । स्थितां वासगृहे चित्रविचित्रे मणिकुट्टिमे
॥ १७४ ॥ प्रेङ्खाशय्यासमारूढां करे कलितदर्पणाम् । रूपं निरूपयन्तीं स्वां सुतां सौभाग्यमञ्जरीम् ॥ १७५ ॥ दूराद्विधाय यां
चक्रेऽभ्युत्थानं सा ससम्भ्रमा । अदादभ्युक्षणं रत्नमयभृङ्गारधारया ॥ १७६ ॥ (चतुर्भिः कलापकम्) तत्प्रदत्तासने सोऽथ विसृज्य
स्वसुहृज्जनम् । निविष्टो बहुमानेन मानपूरितमानसः ॥ १७७ ॥ ततश्च स्वागतप्रश्नपूर्वमक्का पटून्यधात् । चटूनि तं रञ्जयितुं पटुः
कपटनाटके ॥ १७८ ॥ अथ जातानि नेत्राणि कृतकृत्यानि सुन्दर ! । पुण्यैरगण्यैर्जातं यद्दर्शनं दुःखकर्पणम् ॥ १७९ ॥
कृतार्थं चाद्य भवनं त्वत्पादाम्बुजपावनम् । अद्य सौभाग्यमञ्जर्या जयपत्रमवाप्यत ॥ १८० ॥ शृण्वन्निति वचस्तस्या वेश्यां
पश्यंश्च तत्सुताम् । सत्यं मित्रवचो मेने स्वर्गस्थं स्वं च दत्तजः ॥ १८१ ॥ दासीनामनुदासीनाऽऽदेशमक्का ततो ददौ । युष्मा-
भिर्मज्जनं देवकुमारः कार्यतामिति ॥ १८२ ॥ तं स्नानमण्डपे नीत्वाऽभ्यज्य ताः समवाहयन् । तथा यथातिसौख्येन न स किञ्चि-
दचेतयत् ॥ १८३ ॥ ततो मणिमयोत्तुङ्गासनस्थं गन्धवारिभिः । तास्तमस्नपयन् स्वर्णकलशैरलसैः करैः ॥ १८४ ॥ रूक्षयित्वाङ्गम-
ङ्गवसनानि समर्प्य च । विलिप्य दत्त्वा कर्पूरमिश्रं ताम्बूलमप्ययम् ॥१८५॥ अक्कयोचेऽत्र पल्यङ्के तावद्विश्रम्यतां क्षणम् । यावद्र-

1 निधानमिव ।

सवती सर्वरसवत्युत्तमा भवेत् ॥१८६॥ (युग्मम्) क्षणं विश्रम्य सौभाग्यमञ्जर्या स समन्वितः। निविष्टः स्थाल एकस्मिन् शुष्कार्द्रफलशालिने ॥ १८७ ॥ सर्वेन्द्रियप्रीतिकरं रम्यं पानकपानतः। बलबुद्धिकरं भोज्यं बुभुजे भूभुजां निभम् ॥१८८॥ (युग्मम्)

अथ प्रदोषे भोगाङ्गसमर्पणपुरःसरम्। समं सौभाग्यमञ्जर्याऽऽर्जयान् भोगानभुङ्क्त सः ॥ १८९ ॥ वेश्या तं निजविज्ञानगुणेनारञ्जयत्तथा। यथाऽमंस्त स संसारे सारमेतावदेव हि ॥ १९० ॥ मुद्रां प्रेष्याकरे प्रेष्यानापयत्कनकं सदा। स्वर्णपञ्चशतीमानं स्नेहान्मातार्पयत्सदा ॥ १९१ ॥ स्वर्णं यथा यथाभ्येति प्रतिपत्तिं तथा तथा। अक्का दर्शयति तस्य लुब्धा परधनेऽधिकम् ॥१९२॥ सुतां वक्त्यस्य भावेन वर्तितव्यं सदा त्वया। सा तथा तं वशीचक्रे यथाऽभूद्विरहासहः ॥ १९३ ॥ सङ्गीतकुशलैः प्रमदाकुलैः। तूर्यत्रिकं क्रियमाणं कदाचन निरीक्ष्यते ॥ १९४ ॥ सौभाग्यमञ्जरीवाद्यमानां वीणां कदाचन। शृणोत्युद्यानिकाश्चापि कुरुते स कदाचन ॥१९५॥ गाथकैर्गीयते गीर्वैर्वन्दिभिः पठ्यते स तु। गृहे रत्नमये रात्रिदिनभागं न वेत्ति च ॥ १९६ ॥ इत्थं द्वादशभिर्वर्षैर्द्वादशस्वर्णकोटयः। भोगपङ्कनिमग्नेन भुक्तास्तेन तया समम् ॥ १९७ ॥

अन्यदा याचितुं स्वर्णसहस्रं प्रैषि चेटिका। अक्कया मुद्रिकारत्नमर्पयित्वा तदोकसि ॥ १९८ ॥ नाभैव सा महालक्ष्मीर्मालक्ष्मीविवर्जिता। विमुच्याथ्रूण्यङ्गलग्नं निजं भूषणमर्पयत् ॥ १९९ ॥ पुरो देवकुमारस्य वृत्तान्ताख्यानपूर्वकम्। मुमोच चेटी तन्मत्वा प्राह सौभाग्यमञ्जरी ॥ २०० ॥ त्वं व्याघुट्यार्पयैतानि तथा चक्रे ततश्च सा। तथैव प्रतिपत्तिं तु कुरुतेऽस्य पणाङ्गना ॥ २०१ ॥ अक्का प्राह सुतां पुत्रि! त्वमेनं त्यज निर्धनम्। सा प्राह स्वर्णकोटीनां दाताम्ब! त्यज्यते कथम् १? ॥ २०२ ॥ तदस्त्वयं

१ वल्लभात्।

मुखेनैवाक्षिहीनेनैतद्धीनेन धनेन किम्? ॥ २०३ ॥ मत्वा तदीयनिर्बन्धमक्का प्रोवाच चेटिकाः ।
चिरं नान्यैः कार्यं मम धनेन च । मुखेनैवाक्षिहीनेनैतद्धीनेन धनेन किम्? ॥ २०३ ॥ कालक्षेपेन मन्यन्ते तं चञ्चाप्रतिमं
तथा कार्यमनौचित्यं यथा निर्यात्ययं गृहात् ॥ २०४ ॥ ततस्ता न तदादेशं कुर्वते कुर्वतेऽथवा । कालक्षेपेन मन्यन्ते तं चञ्चाप्रतिमं
च ताः ॥२०५॥ प्रातस्तस्यान्यदा कापि तत्सम्मुखममार्जयन् । तां पराह कथं धूलिं क्षिपस्येनं न पश्यसि ॥२०६॥ सा प्राह वल्ल-
भश्चेत्तेऽसकौ तत्त्वं निजाञ्चलम् । विधेह्यस्यान्तर इति प्रवदन्ती परस्परम् ॥ २०७ ॥ कृतकृत्रिमकोपाक्का न्यषेधत्स त्वचिन्तयत् ।
मम निर्वासनोपायोऽवश्यमेष विधीयते ॥ २०८ ॥ आचारो हि पणस्त्रीणां निर्धनस्त्यज्यते जनः । एतां विहाय नान्यत्र सुखं
विषयजं पुनः ॥ २०९ ॥ तद्गत्वा स्वगृहं द्रव्यार्जनोपायो करोम्यहम् । निश्चित्येति मुखरागमभिन्दन्नूचिवानिमाम् ॥ २१० ॥
जातानि द्वादशाब्दानि स्थितस्यात्र मम प्रिये ! । नन्तुं पितृपदांस्तेनोत्कण्ठा तद्याम्यहं गृहम् ॥ २११ ॥ सा प्राहाऽप्रतिपत्तिः किं
काप्यभून्मे परोक्षतः । किं वा मम कियत्त्यागो विरलं प्रेम वाऽभवत्? ॥२१२॥ स प्राह नैकमप्येषु ममोत्कण्ठैव केवलम् । दिनैः
कतिपयैरत्र पुनरेष्यामि सुन्दरि ! ॥ २१३ ॥ इत्युक्त्वा तत्र याते स्वमोकः शोकविवर्जितम् । मेनेऽक्का पणनारी तु भूतोद्वासित-
सोदरम् ॥ २१४ ॥ गतो देवकुमारस्तु नत्वा पप्रच्छ मातरम् । कथं जीर्णमभूद्गेहं कथं परिजनो गतः ॥ २१५ ॥ क्व तातः क्व
स्नुषा प्रोचे माता वत्स ! धनं विना । गृहमीदृक् परिजनो गतः श्रेष्ठ्यस्ति हट्टके ॥ २१६ ॥ तन्नास्ति किञ्चिदधुना येन व्यव-
हरत्ययम् । निराशा च वधूर्वत्स ! गता पितृगृहं निजम् ॥ २१७ ॥ तद्वत्स ! भव्यं चक्रे यदधुनापि स्मृतं गृहम् । तेऽन्ये जनाः
सुताद्येषां सुखं स्यादसुखं तु नौ ॥ २१८ ॥ आवाभ्यां त्वं कुसंसर्गे क्षिप्तो मोहवशादसि । मया च स्फेटितं द्रव्यं सर्वं तव कृते
सुत ! ॥ २१९ ॥ अक्कापरिभवाद्वेश्याविरहान्निस्वभावतः । अम्बोपालम्भतस्तातभयाच्चारतिमाप सः ॥ २२० ॥ दिशः पश्यति

शून्याक्षो दध्यौ यावद्धनं पितुः । भुक्तं तावति दत्तेऽहमनृणोऽजमि तत्ततः ॥ २२१ ॥ अर्थः कालविलम्बेनोपायैः सर्वैः प्रजायते । निर्विलम्ब उपायः स्याद्यदि कोऽपि वरं ततः ॥ २२२ ॥

इति ध्यायन्नयं भ्राम्यन्नैरमालोक्य योगिनीम् । नतो दीपालिकाकोटिं जीवस्वेत्याशिषं ददौ ॥ २२३ ॥ स प्राह भगवत्येवं मा वादीरीदृशं वद । यत्त्वं म्रियस्व वेगेन दुःखिनो जीवितेन किम् ॥ २२४ ॥ सोचे को दुःखहेतुस्तेऽर्थाभावस्तदुदीरिते । कृपया गुटिकामेकामर्पयामास तस्य सा ॥ २२५ ॥ आस्य्यचास्याः प्रभावेण यथाकामीनरूपता । भवेत्पुत्रः पुना रूपं स च पश्येद्यथास्थितम् ॥ २२६ ॥ अस्या यदीदृशी शक्तिर्गुटिकायाः स्वभावतः । लाभेनाथ गुटिकायाः प्रमनाः स मनागभूत् ॥ २२७ ॥ प्रणम्य योगिनीमेष पुनः स्वस्थानमागतः । तस्याम्बया तु तत्तातः प्रोचे निर्भर्त्सितो मया ॥ २२८ ॥ पुरास्त्ययं न युष्माभिस्तद्वाच्यं किञ्चनाधुना । ताड्यमानो यतोऽनर्थं कर्ता याताथवा क्वचित् ॥ २२९ ॥ (युग्मम्)

अथ शक्रमहे पर्वण्याकुले निखिले जने । यथेच्छं सञ्चरत्यस्य कुविकल्पोऽजनीदृशः ॥ २३० ॥ यच्चौर्यं विदधाम्यद्य गत्वा राजकुले यथा । मनोरथाः सफलतां यान्ति किं जनमोषणैः ? ॥ २३१ ॥ सिंहस्य हि चपेटायाः स्थानं मत्तेभकुम्भिषु । न पुनर्मृगयूथेष्वाददानेषु मुखे तृणम् ॥ २३२ ॥ ध्यात्वेति यमजिह्वाग्रनिशितामसिपुत्रिकां[1] । दृढीकृत्य मुखं बद्ध्वा घाटं पद्या च साहसी ॥ २३३ ॥ यास्यामि प्रेक्षणं द्रष्टुमित्युक्त्वा पितुरग्रतः । चचालाऽचिन्तयत्ततः श्रेष्ठी नैतद्धि सुन्दरम् ॥ २३४ ॥ यदेष वेषमाधायैवंविधं चलितोऽधुना । ततोऽनुयामि ध्यात्वेति हट्टं संघूल्य सोऽन्वगात् ॥ २३५ ॥

१ छुरीकाम् ।

इतः श्रेष्ठिसुतो गच्छन्नाप द्वारं नृपौकसः । उद्घाटं दैववशतोऽपश्यत् संधिं च सोऽच्छिनत् ॥ २३६ ॥ प्रविष्टश्चैककं भूपं
पल्यङ्कस्थमुदैक्षत । पल्यङ्कपादानद्राक्षीच्चानर्घ्यमणिनिर्मितान् ॥ २३७ ॥ समग्रस्यापि राज्यस्य सारभूतानिमानयम् । जिघृक्षुरेक-
माकृष्य तत्र वेत्रासनं ददौ ॥ २३८ ॥ द्वितीयं च तृतीयं च स एवं पादमग्रहीत् । श्रेष्ठी तु प्रविशन्तं तं वीक्ष्य भीतो व्यचिन्त-
यत् ॥ २३९ ॥ अद्यावसानकालो मे देवीवाक्यं हि नान्यथा । यत्तदोत्सुकचित्तेन दुःपुत्रोऽयं मयार्थितः ॥ २४० ॥ अनेन
प्रथमं तावद्द्रव्यं मम विनाशितम् । बहिः प्राणाः परप्राणानधुना नाशयिष्यति ॥२४१॥ प्राप्ते नृपनरैरस्मिन् प्रातर्लोकस्य पश्यतः ।
अस्माकमन्वयोच्छेदो भविता किं करोमि तत् ॥ २४२ ॥ मम दूरस्थितस्यैप प्रविष्टः सहसापि हि । ततो निवर्तयाम्येनमिति स
प्रविविक्षति ॥ २४३ ॥ अपद्वारे स प्रवेष्टुमसमर्थो गतागतम् । कुर्वन् धृष्टत्वमालम्ब्य प्राविक्षद्वीक्षितुं सुतम् ॥ २४४ ॥ खात-
द्वारि च पल्यङ्कपादत्रितयवीक्षणात् । दध्याविहास्ति दुःपुत्र इति नाम्ना तमाह्वत ॥ २४५ ॥ स दृष्टश्च सुतेनाह त्वं निवर्त्तस्व
पापतः । स प्राह जातमेवैतत्तात ! वाच्यं न किञ्चन ॥ २४६ ॥ ताते मध्यागते तुर्यो पादं गृह्णाति यावता । सुप्तस्तावन्नराधीशः
प्राप निद्रादरिद्रताम् ॥२४७॥ शस्त्रीं यावन्नृपो लाति तावद्क्षत्वतः सुतः । ययौ संधेर्बहिः श्रेष्ठी शीर्षं कृत्वा बहिः पुनः ॥२४८॥
निर्याति यावता तावत्पादयोर्नृपतिर्दधौ । दोष्णोर्देवकुमारस्तु निर्याति स तथापि न ॥२४९॥ (युग्मम्) दक्षः प्राह सुतं छित्त्वा शिरो मे
नश्य वेगतः । यथा यशः शरीरं मे न याति चिरपालितम् ॥ २५० ॥ सुतः प्राह कथं कुर्वे तातघातजपातकम् । ग्रन्थिस्थं स
मुखेऽक्षैप्सीदथ तालपुटं विपम् ॥ २५१ ॥ तं मत्वा मृतमध्यायत्पुत्रो धिग्मम जीवितम् । हन्मि क्षुरिकयात्मानं तदहं पापकारि-
णम् ॥ २५२ ॥ द्वयोरप्यथ मृतयोः कौ नौ वह्निं प्रदास्यति । मृत्युं प्राप्स्यति मातापि विदीर्णहृदया क्षणात् ॥ २५३ ॥ जनो

वक्ष्यति निःसत्वात् चौर्यं द्वावपि चक्रतुः । तन्निर्मलस्य तातस्य कलङ्को मा भवत्वयम् ॥ २५४ ॥ श्यामास्यता सतां मा भूद्दुर्जनानां च हास्यता । कायच्छायेव दुर्लङ्घ्या भविनां भवितव्यता ॥ २५५ ॥ चौर्यं तातागमो भूपप्रबोधः कथमन्यथा । तातं विना च किं रत्नैः पादैस्त्यक्त्वा व्रजामि तान् ॥ २५६ ॥ किं तु तातस्मृतेरेते हेतुग्राह्यास्ततो मया । करोमि चाग्निसंस्कारं तातशीर्षस्य सम्प्रति ॥ २५७ ॥ ध्यात्वेत्यात्तशिरः पादत्रयः स गृहमागमत् । राज्ञाकृष्टे कबन्धस्तु केवलो ददृशे द्रुतम् ॥ २५८ ॥ स तु पादत्रयं गुप्तं न्यस्य शीर्षस्य पूजनम् । कृत्वा ज्वलनसंस्कारं विदधे तत्क्षणादपि ॥ २५९ ॥ स च तातो गतो ग्राममित्यम्बापुरतोऽवदत् । दिनानां कतिपयानां पर्यन्ते च समेष्यति ॥ २६० ॥ राजा च प्रातरास्थाने तन्मन्त्रिपुरतोऽवदत् । विस्मितास्ते जगुर्देव ! सिद्धोऽवश्यं स तस्करः ॥ २६१ ॥ दुष्प्रवेशेपि सौधेऽत्र संधिच्छित्कथमन्यथा । पल्यङ्कपादत्रितयं कथं हरति चान्यथा ॥२६२॥ दत्तपुत्रोऽपि वृत्तान्तं ज्ञातुं नृपगृहं गतः । प्रणम्य च पितुः स्थाने न्यविक्षत विचक्षणः ॥ २६३ ॥ मन्त्रिमुख्यं नृपः प्राह येनैतं स्वधिया कृतम् । स कर्ता रोदनं येन द्वौ वदन्तौ श्रुतौ मया ॥ २६४ ॥ तदुत्पाट्य कबन्धोऽयं सिंहद्वारे विमोच्यताम् । यश्च रोदिति स ग्राह्यस्तलारक्षेण तत्क्षणम् ॥ २६५ ॥ प्राह देवकुमारोऽथ देवः सुन्दरमादिशत् । चौरस्तु निशि कर्ता तत्तन्निशि दृश्यतां चक्षुः ॥ २६६ ॥ ततो नृपस्तलारक्षमादिदेश विशेषतः । रजन्याः समये सर्वं परिभाव्यमिदं त्वया ॥ २६७ ॥ तलारक्षो नृपादेशं जगृहे स्वगृहे स तु । गतो दत्तसुतो दध्यौ सिंहद्वारे नरेशितुः ॥ २६८ ॥ प्रत्यक्षं पौरलोकस्य कृत्वा रोदनकक्रियाम् । नृपं विलक्ष्यतां नेष्ये प्रतिज्ञामिति ह्यधात् ॥ २६९ ॥

तत्रोपायं विचिन्त्यैष नगरस्य गतो बहिः । घृद्धामपश्यदायान्तीं तक्रविक्रयकारिणीम् ॥ २७० ॥ तामूचे लभ्यते तक्रं

मट्ठकेन समन्वितम् । ओमित्युक्ते तया मूल्यं तस्मै सोऽभ्यधिकं ददौ ॥२७१॥ दिगालोकं विधायाथार्पयित्वा वाससी निजे । तस्याः
कम्बलकान्यल्पमूल्यान्यादाय च स्वयम् ॥ २७२ ॥ हृष्टां तां प्रेष्य च ग्रामे निक्षिप्य गुटिकां मुखे । तक्रविक्रायिकारूपेणेक्षमाणः
पुरीजनैः ॥२७३॥ सिंहद्वारस्थितं लोकं मिलितं वीक्ष्य सोऽवदत् । निर्भयं लभ्यते तक्रं लभ्यते तक्रमुच्चकैः ॥ २७४ ॥ पत्तिमेकम-
पृच्छच्च किमेष निखिलो जनः । पश्यत्यादरतस्तथ्यं कथ्यतां तन्ममाग्रतः ॥ २७५ ॥ स तु तद्रक्षणव्यग्रस्तस्य नोत्तरमप्यदात् ।
परः पुनः पुनः पृच्छन्विरामं भजति स न ॥ २७६ ॥ परतः स्फिट रे रण्डे ! इत्याक्रोशवचः क्रुधा । तेन स प्रेरितो गाढमात्मानं
भूतलेऽमुचत् ॥ २७७ ॥ मट्ठकं स्फुटितं त्यक्तं तक्रं चक्रन्द सोऽथ च । हा मातुर्गृहमागत्य प्रदास्याम्युत्तरं किमु ॥ २७८ ॥ हहा
तात ! वियोगे ते जाताहं दुःखभाजनम् । करोतु को मम त्राणमनाधारतयाधुना ॥ २७९ ॥ सा मध्यस्थैरथाऽपृच्छि केन रोदिषि
हेतुना । सा प्राह तक्रं विक्रेतुं ग्रामादस्मि समागता ॥ २८० ॥ किमेष प्रेक्षते लोक इति पृष्टो रुषाऽसकौ । मां प्रेर्यापातयन्माता
तन्मां निःसारयिष्यति ॥२८१॥ ततः कस्य गृहे गत्वा शयनासनभोजनम् । करिष्येऽहं दुःखितायाः कश्च सारां करिष्यति ॥२८२॥
विलपन्तीमिति प्रेक्ष्य तां मध्यस्था जना जगुः । तलारक्षं तक्रमट्ठमूल्यमस्याः प्रदीयताम् ॥ २८३ ॥ वराकी निर्द्धनेयं यत् भोज-
नेऽपि ससंशया । तदेहि कृपया किञ्चिद्याति स्वस्थानके यथा ॥ २८४ ॥ इति तैर्भण्यमानोऽयमदान्मूल्यं कृपावशात् । गतश्च
कृतकृत्योऽयं गुटिकामाकृषन्मुखात् ॥ २८५ ॥ पितुर्मृतेः शुचं सन्धापूरणाच्च मुदं दधात् । अपराह्ने नृपास्थाने जगाम पुनरेव सः
॥ २८६ ॥ आरक्षकेषु पृष्टेषु नृपेणैको व्यजिज्ञपत् । तक्रविक्रायिकावृत्तं नृपोऽथ प्राह तान् प्रति ॥ २८७ ॥ हता यूयं यतो नायं

प्रकटं विलपन्नपि । चौरः स्त्रीवेषभृज्जातः कैतवेन विमोदितुम् ॥ २८८ ॥ न केवलं च चक्रन्द शुम्भानेष मुमोष च । वक्रमट्टक-
मूल्यानि गृह्णन् प्रत्यक्षमेव च ॥ २८९ ॥ स एव मतिमान् चौरः छद्मसत्यं चकार यः । सन्धामपूरयच्च स्वां कबन्धं नयताधुना
॥ २९० ॥ श्मशाने स प्रदातामिमथ श्रेष्ठिसुतोऽवदत् । चौरास्तुशयं को वेद देवादपर ईदृशम् ॥ २९१ ॥ तद्रक्षणकृते भूपः
सुभटानादिशत्ततः । ग्राह्यस्तत्रागतः स्त्री वा पुमान् वेति सुशिक्षयन् ॥ २९२ ॥ चौरबुद्धिप्रयोगेण जनः सर्वेऽभ्यमत्कृतः । तं सर्वत्र
नृपादेशात्तलारक्षोऽप्यशोधयत् ॥ २९३ ॥ सोऽर्धरात्रेऽथ चित्राङ्गः खटीगैरिककज्जलैः । कपिलोपाधिकश्मश्रुः कपर्दाभरणाश्चितः
॥ २९४ ॥ कण्ठलम्बितनिम्बस्रक् बर्हिबर्हावतंसकः । शुक्तिखण्डप्रकटितदंष्ट्रायुग्मभयङ्करः ॥ २९५ ॥ स्कन्धद्वितीयविन्यस्तप्रज्वल-
दीपपञ्जकः । सशब्दपादुकायुग्मविन्यस्तचरणद्वयः ॥ २९६ ॥ शीर्षन्यस्तबहुच्छिद्रान्तर्दीपघटभीषणः । पिशाचशङ्कां फेत्कारैः
कुर्वन् मुक्तकुन्तलः ॥ २९७ ॥ उड्डामरडमरुकध्वनेन ध्वनयन्नमः । भापयन्नपि भूतानि भटानां प्रकटोऽभवत् ॥ २९८ ॥
(षड्भिः कुलकम्) तं वीक्ष्य तेषां चित्तानि सचिन्तानि चकम्पिरे । अमन्त्रयन्नदो भीमं भूतमायाति किञ्चन ॥ २९९ ॥ प्रत्यक्षा
मारिरेवैषा हेलाग्रसनलालसा । तन्नश्यते खेलीकर्तुं न युक्ता जीवितेच्छुभिः ॥३००॥ इयता च पुनर्दण्डं न नृपोऽपि करिष्यति ।
अदण्ड्यं हि सहस्रं स्यादेकः प्राहाथ बुद्धिमान् ॥ ३०१ ॥ दूरे भूत्वा स्थ मौनेन स्यात्कलङ्को हि नश्यताम् । केनापि मृतकेनेयं
मारिरस्मिन्वारयिष्यति ॥ ३०२ ॥ तेऽथ वृक्षान्तरे भूत्वा तस्थुर्निश्चलविग्रहाः । स फेत्कुर्वन् कबन्धं तदादायागाच्च दूरतः ॥३०३॥
नदीपूरागतैः काष्ठैरग्निं दत्त्वा घटस्थितम् । उषित्वा च वने प्रातः प्रक्षाल्याङ्गं गतो गृहम् ॥ ३०४ ॥ परिधाय प्रधानानि वसनानि

१ कपटेन । २ निरोद्धुम् ।

नृपौकसि । गत्वा नत्वा च राजानं यथास्थानं न्यविक्षत ॥ ३०५ ॥ अथ प्रगे समागत्य भटा भूपं व्यजिज्ञपन् । अर्धरात्रेऽभ्य-
गान्मारिः सास्माभिर्न खलीकृता ॥ ३०६ ॥ चौर एव परिज्ञेय इति बुद्ध्या तया पुनः । शवानां मध्यतः स्थित्वा गतं दूरतरां
भुवम् ॥ ३०७ ॥ तयाग्निज्वालितस्तत्र वयं व्यावृत्य चागताः । यावद्वीक्षामहे तावत्तत्कबन्धं न दृश्यते ॥ ३०८ ॥ बहुष्वपि
तदादायि तया केनापि हेतुना । भवद्भिर्भीरुभिर्ज्ञातं स्तेनो मारिधिया हि सः ॥ ३०९ ॥ चिराज्ज्ञातं भटत्वं च इत्युक्ता मेदि-
नीभुजा । ते सर्वेऽपि विदधिरे रुषा विषयताडिताः ॥ ३१० ॥ अथ पृष्टस्तलारक्षः प्राह प्रापि मयापि न । अथामात्यो-
वद्देव ! तस्करः स महामतिः ॥ ३११ ॥ राज्यसारमुपादायाद्याप्येवं यो विजृम्भते । तद्रक्षा रक्ष्यते देव ! स्तेनः सोऽम्भसि
दास्यति ॥ ३१२ ॥ रक्षारक्षाकृते क्ष्मापस्तलारक्षमथादिशत् । प्राह दत्तसुतो देव ! विशुद्धा मन्त्रिणो मतिः ॥ ३१३ ॥ अथ स्वयं
तलारक्षो रक्षाया रक्षणोद्यतः । कृतावासः स शय्यास्थो रक्षाकूटान्तिकेऽवसत् ॥ ३१४ ॥ तत्रैव तस्थुपस्तस्याहोरात्रत्रितयं गतम् ।
दृष्टस्तत्र न कोऽपीति भग्नोत्साह इवाभवत् ॥ ३१५ ॥ तुर्येऽह्न्यथ तलारक्षप्रतिबद्धपणस्त्रियः । कमलश्रीनामिकाया रूपं गुटिकया
व्यधात् ॥ ३१६ ॥ ग्राममार्गात्समागत्य सायमुत्तीर्य चापगाम् । प्रलम्बमुक्तामालेन तेनात्मा प्रकटीकृतः ॥ ३१७ ॥ तां वीक्ष्य
पत्तयः स्वस्य प्रभोराख्यत्स चादिशत् । इहानयत तां वीक्ष्य तलारक्षोऽवदन्मुदा ॥ ३१८ ॥ महोत्सवमयीरात्रिर्भाविनी मे त्वदा-
गमात् । कथं स्वामिनि ! सञ्जातोऽधुना युष्माकमागमः ? ॥३१९॥ सोचे ग्रामेत्र देवीष्टयात्रां कर्त्तुमहं गता । तां नत्वा वलमानात्र
प्राप्ता मार्गवशात्ततः ॥ ३२० ॥ ततो मामनुजानीहि गन्तुं शक्ता न निश्यहम् । सालङ्कारा निस्सहाया धास्यत्यम्बाधृतिं तथा
॥ ३२१ ॥ देवीनिमित्तको ब्रह्माभिग्रहोऽस्त्यद्य मे प्रिय ! । वज्राहत इव प्राह तलारक्षोऽथ तामिति ॥ ३२२ ॥ क्वोत्कण्ठितोहं क

त्वं च जाताद्य ब्रह्मचारिणी । तथापि निर्विनोदोऽहं क्षणार्धं तिष्ठ मेऽन्तिके ॥ ३२३ ॥ कालं कियन्तमप्यस्तु द्यूतक्रीडा त्वया समम् । सहायांस्तव दास्यामि पश्चादहमितः प्रिये ! ॥ ३२४ ॥ तयेत्युक्ते तथा तेन क्षारस्योपरि दापितम् । द्यूतस्य फलकं सारैः समारब्धं च खेलितुम् ॥ ३२५ ॥ तस्यास्तेनाङ्गुली मुद्रारत्नं सन्मूल्यमर्पितम् । तया तु मुद्रिकामात्रं क्रीडन्त्या विजितश्च सः ॥ ३२६ ॥ ततो यास्याम्यहमिति वदन्ती यावदुत्थिता । तावत्तेन धृता चेलाञ्चले हारे करोऽलगत् ॥ ३२७ ॥ तया च लाघवेनाशु छित्त्वा मुक्तालतां स्वयम् । तस्या बाष्पाश्च मुक्ताश्च समकालं ततोऽपतन् ॥ ३२८ ॥ व्यलापीच्च कथं क्षारे मुक्ताः प्राप्या मयाधुना । दास्ये किमुत्तरं मातुः किमत्राहं इहागता ! ॥३२९॥ स तां प्राह विलापीर्मा यद्येकमपि मौक्तिकम् । याति चेत्तद्ददेऽहं ते क्षारं झाटय वाससा ॥ ३३० ॥ सर्वा गृहाण मुक्ताः स्वा हृदि स्मरशराहते । गलितो भूभृदादेशस्तस्य तद्गतचेतसः ॥ ३३१ ॥ तया तथाथ वीजित्वा दूरं क्षारोपसारितः । यथापतन्नदीतीरे मुक्ताः सर्वास्ततोऽग्रहीत् ॥ ३३२ ॥ कल्ये प्रदाय ते मूल्यं ग्रहीष्याम्यङ्गुलीयकम् । उक्त्वेति दत्त्वा ताम्बूलं व्यसृजत्तां भटैः सह ॥ ३३३ ॥ ते प्रवेश्य पुरद्वारे निवृत्ता अथ च प्रगे । गतो नृपसभां दत्तधनुर्दत्तासनेऽविशत् ॥३३४॥ तलारक्षोऽपि सम्प्राप्तः प्रस्तावे च व्यजिज्ञपत् । नैव कोऽप्यागमद्देव ! तत्र मे वसतः सतः ॥३३५॥ तथापि कश्चिदायात इति पृष्टः स भूभुजा । कमलश्रीव्यतिकरं प्राह भूपस्ततोऽवदत् ॥ ३३६ ॥ कमलश्रीर्न सा तेन तादृगाररमा तु दर्शितः । चेन्न प्रत्येषि तत्सात्र समाकार्यापि पृच्छ्यताम् ॥ ३३७ ॥ सा पृष्टा प्राह कल्येऽहं न गता स्वगृहाद्बहिः । गृह्णामि दिव्यमत्रार्थे नरनाथस्ततोऽवदत् ॥ ३३८ ॥ प्रत्ययो मे तलारक्षप्रत्ययार्थं तु भाषिता । श्रेष्ठिपुत्रः प्राह पृष्टो यदारक्षोऽन्यस्य का कथा ? ॥ ३३९ ॥ व्यचिन्तयत्तलारक्षः कथं लप्स्येऽङ्गुलीयकम् । पिलध्धे च नृपे प्राहैक उपायोस्ति तद्विदे ॥ ३४० ॥ पिण्डदानं

॥ ३४१ ॥ प्राह देवकुमारोऽम्त्रां किञ्चित्प्रगुणमस्ति किम् ।
गृहे यस्य निश्चयेन स तस्करः । सर्वत्रारक्षपुरुषा अथ लग्ना निरीक्षितुम् ॥ ३४१ ॥ प्राह देवकुमारोऽम्त्रां किञ्चित्प्रगुणमस्ति किम् । जीर्णदेवकुलेऽत्रौपीदन्धा-
दित्साम्याहारमन्धानां दुःस्थानामस्ति सावदत् ॥ ३४२ ॥ कृत्वा गुग्गुललेपेन विलेपनमसौ गतः । मिथस्तान् लगयित्वा च दोः सुखेन पुरोऽभवत्
निति च वादिनः ॥ ३४३ ॥ केनापि भोजिता नाद्य स निश्येतान्व्यमन्त्रयत् । दूरेण याति गमने न कोपि प्रतिबन्धकः ॥ ३४५ ॥ यथेच्छं भोजयित्वा
॥ ३४४ ॥ मार्गे गुग्गुलगन्धेन कुष्ठिसार्थं जनो विदन् । दूरेण याति गमने न कोपि प्रतिबन्धकः ॥ ३४५ ॥ यथेच्छं भोजयित्वा
तान् विविक्तेऽत्रासयच्च सः । दिने जाते पुनरपि स तैः पिण्डमपातयत् ॥ ३४६ ॥ टिम्बराजस्य नाम्नाथ तान् भोजनमकारयत् ।
द्वादशद्वादशद्रम्मान् दक्षिणायां ददौ च सः ॥ ३४७ ॥ कृत्वा हृष्टांश्च ताम्बूलचन्दनाद्यैः पुनर्निशि । तत्रैव मुक्त्वा तानन्धान्
दत्तजः स्वगृहं गतः ॥ ३४८ ॥ अर्द्धरात्रे तलारक्षनृवर्गः परितोऽभ्रमन् । अन्धदेवकुलायातोऽश्रौपीत्तेपामथो गिरः ॥ ३४९ ॥
यथाद्य भोजयामास कोऽपि नः कोऽपि नो पुरा । तथा पिण्डं च नो हस्तैर्धर्मात्मापातयच्च सः ॥ ३५० ॥ दक्षिणा च परा दत्ता
परापेक्षा यथा न नः । दिनानि कत्यप्याहारे श्रुत्वेत्याहुः परा नराः ॥ ३५१ ॥ हक्कापूर्वं भवद्भिः क भुक्तं प्रज्ञादृशोऽवदन् ।
परवृत्तिकराः केऽमी प्रक्षिपन्त्यमृते विषम् ॥ ३५२ ॥ तलारक्षनराः प्राहुः पिण्डश्चौरस्य मन्दिरे । भवद्भिः पातितो दण्डस्त-
त्कार्यें तद्ददेव वः ॥ ३५३ ॥ सत्ये तु कथिते मोक्षो भवतामथ तेऽवदन् । जात्यन्धाः सदनं तस्य कथयामः कथं वयम् ॥३५४॥
ते प्राहुः कथ्यतां नाम टिम्बराज इतीरिते । तैः परे प्राहुरेतन्न सत्यं नामाथ तेऽवदन् ॥ ३५५ ॥ तेनेति कथितं नोऽग्रेऽथैकेनैकः
समाहतः । लकुटेनाथ पूचक्रुः हा ! हन्यन्ते द्विजा इति ॥ ३५६ ॥ मिलितोऽथ जनो ज्ञाततत्त्वः प्रोवाच मारकान् । वराकाः
किमु जानन्ति जनुपान्धा इमे द्विजाः ॥३५७॥ चौरक्षुधान्धान् घ्नन्तो माऽऽभानकं कुरु भो नृपा । कोलः खादति निष्पावान्[2] भज्यते

१ जनश्रुतिः । २ वल्लान् ।

द्दुकाननम् ॥ ३५८ ॥ कथञ्चित्पुरलोकेन देऽन्धा विप्रा विमोचिताः । तलारक्षः प्रगे राज्ञेऽन्धवृत्तान्तमाख्यत ॥ ३५९ ॥ नृपः
र्ध्वं करं कृत्वा प्राह तेनोर्ध्वदेहिकम् । स्तेनेन निखिलं चक्रे सप्रतिज्ञा च पूरिता ॥ ३६० ॥ अथाह दण्डो देव! मतिर्विज्ञयते
णां । तया हीनो महीनाथोऽक्षौहिण्यापि हि हारयेत् ॥ ३६१ ॥

सदस्यथ नृपः पश्यन् सामन्ताद्यानधोमुखान् । विलक्षो वारवध्वोचे चादास्येऽहं मलिम्लुचम् ॥ ३६२ ॥ सा तूर्य पादमा-
दाय गत्वौकोऽकाममभाषत । प्राप्तो ना ग्रहणे यच्छन् रत्नपादं परो न तु ॥ ३६३ ॥ ततो ग्रहणकं दातुमेतानां सा मणीमयम् ।
णामदर्शयत्पादं विनैतं ग्रहणं न हि ॥ ३६४ ॥ यावदेषकुमारस्तु पश्यति नृपमन्दिरात् । तावदाकर्णयत्साधुदेशनास्वरमुद्धुरम्
। ३६५ ॥ स प्रविश्याश्रयस्यान्तर्दृश्यमानां च सूरिभिः । सभ्यानां पुरतोऽश्रौषीत्कथां चौर्यविवर्जने ॥ ३६६ ॥

तथाहि काम्पील्यपुरे नृपश्चक्रेश्वराभिधः । वसुन्धरापतेस्तस्य युक्तं पत्नी वसुन्धरा ॥३६७॥ मन्त्री तस्यार्जुनो नामार्जुनो मतिप-
ौरुषैः । देवकी सेवकीभूतगुणा तस्यास्ति वल्लभा ॥३६८॥ तयोः परशुरामाख्यः सुतः प्रज्ञागुणस्तुतः । स गीतिनाट्यस्त्रीमित्रगृहकार्ये
पराङ्मुखः ॥ ३६९ ॥ समयेऽपि न सेवायै प्रयाति पृथिवीपतेः । केवलं शास्त्रसंलीनचित्तोऽस्ति सहितो बुधैः ॥ ३७० ॥ स
मन्त्रिणान्यदा प्रोचे गृहकार्याणि चिन्तय । शास्त्रैकव्यग्रचित्तस्तु ग्रहिलत्वमवाप्स्यसि ॥ ३७१ ॥ क्षुत्तृषार्तस्य साधारो न शास्त्रेण
भविष्यति । कुटुम्बस्यापि नाधारो नृपसेवां ततः कुरु ॥ ३७२ ॥ पितुर्वाक्यं परीहासं मन्वानोऽस्थापयत्तथैव सः । प्रयोजनस्य सर्वस्य
स्वभावो दुष्परित्यजः ॥ ३७३ ॥ सत्यवद्दुःखदः सोऽभूत्पितुर्गाम्भीर्यतो न तु । तस्य दुःखावहं किञ्चिदवदद्ददतां वरः ॥३७४ ॥
अन्यदा च नरेन्द्रस्य कण्ठाभरणमद्भुतम् । महामूल्यं पञ्चवर्णमणिमण्डलमण्डितम् ॥ ३७५ ॥ नृपादिष्टो नरोऽमात्यायार्पयित्वा

ासरे । गतः पुष्करिणीं तेन सह श्रेष्ठी गरिष्ठधीः ॥ ३९३ ॥ करक्रमसुखाम्भोजशौचं तस्य प्रकुर्वतः । गलति स्म महामूल्यमङ्गु-
ेयमलक्षितम् ॥ ३९४ ॥ चलति श्रेष्ठिनि गृहाभिमुखे मन्त्रिनन्दनः । तदादायाऽचलत्पृष्ठे श्रेष्ठी समार तत्पथि ॥ ३९५ ॥ तं
ः प्राह किं यूयमाकुला इव सोऽवदत् । मुद्राग्लं पथि क्वापि पतितं सम्प्रति स्मृतम् ॥ ३९६ ॥ आर्पयन्मन्त्रिपुत्रस्तत् तुष्टः श्रेष्ठी
माह च । अद्यापि वर्त्तते धर्मो दृश्यन्ते त्वादृशा नराः ॥ ३९७ ॥ कलिशालस्य काउप्यैर्नाद्याप्युर्वी फलशाते । तद्धन्यं मन्दिरं
ा त्वादृशा यत्र सन्नराः ॥ ३९८ ॥ क्वापि स्थानमायातावन्यदा मन्त्रिनन्दने । पटच्छन्नतनौ श्रेष्ठिहट्टासन्नमथिस्थिते ॥ ३९९ ॥
। दासेरो दर्शयितु नृपाभरणमागतः । श्रेष्ठिनोऽन्तेऽवदच्छ्रेष्ठी नृपोचितमिदं ननु ॥ ४०० ॥ प्रत्यभिज्ञाय तन्मन्त्रिपुत्रः श्रेष्ठिश्रुतो
च च कुतस्त्वं रे ! ग्रालीसुत ! समागतः ? ॥ ४०१ ॥ ज्ञात्वापि मन्त्रिपुत्रं तं दासः प्रोवाच को भवान् ! । कथाह
स्ते परिचयः पुरा ? ॥ ४०२ ॥ प्राह मन्त्रिसुतोऽमात्यस्यार्जुनस्य न किं भवान् ? । दासः स प्राह भ्रान्तोऽसि तद्दा-
॥ ४०३ ॥ श्रेष्ठी प्रोवाच तत्र त्वं तत्त्वं वद स धृष्टताम् । इत्याह रोहणेशस्य भृत्योऽहं गङ्गनामकः ॥ ४०४ ॥
प्रेषि स्वामिना मूल्यमस्य च । सुवर्णलक्षं सित्वाथ श्रेष्ठी प्रोवाच मूर्ख ! रे ! ॥ ४०५ ॥ असम्यगपि नो सम्यग्
कुं वेत्सि यदेकक्रम् । रत्नमश्रेष्ठमप्यस्य लभते स्वर्णलक्षकम् ॥ ४०६ ॥ अर्थं तु समुदायस्य कर्तुं शक्नोति कोऽपि न । तत्त्वया
हणोत्पत्तिर्मृषा चक्रे मृषार्थतः ॥ ४०७ ॥ स्वयार्थपातनादस्यानर्थे स्वात्मापि पातितः । इतस्य वस्तुनो मूल्यं न जानन्ति हि
स्कराः ॥ ४०८ ॥ क्रुद्धो दासोऽवदत्कोऽहं दृष्टो युष्माभिरीदृशः । रेणुतुल्यं परद्रव्यं मम किं तद्वराम्यहम् ॥ ४०९ ॥ तदर्पयत

ः ।

मे युष्मत्सङ्गे जीवितसंशयः । श्रेष्ठ्यार्पयन्निषिद्धस्तन्मन्त्रिपुत्रेण निश्चयात् ॥ ४१० ॥ मुष्टो मुष्टो वदन् दासः सिंहद्वारं स चागमत् ।
राज्ञा पृष्टः स्ववृत्तान्तं प्रागुक्तं निजगाद सः ॥४११॥ राज्ञा भृत्यैरथाहूय पृष्टो मन्त्रिसुतोऽवदत् । स्ववृत्तान्तमथो कालीपुत्रः प्रोचे-
ऽखिलं मृषा ॥ ४१२ ॥ इहार्थे दुष्टदेव्यग्रेऽप्यात्मानं शोधयाम्यहम् । अथ राजा समानाय्य तद्भूषणमलोकत ॥ ४१३ ॥ तद्भुक्ष्ण
सद्युति प्रेक्ष्य जिघृक्षुः क्ष्माधनोऽवदत् । दास ! रे ! यदि सत्योऽसि पश्चान्यादत्त्व तन्नदात् ॥४१४॥ चण्डिकामर्चयैतैश्च धृष्टत्वम-
वलम्ब्य सः । विशन्नदं क्षणादेव भक्षितो मकरादिभिः ॥ ४१५ ॥ त्वमप्यनेन विधिना गृहाणेति नृपोदिते । स प्राहैतदशुद्ध्याऽपि
शुद्धिर्देव ! ममाभवत् ॥ ४१६ ॥ मया न वै खण्डितव्यो देवादेशस्तथापि हि । इत्युक्त्वा शौचवान् लग्नः प्रवेष्टुं स स्मरन् जिनम्
॥ ४१७ ॥ प्रक्षिप्ताङ्घ्रिर्जले तस्य मकरः पृष्टमार्पयत् । तत्र न्यस्तपदोऽगृह्णात् कमलानि बहूनि सः ॥ ४१८ ॥ शुद्धः शुद्धो वदत्येवं
जने स च विनिर्ययौ । प्रक्षिप्ता सुममाला च तत्कण्ठे चण्डिकार्चकैः ॥ ४१९ ॥ दध्यौ नृपः गृहीष्यामि बलादाभरणं यदि । ततो
मेऽपयशो ग्राह्यं पुनरेतद्यथा तथा ॥ ४२० ॥ ध्यायन्नित्येष विज्ञप्तो जयदेवेन देव ! यत् । काम्पील्यपुरभूनाथमन्त्रिणो नन्दनो
ह्यसौ ॥४२१॥ न सामान्योऽस्य माहात्म्यं दृष्टं देवेन हि स्वयम् । तदर्पयित्वाऽलङ्कारं सम्मान्य च विसृज्यताम् ॥ ४२२ ॥ दध्यौ
मन्त्रिसुतः काष्ठपञ्जराद्वज्रपञ्जरे । ममाभरणमपतद्राजाथ श्रेष्ठिनं जगौ ॥ ४२३ ॥ पुनर्विज्ञपयेत्युक्त्वा भूक्षेपात् व्यसृजन् सभाम् ।
ऊचे मन्त्रिभुवा श्रेष्ठी नृपाकूतं न सुन्दरम् ॥ ४२४ ॥ स मन्यते मन्त्रिपुत्रो रुष्टो मे किं करिष्यति । उरस्कक इवेभस्य मण्डूक इव
भोगिनः ॥ ४२५ ॥ न वेत्तीति यदनयो विहितो न हि सुन्दरः । कमलाच्छादितं चक्षुर्नयमार्गं न पश्यति ॥ ४२६ ॥ मार्गभ्रष्ट-

१ नृपः । २ नृपस्य मतम् । ३ गडुरिकः ।

वासरे । गतः पुष्करिणीं तेन सह श्रेष्ठी गरिष्ठधीः ॥ ३९३ ॥ करकमछुखाम्भोजशौचं तस्य प्रकुर्वतः । गलति स्म महामू
टीयमलक्षितम् ॥ ३९४ ॥ चलति श्रेष्ठिनि गृहाभिमुखे मन्त्रिनन्दनः । तदादायाऽचलत्पृष्ठे श्रेष्ठी ससार तत्पथि ॥ ३९
परः प्राह किं यूयमाकुला इव सोऽवदत् । मुद्रारत्नं पथि क्वापि पतितं सम्प्रति स्मृतम् ॥ ३९६ ॥ आर्पयन्मन्त्रिपुत्रस्तत् तुष्टः
तमाह च । अद्यापि वर्त्तते धर्मो दृश्यन्ते त्वादृशा नराः ॥ ३९७ ॥ कलिकालस्य कालुष्यैर्नाद्याप्युर्वी कलङ्क्यते । तद्धन्यं
द्वेधा त्वादृशा यत्र सन्नराः ॥ ३९८ ॥ द्वावपि स्थानमायातावन्यदा मन्त्रिनन्दने । पटच्छन्नतनौ श्रेष्ठिहट्टासन्नमधिश्रिते ॥
स दासेरो दर्शयितुं नृपाभरणमागतः । श्रेष्ठिनोऽन्तेऽवदच्छ्रेष्ठी नृपोचितमिदं ननु ॥ ४०० ॥ प्रत्यभिज्ञाय तन्मन्त्रिपुत्रः श्रे
जगौ । उवाच च कुतस्त्वं रे ! कालीसुत[1] ! समागतः ? ॥ ४०१ ॥ ज्ञात्वापि मन्त्रिपुत्रं तं दासः प्रोवाच को भवान् ? ।
कस्त्वया सार्धमास्ते परिचयः पुरा ? ॥ ४०२ ॥ प्राह मन्त्रिसुतोऽमात्यस्यार्जुनस्य न किं भवान् ? । दासः स प्राह भ्रान्तोऽसि
मत्वं वदन्मम ॥ ४०३ ॥ श्रेष्ठी प्रोवाच तत्त्वं स्वं तत्त्वं वद स धृष्टताम् । कृत्वाह रोहणेशस्य भृत्योऽहं गङ्गनामकः ॥ ४
विक्रेतुं भूषणं प्रैषि स्वामिना मूल्यमस्य च । सुवर्णलक्षं स्मित्वाथ श्रेष्ठी प्रोवाच मूर्ख ! रे ! ॥ ४०५ ॥ असम्यगपि नो
वक्तुं वेत्सि यदेककम् । रत्नमश्रेष्ठमप्यस्य लभते स्वर्णलक्षकम् ॥ ४०६ ॥ अर्थं तु समुदायस्य कर्त्तुं शक्नोति कोऽपि न ।
रोहणोत्पत्तिर्भूपा चक्रे मृषार्थतः ॥ ४०७ ॥ त्वयार्थपातनादस्यानर्थे स्वात्मापि पातितः । हृतस्य वस्तुनो मूल्यं न जाना
तस्कराः ॥ ४०८ ॥ क्रुद्धो दासोऽवदत्कोऽहं दृष्टो युष्माभिरीदृशः । रेणुतुल्यं परद्रव्यं मम किं तद्धराम्यहम् ॥ ४०९ ॥

[1] दासीपुत्रः ।

न कार्यः
कस्यापि नान्तरा। प्रवेशो द्वारि कार्या च वाढमत्र नियन्त्रणा ॥ ४४३ ॥ बलाद्विशंश्च निःशङ्कं हन्तव्यस्तदुदीरिते। उत्तीर्यैक्षिष्ट तां वासभवने दीप्रदीपके
प्रत्ययो धूर्त्ता धूर्त्तयन्ति यतो जनम् ॥ ४४४ ॥ द्वाःस्थैरात्तस्तदादेशो यक्षस्तुङ्गतुरङ्गतः। लग्नश्चाट्टूनि
॥ ४४५ ॥ दह्यमानागुरुक्षोदघनसारसुगन्धिनि। स्थितां महार्हपल्यङ्के स्फारशृङ्गारधारिणीम् ॥ ४४६ ॥ (युग्मम्)
कर्तुं स सा संशङ्कापीतोऽभवत्। दध्यौ च किमयं चाटुकारो नव इवाद्य मे ॥ ४४७ ॥ कथं च मम दह्येते दर्शनेनास्य दृशौ[2]।
ममैष रणरणकः कथं निष्कारणस्तथा ॥ ४४८ ॥ यावत्तस्योत्तरं दत्ते न सा साशङ्कमानसा[1]। तावद्राजकुलात् द्वारे मन्त्रिराजः
समागमत् ॥ ४४९ ॥ उद्घाटयत रे द्वाराणीति द्वाःस्थानुवाच सः। साधिक्षेपं जगुस्तेथ कस्त्वं किमभिधोऽसि च ॥ ४५० ॥ स
प्राह किं रे ग्रहिला मत्ता अथ शयालवः। यद्विजानीथ नायातं मां स्वकीयमपि प्रभुम् ॥ ४५१ ॥ ते प्राहुः पूर्वगदितदोषयुक्त-
स्त्वमेव हि। परगेहप्रविशेच्छुर्गृहेशस्तु पुरा गतः ॥ ४५२ ॥ तद्गच्छ कुशलं वाञ्छन्न प्रवेशो भवादृशाम्। धूर्त्तानामत्र मत्र्याह
किं केनापि प्रतारिताः ॥ ४५३ ॥ धूर्त्तेन प्राक्प्रविष्टेन यद्गुणधवलो ह्यहम्। ते प्राहुर्गुणधवलो बलीवर्दोऽसि सत्यतः ॥ ४५४ ॥
द्वारीत्थं तुमुले जाते चेटीं सर्वाङ्गसुन्दरी। प्राह रे किमिदं साथ तं वृत्तान्तमचीकथत् ॥ ४५५ ॥ मन्त्रिपत्यथ पल्यङ्के
शृङ्गारेण सहामुचत्। ऊचे च सम्यग् विज्ञातं विना ब्रह्मव्रतं मम ॥ ४५६ ॥ विलक्षो गुह्यकस्[3]तस्यापश्यन्नास्यमवस्थितः। मन्त्री
दध्यावहो किञ्चिदचिन्त्यमिदमापतत् ॥ ४५७ ॥ प्रातः किञ्चित्प्रतीकारं कर्त्तासीति विचिन्त्य सः। विविक्तेऽगाद्गृहे तस्य निशा-
न्दमिव साभवत् ॥ ४५८ ॥ प्रातर्द्वाःस्थाय संकेतं दत्त्वा द्वारं पिधाप्य च। यक्षो राजकुलं यातो नृपं नत्वा न्यविक्षत ॥ ४५९ ॥

---

१ शङ्कया सहिता। २ नेत्रे। ३ यक्षः।

स्ततोऽवश्यं विषमोऽसौ भविष्यति । तदस्तु मे वे आदेशो याम्यहं नगरं निजम् ॥४२७॥ मया दृष्टस्त्वलङ्कारः क्राप्ययं न प्रपा-
सति । श्रेष्ठी प्राह प्रतीक्षस्व पुनर्विज्ञपये नृपम् ॥ ४२८ ॥

इतश्च गुणधवलः सचिवस्तत्र तिष्ठति । तस्य प्रिया यथार्थाख्या नाम्ना सर्वाङ्गसुन्दरी ॥ ४२९ ॥ तयोः परस्परप्रेमभरमन्थर-
चेतसोः । याति कालः कलामात्रलीलया कामलीलया ॥ ४३० ॥ अन्यदा पर्वणि क्वापि नद्यां सपरिवारिका । स्नातुं याद्वनमा-
रूढा गता सर्वाङ्गसुन्दरी ॥ ४३१ ॥ तस्यामम्भःप्रविष्टायां जितानि मुखशोभया । निःश्रीकाणि कमलानि ममज्जुर्लज्जया जले
॥ ४३२ ॥ कृतस्नानाथ मथनोत्तीर्णा सा श्रीरिवाशुभत् । तलिनैकवसनभृत् शोषयन्ती कचोच्चयम् ॥ ४३३ ॥ [1]किंकेल्लिमूले
किंकेल्लिपल्लवाभकरक्रमाम् । अद्राक्षीद्यक्ष एकस्तां तद्रूपेण च मोहितः ॥ ४३४ ॥ दध्यावहो अहो रूपं मुनीनामपि मानसम् ।
हृत्वा मन्येऽनयानङ्गो ग्रहीष्यति जयध्वजम् ॥ ४३५ ॥ तदाऽभविष्यद्यद्येषा लावण्यामृतवाहिनी । हरनेत्राग्निना नूनं ततो नाध-
क्ष्यत स्मरः ॥ ४३६ ॥ स एव देवः सुमतोऽनया यः कोऽपि मानितः । मादृशानामपुण्यानां जातिमात्रेण देवता ॥ ४३७ ॥ कथं
मे भाविनी सेयं हरामि यदि तद्भुतम् । प्रागूभर्तृविरहक्लेशान्न समीहितसाधिका ॥ ४३८ ॥ प्रत्यक्षीभूय मधुरवाक्यैरनुनयामि
चेत् । ततोऽपि नानुकूला मे सतीत्वनाटिता भवेत् ॥ ४३९ ॥ इत्थं विचिन्तयत्यस्मिन्नसौ सपरिवारिका । गता निजं गृहं यक्षस्तू-
पायांश्चिन्तयत्यलम् ॥ ४४० ॥ सन्ध्यायामन्यदा मन्त्री गतो नृपतिमन्दिरे । राजकार्याच्चिरं तस्थौ नागादवसरे निजे ॥ ४४१ ॥
तं मत्वाऽवसरं दिव्यशक्त्या पक्षो विधाय च । रूपं परिच्छदं वेषममात्यस्याविशद्गृहे ॥ ४४२ ॥ उक्ताः प्रविशता द्वाःस्था देयः

१ युष्माकम् । २ अशोकवृक्षतले ।

सर्वमयं [1]कौत्कुटिको न्यधात् । देशान्तरीयपुरुषा महाधूर्त्ता भवन्ति यत् ॥ ४७७ ॥ चित्ते पुनर्धरावीशश्चमत्कारमधारयत् ।
तदाभरणलोभान्धतयैवोन्मार्गगः पुनः ॥ ४७८ ॥ विमना दुश्चरित्रेण धात्रीभर्तुर्जनोऽखिलः । समं परशुरामेणोज्ज्वलास्येन ययौ
गृहान् ॥ ४७९ ॥ भूषणद्रव्यलाभानामुपायं ध्यायतः सतः । दिनाः परशुरामस्य यान्ति स्तुत्यस्य नागरैः ॥ ४८० ॥ स्वेषु कार्येषु
सीदन्ति महान्तोऽपि शशी यतः । विश्वं धवलयेद्विश्वं स्वाङ्कं हर्तुं न तु क्षमः ॥ ४८१ ॥ नृपस्तु छिद्रमाधातुं तदाभरणलोभतः ।
तद्वहिर्यानमार्गेषु मुद्रारत्नाद्यमोचयत् ॥ ४८२ ॥ भृत्यान् सप्रत्ययानत्र कार्येऽनार्यान्नियोजयत् । स तु धूलिवदुल्लङ्घ्य तद्याति स
मुनीन्द्रवत् ॥ ४८३ ॥ भृत्यैरेत्य यथादृष्टे कथिते पृथिवीपतिः । स्वयमाहाय चन्मन्त्रिपुत्रं चित्रं दधत् हृदि ॥ ४८४ ॥ भूषणेन
समं तेनाङ्गलग्नं भूषणं निजम् । प्रीतः प्रयच्छति स्वास्य गुणो कैर्वा न गृह्यते ॥ ४८५ ॥

अथ मन्त्रिणमाकार्य द्रव्यकोटिः प्रदापिता । तस्याप्यमितसन्मानं मन्त्रिणा बहुधाऽदधे ॥४८६॥ तुष्टस्तं पृथिवीनाथः प्रश-
शंस च संसदि । भवादृशेषु मर्त्येषु वसत्सु वसुधातले ॥४८७॥ भोगभर्त्ता बिभर्त्युर्वीमुदेत्यस्तमितो रविः । वार्धिर्नोज्झति मर्यादां
काले वर्षन्ति वारिदाः ॥४८८॥ अद्यापि च प्रवर्त्तन्ते सत्यशौचादयो गुणाः । नृपं परशुरामोऽथ नत्वागान्मन्दिरं मुदा ॥४८९॥
(त्रिभिर्विशेषकम्) श्रेष्ठिनं जयदेवं चाऽऽपृच्छ्य प्रेम्णा सुसार्थगः । सुमुहूर्ते प्रचलितः काम्पील्यपुरमागमत् ॥४९०॥ प्रविष्टो मन्दिरे
तुष्टो जनकस्तु तदागमात् । तन्नृपाभरणं तच्च नृपाभरणमार्पयत् ॥४९१॥ कालीसुतस्य वृत्तान्तमाख्यच्च निखिलं पितुः । नीतो नृपा-
न्तिकं तेनातीव सन्मानितो मुदा ॥४९२॥ इत्थं परधनग्राही स दास इव नश्यति । श्रियं श्लाघां च लभते परः परशुरामवत् ॥४९३॥

---

१ धूर्त्तः । २ समग्रम् ।

करणस्तेऽत्र मन्त्री स्वे प्रवेशं नाप वेश्मनि । यक्षप्रख्यातसंकेतसङ्गमाभावताडितः ॥ ४६० ॥ ययौ करणमद्राक्षीन्मूर्तिवेषपरिच्छदैः । तं स्वतुल्यं जनो मन्त्रियुग्मं वीक्ष्य च विस्मितः ॥ ४६१ ॥ विवदानौ च तौ यातावुपभूपं जनोऽपि च । सत्योऽहमनृतस्त्वेष इति द्वावपि चोचतुः ॥ ४६२ ॥ नृपपृष्टरहस्यानि कथयामासतुश्च तौ । शुद्धौ द्वावपि दिव्ये तौ सत्यदैवतशक्तितः ॥ ४६३ ॥ यक्षस्य क्रीडामात्रं तत्सर्वं हानिस्तु मन्त्रिणः । ततः स नगरस्यान्तः पटहेनेत्यघोषयत् ॥ ४६४ ॥ यः कश्चिदपनयति विसंवादमिमं सुधीः । द्रव्यकोटिमहं तस्योपनयामि नयाग्रिमः ॥ ४६५ ॥ वाद्यमानं च पटहं मन्त्रिपुत्रस्तमस्पृशत् । स मन्त्रिणमुपागाच्च निन्ये तेनोपभूपतिम् ॥ ४६६ ॥ सत्यमन्त्री नृपस्याख्याद्देवायमपनेष्यति । विसंवादमथ प्राह नृपो भूपणलोभभृत् ॥ ४६७ ॥ न चेत्प्रतिज्ञानिर्वाहं करोषि त्वं ततस्तव । को दण्डो मन्त्रिभूः प्राह यः प्रभोः प्रतिभासते ॥ ४६८ ॥ अथाग्रे भूमिपालस्य मन्त्रिणोर्विनिविष्टयोः । मिलितेषु प्रधानेषु पौरेष्वपि च कौतुकात् ॥ ४६९ ॥ उवाच परशुराम उभावपि हि मन्त्रिणौ । मया नयाध्वा यश्चके प्रमाणं युवयोः स यत् ॥४७०॥ ताभ्यामेवमिति प्रोक्ते मन्त्रिपुत्रोऽवदत् युवाम् । तर्हि वाचात्रयं दत्तं मुदितौ ददतुश्च तौ ॥४७१॥ ततः कलशमानाय्य न्यायवर्त्मस्थितोऽवदत् । मुखेन कलशस्यास्य प्रविश्य सहसापि यः ॥ ४७२ ॥ कोऽपि निर्याति नालेन स सत्योऽपरथा परः । अथाऽकरोत्तथा यक्षो रभसा दिव्यशक्तितः ॥४७३॥ अब्रवीत्परशुरामो न सत्त्योऽयं यतो नृणाम् । न शक्तिरेषा तद्देव्ययोनिरेषः प्रखेलति ॥ ४७४ ॥ स तु च्छलितमात्मानं मत्वा तेन मनीषिणा । यक्षो विलक्षो वेगेन गतस्तस्माददर्शनम् ॥ ४७५ ॥ मन्त्री मुदा ददानोऽथ द्रव्यकोटिं महीभुजा । निषिद्धो दुष्टचित्तेन जगदे चेदृशं स्फुटम् ॥ ४७६ ॥ इन्द्रजालमिदं

१ देवः ।

माचरत् ॥ ५१० ॥ सोथ तत्रोपितस्तस्याः कामसङ्ग्रामशिल्पवित् । कौशलं दर्शयन्नेतच्चित्तरत्नमचूचुरत् ॥ ५११ ॥ उक्तः प्रात-
स्तथात्रैव यूयं कुरुत भोजनम् । निषिद्धे तेन सोचे तन्निश्यागत्वा प्रसद्यताम् ॥ ५१२ ॥ एवमस्त्विति तां प्रोच्य स्मृत्वा मन्त्रं च
चेतसि । सोऽगाददृश्यतां तस्याः पश्यन्त्या एव तत्क्षणम् ॥ ५१३ ॥ सा दध्यौ विस्मिता सैष सिद्धो विद्याधरोऽथवा । अथागताक्का
प्रोवाच भुजङ्गः किं न दृश्यते ॥ ५१४ ॥ तद्वृत्तान्तं निवेद्यैषा प्राह शक्त्या य ईदृशः । स कथं गृह्यते ज्ञाते स्वरूपे तु शनैः शनैः
॥ ५१५ ॥ कार्यस्तद्ग्रहणोपायोऽथ सा राजकुलं ययौ । दर्शितो नृपतेरग्रे खट्वापादो मणीमयः ॥ ५१६ ॥ (युग्मम्) बभाषेन्तः
सभं भूपः पश्यतास्याः पराक्रमम् । सर्वेऽथास्थुर्विनम्रास्या मन्त्र्याद्या ह्रीभरादिव ॥ ५१७ ॥ प्राह देवकुमारोऽथ देव दीपशिखा
यदि । गुहातमोऽपनयते तत्किं दिनकृतोऽधिका ॥ ५१८ ॥ सूचीछिद्रप्रवेशे च मुशलं कुशलं न चेत् । एतावता कथं देव ! सूची
मुशलतोऽधिका ॥ ५१९ ॥ पिपीलिकामुपादातुमक्षमश्चेन्मतङ्गजः । तत्किं मतङ्गजादभ्यधिका भवति पिपीली ॥ ५२० ॥ अन्यच्च
दर्शिते चौरेऽथवा पादत्रयेऽपि हि । विज्ञैः सत्यप्रतिज्ञेयं मान्यते नाथ ! नान्यथा ॥ ५२१ ॥ अथ सा प्राह सामर्षा तव गर्वोऽस्ति
चेन्मतेः । तत्त्वं विधेहि सन्धां स्वां स प्राह तव संविदः ॥ ५२२ ॥ प्रेक्षे प्रान्ते ततः पश्चात् यत् किञ्चन करोम्यहम् । स्वयं प्रेक्षि-
ष्यसे तद्धि नराधीशोऽथ तां जगौ ॥ ५२३ ॥ (युग्मम्) भद्रे समुत्सुका माभूः क्रमशो वत्सरैरपि । पाश्चात्यपादयुगलमानायय
मलिम्लुचात्[1] ॥ ५२४ ॥ स्वयं सुशिक्षिताऽत्रार्थे शिक्षणीयासि किं शुभे ! । स्वभावधवला ज्योत्स्ना किं केनापि धवल्यते ॥ ५२५ ॥
कृतप्रसाददाना सा विसृष्टाथ महीभुजा । माति न क्वापि तुच्छा हि महिला सहजादपि ॥ ५२६ ॥

---

१ जारः ।

श्रुत्वा देवकुमारस्तद्धर्माख्यान दधौ हृदि । नातः पर परद्रव्यं हरिष्येऽहं मनागपि ॥४९४॥ वारवेश्याप्रतिज्ञां च दलयित्वा
कथञ्चन । साधूना पादमूलेऽहं प्रपत्स्ये च जिनोदितम् ॥ ४९५ ॥ ध्यात्वेति स निजं स्थानमागतो नृपमन्यदा । व्यजिज्ञपदहं
वेलाकूलं तातान्तिके गमी ॥४९६॥ यथास्त्यम्बुधौ तातो मिलित्वाहं समैमि तत् । अनुज्ञातस्ततोराज्ञा तदेथाम्बाग्रतोऽवदत् ॥४९७॥
यथा पश्चान्न जायेत चित्ते शङ्का विरूपका । जनेशस्य जनन्याश्च दत्तस्यादर्शने चिरम् ॥४९८॥ गच्छन्नध्वनि सोऽपश्यदेकं योगि-
नमुत्तमम् । तं नत्वा पत्रपूगादि स तस्य मुदितो ददौ ॥ ४९९ ॥ विनयं कुर्वता तेनाराजितो योगिनां वरः । उवाच वत्स तुष्टोऽसि
वद किञ्चिद्ददे यथा ॥ ५०० ॥ परः प्राह कृतार्थोऽहमसि वो दर्शनादपि । पूज्यपादान्पुनः सर्तुं मन्त्रमादातुमुत्सहे ॥ ५०१ ॥
येनात्मानं दर्शयितुं यस्येच्छामि स पश्यति । नत्वन्य इति तेनोक्ते तस्यायं मन्त्रमार्पयत् ॥ ५०२ ॥ ऊचे च तेऽमुतो मन्त्रात् साध्य-
सिद्धिर्भविष्यति । यस्ते सुतस्तु भावी स त्वा द्रक्ष्यति सदैव हि ॥ ५०३ ॥ सन्निवेशोऽस्य मन्त्रस्य सत ईदृश एव यत् । अथ देव-
कुमारेण पूजा तस्योचिता कृता ॥ ५०४ ॥ तमनुज्ञाप्य च स्थित्वा ग्रामे कियान् दिनान् क्वचित् । पुनः स्वपुरमायातोऽमिलन्मा-
तुर्नृपस्य च ॥ ५०५ ॥ दध्यौ च तस्या वेश्यायाः सन्धा च्छेद्या कथं मया । दत्ते रत्नमये पादे महानर्थव्ययो भवेत् ॥ ५०६ ॥
अगच्छस्तामवलयापि हि सा विजितः पुनः । द्रव्यस्य तु फलं नृणामभिमानस्य साधनात् ॥ ५०७ ॥ तस्मादेकेन पादेनाभिमानं
साधयाम्यहम् । पाश्चात्याभ्यामपि द्वाभ्यां मम भावि समीहितम् ॥ ५०८ ॥ ध्यात्वेति प्राच्यगुटिकाप्रभावादन्यरूपभृत् । जनै-
रदृश्यमानोऽन्यैः सायं मन्त्रप्रभावतः ॥ ५०९ ॥ गतस्तस्या गृहे पादं मणिमयमदर्शयत् । अक्का स्वदुहितुश्चाख्यत्साभ्युत्थानादि

१ समुद्रतीरे ।

|| ५४३ || स्वनामशङ्कितो दध्यौ स किं ज्ञातोऽनयास्म्यहम् । यद्वालं शङ्कया पुत्रस्योपमानमियं ददौ || ५४४ || उत्कण्ठितः स
तां प्राह तं दर्शय ममाग्रतः । मणिपालनकादेनमानीयादर्शयच्च सा || ५४५ || स तं सितमुखं स्वस्य तुल्यं सम्मुखवीक्षकम् ।
स्नेहेन लालयामास चुचुम्ब च मुहुर्मुहुः || ५४६ || दध्यौ च सूचयत्यस्याचारोपि मम पुत्रताम् । देवेनैवंविधः सैष निर्ममे तु
पणस्त्रियाम् || ५४७ || भुजङ्गमपरीवारस्तदयं चन्दनद्रुमः । निधानं प्रकटं चैतदुग्रभूतैरधिष्ठितम् || ५४८ || रत्नमेतन्महामूल्यं परं
पामरपाणिगम् । अयमर्गलितो हीनकुले श्वेतमतङ्गजः || ५४९ || इत्थं हर्षविषादानां विषयं स्वं निरुध्य सः । हसन्नाह ममातुल्यं
कथं वक्षि ममाङ्गजम् || ५५० || ह्रिया तस्यामधोमुख्यां चिरात्तेन निजाङ्कतः । तस्याः समर्पितः पाण्योरर्भको भणिना च सा
|| ५५१ || अमुं कत्यपि वर्षाणि मोचयान्यगृहे पुनः । यदि वाञ्छसि कल्याणं सा दध्यौ ज्ञानवानयम् || ५५२ || तत्पश्यत्यशिवं
किञ्चिदिति तस्य वचो व्यधात् । धात्रिकासूत्रणां कृत्वा स्वयं सारां करोति च || ५५३ || स चातिरुचिरस्तस्याः प्राणेभ्योऽपि हि
वल्लभः । सज्जनस्नेहवद्वृद्धिं प्रयाति प्रतिवासरम् || ५५४ || पद्मश्रीवारवेश्यायाश्चौरादजनि नन्दनः । जातमात्रालगोपालमिति
सर्वत्र विश्रुतम् || ५५५ ||

राज्ञेऽन्यदा सदःस्थेऽस्यामागतायां च संसदि । नृपं व्यज्ञपयद्देवकुमारः स्फारवागिति || ५५६ || देव! चौरस्य वार्तापि
नष्टास्याः सन्धया सह । चौरात्पुत्रेण जातेनाथ तां सन्धामपूर्यसौ || ५५७ || तेनेत्युक्ते महीपालोऽहसत्सभ्यजनैः सह । सज्जलज्जा
तु पद्मश्रीरभूद्बैधाप्यवाङ्मुखी || ५५८ || तामाश्वास्य नृपो देवकुमारं प्राह नन्वहो! कथं स गृह्यते चौरो योऽदृश्यो भवति क्षणात्

१ बद्धः ।

निश्यदृश्य प्रविश्यैष पद्मश्रीसंज्ञया तया । कृतोचितप्रतिपत्तिः पल्यङ्के विनिविष्टवान् ॥ ५२७ ॥ विनापि हि ग्रहणक-
मायातः सः तयादृतः । रञ्जितः क्रमशो दाता यत्पादाग्रपरावपि ॥ ५२८ ॥ सयते रमते वक्ति तेनाऽमा तावदेव सा । यावत्
सुखायते तस्य चित्तावर्जनहेतवे ॥ ५२९ ॥ वीक्षते च तदङ्गानि स तु निद्राति तत्र न । अविश्वसन्न चात्मानमल्पमप्यर्पयत्यलम्
॥ ५३० ॥ निमिषैस्तु तयाऽज्ञायि नृसिद्धोऽयं न देवता । प्रातस्तयाऽदृश्यमानः स ययौ निजमन्दिरम् ॥ ५३१ ॥ इति यात्येत्ययं
नित्यं तद्गृहे ग्रहणं विना । त्यजत्यपत्यसम्भूतिवासरास्तु प्रयत्नतः ॥ ५३२ ॥ प्रत्यहं तस्य वृत्तान्तं राज्ञे विज्ञपयत्यसौ । अपत्य-
सम्भवदिनहानं चाप्यद्विशेषतः ॥ ५३३ ॥ राज्ञोचे तत्किमप्यस्य चिन्त्यं मर्मपदं ततः । नैकदा तद्दिनं तेनाज्ञायि गुंर्व्यथ साभ-
वत् ॥ ५३४ ॥ स प्राह प्रकटे गर्भे कुतो गर्भस्तवाभवत् । तयोचे भवतो दध्यौ सोऽप्येषा भाषते मृषा ॥५३५॥ स कालो यन्मया
त्यक्तोऽनया तु चलचित्तया । कोऽप्यन्यो रमितो नान्यपुत्रान्मेऽस्ति ततो भयम् ॥ ५३६ ॥ ममैव तनयः स्याच्चेत्करिष्येऽहं तत-
स्तया । यथा स मम रूपं न सर्वथापि विलोकते ॥ ५३७ ॥ किमर्वाक् कातरत्वेन तत्तदा चिन्तयिष्यते । स ध्यात्वेत्याभिन्न-
मुखरागे मौनं समाश्रयत् ॥ ५३८ ॥ तया गर्भव्यतिकरे नरेशस्य निवेदिते । स प्राह रक्ष यत्नेन गर्भं तत्सम्भवं शुभे ! ॥५३९॥
अथ गर्भानुभावेन सस्नेहा सा व्यचिन्तयत् । दापयिष्याम्यंमुष्याहं प्राणानामभयं नृपात् ॥ ५४० ॥ सम्पूर्णे समयेऽसूत सुतं सा
कैतिथैर्दिनैः । स तामूचे मोचयैनं गृहेऽन्यत्र सधात्रिकम् ॥ ५४१ ॥ अन्यथा नागमिष्यामि गृहेऽहं प्राह सा ततः । कारयिष्यसि
यत्त्वं च करिष्ये तदहं प्रिय ! ॥ ५४२ ॥ पर देवकुमाराभं प्रत्यक्षं प्रेक्ष्य नन्दनम् । निजं स्वनेत्रनिर्माणे प्राणेश ! सफलीकुरु

---

१ तेन सह । २ गर्भिणी । ३ कतिपयैः ।

तस्यापि शक्तिः पुत्रे न स्फुरतीत्यधिकः सुतः
वदन्त्यम्बापि विस्मिता ॥५७७॥ श्यामं पश्याम्यहं मिथ्या सुतः सत्यं तु पश्यति । ॥५७९॥ ध्यात्वेत्युक्ता तया दासी
॥५७८॥ स मन्येऽत्रैव वास्तव्यः स्वोपलक्षणभीरुकः । नात्मानं दर्शयत्यस्य कुर्वे परिचितं ततः ॥ ५८० ॥ पद्मश्रीरन्यदैकान्ते नरनाथं व्यजिज्ञपत् । देव !
त्वया कत्यपि वासरान् । दर्शनीयः पिताऽर्भस्य यथा तेनोपलक्ष्यते ॥ निविश्य दर्शयित्वा च नरानेकैकशोऽपि हि
देह्यभयं चौरलब्ध्युपायं यथा दधे ॥ ५८१ ॥ नृपेणानुमते सोचे देव! देवकुले निजे । ॥ ५८३ ॥ ते पूर्वेण प्रवेश्याश्च
॥ ५८२ ॥ सुतं पृच्छत पार्श्वस्थं तवायं स्यात्पिता न वा । तलारक्षनरैश्चाकारणं कार्यं गृहे गृहे ॥ ५८४॥ (त्रिभिर्विशेषकम्) नृपेणाथ तथारब्धे प्रघोषो
निस्सार्याः पश्चिमेन च । डिम्भः प्रत्यभिजानाति यं स चौरः सुनिश्चितम् । नृपेणोद्दशमारम्भि
नगरेऽभवत् । श्रुत्वा देवकुमारस्यातुल्यं शल्यमभूद् हृदि ॥ ५८५॥ दर्शितोऽहं तया मन्ये सुतस्य कथमन्यथा । ॥५८७॥
भाव्यं भवति नान्यथा ॥५८६॥ न तोकं द्वादशाब्द्यापि प्राप सौभाग्यमञ्जरी । स्वल्पैरपि दिनैस्त्वेषा पापं छन्नं न तिष्ठति ॥ तत्तावत्तत्र गच्छामि यद्भाव्यं
उपायं न प्रपश्यामि किञ्चिद्यद्वा पराङ्मुखे । नश्यन्ति बुद्धयो दैवे सुनिश्चितधियामपि ॥ ५८८ ॥ प्रवेश्यमानानेकैकानाऽपृ-
तद्भविष्यति । दत्तजः स्वयमेवायं तत्र देवकुले गतः ॥ ५८९ ॥ तलारक्षनरैस्तत्र प्रधानपुरुषान् क्रमात् । ॥ ५९१ ॥
च्छन्नृपतिः शिशुम् ॥ ५९० ॥ अथ देवकुमारोऽपि प्रस्तावे तैः प्रवेशितः । स धृष्टत्वमवष्टभ्य प्रविष्टः कष्टवर्जितः ॥ विस्मितोऽथ नृपो देवकुमारं प्राह
प्रणम्यात्र स्थिते बालं प्राह सर्वंसहाप्रभुः । तव तातो भवत्येष स प्राह सुतरामिति ॥ ५९२ ॥ प्राहाभयं तवाख्याहि
किं तव । इदं विलसितं तेन प्रोचे देव ! सुनिश्चितम् ॥ ५९३ ॥ तस्य बुद्धिप्रपञ्चेन राजा रञ्जितमानसः । पद्मश्रिया तव कृते कथं वा याचितोऽभयम्
कथं पादास्त्वया हृताः ॥ ५९४ ॥ कथं वा सुत एव त्वामीक्षते नापरो जनः ।

॥ ५५९ ॥ किं चैवंविधशक्तिः स सर्वं मुष्णाति नो पुरम् । यत्तन्मन्ये जनस्योपरोधेन करुणामयम् ॥ ५६० ॥ अथ प्रोवाच
पद्मश्रीर्देव ! एतावदेव किम् । वच्मि शक्तिफलं तस्य सर्वशक्तिमयो हि सः ॥५६१॥ येन कौशिकिलत्वेन गृहीता पादुका अपि । न
पुनर्द्रव्यलोभेन यातः सर्वक्षमो हि सः ॥५६२॥ ततः प्राप्तोऽपि देवस्य स हन्तुं नैव युज्यते । अथाह दत्तभूर्देवाराधिनेयं प्रमोषिणा
॥ ५६३ ॥ उपायेन वदेतेन तस्य प्रार्थयतेऽभयम् । शक्तिस्तस्याधिका यस्या वेश्यापि यदगात् कृता ॥ ५६४ ॥ अथ प्राह नृपः
प्राप्तः स यदा भविताऽनया । तदाहमभयं तस्यावश्यं दास्यामि नानृतम् ॥ ५६५ ॥ वेश्या महाप्रसादोऽभूदिति प्राह सगद्गदा ।
दध्यौ श्रेष्ठिसुतः सम्यगगौ मय्यनुरागिणी ॥ ५६६ ॥ वचनस्य विशेषेणानुरागो हि प्रशस्यते । माधुर्यं सहकारस्य यथा वर्णवि-
शेषतः ॥ ५६७ ॥ राजा विसृष्टोऽथास्थानात् समग्रोऽपि सभाजनः । प्रणामपूर्वकं स्वस्थानकानि समाददत् ॥ ५६८ ॥

अथ देवकुमारस्य सुतोऽभूत्पञ्चवार्षिकः । मातुस्योपचयेनैष ज्ञायते त्वष्टवार्षिकः ॥ ५६९ ॥ पितरौ प्रेक्ष्य डिम्भानां मुग्धः
स्वाम्बामुवाच सः । कथं मे जनको नास्ति इतिरा साह तिष्ठति ॥ ५७० ॥ तन्मे दर्शय सा प्राह दर्शयिष्यामि ते प्रगे । निश्या-
गतस्य तस्याख्यत्सुतोक्तं साथ सोपि धां ॥ ५७१ ॥ रहस्यभेदभीत्याह निषिद्धासि मया ननु । नानैषोऽत्र सुतः सोपालम्भं
सा प्राह तं प्रति ॥ ५७२ ॥ (युग्मम्) मन्ये पञ्चमयस्त्वं यच्चिरादपि दिदृक्षसि । न समुत्कण्ठितं पुत्रं चिरत्वं च दयो हृदि
॥ ५७३ ॥ अयं ध्रुवं यथावस्थः स्वसुतेन निरीक्ष्यते । तत्प्रच्छन्नं समानाय्य करिष्येथ परीक्षणम् ॥ ५७४ ॥ एत्यात्वेत्यशिक्ष-
यच्चेटीं गवाक्षेण तुरुः पिता । दर्शनीयस्त्वया छन्नमथ चेटी तथानयत् ॥ ५७५ ॥ अपृच्छच्च नरं मातुः पार्श्वे पश्यसि वा
न वा । स प्राह सुष्ठु पश्यामि सोचे वर्णेन कीदृशः ॥ ५७६ ॥ स प्राह स्वर्णवर्णोऽस्ति द्वितीयदिवसेऽथ च । सुते सुप्ते सुवर्णाभं

वदन्त्यम्बापि विस्मिता ॥५७७॥ श्यामं पश्याम्यहं मिथ्या सुतः सत्यं तु पश्यति । तस्यापि शक्तिः पुत्रे न स्फुरतीत्यधिकः सुतः
॥५७८॥ स मन्येऽत्रैव वास्तव्यः सोपलक्षणभीरुकः । नात्मानं दर्शयत्यस्य कुर्वे परिचितं ततः ॥५७९॥ ध्यात्वेत्युक्ता तया दासी
त्वया कत्यपि वासरान् । दर्शनीयः पिताऽर्भस्य यथा तेनोपलक्ष्यते ॥ ५८० ॥ पद्मश्रीरन्यदैकान्ते नरनाथं व्यजिज्ञपत् । देव !
देह्यभयं चौरलब्ध्युपायं यथा दधे ॥ ५८१ ॥ नृपेणानुमते सोचे देव ! देवकुले निजे । निविश्य दर्शयित्वा च नरानेकैकशोऽपि हि
॥ ५८२ ॥ सुतं पृच्छत पार्श्वस्थं तत्रायं स्यात्पिता न वा । तलारक्षनरैश्चाकारणं कार्यं गृहे गृहे ॥ ५८३ ॥ ते पूर्वेण प्रवेश्याश्च
निस्सार्याः पश्चिमेन च । डिम्भः प्रत्यभिजानाति यं स चौरः सुनिश्चितम् ॥ ५८४ ॥ (त्रिभिर्विशेषकम्) नृपेणाथ तथारब्धे प्रघोषो
नगरेऽभवत् । श्रुत्वा देवकुमारस्यातुल्यं शल्यमभूद् हृदि ॥ ५८५ ॥ दर्शितोऽहं तया मन्ये सुतस्य कथमन्यथा । नृपेणेदृशमारम्भि
भाव्यं भवति नान्यथा ॥५८६॥ न तोकं द्वादशाब्द्यापि प्राप सौभाग्यमञ्जरी । स्वल्पैरपि दिनैस्त्वेषा पापं छन्नं न तिष्ठति ॥५८७॥
उपायं न प्रपश्यामि किञ्चिद्यद्वा पराङ्मुखे । नश्यन्ति बुद्धयो दैवे सुनिश्चितधियामपि ॥ ५८८ ॥ तत्तावत्तत्र गच्छामि यद्भाव्यं
तद्भविष्यति । दत्तजः स्वयमेवायं तत्र देवकुले गतः ॥ ५८९ ॥ तलारक्षनरैस्तत्र प्रधानपुरुषान् क्रमात् । प्रवेश्यमानानेकैकानाऽपृ-
च्छन्नृपतिः शिशुम् ॥ ५९० ॥ अथ देवकुमारोऽपि प्रस्तावे तैः प्रवेशितः । स धृष्टत्वमवष्टभ्य प्रविष्टः कष्टवर्जितः ॥ ५९१ ॥
प्रणम्यात्र स्थिते बालं प्राह सर्वंसहाप्रभुः । तव तातो भवत्येष स प्राह सुतरामिति ॥ ५९२ ॥ विस्मितोऽथ नृपो देवकुमारं प्राह
किं तव । इदं विलसितं तेन प्रोचे देव ! सुनिश्चितम् ॥ ५९३ ॥ तस्य बुद्धिप्रपञ्चेन राजा रञ्जितमानसः । प्राहाभयं तवाख्याहि
कथं पादास्त्वया हृताः ॥ ५९४ ॥ कथं वा सुत एव त्वामीक्षते नापरो जनः । पद्मश्रिया तव कृते कथं वा याचितोऽभयम्

। ५९५ ॥ सोऽथ व्यजिज्ञपत्सन्ति तथैव मणिपादकाः । कृत्वा प्रमादं देवस्तानक्षतानाददातु तत् ॥ ५९६ ॥ अभिमानवशेनैव
र्वमेतन्मया कृतम् । दुष्करं न पुनर्द्रव्यलालसेन मनागपि ॥ ५९७ ॥ पुत्र एवेक्षते यत्तु तत्रैतदेव ! कारणम् । गुटिकामन्त्रमा-
त्म्यमिदमीदृशमेव यत् ॥ ५९८ ॥ तया त्वभयदानं यत् ययाचे मम हेतवे । डिम्भमम्भूतिसम्भूतः प्रतिबन्धोऽत्र कारणम्
। ५९९ ॥ तया न रुचिरं चक्रे त्वभयं याचमानया । यतो न कोऽपि शक्नोति कर्तुं मम पराभवम् ॥ ६०० ॥ स विशुद्धदया-
द्यो ह्यस्योप्यजनि चक्षुषाम् । पुनरजनि व्यक्त्या च तस्य राज्ञातिरञ्जितः ॥६०१॥ पञ्चमन्त्रिशतीमुख्यं तं व्यधान्मुदितश्च सः ।
श्रीरपि सन्तुष्टा पूर्णया स्वप्रतिज्ञया ॥ ६०२ ॥ असाध्यान्यपि कार्याणि सेत्स्यन्त्यनेन मन्त्रिणा । इत्यानन्देन नो माति मही-
थो महीतले ॥ ६०३ ॥ सुतेन बोधिताम्बापि सुधामधुरया गिरा । आनायिता गृहे पत्नी परिणीता च सादरम् ॥ ६०४ ॥
भाग्यमञ्जरी सापि पद्मश्रीश्च सुतान्विता । गृहीतश्चार्हतो धर्मः श्रीगुणाकरसूरितः ॥ ६०५ ॥ तदीयमतिमाहात्म्यात्तस्य राज्ञः
रे नृपाः । अखर्वगर्वयुक्ता अप्यभूवन्सहसा वशाः ॥ ६०६ ॥ प्रवर्धमाने भूपस्य प्रसादे प्रतिवासरम् । सर्वेषामपि सौख्यानां स
जनमजायत ॥६०७॥ इत्थं पितुर्मृत्युविधायि देवकुमारवृत्तं दयिते ! निशम्य । मनोरथं कः कुरुते सुतस्योत्पत्तावुदित्वा विरराम
सः ॥ ६०८ ॥ इह भुवनभानुभानुश्रियोः शुभायां प्रवेशमह उक्तः । देवकुमारस्य कथा तदन्तरे परशुरामकथा ॥ ६०९ ॥

इति श्रीराजगच्छे श्रीमानतुङ्गाचार्यविरचिते श्रेयांसचरिते महाकाव्ये भवत्रयनिबद्धे
प्रथमभववर्णने श्रीभुवनभानुप्रवेशमहोत्सववर्णनो नाम तृतीयः सर्गः ।

चतुर्थः सर्गः ।

अथेति कलहंसेन प्रोक्ते प्रोवाच हंसिका । स एको यद्यभूदीदृक् तत्किं सर्वेऽपि तादृशाः ॥ १ ॥ सर्वेपि शृङ्गिणो अश्वाच-
तुर्थः फलाः किं कटवोऽखिलाः । शास्त्रे प्रियतम ! प्रोक्ता नन्दना हि चतुर्विधाः ॥ २ ॥ यो गुणैरधिकस्तातात्सोऽतिजातः प्रकी-
र्तितः । तुल्यः सुजातो हीनस्तु हीनजात इतीरितः ॥ ३ ॥ कुलाङ्गारः स तु ज्ञेयो दहेद्यः सकलं कुलम् । अर्ज्या च सुतसम्पत्तिः
सुन्दरा च यथा तथा ॥ ४ ॥ सोढं हि दत्तजेनापि दुःखं तातकृते बहु । भाव्यान्मृतः पिता नाम्ना नष्टं संतानमेव च ॥ ५ ॥ एका-
न्तेन पुनः पित्रोर्दत्ते कोऽपि सुखं यतः । विनयादिगुणैर्युक्तो यथा प्रागपराजितः ॥ ६ ॥ हंसः प्राह प्रियतमे ! कोऽयं नामापरा-
जितः । कथं वा सौख्यदः पित्रोरित्युक्ते हंसिकाऽवदत् ॥ ७ ॥

जयन्तीत्यस्ति नगरी जयन्ती स्वःपुरीं श्रिया । तत्रास्ति भूमिपु स्थामा विजयी जयशेखरः ॥८॥ तस्य चास्ति महादेवी नामतो
गुणसुन्दरी । तयोर्यान्ति सुखमया दिवसा देवयोरिव ॥ ९ ॥ सान्यदा फलितं चूतं स्वप्ने प्रेक्ष्य व्यबुध्यत । आख्यच्च राज्ञे स
प्राह सुपुत्रस्ते भविष्यति ॥ १० ॥ विनीतात्मा स राज्यस्य धौरेयश्च भविष्यति । एवमस्त्विति सा प्रोच्य शकुनग्रन्थिमाददे
॥ ११ ॥ तस्थौ च जाग्रती देवगुरुस्मृतिपरायणा । प्रभातसमये चैत्यपाठीन्मङ्गलपाठकः ॥ १२ ॥ सूर्योदयेऽधुना देव ! ययुराशाः
प्रकाश्यताम् । तत्कल्पानि कार्याणि कुरु सम्प्रति भूपते ! ॥ १३ ॥ दध्यौ नृपः प्रियास्वप्नसम्बद्धं बन्दिनो वचः । कृत्वाथ नित्य-

१ बलवान् ।

कल्यान्यानुहाय गमपाठकान ॥१४॥ बहुमानेन सन्मान्य तेभ्यः स्वयं न्यवेदयत्। ते प्रादुर्गविता देव! सुतः सर्वगुणैर्युतः ॥१५॥
तथाहि त्यागवान् भोगी गम्भीरो विनयी नयी। शूरो धीरो महाधर्मी परोपकरणोद्यतः ॥ १६ ॥ तानाह नृपतिस्तुष्टो गजाश्व-
रत्नं वसु। यद्गृहीतुमहो राज्यात् क्षमा गृहीत तत् स्वयम् ॥ १७ ॥ तेऽरूचे विगतस्पृहैर्मेदं देव! नः प्रति। सविस्मयः सुतस्या-
नुसारतस्तदियं मतिः ॥ १८ ॥ रत्नगर्भेव देवी तद्गर्भरत्नमपालयत्। अभूच तत्प्रभावेण वल्लभा भूभुजोऽधिकम् ॥१९॥ अपूरयद्
यत्नस्या दौहृदं भूतसौहृदम्। समये परिपूर्णे च सुतरत्नमसोदसौ ॥ २० ॥ नृत्यद्विलासिनीवर्गसुव्यक्तमुक्तावलापकम्। आनन्द-
कन्दलीकन्दं वर्धापनमजायत ॥२१॥ मामतीतेऽस्य वालस्य नाम चक्रेऽपराजितः। न पराजेष्यते केनाप्ययमित्थं दृपस्तुपः ॥२२॥
धात्रीभिः पञ्चभिर्लाल्यमानोऽवर्धिष्ट स क्रमात्। कलाचार्यादकलयत्स कलाः सकला अपि ॥२३॥ अथ तारुण्यमाजोऽस्य दृष्टिर्ह्रापि
विस्तृता। विक्रमेण समं वक्षःस्थलं विपुलतां श्रितम् ॥ २४ ॥ अवर्द्धत बलं बाह्वोरुत्साहेन सहाधिकम्। दयुरङ्गानि लालित्यं
भारत्याः कलया सह ॥ २५ ॥ समं जनानुरागेण रागोऽभूत्करयोरपि। विवेकेन सहोद्धारां देहकान्तिरवाप च ॥ २६ ॥ कलाक-
लापकलितः सुरूपो विनयान्वितः। जनानामपि जज्ञे स प्रियो जनिष्ठवो यथा ॥२७॥ पाणिग्रहणयोग्यं तं मत्वा श्रेणीनराधिपः।
प्रधानान्प्रैरयद्देशेषु नृपकन्या निरीक्षितुम् ॥ २८ ॥ कुमारस्तु परिजने सत्यप्यादेशकारिणि। आदेशं कुरुते पित्रोः स्वयं विनयवो
कृतम् ॥ २९ ॥

अन्यदा वाह्यकेलि स गतो वाहनवाहयत्। जातश्रमश्च कङ्केल्लितरुमूलेमुपाविशत् ॥ ३० ॥ तत्र तिष्ठति भूपालसुते रेणु-

---

१ सर्वाद्रीणाम्। २ अधात्। ३ सहोल्लसत्सुखे।

भरोऽस्फुरत् । तस्मिन्ससम्भ्रमे वाद्यरवोऽभूच्च श्रवोऽतिथिः ॥ ३१ ॥ परचक्रं समेतीति बहिर्वासी जनोऽखिलः । अन्तर्विशन्न माति स गोपुरेषु पृथुष्वपि ॥ ३२ ॥ नृपोऽपि तुमुलं श्रुत्वाऽपृच्छदासन्नपूरुषान् । तेभ्यो ज्ञातारिवृत्तान्तो यात्राभेरीमवादयत् ॥ ३३ ॥ ऊचे च सज्जतां सैन्यं चतुरङ्गमपि क्षणात् । आकार्यतां कुमारश्च त्वरितं वाह्केलितः ॥ ३४ ॥ तं मुक्त्वात्र यथा शत्रून् जेतुं यामो वयं स्वयम् । सैन्यं सज्जमभूदागात्प्रधानश्चापराजितम् ॥ ३५ ॥ स प्राहाहूयते देवः स्वयं रिपुरणोन्मुखः । ऊचे चादृष्ट-युद्धोऽसि तन्न स्थेयं युधि त्वया ॥ ३६ ॥ कुमारः प्राह तातस्यादेशः शिरसि मे सदा । तथाप्येनमविनयं तातः सहतु मत्कृतम् ॥ ३७ ॥ कथं च मयि सत्यूर्जे[1] योद्धुं तातस्य युज्यते । त्वया न दृष्टं प्राक् युद्धं तातपादा यदादिशन् ॥ ३८ ॥ तत्र विज्ञप्य-मीदृक्षं ज्ञायते दृष्टमेव किम् । अदृष्टमपि यद्ग्रन्थबलेन ज्ञायतेऽखिलम् ॥ ३९ ॥ ममात्र जैन्ययात्रायां[2] तातपादप्रसादतः । कर-ग्रहः कुमारस्य भविष्यति जयश्रियाः ॥४०॥ गत्वा विज्ञप्यतां तातो मम साहाय्यहेतवे । न प्रहेया चमूर्ध्वान्तध्वंसेऽरुणसखो ह्यलम् ॥ ४१ ॥ प्रधानेनेति विज्ञप्ते नृपस्तोपादभापत । ज्ञायते मम पुत्रो यदीदृक् चित्तं शिशोरपि ॥ ४२ ॥ प्रधानाः प्रोचिरे युक्तं सिंहः सिंहस्य नन्दनः । रविरेव रवेर्बिम्बं कल्पद्रुश्च तदङ्कुरः ॥ ४३ ॥ नृपः प्राह कुमारेण निषिद्धापि पताकिनी[3] । प्रेष्यतां वाततुन्नो हि वह्निर्दहति काननम् ॥ ४४ ॥ चक्रव्यूहं कुमारोऽथ विनिधाय स्वचक्रगम् । सम्मुखः परचक्रस्याजनि चक्रधरप्रभः ॥ ४५ ॥ तदा-नोद्धुषितं[4] वर्यवर्मण्यस्य वपुर्ममौ । उत्साहो द्विगुणश्चासीत्स्फुरिते दक्षिणेऽक्षिणि ॥ ४६ ॥ दृश्यते केवलं दीप्यमानमायुधमण्ड-लम् । पताकाः पवमानेन कम्पमानाश्च सर्वतः ॥ ४७ ॥

---

१ बलवति । २ युद्धयात्रायाम् । ३ सेना । ४ रोमाञ्चितम् ।

इतश्च विजयो नाम प्रधानः प्रहितः पुरा । जयशेखरराजेन परसैन्यात्स आगमत् ॥ ४८ ॥ अपृच्छच्च बलमिदं किमर्थं समनह्यत । कश्चात्र सैन्यनाथोऽस्ति प्राहैकोऽथ महापुमान् ॥ ४९ ॥ आगच्छतोऽस्य सैन्यस्याद्यः सैन्यं प्रगुणीकृतम् । सेनानीश्च कुमारोऽत्र गारकसेन संयति ॥ ५० ॥ स सित्वाह कुमारः क तं च वेत्री न्यवेदयत् । कुमाराय तदादेशाद्वेत्रिणाथ प्रवेशितः ॥ ५१ ॥ स च प्रणम्य साष्टाङ्गं निविष्टो दापितासने । कुमारस्तं सितमुखं वीक्ष्य चित्ते व्यचिन्तयत् ॥ ५२ ॥ मुखश्रीरस्य दुःसाधसाधितस्वामिकार्यताम् । निवेदयति नेदृक्षा मुखश्रीर्यदनेहसि ॥५३॥ ध्यात्वेत्याह कुतो यूयमागताः कः समेत्ययम् । स प्रोवाच कुमारस्य जयश्रीर्नामितः प्रिया ॥ ५४ ॥ एतस्या अत एवाहं सैन्यादस्मि समागतः । कुमारः प्राह नो हासवेला वद यथातथम् ॥ ५५ ॥ स प्राह देवपादानां कथ विज्ञप्यतेऽन्यथा । कुमारेण कथमिति प्रोक्ते स प्राह सम्मदात् ॥ ५६ ॥ आदिष्टोऽहं पुरा देवपादैस्त्वदनुरूपकाः । कन्या निरीक्षितुं ताश्च सर्वत्रापि गवेषिताः ॥ ५७ ॥ चित्रस्थितभवद्रूपसदृशी कापि तासु न । नगरेऽथागममहं नामतः कुसुमाकरे ॥ ५८ ॥ क्षत्रावतंसकुसुमावतंसस्य महीपतेः । कुसुमश्रीमहादेवीकुक्षिजेयं सुताद्भुता ॥ ५९ ॥ अन्यदा च समागच्छत्सुरभिः सुरभिः सुमैः । यत्र निर्यान्ति चैश्वर्यैः समं विरहिजीवितैः ॥ ६० ॥ जनेन रागिणा सार्धं बद्धस्पर्धैरिवाधिकम् । किंशुकैरपि पुष्पेषु रागो नीतः प्रकाशताम् ॥ ६१ ॥ दोलन्ति यत्र दोलाश्च चित्तानि च वियोगिनाम् । तपन्ति यत्र पान्थस्त्रीमनांसि रविणा सह ॥ ६२ ॥ विलासैः श्रीमता सार्धं वर्द्धन्ते यत्र वासराः । जाता विरहिणीदुःखं निरीक्ष्यैव निशाः कृशाः ॥ ६३ ॥

---

१ पुरे । २ समर्थं ।

अथ विसयशोकानामभवद्भाजनं जनः । चक्रन्द राजपुत्री तु दैवोपालम्भगर्भितम् ॥ ९८ ॥ विप्रयोगं ददानेन कुमारेण
समं मम । कृतान्त! किं त्वया प्रापि पीयूषे क्षिपता विषम् ॥९९॥ 'वैधेयोऽसि विधे! सृष्ट्वा नृरत्नं तादृशं हरन् । निर्दयो वज्रहृद्दु-
ष्टचरितश्च त्वमेव हि ॥ १०० ॥ हा प्राणनाथ! कल्पद्रोस्तव दूरेऽस्तु मे फलम् । न पाणिपल्लवोप्याप्ति मयका मन्दभाग्यया
॥ १०१ ॥ किं च प्रिय! ममाख्याहि सुन्यस्तोऽपि मया हृदि । तस्मिन्नस्फुटिते नाथ! सहसा निर्गतः कथम् ॥ १०२ ॥ विल-
पन्तीति सा बाढं मूर्च्छिता भूतलेऽपतत् । उपचारैश्च बहुभिः पुनर्जज्ञे स चेतना ॥१०३॥ उवाच विरहे पत्युर्ज्वलनः शरणं मम ।
यदुत्तमकुलस्त्रीणामिदमेवोचितं भवेत् ॥ १०४ ॥ नृपो जगाद मा खेदं कुरु वत्से! यतस्तव । न पाणिग्रहणं तेन योग्यतास्त्यपरे
वरे ॥ १०५ ॥ सा प्राह तातपादानां वक्तुं नैतद्धि सङ्गतम् । व्यवहारो ह्ययं भर्ता स तु यो मानितो हृदि ॥ १०६ ॥ तन्मे
स एव शरणमथवासौ हुताशनः । अलं कालविलम्बेन यद्दूरे याति वः सुतः ॥ १०७ ॥ कथं निवर्तनीयेयमित्यार्त्तमनसोस्तदा ।
नृपदेव्योर्विससार दुःखं सुतवियोगजम् ॥ १०८ ॥ नृपो जयश्रियं प्राह वत्से! मम निदेशतः । मासमेकं प्रतीक्षस्व यथा शुद्धिं
विधापये ॥१०९॥ दुर्ग्रहाभिग्रहा तस्थौ सापि देव्यपि दुःखतः । नृपस्त्वकारयत् शुद्धिं सर्वत्र प्रेष्य सादिनः ॥ ११० ॥ आघोषणा
नरेन्द्रेण पुरीमध्येऽपि कारिता । कुमारशुद्ध्याख्यात्रे स्वराज्यस्यार्धं ददाम्यहम् ॥ १११ ॥ प्रधानगमनाज्ज्ञातोदन्तः कन्यापितापि
हि । सर्वत्राशोधयत्प्रेष्य सादिनोऽनवसादिनः ॥ ११२ ॥ तत्पित्रोरुभयत्रापि त्यक्तराज्याङ्गकार्ययोः । कल्पकल्पा दिना यान्ति
दुःखसाम्राज्यशालिनोः ॥११३॥ त्रिंशत्तमे दिने कन्या प्राह पूर्णोऽधुनावधिः । तदादिशत येनाहं करोमि स्वसमीहितम् ॥११४॥

१ मूर्खः ।

शेपकम् । नैव यावदिहायाति कन्यासैन्यं समेति तत् ॥ ८१ ॥ विसृज्य बलसम्बाहं कुमारः स्थानमागमत् । जनं संस्थापयामास
यावं चारश्चपूरुपैः ॥ ८२ ॥

नृपः कन्यागमोदन्ते विजयेन निवेदिते । तं देशनायकं चक्रे प्रसादविशदाननः ॥ ८३ ॥ कन्यासैन्यस्य चावासस्थानकानि
न्यधापयत् । प्रधानान्सम्मुखान्प्रेष्य सर्वमातिथ्यमातनोत् ॥ ८४ ॥ अन्यदा च तदावाससमीपेनापराजितः । इभारूढो व्रजन्
रङ्गतुरङ्गमचमूवृतः ॥ ८५ ॥ शुभन् शुभ्रातपत्रेण वीज्यमानश्च चामरैः । अखण्डचण्डदोर्दण्डमण्डलाधिपमण्डितः ॥ ८६ ॥
विराजमानो नेपथ्यच्छाययातीवतीव्रया । तस्या दृष्टिसुधावृष्टिरजायत कुमारतः ॥ ८७ ॥ (त्रिभिर्विशेषकम्) अचिन्तयच्च सा नैष
नवः कोऽपि मनोभवः । एकेन गुणकाण्डेन जगज्जयति योऽखिलम् ॥ ८८ ॥ विश्वमान्या सरस्वाशा कुमारेणापि मानिता । दध्यौ
च भूतले स्वर्गवर्णिनीवर्णिकासकौ ॥ ८९ ॥ कन्यया स्वप्रधानानां पुरतोऽथ निवेदितम् । चित्रकृद्रूपतश्चित्ररूपं भूपज-
न्मनः ॥ ९० ॥ प्रधानैः सुमुहूर्तेऽथ विज्ञप्तो जयशेखरः । देवापराजितस्येयं जयश्रीरुचिता प्रिया ॥ ९१ ॥ तदीयवचनं सद्यः
प्रतिपद्य प्रमोदवत् । गणकैर्गणयामास सुलग्नं जगतीपतिः ॥ ९२ ॥ त्यक्तान्यकृत्यो भूपस्यादेशात्तस्याः परिच्छदः । एकाग्रचित्तः
समभूत्पाणिग्रहणकर्मसु ॥ ९३ ॥ नृपस्य परिवारस्य कुमारस्य जयश्रियः । वासरास्ते प्रयान्ति स्म प्रमोदभरभासुराः ॥ ९४ ॥
वासरेऽथ विवाहस्य तूर्यनादे प्रसर्पति । दीयमानेषु दानेषु क्रियमाणे च मङ्गले ॥ ९५ ॥ निःप्रत्यूहो विवाहो यद्यनयोः स्यात्ततो-
वरम् । दृग्दोषो भविता तथ्यं जल्पत्येवं जनो मिथः ॥ ९६ ॥ विवाहवेदिकामध्ये स्थितेऽपि च वधूवरे । वाताहतो दीप इव
कुमारोऽदृश्यतामगात् ॥ ९७ ॥

अथ विसयशोकानामभवद्राजनं जनः । चक्रन्द राजपुत्री तु दैवोपालम्भगर्भितम् ॥ ९८ ॥ विप्रयोगं ददानेन कुमारेण
सम मम । कृतान्त! किं त्वया प्रापि पीयूषे क्षिपता विषम् ॥९९॥ [1]वैधेयोऽसि विधे! सृष्ट्वा नृरत्नं तादृशं हरन् । निर्दयो वज्रहृदु-
ष्टचरितश्च त्वमेव हि ॥ १०० ॥ हा प्राणनाथ! कल्पद्रोस्तव दूरेऽस्तु मे फलम् । न पाणिपल्लवोऽप्यापि मयका मन्दभाग्यया
॥ १०१ ॥ किं च प्रिय! ममाख्याहि सुन्यस्तोऽपि मया हृदि । तस्मिन्नस्फुटिते नाथ! सहसा निर्गतः कथम् ॥ १०२ ॥ विल-
पन्तीति सा बाढं मूर्च्छिता भूतलेऽपतत् । उपचारैश्च बहुभिः पुनर्जज्ञे स चेतना ॥१०३॥ उवाच विरहे पत्युर्ज्वलनः शरणं मम ।
यदुत्तमकुलस्त्रीणामिदमेवोचितं भवेत् ॥ १०४ ॥ नृपो जगाद मा खेदं कुरु वत्से! यतस्तव । न पाणिग्रहणं तेन योग्यतास्त्यपरे
वरे ॥ १०५ ॥ सा प्राह तातपादानां वक्तुं नैतद्धि सङ्गतम् । व्यवहारो ह्ययं भर्ता स तु यो मानितो हृदि ॥ १०६ ॥ तन्मे
स एव शरणमथवासौ हुताशनः । अलं कालविलम्बेन यद्दूरे याति वः सुतः ॥ १०७ ॥ कथं निवर्तनीयेयमित्यार्त्तमनसोस्तदा ।
नृपदेव्योर्विससार दुःखं सुतवियोगजम् ॥ १०८ ॥ नृपो जयश्रियं प्राह वत्से! मम निदेशतः । मासमेकं प्रतीक्षस्व यथा शुद्धिं
विधापये ॥१०९॥ दुर्ग्रहाभिग्रहा तस्थौ सापि देव्यपि दुःखतः । नृपस्त्वकारयत् शुद्धिं सर्वत्र प्रेष्य सादिनः ॥ ११० ॥ आघोषणा
नरेन्द्रेण पुरीमध्येऽपि कारिता । कुमारशुद्ध्याख्यात्रे स्वराज्यस्यार्धं ददाम्यहम् ॥ १११ ॥ प्रधानगमनाज्ज्ञातोदन्तः कन्यापितापि
हि । सर्वत्राशोधयत्प्रेष्य सादिनोऽनवसादिनः ॥ ११२ ॥ तत्पित्रोरुभयत्रापि त्यक्तराज्याङ्गकार्ययोः । कल्पकल्पा दिना यान्ति
दुःखसाम्राज्यशालिनोः ॥११३॥ त्रिंशत्तमे दिने कन्या प्राह पूर्णोऽधुनावधिः । तदादिशत येनाहं करोमि स्वसमीहितम् ॥११४॥

[1] मूर्खः ।

प्रतीक्षस्व चतुर्यामीमित्युक्त्वा सा स्थिरीकृता । सम्बोधयितुमारब्धा न चाबुध्यत्कथञ्चन ॥ ११५ ॥ तस्यां कृतोपवासाऽ-
लोऽपि पुरीजनः । चिन्तलिखितरजङ्गे सर्वकार्यविवर्जितः ॥ ११६ ॥ साथ सायं वशारूढा वार्यमाणापि भूभुजा । सु
कुर्वाणा पूर्णचन्द्रमुखप्रभा ॥११७॥ ससैन्यकृतमाक्रन्दं समकालं च शृण्वती । जङ्गमं तीर्थमेषेति श्लाघ्यमाना सखीजनैः ।
सङ्गमो दयितेनास्या अस्मच्छीलेन जायताम् । इत्थमाशास्यमानोच्चैर्वृद्धस्त्रीभिः पदे पदे ॥ ११९ ॥ पौरलोककृतान्देवोपालः
शृण्वती । राज्ञानुगम्यमाना सा निर्गता नगराद्बहिः ॥ १२० ॥ (चतुर्भिः कलापकम्)

तया गत्वा नदीतीर्थे चिता चन्दनदारुभिः । कारिता ज्वलनज्वालामालाभिरतिदारुणा ॥ १२१ ॥ चन्दनागरु
वह्निचिह्नप्रसर्पणात् । वास्यन्ते स्म दिशस्तस्या यशसेव समन्ततः ॥ १२२ ॥ कुमार्यथ स्फुरद्वामचक्षुश्चित्ते व्यचिन्तयत् । अ-
समामघः प्रस्तावः प्रियसङ्गमे ॥ १२३ ॥ तदा च तरणिस्तादृगसमञ्जसमीक्षितुम् । अक्षमोऽस्ताद्रिगो याद्यौ झम्पां दातुं
॥ १२४ ॥ चिताहुताशनज्वालामालाभीता इवाभितः । अनुसस्रुः शिखरिणां शिखराणि विहङ्गमाः ॥ १२५ ॥ दृष्ट्वा
दुःखौघं दुःखिताया नभःश्रियः । सन्ध्यारागमिषान्मन्ये हृदयं सहसाऽस्फुटत् ॥ १२६ ॥ वधूर्गजवधूपृष्ठोत्तीर्णा श्वशुरयो
नत्वा व्यजिज्ञपन्मौलिसम्मीलितकरद्वया ॥ १२७ ॥ मया श्रीपूज्यपादानां यत्किञ्चिद्विप्रियं कृतम् । कुलरूपधनमदैः ग्र
चापलात् ॥ १२८ ॥ लोभकैतवबाल्यैश्च तत्क्षम्यं सर्वमेव मे । पूज्यपादाब्जभृङ्गीत्वभाग्यं नाभूच्चिरं मम ॥ १२९ ॥
प्यपगुण्यापि भवान्तरगतापि हि । निजनन्दनभार्येति स्मर्याहं पूजितक्रमैः ॥ १३० ॥ श्रुत्वेति वचनं तस्याः करुणं विनयां
धैर्यवृत्तिं विमुच्योच्चैः पूत्कार धराधवः ॥ १३१ ॥ अथैकहेलया सर्वजनाक्रन्दे समुत्थिते । वनदेव्योऽपि चक्रन्दुः प्रतिशब्द

॥ १३२ ॥ उवाह वाहिनी नेत्राम्बुभिस्तत्र चमूकृतैः । अतिधीरैरपि तदा कैः कैर्न रुदितं नरैः ॥ १३३ ॥ सा प्राह वह्नि भगवन् !
साहसस्यास्य चेत्फलम् । अस्ति तत्परलोकेऽपि भूयाद्भर्तापराजितः ॥ १३४ ॥ इत्युक्त्वा त्रिःप्रदक्षिण्य वह्निं यावत्तदन्तरे । झम्पां
ददाति सा तावत्कश्चित्तत्रागमन्नरः ॥ १३५ ॥ स च खड्गकरः प्राह साहसेनामुना कृतम् । पित्रोराज्ञास्ति ते झम्पां यदि दत्से
हुताशने ॥ १३६ ॥ धूमेन वदनं तस्याः सोऽपश्यन्नाह का शुभे ! । त्वं कस्य हेतवे चैवं साहसं च व्यवस्यसि ॥ १३७ ॥ कुश-
ल्यस्ति समं देव्या देवः श्रीजयशेखरः । या चागता कुमार्यासीदिह साभूत्कथं शुभा ॥ १३८ ॥ पित्राज्ञायन्त्रिता साथ विरम्या-
नलपाततः । तस्याननमपश्यन्ती प्रकाशं द्वेपभावतः ॥ १३९ ॥ मदीयप्रस्तुतार्थस्य कोऽयं विघ्नकृदागमत् । हृदये चिन्तयन्तीति
तस्याख्यातुं प्रचक्रमे ॥ १४० ॥ या पृष्टा भवता साहं कुमारार्थे करोम्यदः । तं नृरत्नं विना तातः कुशली सपरिच्छदः ॥१४१॥
वदन्त्येति तया मुक्ते महति क्रन्दितस्वरे । हर्षखेदयुतो दध्यौ कुमारो निजमानसे ॥ १४२ ॥ कृते मे क्षणदृष्टस्य सुमकोमलया-
नया । सहसा सर्वमुज्झित्वात्मा तुलाग्रे नियोजितः ॥ १४३ ॥ तत्किञ्चिद्दुष्करस्यास्याः सुकृतस्य करोम्यहम् । तदस्या न भविष्यामि
कदाचन पराङ्मुखः ॥ १४४ ॥ इयं चम्पकमालेव लब्धा देवप्रसादतः । अम्लाना प्रेमसौरभ्या सदा वसतु मे हृदि ॥ १४५ ॥
ध्यात्वेति तामुवाचायं यस्यार्थे मृगलोचने ! । करोष्येवं न तं दृष्टमुपलक्षयसेऽपि हि ॥ १४६ ॥ श्रुत्वेत्यस्या विस्मितायाः स्फूर्त्या-
भूत्सधरोऽधरः । दध्यौ किमेष वक्तीदं किं च स्फुरति मेऽधरः ॥ १४७ ॥ तदा दर्शयितुमिव कुमारमुखकैरवम् । नेत्रनीलोत्पलस्या-
स्याद्रष्टुं विस्मेरतामिव ॥१४८॥ तापितानि तदङ्गानि सिञ्चन्निव सुधारसैः । सुधारुचिरुदीयाय तस्याः सह मुखश्रिया ॥१४९॥ (युग्मम्)

१ दिव्यपरीक्षाया अग्रे ।

कुमारमुखचन्द्रं च निस्तन्द्रं चन्द्ररोचिषा । वीक्ष्य कण्ठे विलग्यापि मुक्तकण्ठं रुरोद सा ॥ १५० ॥ आश्वासिता च तेनेयं तैस्तैर्म-
धुरभाषितैः । समग्रं गलितुं लग्नं दुःखं स्वेदाम्भसा समम् ॥ १५१ ॥ रसौ विजृम्भितौ तुल्यमेव प्रेमप्रमोदयोः । अङ्गतापमनस्तापा-
नवीतौ सममेव तत् ॥ १५२ ॥ अङ्गानि च प्रफुल्लानि नयनेन्दीवरैः सह । अस्फुरच्च शरीरे श्रीः पुलकेन सह क्षणात् ॥ १५३ ॥
अथ तस्या दृढाश्लेषगमनीभूतनक्षमः । यत्किञ्चन सुखं जातं तत्स्वर्गेऽपि सुदुर्लभम् ॥ १५४ ॥ साक्षीकृत्य तमेवाग्निं ताभ्यां
चित्तोत्सवात्ततः । गान्धर्वेण विवाहेन विदधे पाणिपीडनम् ॥ १५५ ॥ तथा कथञ्चन तयोर्मीलितौ पाणिपल्लवौ । अवियुक्तौ यथा-
कामकैलम्बैः किलिताविव ॥ १५६ ॥ साथ प्राह प्रियतम! पौरलोकेन संयुतौ । मदीयेन च सैन्येन बह्वाक्रन्दपरिश्रमात् ॥ १५७ ॥
त्वदीयेन वियोगेन समानेन च कर्मणा । स्वस्तटिन्यास्तटे बाढं देवो देवी च दुःखितौ ॥ १५८ ॥ कस्याप्यत्र तु नागन्तुमदायि
शेपथपूर्वकम् । निर्विघ्नं प्रस्तुतं कार्यं मयाभिलषमाणया ॥ १५९ ॥ तद्वः समुचितं कर्तुं मुदं पित्रोः स्वदर्शनात् । कुमारोऽथ पुर-
स्कृत्य तामगात्तत्र विचोमः ॥ १६० ॥ आगच्छन्तौ च तौ वीक्ष्य जनोऽश्लाघत तत्प्रियाम् । तथाकर्णयतस्तस्य प्रेम द्विगुणतां
गतम् ॥ १६१ ॥ कुमारमागतं वीक्ष्य प्रतीहारस्तयान्वितम् । राज्ञे व्यज्ञपयत्सोऽपि शीघ्रमेत्य ननाम तम् ॥ १६२ ॥ निरन्तरा-
श्रुधाराभिरारात् पितृपदद्वयम् । असिक्त स तथा तापो यथा मूलाद्व्यलीयत ॥ १६३ ॥ नृपोऽपि तनयं प्रेक्ष्य जातानन्दाश्रुबि-
न्दुभिः । प्रह्वीचक्रे कुमाराय दातुं मुक्तालतामिव ॥ १६४ ॥ देवीमप्यागतां तत्रोत्कण्ठया प्रणनाम सः । तत्पादाम्बुजयोर्वेणी-
मलिश्रेणीमिवादधत् ॥ १६५ ॥ प्रमोदेनात्रुटन्मातुः सर्वाः कञ्चुकसन्धयः । ऊचे च नन्दनं पुण्यैर्युवां मे कोटिवत्सरीम्

१ नेत्रकमलैः । २ हर्षेण । ३ कामबाणैः । ४ शपथपूर्वकम् । ५ मण्डलप्रवरः ।

॥ १६६ ॥ जनं शेषमशेषं च कुमारो वीक्ष्य सादरम्। आसन्नो न्यपदद्राज्ञो नम्रशीर्षः कृताञ्जलिः ॥ १६७ ॥ पित्रोः प्रियाया लोकानां स्रेरैर्नयनवारिजैः। कुमारस्यांश्चिताङ्गस्य शोभा काप्यद्भुताभवत् ॥ १६८ ॥ आनखाग्रं शिखाग्रं च कुमारं वीक्ष्य भूपतिः। उवाच स्वागतं वत्स! स प्रोचे दर्शनेन वः ॥ १६९ ॥ पश्यतां क्व गतोऽसि त्वं कुतश्चागात्तवाद्भुतम्। चरितं भाति मे सोऽथ प्रोवाच रचिताञ्जलिः ॥ १७० ॥

देवस्यैव प्रसादोऽयं पश्य निम्नोऽपि पूज्यते। जनैर्यत्तस्य सा सम्भावना दिनकृता कृता ॥ १७१ ॥ देवावधार्यतां वीतं सर्वं विज्ञपये यथा। क्वापि केनापि नीतोऽहमिति जानामि नादितः ॥ १७२ ॥ प्रातस्त्वाराममध्यस्थप्रासादे सप्तभूमिके। विबुद्धोऽद्राक्षमात्मानं दोलापल्यङ्कशायिनम् ॥ १७३ ॥ निविश्याहं ततो दध्यौ क्व पुरं मे पिता क्व च। क्वाम्बा च क्व च सा कन्या क्व मे परिजनोऽखिलः ॥ १७४ ॥ स्वप्नोऽयमिन्द्रजालं वा किं वा मेऽसौ मतिभ्रमः। स्वर्गोऽयं नागलोको वा यावद्ध्यायाम्यदो हृदि ॥ १७५ ॥ तावद् द्वास्तोरणस्तम्भशीर्षाभ्यां बालिके उभे। अवतीर्णे रत्नमये मम विस्मयदायिके ॥ १७६ ॥ सुगन्धसरसस्वच्छवारिमाणिक्यकुम्भभृत्। तयोरेकाऽपरा पाणौ दर्पणं दधती पुनः ॥ १७७ ॥ ते वीक्ष्य स्वर्वधूतुल्ये विस्मितो यावदस्म्यहम्। तावदाद्या समागत्य प्राह प्रक्षाल्यतां मुखम् ॥ १७८ ॥ तथा कृते मयादर्शमपरा मे समर्पयत्। यावद्वीक्ष्ये मुखं तावत् श्रुतो जयजयध्वनिः ॥ १७९ ॥ पृष्टा कलसहस्ताथ कुत एष जयध्वनिः। सोचे पोतनभूनेतृजयसिंहस्य नन्दना ॥ १८० ॥ जयसुन्दरीनामासौ कन्या नित्यं समेति च। प्रासादस्थां सत्यगिरं देवीं नन्तुं प्रियङ्करीम् ॥१८१॥ (युग्मम्) असौ वरार्थिनी सन्ध्यात्रयेऽपि

१ प्रशंसिताङ्गस्य।

कृत्स्नेतराम् । वीणाया वादनमिति षण्मासा व्यतिचक्रमुः ॥ १८२ ॥ तच्छक्तितुष्टया देव्याऽऽज्ञयोरादिष्टमित्यथ । सन्ध्यायां
समये यात जयन्त्यां जगतो युवाम् ॥ १८३ ॥ विवाहवेदिकामध्यादुजाते पाणिपीडने । इह चानयतं वेगात्कुमारमपराजितम्
॥ १८४ ॥ ततो नृपाश्चतो दैवज्ञेनासीदं निवेदितम् । यः पल्यङ्कमलङ्कर्ता युष्मदुद्यानसौधगम् ॥ १८५ ॥ निबद्धकङ्कणो यश्च विनयं
पुत्रिकाकृतम् । प्रपन्नो प्रथमा तस्य गृहिणीयं भविष्यति ॥ १८६ ॥ (युग्मम्) तदावाभ्यां हृतोऽसि त्वं श्रुत्वा सुन्दर ! दिव्यया ।
श्रुते तत्कथिते सादर्पयामि न दर्पणम् ॥ १८७ ॥ तावत्तत्रैव सम्प्राप्ता सहसा जयसुन्दरी । पाञ्चालीचरितं वीक्ष्य सेराक्षी सा
व्यचिन्तयत् ॥ १८८ ॥ तच्चास्ति यद्भवे न स्यादिति सत्यवचोऽभवत् । विनयं कुर्वते क्वापि पुत्रिकाः किमचेतनाः ? ॥ १८९ ॥
देव एवायमीदृक्षं रूपं मर्त्येषु नो यतः । ध्यायन्ती व्युदिता ताभ्यां मा सुन्दरि ! विकल्पय ॥ १९० ॥ वरोऽयं तुष्टया देव्या-
ऽऽनायितस्तव हेतवे । अपराजितनामायं साथ ह्रीमन्थराभवत् ॥ १९१ ॥ दिष्टिज्ञादिष्टमभ्यार्पिन्मयाथ निजमाननम् । निरीक्ष्या-
र्पित आदर्शे पुत्रिके स्थानकं गते ॥ १९२ ॥ ततश्च जयसुन्दर्या सकर्पूरं ममार्पितम् । ताम्बूलं कण्ठतो न्यस्ता कण्ठे मे वनमालिका
॥ १९३ ॥ ताम्बूलार्द्धं मया दत्त्वा तस्याः कण्ठे स्वकण्ठतः । न्यस्ता मुक्तावली सोचे वेषः परिणयोचितः ॥ १९४ ॥ किमेष
यो मया ख्याते वृत्तान्ते दिव्यवाससी । आनाय्य सार्पयन्मह्यं मया परिहिते च ते ॥ १९५ ॥ तयोचे च सविनयं जनोऽयं
निखिलोऽपि वः । ततः स्वार्थं यतिकमपि तदादेश्यमसंशयम् ॥ १९६ ॥ यौष्माकं दर्शनं प्रापि दुष्प्राप्यं यत्प्रसादतः । तां देवी-
मनंप गत्वा यथादेशः प्रज्ञाप्यते ॥ १९७ ॥ गिरा मयोचे सा पूज्या ममापि तव दर्शनात् । सा प्राह यूयं यथैव कृतार्था
नमस्याम्यहम् ॥ १९८ ॥ ततः पुरस्मरलक्ष्यास्खलितः सापि प्रष्टवः । कतिचिच्छेटिकायुक्ताश्चेमाद्यं तु बहिःस्थितम् ॥ १९९ ॥ मया

१ वेगतः । २ ज्योतिर्विद् । ३ आजानुलम्बिनी माला सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वला । मध्ये स्थूलफलद्वन्द्वा वनमालेति कीर्तिता ।

तया च गत्वाथ बहुद्रव्यैः सुगन्धिभिः । हसन्तीव वदन्तीवार्चिता देवी प्रियङ्करा ॥ २०० ॥ विज्ञप्ता च मया देवि ! त्वया कार्यं
प्रियङ्करि ! । कुशलं तातपादानां मातुः पुत्र्याश्च भूपतेः ॥ २०१ ॥ तयाथ वादिता वीणा यन्माधुर्याद्विधुर्दिवा । नोदेति चिन्त-
यन्नेवं मा मे यातु मृगोऽङ्कतः ॥ २०२ ॥ ततस्तया सहैवाहमागमं तत्र मन्दिरे । किञ्चिन्मुक्त्वा परिजनं सा निजावासमासदत्
॥२०३॥ माऽऽख्यद्वृत्तान्तमम्बायाः सा राज्ञे सोऽथ विस्मितः । प्रैपीद्भोगोपभोगाङ्गान्यखिलानि कृते मम ॥ २०४ ॥ गणकैर्ग-
णिते लग्ने सामग्री विदधेऽखिला । व्याहृताः स्वजना भूपाः प्रधानान्प्रेष्य सर्वतः ॥ २०५ ॥ सुमुहूर्तेऽथ मिलिते राजके निजकेऽखिले । सर्वानन्दमयं जज्ञे पाणिग्रहणमद्भुतम् ॥ २०६ ॥ राज्ञाष्टादशकोट्यो मेऽष्टापदस्य शतं गजाः । दशलक्षास्तुरङ्गाणां दत्ताश्च
करमोचने ॥२०७॥ सर्वत्र स्वनरान्मुक्त्वाऽनाख्याय निशि निर्गतः । त्वया खेदो न धार्योऽहमेष्यामि कतिथैर्[2]दिनैः ॥२०८॥ भित्तौ
वर्णा[1] लिखित्वेति कस्तूर्या करवालभृत् । अद्यैव चलितः प्राप्तः समिलायुगयोगवत् ॥ २०९ ॥ यद्यद्य तात नायामि तज्जीवन्ती
स्नुषा न वः । नियमेन भवेत्तेन राधावेध इवाभवत् ॥ २१० ॥

अथ वत्साभिजातोऽसि वदता मेदिनीभुजा । रोमाञ्चितशरीरेणाश्लेषे गाढं स्वनन्दनः ॥ २११ ॥ सन्तोषजागरं कृत्वा निशि
भानूदये ततः । आरोह्य सिन्धुर[3]स्कन्धे धरणीशो वधूवरम् ॥ २१२ ॥ अकारयत्पुरस्यान्तःप्रवेशकमहोत्सवम् । वर्धापनानि जातानि
परितोऽपि पुरान्तरा ॥ २१३ ॥ आनेतुं प्रहिता राज्ञा प्रधाना जयसुन्दरीम् । मुदा कुमारनामाङ्कां समर्प्य प्राभृतानि च
॥ २१४ ॥ ते द्वाःस्थावेदिता नत्वा राज्ञः प्राभृतमार्पयन् । असमानं च सन्मानं तेनापि विदधे मुदा ॥२१५॥ प्रधानैर्जयसुन्दर्या

१ सुवर्णस्य । २ कतिपयैः । ३ हस्तिनः स्कन्धे ।

मुद्रारत्नं समर्पितम् । सा न्यास्यदङ्गुलौ विप्रलम्भतापापहारि तत् ॥ २१६ ॥ तदा कथमनाख्याय कुमारोऽगादिति स्वयम् । राज्ञा पृष्टे निजगदुर्वृत्तान्तमखिलं च ते ॥ २१७ ॥ नृपः प्रोवाच नो भित्तौ वर्णाः स्युर्लिखिता यदि । तदस्या अपि सन्देहोऽभविष्यत् जीवितं प्रति ॥२१८॥ स्वर्णकोटिं ततस्तेभ्यः प्रसादेन ददौ नृपः । तुष्टया च कुमार्या ते निन्यिरे निजमन्दिरे ॥२१९॥ पुनः पुनर्वियोगाग्नितापनिर्वापणौषधम् । अपृच्छत्सा कुमारस्योदन्तं श्रुतिसुधारसम् ॥२२०॥ साथ स्वतातानुज्ञाताश्वेभाद्यादाय तैर्युता । क्रमाद्गता पतिपुरं जयन्ती रूपतः सुरीः ॥ २२१ ॥ रतिप्रीतिसदृक्षाभ्यां ताभ्यां युक्तोऽपराजितः । कुमारोऽभिमुखं तस्थौ रूपेण विषमायुधः ॥२२२॥ अन्यदा प्रबलो दाहज्वरो देव्या अजायत । त्यक्तान्यकृत्यो भूपालस्तच्चिकित्सामकारयत् ॥२२३॥ न कोप्यस्य प्रतीकारं चक्रे देशान्तरा भिषक् । उवाच यहिल्स्थानेऽधिष्ठिते दृग्विषाहिना ॥२२४॥ अस्ति वापी तदुद्भूतैरम्भोजैः स्रस्तरे कृते । दाहोपशमिता भूपस्ततश्चिन्तातुरोऽभवत् ॥ २२५ ॥ (युग्मम्) कस्तत्र प्रविशेज्जीवन्निर्गच्छेत्कस्ततो वनात् । न च स्वेन परेणापि कार्यमेतत्प्रसाध्यते ॥ २२६ ॥ तदाऽऽयातः कुमारस्तं नतः श्याममुखच्छविम् । वीक्ष्यापृच्छन्नृपोऽप्याख्यदथोवाचापराजितः ॥ २२७ ॥ चेदानयामि पद्मानि तदाहं तनयोपि वः । नृपः प्रोवाच दुःखाग्निं मा ज्वालय वदन्निति ॥ २२८ ॥ राज्यश्रीयमनाथां मा कुरु वत्स ! सुतोऽवदत् । जीवन्तं तात ! मन्ये स्वं मातुरातुरताहृतेः ॥ २२९ ॥ प्राणा भवे भवेऽपि स्युर्न तात ! समयस्त्वयम् । ततो यद्दुर्लभं तत्र यत्नः कार्यो मनीषिणा ॥ २३० ॥ प्राणानम्बा ददौ मह्यं तस्यैवांश्चेद्ददाम्यहम् । ततः किञ्चित्कृतं मे स्यादथ दध्यौ धराधिपः ॥२३१॥ निर्बन्धो रुचिरो नास्य ध्यात्वेति स्वाङ्गरक्षकान् । शतानि पञ्चशोऽमुञ्चदमुञ्च परिरक्षितुम् ॥ २३२ ॥

१ विप्रलम्भो-वियोगः तस्य तापापहारि । २ शयने ।

तेन ते भोजिताः स्निग्धं घृतपूरादिभोजनम् । अतीव तेषु निद्राणेष्वपद्वारेण निर्ययौ ॥ २३३ ॥ विद्युदुत्क्षिप्तकरणाद्धमुल्लङ्घ्य
सोऽगमत् । उद्यानस्यान्तिके दध्यौ प्रतीक्षेऽर्कोदयावधि ॥ २३४ ॥ कुमारसाहसं द्रष्टुमिवोदिते दिवाकरे । स्मरन्पञ्चनमस्कार-
मुद्यानमविशच्च सः ॥ २३५ ॥ तदीयपुण्यमाहात्म्यात् दृग्विषो निर्विषोऽभवत् । वनदेवीकेशपाश इव दृष्टश्च तेन सः ॥ २३६ ॥
दीर्घिकायास्ततः पद्मैर्दीर्घपृष्ठः स पूजितः । उक्तं च भगवन्भूयाः प्रसन्नो मे क्षमस्व च ॥ २३७ ॥ इत्युक्त्वा यावदुद्यानान्निरगा-
त्तावता नृपः । ज्ञात्वा तं गतमुद्यानमायासीत्तस्य सम्मुखः ॥ २३८ ॥ नत्वा कुमारोऽब्जमेकमार्पयत्प्राह भूपतिः । अत्यद्भुतं चरित्रं
ते वत्स ! वाचामगोचरम् ॥ २३९ ॥ स प्राह सवितुर्दीप्त्या दूरे याति तमो मम । आख्यच्च सर्वं वृत्तान्तं नृपो हर्षादुवाह च
॥ २४० ॥ ततो नृपार्पिताश्वाधिरूढोऽयं भूभुजा समम् । सौधमागत्य तैः पद्मैर्मातुः शय्यामसज्जयत् ॥ २४१ ॥ गते च सहसा
देहदाहे कीर्तिरकृत्रिमा । प्रससार कुमारस्याभूवन् वर्धापनान्यथ ॥ २४२ ॥ निशश्च पश्चिमे यामे सर्प्पः[1] स्वप्ने जगाद तम् । तुष्टोऽहं
ते त्वयागम्यमुद्याने मम निर्भयम् ॥ २४३ ॥ फलपुष्पादिकं सर्वमादेयं च यथारुचि । स नित्यमानयत्येकस्ततः पुष्पफला-
दिकम् ॥ २४४ ॥ कृत्वा मालाद्वयं कण्ठे पित्रो रोपयते सदा । ब्रूते चादिश्यतां तन्मे यन्मयापि हि सिध्यते ॥ २४५ ॥
तावूचतुर्यदि पुण्यमगण्यं किञ्चिदस्ति नौ । भवे भवेऽपि तद्भूयाद्भवानेवाङ्गसम्भवः ॥ २४६ ॥ त्वदीयैः सुचरित्रैर्यन्नेत्रस्थमपि
हर्षजम् । जलमङ्गानि सर्वाणि शीतलीकुरुते सुत ! ॥ २४७ ॥ दृग्विषस्तु कुमारेण कुसुमाञ्जलिमोचनात् । क्षीरस्य पायनाद्वापि
वाढमावर्जितो हृदि ॥ २४८ ॥

---

[1] सर्पः ।

तस्यैवं विनयस्थस्य बहवः शरदो ययुः । अन्यदा शिरसोऽर्त्या स नागमन्नागमक्षमः ॥ २४९ ॥ दुग्धलुब्धस्तु नागृह्णा-गोऽन्यदशनं न च । कोऽप्युद्याने विशेत्तत्र विनैकमपराजितम् ॥२५०॥ क्षुधितोऽहस्त्रिकं सोऽस्थात्तुर्येऽह्नि निधनं गतः । क्षेत्रपालो-ऽभवद्ध्यायन्नरधेर्जन्म सोऽस्मरन् ॥ २५१ ॥ मत्वा संस्कार्यमाणं स्वमङ्गं चन्दनदारुभिः । कुमारेणावधेस्तस्यानन्यधिप्रेमजातवत् ॥ २५२ ॥ दध्यौ च कृतवेधेप निरपदास्य दर्शनम् । ऊचे च मित्र ! मां वेत्सि क्षेत्रेशोऽसीति सोऽवदत् ॥ २५३ ॥ विशेषं तु त्वयाऽऽख्यातं ज्ञास्याम्यथ स आलपत् । त्वत्संसर्गादहं शुद्धभावो देवोऽभवं सखे ! ॥ २५४ ॥ त्वया संस्कार्यमाणं तद्देहं वीक्ष्या-तिहार्दतः । आगतोऽस्म्यत्र चेद्वक्षि स्वावासं त्वां ततो नये ॥ २५५ ॥ तन्मते तमनैषीत्स रत्नकूटाचलं क्षणात् । कपाटान्स्फा-टिकानुद्घाट्य च मध्ये प्रवेशितः ॥ २५६ ॥ हतध्वान्तान्मणीराशीनपश्यच्च सहस्रशः । लोक्यमानं पदावर्ते दिव्यनार्या च कूपतः ॥ २५७ ॥ क्षेत्राधिपोक्तस्तन्नीरं शर्करास्वादसोदरम् । पपौ कर्पूरपूराभगन्धं केलिं जलेऽप्यधात् ॥२५८॥ दध्यौ चामृतमेवै-तत् श्रीरस्य च नृपाधिका । देवदूष्याण्यदूष्यानि दत्तान्यस्मै सुपर्वणा ॥२५९॥ गत्वोद्याने च पुष्पाण्यादाय प्रसादमागतः । रत्नानि जिनबिम्बानि पूजयामासतुर्मुदा ॥२६०॥ कुमारस्तानि बिम्बानि पूजयित्वा जनुर्निजम् । जीवितं च कृतार्थत्वकलितं मतवान्मुदा ॥ २६१ ॥ क्षेत्रेशेन जिनेशाग्रे तस्य दर्शनहेतवे । द्वात्रिंशत्पात्रसम्बद्धं नाटकं प्रकटीकृतम् ॥२६२॥ दध्यौ कुमारो नैवास्ति सीमा रम्येषु वस्तुषु । वीते च नाटके प्राह कुमारं क्षेत्रनायकः ॥ २६३ ॥ रत्नमालां गृहाणेमामन्यत्कार्यं च ते भवेत् । यत्किञ्चित्तदहं वीक्ष्यस्तत्रोद्याने निशाक्षणे ॥ २६४ ॥ आदाय रत्नमालां स पुनर्दर्शनमर्थयन् । नीतश्च सौधपल्यङ्कं तेन हुङ्कारमात्रतः ॥ २६५ ॥ दध्यौ च रत्नमालेयं पित्रोः कसार्पणोचिता । मातुर्दुष्प्रतिकारत्वाभिश्चिक्ये च तदर्पणम् ॥ २६६ ॥ न्यस्यन् कण्ठे स्रजं प्रासः पृष्ट

एप महीभुजा । दिव्यान्येतानि वस्त्राणि दिव्यः परिमलश्च ते ॥ २६७ ॥ रत्नावल्यां तथैकैकं रत्नं राज्यार्थमर्हति । रात्रिवृत्ते तदा-
ख्याते सजनो विस्मितो नृपः ॥ २६८ ॥ उवाच भवता वत्स ! देवा अपि वशीकृताः । कृतार्थोऽस्मि त्वया दीर्घं जीवितं प्रार्थये
तु ते ॥ २६९ ॥ तातस्येति गिरा धन्यंमन्योऽजनि नरेन्द्रजः । कृत्यमेतद्धि पुत्राणां रञ्जनं जनिकारिणोः ॥ २७० ॥ रत्नमालां
भक्तिमिव मातुः कण्ठे न्यधत्त सः । पृष्टो राज्ञाऽवदत्तस्या गाढं दुष्प्रतिकारताम् ॥ २७१ ॥ नृपः प्राह त्वदन्यः को जानात्येवं
सुनन्दन ! । दध्यौ सुतो रत्नमालां दास्ये तातस्य चापराम् ॥ २७२ ॥
गतो निश्यन्यदोद्याने निशीथे सुरमैक्षत । तेनोचेऽहं स्मृतः कस्मात्स प्राहोत्कण्ठितोऽधिकम् ॥ २७३ ॥ स्मित्वाह क्षेत्रपालस्तं
ज्ञातं रत्नावलीकृते । कण्ठादुत्तार्य सौवात् स ददेऽन्यश्च समाददे ॥ २७४ ॥ क्षेत्रेशः प्राह मेऽर्थस्ते निजः कथ्यं ततो मम ।
कुमारः प्राह कल्पद्रोः किं किं सम्पद्यते न वा ॥२७५॥ तमापृच्छ्यागते देवे स दध्यौ पुण्यतोऽखिलम् । सम्पद्यते ततस्तस्यार्जने
कार्यः सतोद्यमः ॥२७६॥ ध्यायन्निति समागत्य पितुः कण्ठे न्यधादिमाम् । पृष्टो वृत्तान्तमाख्यच्च दध्यावथ मुदा नृपः ॥२७७॥
सुतः कीदृक् कृतज्ञोऽयं यदाद्या मातुरर्पिता । रत्नमाला मम परा यौवने कोऽपि नेदृशः ॥२७८॥ यौवने भोगतृष्णार्त्ताः सुता हि
स्युर्वधूमुखाः । पित्रोस्त्वखण्डं विनयं विरला केऽपि कुर्वते ॥ २७९ ॥ इत्यानन्दिततातोऽयं सर्वेषु जिनवेश्मसु । महं च महिमानं
च भावशुद्ध्या न्यधापयत् ॥२८०॥ उद्दधार च जीर्णानि जिनवेश्मानि सर्वतः । बहुशो रथयात्राश्चाकारयद्विस्तरेण सः ॥ २८१ ॥
अथार्धरात्रे रुदितं स्त्रियः श्रुत्वा नरेन्द्रजः । कृपाणपाणिस्तत्रागात् तत्पृष्ठे च नरेश्वरः ॥ २८२ ॥ रत्नाभरणसम्भारध्वं-
सितध्वान्तविस्तराम् । तामुवाच कुमारश्च गुप्तोऽश्रौषीच्च तत्पिता ॥ २८३ ॥ का त्वं रोदिपि कस्माच्च सोचे ख्यातुं न युज्यते ।

त्वं तु सत्पुरुषो येनोपचिकीर्षुरिहागतः ॥ २८४ ॥ तत्त्वाख्याम्यहं देवी राज्ञोऽनिष्टाच्च रोदिमि । तत्कीदृगिति तेनोक्ते सोचे
सायं विनङ्क्ष्यति ॥ २८५ ॥ येनास्ति योगिनीवृन्दं निखिलं मिलितं पुरः । आस्फालितडमरुकं कुर्वन् किलकिलारवम् ॥ २८६ ॥
तन्मन्त्रसाधनार्थं द्वात्रिंशल्लक्षणधारिणम् । तं होमिष्यन्ति तास्तेन दुःखेनाहं प्ररोदिमि ॥ २८७ ॥ नृरत्नं तदिदं रक्षाम्यहं प्राणै-
रपि स्वकैः । न किं गृह्णन्ति मां मर्त्यमेवंलक्षणलक्षितम् ॥ २८८ ॥ सुलक्षणशरीरस्त्वं दत्से यद्यग्निकुण्डके । झम्पां तदेतद्भूपस्य
दुरितं याति दूरतः ॥ २८९ ॥ प्रोचे कुमारोऽन्यस्यापि कृते सत्पुरुषा असून् । त्यजन्ति किं पुनर्विश्वबान्धवस्यास्य हेतवे ॥ २९० ॥
यावत्परिकरं बद्धा ध्यात्वा पञ्चनमस्क्रियाम् । त्राणं प्रपद्यार्हत्पादान् स कुण्डाभिमुखोऽचलत् ॥ २९१ ॥ तावन्निषेद्धुकामोऽपि
नृपो देव्यनुभावतः । वक्तुं शक्तोऽभवन्नैव न च चालयितुं पदम् ॥ २९२ ॥ मा द्रक्ष्यामि कुमारस्य मृत्युमित्येष चिन्तयन् ।
असिधारां न्यधात्कण्ठे कुण्ठतां प्राप साधिकाम् ॥ २९३ ॥ स्थिरानाथस्ततस्तस्थौ नारकस्फारकष्टभृत् । कुमारं वीक्ष्य योगिन्यश्चक्रुः
किलकिलारवम् ॥ २९४ ॥ ऊचुश्चान्योपकारैकनिष्ठ ! झम्पात्र दीयताम् । झम्पां झटित्यदादेष स्मृतपञ्चनमस्क्रियः ॥ २९५ ॥
अथात्मानमयं वीक्ष्य स्वर्णपुञ्जोपरिस्थितम् । विस्मितो योगिनीचक्रं नाद्राक्षीच्चाशुशुक्षणिम् ॥ २९६ ॥ दध्यौ च
किमियं माया देवो भूत्वाथ देवता । कुण्डलाभरणः प्राह तुष्टस्तेऽस्मि वरं वृणु ॥ २९७ ॥ कुमारः प्राह तुष्टोऽसि चेत्तदाख्याहि
किंत्वदः । स प्राह शशंस त्वां संसदि स्वर्गिणां प्रभुः ॥ २९८ ॥ एक एव कुमारोऽत्र भुवि श्लाघ्योऽपराजितः । पित्रोर्निमित्तं यः
सैवप्राणानपि विमुञ्चति ॥२९९॥ अश्रद्दधानोऽहमिति त्वत्परीक्षार्थमागतः । दृष्टे त्वत्साहसे मन्ये मघवानर्घ्यवागभूत् ॥ ३०० ॥

१ पृथिवीपतिः । २ अग्निम् । स्वकीय ।

धन्यौ तौ पितरौ पुत्रो ययोर्जातस्त्वमीदृशः । जनो जनपदश्चापि ययोः स्वामी भविष्यति ॥ ३०१ ॥ तं श्लाघित्वेति तत्तस्य
स्वर्णं दत्त्वा च निर्जरः । अदृश्योऽभूत्कुमारस्य पित्रोर्भक्तिरवर्द्धत ॥ ३०२ ॥ तत्तत्र कनकं मुक्त्वा गच्छंस्तातं ददर्श सः । ततश्चा-
श्लिष्य राज्ञोक्तः पुनर्जातोऽधुना सुत ! ॥ ३०३ ॥ कुमारः प्राह किं सर्वं तातेनैतद्विलोकितम् । नृपोऽथ स्वकृतं सर्वं तस्याख्यत
सोऽवदत्ततः ॥ ३०४ ॥ तातं पातयतो दुःखे धिगस्तु मम जीवितम् । दुःखं वो यत्र मा भून्मे वासरः स कदाचन ॥ ३०५ ॥
इदं तु दुष्करं चक्रे यदर्थं वित्थ तत्स्वयम् । फलत्यनेकधा युष्मद्भक्तिकल्पलता मम ॥ ३०६ ॥ इदं चित्रं तु लब्ध्वापि भक्ति-
कल्पलतामिमाम् । युष्मत्प्रत्युपकारेऽहमसमर्थोऽनृणो न हि ॥ ३०७ ॥ इत्थं सुतगिरा प्रीतः प्रमोदाश्रु परित्यजन् । नृपः प्राह
तवाभक्तिर्न युगप्रलयेऽपि नौ ॥ ३०८ ॥ कृतार्थौ सर्वथाप्यावां भवताङ्गभुवा भुवि । यस्मै ते श्लाघते मध्येसभमित्यमूभूपतिः
॥ ३०९ ॥ प्रातर्न्यस्ताश्च ताः कोशे द्वात्रिंशत्स्वर्णकोटयः । जनो देवमिवामंस्त कुमारं स्वचरित्रतः ॥ ३१० ॥ नृपो नृपश्रियं
न्यस्य सुते व्रतधरः स्वयम् । तिमिरार्याभिधाचार्यपरिचर्यापरोऽभवत् ॥ ३११ ॥ चिरं निरतिचारं च चारित्रं परिपाल्य सः ।
परिणामविशुद्धिस्थो देवो वैमानिकोऽजनि ॥ ३१२ ॥ इति पुत्रप्रभावेण जयशेखरभूभुजा । लोकद्वयसुखं प्राप्तं प्रियपुत्रा-
स्ततः शुभाः ॥ ३१३ ॥

कलहंसस्ततः प्राह प्रिये ! यदि तवेदृशा । सुतेन कार्यं तदहं यतिष्ये स यथा भवेत् ॥ ३१४ ॥ इति ताभ्यां देविकाभ्यां
भाषिते निजभाषया । भानुश्रीः प्राह चक्राङ्गयुग्ममेतन्मनोहरम् ॥ ३१५ ॥ तद्गृहीतां केलिकृते क्षिप्यतां स्वर्णपञ्जरे । अन्योऽन्य-
मनयोरावामालापं शृणुवो यथा ॥ ३१६ ॥ किञ्च देव ! यदेवं स्यात् सुतार्थं पक्षिणामपि । आदरो युज्यते तन्नौ देवताराधनोद्यमः

॥ २१७ ॥ सेना मुक्तालता चापि यथा नायकवर्जिता। न शोभते तथा नारी शरीरजविवर्जिता॥ २१८ ॥ देवः प्रेमवशो याव-त्तदादत्ते नरेश्वरः। मनाग्गुड्डीय तत्तावन्नातिदूरमवस्थितम् ॥ २१९ ॥ व्रजन् तत्र शनैरित्थं प्राविशत्कदलीगृहे । तदनु प्रविशन् भूपोऽपश्यदेकां सुराङ्गनाम् ॥ २२० ॥ विलक्षेऽथ नृपे प्राह देवी मागा विलक्षताम्। नैतत्पक्षियुगं सत्यं मायेयं विदधे मया ॥ २२१ ॥ यथा करोति भानुश्रीः पुत्रेच्छां सति नन्दने। कदापि राज्याधिष्ठात्री निर्नाथा न भवाम्यहम् ॥ २२२ ॥ तत्त्वं याचस्व किञ्चिन्न स्यान्मोघं देवदर्शनम्। नृपः प्रोवाच तद्देवि! देहि भानुश्रियः सुतम् ॥ २२३ ॥ देवी प्राहातिजातं चेत्तनयं वत्स! वाञ्छसि। पण्मासान् ब्रह्म तद्देहि पूजयाथस्तथार्हतीः ॥ २२४ ॥ विधेह्यष्टाह्निकास्तत्र सङ्घे कुरु यथोचितम्। फलं गृहाण कल्पद्रोरस्मात्पुत्रफलप्रदम् ॥ २२५ ॥ स्वप्ने पश्यति भानुश्रीः सेरं पद्माकरं यदा। यदा पुष्पफलाकीर्णाः स्युस्तथोद्यानपादपाः ॥ २२६ ॥ तदा देयं फलं वध्वा भावी त्वदधिकः सुतः। इति प्रोच्यार्पयित्वा च फलं देवी तिरोदधे ॥ २२७ ॥ भानुश्रीस्तत्फलं वीक्ष्य नृपहस्ते जगाद तम्। देव कस्मादिदं नव्यं स ध्रुतान्तं ततोऽवदत् ॥ २२८ ॥ लोकोत्तरचरित्रो नौ पुत्रो भावीति तौ मुदा। कलितौ निधिलाभस्य वार्तापि प्रमदप्रदा ॥ २२९ ॥

नृपोऽन्यदा जलकेलिं दीर्घिकायां प्रियायुतः। आरेभे मात्यसौ तत्र रत्येव मकरध्वजः ॥ २३० ॥ कमोरुश्रेणिवक्षोजकण्ठा-स्यचिकुरस्पृशा। रागं च कज्जलं चापि हरताऽधरदृग्भवम् ॥ २३१ ॥ विसंस्थुलान् कुन्तलांश्च कुर्वता कायलाघवम्। जलेनापि मुदा भानुश्रियः प्राणप्रियापतिम् ॥ २३२ ॥ (युग्मम्) जलकेलिं विधायागात् स्वस्थानं पुरुषोत्तमः। मयनोत्तीर्णया साक्षादिव

१ पुत्रवर्जिता।

लक्ष्म्या तथा सह ॥ ३३३ ॥ कुलदेवी गिरा सोऽथ श्रद्धया चैत्यपद्धतौ । महं च महिमानं च नव्यं नव्यं व्यधापयत् ॥३३४॥
दिनात्ते प्रणदत्तूर्यप्रतिनादितसागराः । उन्निन्द्रविष्णुसम्भाव्यमानया श्लाघिताः श्रिया ॥ ३३५ ॥ राज्यकार्याणि सन्त्यज्य गुरू-
ण्यपि धराधिपः । एकतानमनास्तेने जिनवेश्ममहोत्सवान् ॥ ३३६ ॥ यत्र पञ्चामृतैस्तत्र पारावारा इवागमन् । नन्दनादिवनानीव
फलपुष्पकदम्बकैः ॥ ३३७ ॥ सद्धूपधूमलतया स्वर्णचैत्योपरिस्थया । स्वर्णाद्रिशिखरे यत्रोल्लसन्त्या चूलिकायितम् ॥ ३३८ ॥
यत्र भाति त्रिलोकीव मिलिता महमीक्षितुम् । जनैः कुण्डलिभिर्नेत्रनिमेषपरिवर्जितैः ॥ ३३९ ॥ चारित्रिणां मुनीनां च पर्युपास्ते
पदौ नृपः । सङ्घं चतुर्विधं चिन्तामणिप्रतिममर्चति ॥ ३४० ॥ गतेषु बहुमासेषु तयोर्धर्मजुषोरिति । पुष्पिताः फलिताः सद्यस्तरवश्च
घनाश्रयाः ॥ ३४१ ॥ भानुश्रीश्च तदापश्यत्पश्चिमप्रहरे निशः । श्रीदेवीसङ्गतं स्वप्ने विनिद्रन्नलिनीवनम् ॥ ३४२ ॥ जानाति च
श्रिया देव्या जायमानाभिषेकया । मनोहरो विनोदाय हंस एकः समर्पितः ॥३४३॥ प्रबुद्धा च प्रमुदिता प्रख्याति स प्रियाग्रतः ।
नृपः प्राह सुतो भावी सदाचरणरागवान् ॥ ३४४ ॥ साऽवभात् शकुनग्रन्थिमथार्केण नभःश्रियः । सङ्गे त्रस्ता तमोवेणी तारा-
कुसुमशोभिता ॥ ३४५ ॥ स्तुतिव्रतोऽपठत् हंसस्तवेव विपुले कुले । नभस्वतरत्येष प्रातःकृत्यानि तत्कुरु ॥ ३४६ ॥ सत्कारैः
स चमत्कारान् विधाय स्वप्नपाठकान् । अपृच्छत्ते ततः प्राहुः पुत्रं कल्पद्रुमोपमम् ॥ ३४७ ॥ अथोपभुक्ते प्राग्लब्धकल्पद्रुमफले
तया । तस्यामवातरद्गर्भः पूर्वस्यामिव भास्करः ॥ ३४८ ॥ तस्या गर्भानुभावेन कायकान्तिरभूत्परा । नभःश्रिय इवोदेत्य सूर्य-
मण्डलरुग्युषः ॥ ३४९ ॥ युक्ताहारविहारैः सा पुष्टिकृद्भिस्तथौषधैः । रक्षाकण्डकबन्धैश्चारक्षदोहदलक्षणम् ॥ ३५० ॥ तस्याश्चो-
त्तार्यते चक्षुर्दोहं हर्तुं क्षणे क्षणे । लवणं च जलं चापि वृद्धस्त्रीभिः पदे पदे ॥ ३५१ ॥ अथ तृतीये मासेऽस्याः शाश्वताशाश्वतान्

जिनान् । नित्यं पूजयितुं सङ्घमप्यजायन्त दोहदाः ॥ ३५२ ॥ नन्दीश्वरादीषु तथा विमलाचलादितीर्थेषु तां नृपतिरभ्यविमानयानम् । निन्ये यथोचितमथो विदधे च संघपूजां प्रमोदभरमेदुरमानसः सः ॥ ३५३ ॥ हंसा हंसस्याग्रे सुपुत्रविषयापराजितकथां कथिता नृपे भानुश्रियस्तथा गर्भसम्भूतिः ॥ ३५४ ॥

इति चन्द्रगच्छे श्रीरत्नप्रभसूरिशिष्यश्रीमानतुङ्गसूरिविरचिते श्रीश्रेयांसचरिते महाकाव्ये भवत्रयनिबद्धे प्रथमभववर्णने भानुश्रीगर्भसंभूत्युपायवर्णने चतुर्थः सर्गः ॥

पञ्चमः सर्गः ।

अथ पूर्णेषु मासेषु लग्ने लग्ने सुसुन्दरे । ग्रहव्यूहे तदालोककौतुकेन किलोच्चगे ॥ १ ॥ अपि कृष्णचतुर्दश्या निशीथेऽर्चिः प्रपञ्चयन् । सार्द्धं जनप्रमोदेन तनयः सुपुवे तथा ॥ २ ॥ (युग्मम्) चेट्योऽहंप्रथमिकया पृथ्वीनाथमवर्द्धयन् । अदात्स भूषणं तासामपनिन्ये च दासताम् ॥ ३ ॥ ततश्च पञ्चशब्दाद्यस्फीतसङ्गीतसङ्गतम् । करशुल्कविनिर्मुक्तं युक्तं देवार्चनादिभिः ॥ ४ ॥ विशदक्षतपात्रौघमागच्छत्खेचराधिपम् । दीयमानमहादानं वर्धापनमजायत ॥ ५ ॥ (युग्मम्) द्वादशे वासरे तस्य स्वप्नस्यैवानुसारतः । नलिनीगुल्म इत्याख्या प्रकृता कृतविस्तरम् ॥ ६ ॥ धात्रीभिः पञ्चभिर्लाल्यमानोऽवर्धत स क्रमात् । रत्नाङ्कुर इवोत्तेजा रोहणाद्रिगुहागतः ॥ ७ ॥ केशाग्रनद्धसौवर्णपूर्णमानविशेषकम् । स्मयमानः स्फुरत्यारिप्लवपाण्यंह्रिपल्लवः ॥ ८ ॥ मुग्धस्निग्धोज्ज्वलचलन्नेत्रैः सम्मुखवीक्षकः । कर्पन्यूनः पुनः कुर्चकचानुत्सङ्गसङ्गतः ॥ ९ ॥ कुमारः कुरुते राज्ञस्तां कामप्यभिनिर्वृतिम् । या दूरतोऽस्तु देवानां देवेशामपि नास्ति सा ॥ १० ॥ (विशेषकम्) नरेन्द्रैः खेचरेन्द्रैश्च दत्तपाण्यङ्काः कृतार्थिताः । दर्शनग्रहणन्यासैः सुतस्यास्य गुणावधेः ॥ ११ ॥ भालनेत्रकपोलेषु स चिरं चुम्ब्यते नृपैः । क्रीड्यते शिक्ष्यते वक्तुं विधीयन्ते चटूनि च ॥ १२ ॥ मामेतेति कृतास्थाभिर्दर्शितक्रीडनादिभिः । आकार्यतान्यराज्ञीभिरम्बाक्रोडगतश्च सः ॥ १३ ॥ निरीक्ष्य क्रीड्यमानं तं तादृक्षसुतहेतवे । निरपत्यान्यराज्ञीनामुत्कण्ठा जायतेऽधिकम् ॥ १४ ॥ सुधामुचः सलवणा अपि चित्तमलिम्लुचाः । सुप्रशस्या जनस्यासंस्तदुक्ता मन्मना गिरः ॥ १५ ॥ कलाग्रहणयोग्योऽथ कलाचार्याय सोऽर्पितः । वसनस्वर्णदानादिमानपूर्वं महीभुजा ॥१६॥ कुमारो नलिनीगुल्मो विश्वतापापहारकः । कलाभिः कलहंसीभिरिवालिङ्गि किमद्भुतम् ॥१७॥ सौभाग्यश्रीसमग्रेऽस्मिन् विरोधरहिते उभे । लक्ष्मीः

सरस्वती चापि निवासं कर्तुमुद्यते ॥ १८ ॥ समेत्याथ कलाचार्यं इलाभर्तुर्न्यवेदयत् । कुमारस्य कलाभ्यासो यन्मदप्यधिकोऽभवत्
॥१९॥ इत्यावेदयतोऽप्यस्य तुष्टिदानमदान्नृपः । सर्वाङ्गमथ तारुण्यश्रियाश्लेपि नृपाङ्गजः ॥२०॥ यो विभाति मृगाक्षीणां वश्यभे-
पजमुष्टिवत् । आत्मेव पञ्चबाणस्य वैदग्ध्यस्य सखेव च ॥२१॥ अथानेनाध्वना याताऽयाताश्चेति पुरस्त्रियः । कुमारं वीक्षितुं सन्ति
सौधेष्वारुह्य निश्चलाः ॥ २२ ॥ गुणाः स्फुरन्ति तस्यैव काव्यबन्धेषु वन्दिनाम् । स एव गीयते वर्धापनेषु प्रमदाजनैः ॥ २३ ॥
राजकन्यास्तमाकर्ण्य रूपलावण्यमन्दिरम् । तमेव नलिनीगुल्मं प्रार्थयन्ते वरं सरात् ॥ २४ ॥ अन्यदा शरदागच्छन्मानसोन्माद-
दायिनी । अमृतं चामृतांशुश्च युगपद्यत्र निर्मलौ ॥ २५ ॥ वियोगिन्यस्तटिन्यश्च समं यत्राभवन् कृशाः । धाराधराः शराश्चापि
यत्रापुः शुभ्रतां समम् ॥ २६ ॥ यत्रोल्लासितकोशानि राजहंसयुतानि च । स्फुरन्ति स्म कमलानि विजिगीषुबलानि च ॥ २७ ॥
यत्र पत्रेषु संलीना शोभते भ्रमरावली । सराशिप्लुष्टपान्थानामङ्गारनिकुरम्बवत् ॥ २८ ॥ शालिशीर्षाणि पिङ्गानि दिक्षु संवीक्ष्य
लक्ष्यते । वसुन्धरा परिहितवती वस्त्रेण सर्वतः ॥ २९ ॥ मानसे गमनात् हंसा विस्मृतं नूपुरस्वरम् । योषिद्भ्यः शिक्षितुमिवाव-
तेरुः केलिवापिषु ॥ ३० ॥ प्रावृषघनमलिनं स्वभावेन घनोज्ज्वलम् । हसतीव शरल्लक्ष्मीः स्मेरकैरवकैतवात् ॥ ३१ ॥ अथ शक्रमहे
प्राप्ते स्वस्ववित्तानुसारतः । आरामेषु पुरीलोकः खेलति साखिलोऽपि हि ॥ ३२ ॥ वीक्ष्य शृङ्गारजाक्रान्तं सशृङ्गारं पुरीजनम् ।
विवेकसारसद्दृशं कुमारः पर्यचिन्तयत् ॥ ३३ ॥ असौ केलिः शरत्काले बालानां धूलिकेलिवत् । न भ्रमं कुरुते चित्ते विवेकविशदे
सताम् ॥ ३४ ॥ एषापि शोभते दाने दीयमाने यथेच्छया । दानं च युज्यते कर्तुं स्वभुजार्जितया श्रिया ॥ ३५ ॥ इति चिन्त-

१ मेघधाराः । २ कामदेवाक्रान्तम् ।

यतस्तस्य नृपामात्यः समागतः । ऊचे कुमार! देवेनादिष्टमाकर्ण्यतां वचः ॥ ३६ ॥ स्फारं विधाय शृङ्गारं चतुरङ्गचमूयुतः । गत्वारामेऽभिरामे त्वं रमस्व स्वैरमुद्यतः ॥ ३७ ॥ कुमारः प्राह तातस्यादेशो मे शीर्षशेखरः । तथापि वच्मि किं कार्यमनया क्रीडयाल्पया ॥ ३८ ॥ किं चान्यार्जितया लक्ष्म्या स्वैरं विलसतां सताम् । प्रत्यक्षं सर्वलोकानां महतां महती त्रपा ॥ ३९ ॥ स्वार्जितापि हि दानेन सफला श्रीः पराः श्रियः । मर्त्यामर्त्येन्द्रजाः स्युर्यद्दानस्यैव प्रसादतः ॥ ४० ॥ तद्ब्रूयं विज्ञपयत गत्वा तातपदाग्रतः । उक्त्वेति दत्त्वा ताम्बूलं विसृष्टः स नृपं ययौ ॥ ४१ ॥ तद्विज्ञते नराधीशो नलिनीगुल्ममाह्वत । उवाच प्रणतं तं च वत्स! क्रीडसि किं न हि ॥ ४२ ॥ सफलीकुरु भोगेन त्वं राज्यं यौवनं श्रियम् । अस्माकं च जनस्यापि मा विधेहि निराशताम् ॥ ४३ ॥ शोभते समये सर्वं क्रियमाणं निजे निजे । शमस्य समयो नायं गोचराणां तु गोचरः ॥ ४४ ॥ यच्च सौख्यं विषयजं स्वल्पं जल्पसि तत् शृणु । क्षणतृप्तिकरं वारि तृपः शान्त्यै निपीयते ॥ ४५ ॥ यच्चोक्तं शोभते क्रीडा स्वभुजार्जितया श्रिया । तद्वृथा दिवि दिव्यन्ति देवा देवीभिरन्विताः ॥ ४६ ॥ सा किं तैरर्जिता लक्ष्मीः किं च क्लेशं धनार्जने । निःपुण्याः कुर्वते पुण्यवतां तु श्रीः स्वयंवरा ॥ ४७ ॥ अन्यच्च श्रीरियं वत्स! स्वपुण्यैर्भवतार्जिता । यदत्र नः कुले जन्म तद्दानं देहवारितम् ॥ ४८ ॥ इति प्रोच्य धराधीशः कोशाधीशमथादिशत् । यदिच्छति कुमारस्तत्सर्वमर्प्यं त्वया ननु ॥ ४९ ॥ मानयित्वा स ताताज्ञां विधाप्य घोषणां पुरि । आह्वाने युववर्गस्य तस्य कृत्वा स्वसन्निभम् ॥ ५० ॥ शृङ्गारस्योपकरणं यथारूढः सितं गजम् । मघवेव चतुर्दन्तं हास्तिकाश्वीयसङ्गतः ॥ ५१ ॥ वेषावदातपादातसङ्घातपरिवारितः । परितो वारवेश्याभिर्वीज्यमानश्च चामरैः ॥ ५२ ॥ जनैरङ्गुलिभिर्दृश्यमानो मानोल्लसद्यशाः । वन्दिभिर्नन्द्यमानश्च कौकिलोद्यानमागमत् ॥ ५३ ॥ (चतुर्भिः कलापकम्) तत्र

स्थितो यथेच्छं सोऽददद्दानमवारितम् । क्रीडित्वा बहुभङ्गीभिर्निजमावासमागमत् ॥ ५४ ॥ पौरलोकोऽवदत्पूर्वं कुमारा बहवोऽभवन् । न कोऽप्येवंविधस्त्यागभोगयोगपुरोगमः ॥ ५५ ॥ कोशाध्यक्षः कुमारेण पृष्टो द्रव्यव्ययः कियान् । पर्वण्यत्र जगादार्यं देव! दत्तं तथा त्वया ॥ ५६ ॥ यथा प्रमार्जिताः कोशाः कालक्षेपोऽर्जने श्रियाम् । तासां वितीर्यमाणानां पुनरक्षिनिमीलनम् ॥ ५७ ॥ नृपोऽपि तस्मात्तन्मत्वा ग्राहातीव व्ययः कृतः । कुमारोऽर्थार्जने चिन्ताचान्तचेतास्ततोऽजनि ॥ ५८ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि कथं वा द्रव्यमर्जये । चिन्ताशल्यं च पल्यङ्कस्थितोऽतुल्यं बभार सः ॥ ५९ ॥ अथाभरणरोचिर्भिर्भिन्दन्ती परितस्तमः । आगमत्सहसा लक्ष्मीः छत्रचामरलाञ्छना ॥ ६० ॥ शीघ्रं विमुच्य पल्यङ्कं नत्वा कृत्वा तथाञ्जलिम् । उवाचादिश्यतां मातर्य-त्प्राणैरपि सिध्यति ॥ ६१ ॥ विस्मेरमुखपद्मा च पद्मा प्रोवाच तं प्रति । डिम्भानां विनयेनैव मातुः किं किं न पूर्यते ॥ ६२ ॥ किं तु चिन्तातुरं मत्वा वत्स! त्वामहमागमम् । अर्थसार्थे तनुमपि चिन्तामातनु मा हृदि ॥६३॥ यत्कोशान्पूरयिष्याम्यादत्स्वेतां गुटिकां तथा । रूपपरावर्त्तकरीं कार्ये मां संस्मरेः पुनः ॥ ६४ ॥ उक्त्वेति सा तिरोधत्त कुमारोऽथ व्यचिन्तयत् । गुटिकायाः प्रभावेन न मां ज्ञास्यति कश्चन ॥ ६५ ॥ छन्नो देशान्तरं गत्वा पश्याम्याश्चर्यसङ्कुलम् । जाने जनानुरागांश्चेत्यसिपाणिः स निर्ययौ ॥ ६६ ॥ निशयपश्यन्नृपः सद्म द्रव्यैः कल्पद्रुरुज्ज्वलैः । भृत्वा कोशानगाद्दूरं प्रातः कोशाधिपोऽवदत् ॥ ६७ ॥ श्रीगृहाणि समग्राणि भृतान्यर्थैर्विशेषतः । नृपेऽथ विस्मिते कश्चिदेत्य साधुर्नरोऽवदत् ॥ ६८ ॥ कुमारो नेक्ष्यते देव! श्रुत्वेति धरणीधरः । पपात सहसा सिंहासनान्मूर्च्छामवाप च ॥ ६९ ॥ शीतोपचारतः सुस्थो धैर्यमाधाय भूधवः । सभां विसृज्य च त्रैपीत्सोदिशन्दानि

१ अथवात्पूर्णानि ।

सादरः ॥ ७० ॥ शुद्धान्ते जनिताक्रन्दे भानुश्रीर्मूर्च्छितापतत् । एत्य सर्वं सहाधीशः स्वयमाश्वासयच्च ताम् ॥ ७१ ॥ देवि! किं
क्वापि सिंहस्यैकस्यापि भवति भयम् । क्षत्राणां वीरचर्या हि युक्ता भुवि यशःप्रदा ॥ ७२ ॥ किं च पुण्याधिकं नृणां मिषेणानेन
जायते । विशेषतोऽपि कल्याणं तत्खेदं देवि! मा कृथाः ॥ ७३ ॥ इत्थं धैर्यान्नृपो यावदस्ति तां प्रतिबोधयन् । तावदेत्य वनी-
पालोऽवनीपालं व्यजिज्ञपत् ॥ ७४ ॥ देव! वर्धाप्यसे युष्मदुद्याने समवासरत् । विश्वानन्दप्रदातारः श्रीमदानन्दसूरयः ॥ ७५ ॥
तुष्टिदानं प्रदायास्य दध्यौ सुतवियोगजः । । तापो निर्वर्त्स्यते नायं विना तद्वचनामृतम् ॥ ७६ ॥ तद्देवीसहितो गत्वा सफले जन्म
जीविते । करोमीति विमृश्यैषः तत्रागात्सैन्यसङ्गतः ॥ ७७ ॥ उत्तीर्य कुञ्जराद्राजकुञ्जरो विनयानतः । रोमाञ्चिततनुर्भक्त्या
निविष्टो योजिताञ्जलिः ॥ ७८ ॥

अथ सूरिभिरारम्भि देशना क्लेशनाशिनी । अस्मिन् भवोदधौ दुःखनीरे रोगोर्मिमालिनी ॥७९॥ क्रोधादिमकराकीर्णे दौर्भा-
ग्यवडवानले । इष्टायोगानिष्टयोगनक्रचक्रभयङ्करे ॥ ८० ॥ सुखस्य न कथाप्यस्ति तद्विमुक्तिपदे परम् । तच्च रागादिनिर्याते
सर्वेन्द्रियजये भवेत् ॥८१॥ (त्रिभिर्विशेषकम्) स मनोविजयेन स्यात् भावनाभिः स जायते । अनित्यताद्या मैत्राद्या भावना भाव-
येत्ततः ॥ ८२ ॥ श्रुत्वेति देशनां भूपो जगाद भगवन्निह । स्याच्चेत्कुमारस्तद्राज्यं तत्र न्यस्याददे व्रतम् ॥ ८३ ॥ तत्प्रसद्यादिशत
मे केनाकूतेन सोऽगमत् । कथं चैते भृताः कोशाः कदा सङ्गंस्यते स च ॥ ८४ ॥ भगवानाह देशेषु नानाश्चर्याणि वीक्षितुम् । सोऽ-
गात्कोशाः श्रिया देव्या भृताश्च गुटिकार्पिता ॥ ८५ ॥ स दृष्टोऽपि भवत्सैन्यैर्लक्ष्यते न स लक्षते । तान्याकुलानि वीक्ष्यैष प्राहैकं

१ वनपालकः । २ केनाभिप्रायेण ।

सादिनं प्रति ॥८६॥ कस्य सैन्यमिदं कस्माचाकुलं तुरगी जगौ। नृपस्य भुवनभानोर्दुःखं सुतवियोगजम् ॥८७॥ कुमारोऽथ धरन् धैर्यं प्राह जाने निमित्ततः। कुमारः कुशलेनास्ति प्रभोः स च मिलिष्यति ॥ ८८ ॥ तत्त्वं मम गिरा राजराजस्यैतन्निवेदय। सादी जगाद यद्देवं यूयमाख्यात तत्स्वयम् ॥ ८९ ॥ कुमारः प्राह कार्यं मे महदस्ति ततो मया। तत्र गम्यं जगौ सादी शृण्वतां तुरगो मम ॥९०॥ कुमारः प्राह नियमः परस्य ग्रहणेऽस्ति मे। कियन्त्यपि दिनान्येष इत्युक्त्वाऽगच्छदन्यतः ॥९१॥ अथ सार्थेत्य सुण्माकं तच्च विज्ञपयिष्यति। स्वमस्तु प्रकटो वक्ति कुमारस्यान्यतो गतिम् ॥९२॥ षण्मासान्ते समं तेन भावी च तव सङ्गमः। तदात्मा नैव खेदस्यार्पयितव्यो मनागपि ॥९३॥ अलङ्घ्यं भवितव्यत्वं चिन्तयन्तो मनीषिणः। कदापि विधुरा न स्यू रत्नसारः पुरा यथा ॥९४॥

तथाह्यस्ति हर्षपुरं पुरं सुरपुरप्रभम्। हरिषेणाभिधस्तत्र भूमीन्द्रो गोत्रभिन्न तु ॥ ९५ ॥ हिरण्यगर्भनामास्ति सार्थेशस्तत्र यो धनम्। धत्ते परोपकाराय कायमप्यनुकम्पया ॥९६॥ यः सर्वज्ञपदाम्भोजनतिसंलग्नरेणुभिः। धत्ते स्वस्योत्तमाङ्गत्वमलीकस्यान-लीकताम् ॥ ९७ ॥ प्रिया तस्यास्ति कनकमाला नाम्नामलाशया। सुशीलस्तनका यस्या गुणमाला सदोरसि ॥ ९८ ॥ अन्यदा बहु-भिरसौ विहितैरुपयाचितैः। बभ्रे रत्नाकरस्वप्नसूचितं गर्भमुत्तमम् ॥ ९९ ॥ सुते जातेऽथ सार्थेशः कृत्वा वर्धापनादिकम्। तस्य स्वप्नानुसारेण रत्नसाराभिधां व्यधात् ॥१००॥ धात्रीभिः पञ्चभिः पाल्यमानः सोऽवर्धत क्रमात्। कलायोग्यः कलाचार्याचाददे सकलाः कलाः ॥ १०१ ॥ पित्रा कुलरयोरूपशीलसम्बन्धतुल्यया। उद्वाहितः कन्यया स रत्नदेव्यभिधानया ॥१०२॥ त्रिवर्गं पालयस्त्ये[1] परस्परमबाधया। बभूव राजमान्यश्च प्राच्यपुण्यानुभावतः ॥ १०३ ॥

---

१ भाग्यस्य।

रत्नसारोऽन्यदा श्रुत्वा देशनां चैत्यगोचराम् । गुरोर्महापुण्यफलां चैत्यारम्भमकारयत् ॥ १०४ ॥ अत्रान्तरे च मिथ्यादृक्
शिवदत्तेभ्यनन्दनः । हरिदत्तस्तदासन्ने प्रासादारम्भमादधे ॥ १०५ ॥ स्पर्धाबन्धादयं दध्यौ चेच्चैत्ये कर्म नो भवेत् । ततो निष्पद्य-
ते शीघ्रं प्रासादो मे यशोऽपि च ॥ १०६ ॥ ध्यात्वेति द्विगुणं मूल्यं दलपाटकसूत्रिणोः । स ददौ रत्नसारोऽपि स्पर्धाबन्धात्तथा
व्यधात् ॥ १०७ ॥ हरिदत्तः पराभूतंमन्यो मुक्ताफलैर्भृतम् । स्थालं प्राभृतमाधाय तुष्टं भूपं व्यजिज्ञपत् ॥ १०८ ॥ देवः प्रसद्य
प्रासादनिष्पत्त्यखिलखानिषु । शिलाग्रहणमन्यस्य निर्विकल्पं निषेधतु ॥ १०९ ॥ नृपस्तस्योपरोधेन रोधं खानिष्वकारयत् । अज्ञा-
तपरमार्था हि सेव्यन्ते स्वामिनः शठैः ॥ ११० ॥ सहर्षे हरिदत्तेऽथ रत्नसारः सुसारभृत् । उपायनमुपानीय महाराजं व्यजिज्ञपत् ॥ १११ ॥
देवेन मत्सरिवचः कुर्वता न वरं कृतम् । निषेधं सर्वथा तस्य नाहं खनिषु कारये ॥ ११२ ॥ नायं महात्मनां मार्गो यत्परानिष्टचिन्त-
नम् । परर्द्धिदुःखिनः स्युर्ये दुःखिनः सर्वदैव ते ॥ ११३ ॥ तत्तथा कुरुतां देव! प्रासादो जायते यथा । मदीयोऽप्यन्यथादेश्या
देशान्तरगतिर्मम ॥ ११४ ॥ केतकीकुसुमे दूयमानोऽलिः कण्टकालिभिः । कुन्दस्य कुसुमं याति न किं परिमलोज्झितम् ॥ ११५ ॥
दध्यौ नरपतिश्चित्तवृत्तिरस्य जनोत्तरा । यत्तत्र सापराधेऽपि न विरूपविचिन्तकः ॥ ११६ ॥ कम्पयत्यपि कंम्प्राके सुपर्वाद्रिर्न कम्पते ।
विशन्नपि मुखे राहोः सुधारूपः सुधाकरः ॥ ११७ ॥ अनेन चित्तवृत्त्यैव हरिदत्तो विनिर्जितः । तेनाहं छलितः कार्याकथनादुष्टचे-
तसा ॥ ११८ ॥ याति देशान्तरमन्यं मौनवित्तोऽपमानितः । मानितेऽस्मिन्मदीयं तु प्रतिपन्नं न पाल्यते ॥ ११९ ॥ इमौ नयन-
योस्तुल्यौ ततो नयवतो मम । पुरः पश्चाच्च नो कर्तुमुचितौ रुचितौ हृदि ॥ १२० ॥ इति ध्यात्वा हरिदत्तमाहूय च नृपोऽब्र-

१ वायौ । २ मानमेववित्तं यस्य ।

दत् । नैकस्याप्यधिकारोऽयं प्रासादस्य विधापने ॥ १२१॥ केयं स्पर्धा पितृद्रव्यव्यये निजभुजार्जितैः । विधापयत विरैस्तद्धर्मस्था-
नानि भूरिशः ॥१२२॥ षण्मासमध्येऽप्यधिकामर्जित्वाभ्येति यः श्रियम् । प्रासादं कारयतु स निषेधोऽन्यस्य मद्गिरा ॥ १२३ ॥
इत्यादेशं नृपाल्लब्ध्वं पित्रोराख्याय तौ मुदा । कलितौ चलितौ रत्नसारो नीरेऽपरःस्थले ॥ १२४ ॥ जलधौ यानपात्रेण रत्नसारस्य
गच्छतः । अकालजलदोल्लासः प्रादुरास निराशयन् ॥१२५॥ स्वस्वदेवस्मृतिपरेष्वपरेष्वपभीरयम् । स्मृतदेवगुरुः प्रायमाकारसहितं
व्यधात् ॥ १२६ ॥ ममैव रत्नसाराख्या साराख्योऽन्यस्तु कीदृशः । रत्नाकर इतीवास्य पोतं सद्यमभञ्जयत् ॥ १२७ ॥ वातोद्-
ताभ्रवधाते समस्तेऽपि जने धने । उर्मिमाल्यूर्मिभिः प्रेर्यमाणं तृप्यमाप सः ॥ १२८ ॥ अब्धिं तेनायमुत्तीर्य तीरदेशमुपागतः ।
तृतीये दिवसे दध्यौ कथं स्यान्मे धनार्जनम् ॥१२९॥ कथं प्रतिज्ञा पूर्या स्या चैत्यं कार्यं कथं मया । चित्रं तु पोतभङ्गश्च शपसङ्गश्च
मेऽभवत् ॥ १३० ॥ धीरत्वमवलम्ब्यैष शवं यावद्विलोकते । तावत्कटितटीनद्धां रत्नमालामलोकयत् ॥ १३१ ॥ दध्यौ परस्वं नादा-
तुं यदि युक्तं तथाप्यदः । गृहीत्वा द्रव्यमर्जित्वा विदधे शासनोन्नतिम् ॥ १३२ ॥ पश्चान्मतगुरुत्वाय दास्यामीति विचिन्त्य सः ।
निजवित्ताधिकैकैकरत्नमूल्याभिर्मां ललौ ॥ १३३ ॥ द्वीपान्तरेऽपि प्राप्तस्य नैतावन्मे धनं भवेत् । ततः प्रयामि स्वस्थानं परिपूर्ण-
मनोरथः ॥ १३४ ॥ ध्यात्वेति चलितः किञ्चित्पुरमेकमलोकयत् । तत्पार्श्वस्थदेवकुले विश्रामायाविशच्च सः ॥ १३५ ॥ रत्नमाला-
करः सोऽथ जातसागरजागरः । बभूव सहसा निद्रातन्द्रामुद्रितलोचनः ॥ १३६ ॥

इतः श्रीमन्दिरे तत्र मन्दिरे रम्यमन्दिरे । नृपः श्रीवल्लभो नाम राज्यश्रीवल्लभोऽस्ति च ॥ १३७ ॥ तस्य चानङ्गसेनाख्या
सुता रूपगुणाद्भुता । अनुरूपवराप्राप्त्या शीलरक्षणहेतवे ॥ १३८ ॥ तस्याः परिकरस्यापि नृपो चित्रामममज्जन् । भोजयत्यपि तां

स्तेन विविक्तसदनस्थिताम् ॥ १३९ ॥ चौर एकस्तु चौर्यस्य हर्पादेवमचिन्तयत् । यत्रोष्णभानुभानूनामपि नास्ति प्रवेशकः ॥ १४० ॥
तत्र प्रविश्य कन्याया यदि किञ्चिद्धराम्यहम् । तन्मे चौर्यस्य चातुर्यमैश्वर्यं चाधिकं भवेत् ॥ १४१ ॥ ध्यात्वेत्यक्षितटाद्दत्तसुरङ्गः
स क्रमात्क्रमात् । तत्रार्द्धरात्रे प्राविक्षत् प्रासादे तां च दृष्टवान् ॥ १४२ ॥ तत्कण्ठभूषणं तस्मिन्गृह्णाने सा त्वजागरीत् । चौर-
श्चौरस्तया प्रोक्ते स सुरङ्गाध्वनाऽनशत् ॥१४३॥ अङ्गरक्षास्ततस्तेन स्तेनमार्गेण तेऽन्वगुः। चौरो निर्गतमात्रोऽपि निरधिवेलया गतः
॥ १४४ ॥ अपश्यन्तः पदं तस्याङ्गरक्षा नृपमाययुः । तद्विज्ञप्तः स तन्मुख्यमाहूय क्रुद्ध आदिशत् ॥ १४५ ॥ सप्ताहोरात्रमध्ये
चेच्चौरं मे नार्पयिष्यसि । तत्त्वां तदीयदण्डेन दण्डयिष्याम्यसंशयम् ॥ १४६ ॥ स भीतः परितः पश्यंस्तद्देवकुलमागतः । करस्थर-
त्नमालं तं रत्नसारं व्यलोकयत् ॥ १४७ ॥ उत्थापितस्तलारक्षनरैः स कृततर्जनैः । जजल्प कल्पयित्वा मे मालाजालं प्रदीयताम्
॥ १४८ ॥ असौ यस्यान्तिके प्राप्ता तं शवं दर्शयामि वः । ते प्रोचुर्भवतो मुख्यो मृषाभाषिषु नापरः ॥ १४९ ॥ रत्नसारस्ततो दध्यौ
प्राकृकृतस्य न छुट्यते। जातस्य हि ध्रुवं मृत्युः स मनो न दुनोति मे ॥१५०॥ यत्तु पूर्णा प्रतिज्ञा न यत्प्रासादो न कारितः । कल-
ङ्कोऽयं च यज्जज्ञे वृत्तान्तोऽयं च मामकः ॥ १५१ ॥ यदा हर्पपुरे याता तदा निन्दां कुतीर्थिकाः । शासनस्य करिष्यन्ति तन्मे
दुःखावहं महत् ॥१५२॥ (युग्मम्) अन्यच्च जीवितमृती श्लाघ्ये लक्ष्मविवर्जिते। जीवितं मरणं वा मे शोचितं नोचितं ततः ॥ १५३ ॥
चिन्तयन्नित्ययं निन्ये नृपान्ते तैः सिताननः । नृपेणैष स्वयं पृष्टः कस्त्वं वससि कुत्र वा ॥१५४॥ तथ्येऽपि कथिते तेन तमतथ्यं
नृपोऽवदत् । अघटं सर्वमेवेदं शूलायां रोप्यतां ततः ॥ १५५ ॥ अमुष्मिंश्च खरारूढे नीयमाने वधावनौ । नृशीर्पस्थपटलिका-
स्थिते तस्मिन्विभूषणे ॥ १५६ ॥ उद्घुष्यमाणे तच्चौर्यापराधे सहसा खगः । आमिषस्य भ्रमाछात्वा क्षणेनादृश्यतामगात् ॥

॥१५७॥ (युग्मम्) विलक्षे क्षितिपे तत्र मत्वा पौरजनोऽवदत्। सत्याप्यं यदयं चौरः प्रान्यो नोदेति तद्रविः ॥१५८॥ इन्दोरङ्गारवृष्टिस्त-
न्निर्मर्यादस्ततोऽम्बुधिः। सोऽथ श्मशाने वैर्नीत्वा प्रोचे ध्यायेष्टदेवताम् ॥१५९॥ जिनान्मुनींश्च स स्मृत्वोद्दिश्याम्बोधिममापत। यद-
द्धोऽहं त्रिधा शुद्धस्तन्मे साहायकं कुरु ॥ १६० ॥ गहसाथ गिरा दिव्या दिव्यासीदिदृशी तदा। अनादीनर एवायमदीनात्सो
महामनाः ॥ १६१ ॥ ततो महीशो यद्यस्य पदयोर्न लगिष्यति। ततोऽहं नगरं सर्वं प्लावयिष्ये जलप्रवात् ॥ १६२ ॥ तदाकर्ण्य नृपो
मीतस्तत्पद्मयोऽब्रवीदिति। त्वं क्षमस्वापराधं मे त्वद्दत्तं जीवितं भवेत् ॥ १६३ ॥ रत्नसारस्ततः प्राह तव मन्तुर्न कश्चन। जन्तुः
कर्मवशः सर्वं यदाप्नोत्यसुखं सुखम् ॥ १६४ ॥ मोक्ष्यते विपदस्त्वस्याः सम्यग्दर्शनतो भवान्। तद्देवोऽर्हन्गुरुः साधुर्धर्मश्चार्हद्भि-
रीरितः ॥ १६५ ॥ ततश्च भावनासार भूपतिस्तत्प्रपन्नवान्। ऊचे च धन्यमूर्धन्यस्त्वमेवास्युपकारिषु ॥ १६६ ॥ ममापकारिणोऽपि
त्वमुपकारं करोषि यत्। चिन्तारत्नाभसर्वज्ञधर्मरत्नप्रदानतः ॥ १६७ ॥ तव प्रत्युपकारस्तत्कोऽपि कर्तुं न शक्यते। यदि वच्मि
तथापि त्वां नररत्न! किमप्यहम् ॥ १६८ ॥ राजश्रीस्तव सर्वेयं ममास्ति त्वं च पुत्रवत्। तदेनां विलस स्वैरं न वै रङ्गमहोत्सवैः
॥ १६९ ॥ उक्त्वेति स्नपयित्वा च सर्वाभरणभूषितः। पट्टद्विपं समारोप्य पुरस्यान्तः प्रवेशितः ॥ १७० ॥ श्लाघते स्म जनस्तत्रै
जयत्वार्हतशासनम्। धर्मोऽस्त्यद्यापि यत्तस्य प्रभावो दृश्यते स्फुटः ॥१७१॥ शृण्वन्निति जयगिरोऽभ्यर्च्यमानः पदे पदे। साधर्मिक-
जनैः पूजां कारयन् चैत्यपद्धतौ ॥ १७२ ॥ चामरैर्वीज्यमानश्च छत्रच्छायोपशोभितः। आत्मनोऽप्यधिकेऽप्यस्य प्रसादे सप्तभूमिके
॥ १७३ ॥ नृपप्रसादतस्तस्य विभवो बहुरप्यभूत्। दिनैः कतिपयैर्भूपं सोऽर्हद्धर्ममशिक्षयत् ॥ १७४ ॥ मासान्कत्यपि स
स्थित्वाऽप्यायसत्यां नरेश्वरः। गमनोत्सुकचित्तः स्मापृच्छते पृथिवीपतिम् ॥ १७५॥ नृपः प्रचलितस्यास्यासंख्यं संख्यावतो ददौ।

सुवर्णद्रव्यमाणिक्यभूषणादि मुदान्वितः ॥ १७६ ॥ सुसार्थेन व्रजन्नेष भीषणारण्यमागतः । गजसेनाख्यपल्लीशसैौप्तिकं तत्र चापतत्
॥ १७७ ॥ नष्टे परिजने रत्नसार एकस्तमोभरे । अनश्यत्तस्कराद्दृश्यो न्यग्रोधं चैकमासदत् ॥ १७८ ॥ श्वापदाद्यापदा भीतस्तमारुह्य
महाशिखम् । संलग्नशाखायुगलस्यान्तरे स्रस्तरं व्यधात् ॥ १७९ ॥ स निद्रारहितस्तत्र धर्मजागरिकास्थितः । तां निशां गमयामास
दुरितावलिकामिव ॥ १८० ॥ प्रातर्दध्यौ च दिवसाः शेषाः स्वल्पा ममावधेः । वाताहत घनस्येव धनस्य गमनं त्वभूत् ॥ १८१ ॥
धनहीनश्च चेद्यामि मानग्लानिस्ततो भवेत् । न जायते च प्रासादो मालिन्यं जिनशासने ॥ १८२ ॥ न यामि यदि तत्राहं ततोऽपि
स्यात्पराभवः । किं कर्तव्यविमूढः सन्निति ध्यायति यावता ॥ १८३ ॥ तावन्न्यग्रोधद्रुमूर्द्धापीडनीडे स नीडतः । बालारुणनिभं
ज्योतिः समुल्लसितमैक्षत ॥ १८४ ॥ विस्मितस्तदुपान्तं स यातस्तां रत्नमालिकाम् । वीक्ष्य ध्यायन्विधेर्नैकरूपतां मुदितोऽग्रहीत्
॥ १८५ ॥ तत्रासादीतया रत्नमालया स मुदालयः । मन्यते स समीचीनं मातुः स्वप्नं स्वनाम च ॥ १८६ ॥ विधेर्विधेयतां
पञ्चनमस्कारं च चिन्तयन् । निरन्तरायमायातः स मङ्गलपुरे पुरे ॥ १८७ ॥ रत्नमेकं स विक्रीयोपात्तानेकक्रयाणकः । पुरीपरि-
सरे प्राप षण्मासान्तिमवासरे ॥ १८८ ॥ प्रेषितः पुरुषस्तेन स्वकीयपितुरन्तिके । ज्ञात्वा सुतागमस्तस्मै स ददौ पारितोषिकम्
॥ १८९ ॥ विज्ञप्तः पृथिवीनाथः सपौरस्तमुपागमत् । मुदा तमनमद्रत्नसारः पृष्टश्च भूभुजा ॥ १९० ॥ कथं विस्रसिते यानपात्रे
धनमुपार्जितम् । स सुव्रतः स्ववृत्तान्तमिलाभर्त्रेऽखिलं जगौ ॥ १९१ ॥ चक्रे च पूजा भूजानैर्वस्तुभिस्तेन नूतनैः । अतिमात्रं नरे-
न्द्रस्य तया चावर्जितं मनः ॥ १९२ ॥ रत्नसारो नृपस्याथ रत्नमालामदर्शयत् । तामनर्घ्यैकैकमणिं नृपतिर्वीक्ष्य विस्मितः
॥ १९३ ॥ रत्नसारोऽवदत्सर्वं कियन्मात्रमिदं विभो ! । राज्यं शिवपुरस्यापि स्याद्धर्मस्य प्रसादतः ॥ १९४ ॥ धर्मो ह्ययं जिने-

१ धाटीः ।

न्द्रोक्तो विद्या मन्त्रश्च शर्मणम् । सकलाना समृद्धीनां वशीकरणकर्मणि ॥ १९५ ॥ इति श्रुत्वार्हते धर्मे श्रद्धालुरभवन्नृपः । चक्रे
सविस्तरं चास्य प्रवेशकमहोत्सवः ॥ १९६ ॥ हिरण्यगर्भः सार्धेशो हिरण्यस्य प्रवर्षणात् । तुष्टो व्यधापयद्वर्धापनकं नन्दनागमे
॥ १९७ ॥ सवंशार्चा जिनार्चानां विदधे जिनवेश्मसु । चतुर्विधस्य सङ्घस्य पूजा च विहितोचिता ॥ १९८ ॥ मानिताः स्वजना
दत्तं सवित्तं दुःस्थितेषु च । परोपकारसारेण रत्नसारेण सादरम् ॥ १९९ ॥ तृतीये हरिदत्तोऽपि दिवसेऽस्मात्समागतः । प्रभूतं प्राभृ-
तं कृत्वा सोऽपि राजानमागमत् ॥ २०० ॥ तवास्तु प्राभृतमिति प्रोच्याप्राक्षीन्नराधिपः । किं त्वयोल्लङ्घिता प्रोक्ता दिनसीमाथ
गोऽवदत् ॥ २०१ ॥ मयाज्ञाप्याद्य सम्पूर्णाः षण्मासास्तद्दिनान्तरम् । किमन्तरं ब्रुवन्नेवं नृपेणोक्तः कियद्धनम् ॥ २०२ ॥ स
म्यसंख्यां वदन्नूचे महीशनेन वक्रधीः । रत्नसारस्य तुल्यं ते विंशांशेनापि नो धनम् ॥ २०३ ॥ इत्थमन्तःसभं राज्ञा धिकृतः सह-
सापि सः । मुखे दत्तमषीकूर्च इवाधोमुखतामगात् ॥ २०४ ॥ परार्ध्यैरपरार्ध्यानां प्रतिस्पर्धां प्रकुर्वताम् । पराभवो भवेद्दंतपातोऽद्रौ
दन्तिनामिव ॥ २०५ ॥ सप्रसादं ततो भूपः प्रासादस्य विधापने । स्वादेशं रत्नसारस्य विततार परस्य न ॥ २०६ ॥ ततः प्रव-
र्तने जैनशासनस्य प्रभावना । यशश्च रत्नसारस्य जयवादो जनेऽपि च ॥ २०७ ॥ स ततः कारितानेकधर्मस्थानो महामनाः ।
श्राद्धधर्मं महाशुद्धं चिरकालमपालयत् ॥ २०८ ॥ प्रसन्नचन्द्रसूरिभ्यः सुप्रसन्नमनाः स च । व्रतमादाय सर्वार्थसिद्धिं प्राप विपा-
प्मा ॥ २०९ ॥ शासनप्रत्यनीकस्तु शिवदत्तस्य नन्दनः । भ्रमिष्यति महादुःखगहने भवसागरे ॥ २१० ॥

इति मत्वा महाराज ! दशासु विषमास्वपि । हृदि वैधुर्यधुर्यत्वं न कार्यं रत्नसारवत् ॥ २११ ॥ नृपः पुनः प्रणम्याह भगवन्न-
न्दनो मम । कस्मात्सौभाग्यवान्दाता विरागी विषयेषु च ॥ २१२ ॥ आसन्नसिद्धयो जीवाः स्युरेवंविधचेष्टिताः । तदयं मदर्थंछोकं

॥ २१४ ॥
चिरं राज्यं करिष्यति ॥ २१३ ॥ ततश्च वज्रदत्ताख्यसूरेरसाद्विनेयतः । प्रतिपद्य परिव्रज्यामच्युतस्वर्गमेष्यति
द्वाविंशतिर्मतराणि तत्रायुः परिपाल्य च । जम्बूद्वीपस्य भरते पुरे सिंहपुराभिधे ॥ २१५ ॥ भावी विष्णुनरेन्द्रस्य नन्दनो विश्वन-
न्दनः । अनुभूय तीर्थंकरनामकर्म च सेत्स्यति ॥ २१६ ॥ अपरेऽपि गुणाः स्युश्च सर्वे सर्वातिशायिनः । प्राकृतैः सुकृतैस्तीर्थंक-
रजीवस्य निश्चितम् ॥ २१७ ॥ श्रुत्वेत्यानन्दवाष्पेण सम्पूर्णा सकला सभा । दुःखं सर्वं विसस्मार कुमारविरहोद्भवम् ॥ २१८ ॥
ऊचुश्च लोका भुवनभानुर्धन्योऽवनीधरः । यस्यैष नलिनीगुल्मोऽवातरन्मन्दिरे सुतः ॥ २१९ ॥ अकुण्ठा च समुत्कण्ठा तं द्रष्टुं
नृपतेरभूत् । निर्गुणेऽप्यङ्गजे सा स्यात् किं पुनर्गुणशालिनि ? ॥ २२० ॥ अथ नत्वा नृपः प्राह कुमारागमने व्रतम् । ग्रहीष्येऽहं
गृहिधर्मेणाधुना तु प्रसीदता ॥ २२१ ॥ ततो नृपेण राज्ञ्या च जनैरन्यतरैरपि । सम्यक्त्वं देशविरतिसहितं समुपाददे ॥ २२२ ॥
कुमारशुद्धिलाभेन स देशविरतेस्तथा । सानन्दहृदयो भूपो नत्वागान्मन्दिरं निजम् ॥ २२३ ॥
इतश्च नलिनीगुल्मो नानाश्चर्याकुलामिलाम् । रूपैर्नानाविधैर्नानाभवानेकभवे न्यधात् ॥ २२४ ॥ वस्त्रभूषणताम्बूलाहारश-
य्यासनानि सः । लक्ष्मीनियुक्तदेवीभिः प्रदत्तान्युपयोगयन् ॥ २२५ ॥ स्वगुणाढ्यानि गीतानि नगरेषु द्विपामपि । शृण्वन्देवकु-
ले वर्धापनेऽन्यत्रापि चोत्सवे ॥ २२६ ॥ वन्दिभिः पठ्यमानं स्वं श्लाघ्यमानं जनैरपि । शौर्यौदार्यकलालक्ष्मीप्रसादनयवर्णनैः
॥ २२७ ॥ अलक्षितो जनैः प्राप्तोऽन्यदाऽचलपुरे पुरे । तत्र सांयात्रिकं वार्द्धियात्राचलितमैक्षत ॥ २२८ ॥ (चतुर्भिः कलापकम्)
स धनी सुन्दरो नाम्ना कुमारेणेतिभाषितः । आरोहामि वहित्रेऽहं त्वदीये तव चेन्मतम् ॥ २२९ ॥ तं वीक्ष्य दिव्यस्रक्पुष्पवि-

१ सागरोपमानि । २ पोतवणिजम् । ३ नौकायाम् ।

भूषणविलेपनम् । स आहासि त्वमध्यक्षो देवो वेलन्धरो मम ॥ २३० ॥ अहं परिजनः सर्वस्तवेदं वहनं धनम् । साक्षान्महानिधिस्त्वं मे चिन्तामणिरथासि वा ॥ २३१ ॥ ततस्तं यानमारूढं सेवते सेवको यथा । यानाधिनाथः प्राक्पुण्यैः के वा सेवाकृतो न हि ॥ २३२ ॥ स्थानं यानं च यानेशः कुमारस्य गिरा व्यधात् । नव्यं दिव्यं सदा प्रेक्ष्य वस्त्राद्यस्य स विस्मितः ॥ २३३ ॥ प्रष्टुका-मोऽपि न प्रष्टुं तं शक्नोति तरीपतिः । असि कस्त्वं कुतो यासीत्यपृष्ट्वैव कुमारतः ॥ २३४ ॥

अन्यदा क्वचन द्वीपे वनराजिविराजिते । याने स्थिरीकृते नीरफलेन्धनजिघृक्षया ॥ २३५ ॥
वंशकीध्वनिः । निर्यात् श्रुत्वा कुमारेण मारस्येव जयध्वनिः ॥ २३६ ॥ अपृच्छच्च समीपस्थं नरं कञ्चन सोऽब्रवीत् । आसन्नमेवा-
स्त्युद्यानं वसन्ततिलकाभिधम् ॥ २३७ ॥ यन्नारीमुखवद्यत्र वल्लीभिरभितो वृतम् । आकाशवच्च विलसत्पतङ्गश्रीतरङ्गितम् ॥२३८॥
नस्य मध्येऽस्ति चैत्यं च विद्रुमैरेव निर्मितम् । स्फाटिकेन विशालेन शालेन परितो वृतम् ॥ २३९ ॥ अद्भुतोद्यानवृक्षाणां पङ्क्तालिः
पङ्कशापने । अलक्तवत्तूलवद्भान्ति घनाः कार्यापणा अपि ॥२४०॥ जपाकुसुमसिन्दूरकिंशुकाशोककुङ्कुमैः । करम्बितमिवाभाति नभो
यस्य प्रभाभरैः ॥ २४१ ॥ उदये चेद्रविश्चन्द्रचन्द्रिकावेष्टितो भवेत् । चैत्यं स्फाटिकवप्रं सदुपमीयेत तेन तत् ॥ २४२ ॥
युग विद्याधरास्तत्र प्रायो नाट्यं प्रकुर्वते । अर्हद्भक्त्या नराणां तु प्रवेशोऽपि न विद्यते ॥ २४३ ॥ तस्य न ज्ञायते द्वारं वप्रोऽतीव
गयोमतः । बहिःस्थितैरपि नैर्दृश्यते स्वमलत्वतः ॥ २४४ ॥ अथो मृगमदाश्लिष्टो वीणावादेन तेन सः । उद्यानसागपन्नमध्यं
रामणीयकवेन्मनः ॥ २४५ ॥ तत्र च प्रतिदोलं स दोलने कौतुकी स्वयं प्रति पुष्करिणीनीरं जलकेलिषु लालसः ॥ २४६ ॥
प्रविक्रीडाद्रि पारोहणान्स्रामच्छायमानसः । जलकेलिं विधायागादुपप्राकारमादरात् ॥ २४७ ॥ वीक्ष्य वस्तुभ्रवां दध्यौ नायं मान-

मध्यं प्रवेष्टुकामोऽयं लक्ष्मीनिर्दिष्टदेवताम् । असार्पीत्तत्प्रभा-
वनिर्मितः । अस्माच्छत्वेन सर्वं च दृश्यते वस्तुमध्यगम् ॥ २४८ ॥ विस्मयस्फारितस्फारनेत्रयुग्मोऽप्यचिन्तयत्
वेन प्राविशत्तु सुपर्ववत् ॥ २४९ ॥ तद्रम्यतामयं वीक्ष्यामर्यादां वीक्ष्यवस्तुषु । यतो यत्र कथा स्वमे-
॥ २५० ॥ तत्र किञ्चन वस्त्वस्ति चार्वाश्चर्यकारकम् । यत्कर्मपरिणामो न दर्शयेदैन्द्रजालिकः ॥ २५१ ॥ मार्गे नयनयु-
प्यपि नः स्याच्च मानसे । न चानुभूयते वर्षसहस्रैर्न घनैर्भवैः ॥ २५२ ॥ तान्येकेन मुहूर्त्तेनैकत्र जन्मनि चाद्य मे । उद्यानं
गमस्य सममेव समागमत् ॥ २५३ ॥ पूर्वभवनिमेम्भोधौ सद्वीपं धर्मतत्त्ववत् । स्वर्गवत्स्वर्गिवर्गभोग्यमिदं यतः ॥ २५४ ॥
ततः सुकुलवत्केलिवापिमध्यावरोहणम् । देवीभिर्गुरुगीर्वच्च वप्रसंसारलङ्घनम् ॥ २५५ ॥ ततश्च वर्णनोत्तीर्णं चैत्यं शिवपदोपमम् ।
अतः परं किमप्यस्ति न दृश्यं भुवनत्रये ॥ २५६ ॥ ततो नयनयोः पट्टबन्धो योगो द्विधापि हि । दीप्यते प्रथमा रेखा तयोर्ध-
न्यतमेषु च ॥ २५७ ॥ अपि चात्राप्रविशन्तो देवा अपि हि वञ्चिताः । धन्यास्ते पक्षिणो येषां निवासोऽत्राऽर्हते गृहे ॥ २५८ ॥
अस्य कारयिता धन्यः कर्त्तापीति विचिन्तयन् । प्रविष्टोन्तःस्फुरदुच्चरोमाञ्चः साश्रुलोचनः ॥ २५९ ॥ तेन दोषाकरमणिघटि-
ताप्यपदूषणा । ददृशे श्रीजिनेन्द्रस्य प्रतिमाऽप्रतिमा भुवि ॥ २६० ॥ पञ्चाङ्गप्रणिपातेन तां प्रणम्य कृताञ्जलिः । समारभत च
स्तोतुं कुमारः स्फारवागिति ॥ २६१ ॥

जगत्त्रयप्रदीप! त्वां
अन्तर्मुक्तावलिप्राप्तस्तवं त्वामद्य नायकम् । समुज्ज्वलं जिनं प्राप्य दौस्थ्यं मे दूरतो गतम् ॥ २६२ ॥
निःस्नेहं च निरञ्जनम् । ध्वस्तान्धस्तमसं कोऽपि लभते पुण्ययोगतः ॥ २६३ ॥ सर्वत्रास्खलितोऽप्येष कालव्यालस्तवाज्ञया ।
कीलितास्यो न शक्नोति दष्टुं दुष्टोऽपि ते नतम् ॥ २६४ ॥ मानतुङ्गस्य संसारभ्रमश्रमजुषो मम । नाथ! श्रमशमायाशु देहि

निःश्रेयसाश्रयम् ॥ २६५ ॥ स्तुत्वेति श्रीजिनं नत्वा स मण्डपममण्डयत् । तत्रापश्यत्कनीमेका खेलन्तीं - यौवने वने ॥ २६६ ॥
वर्तमानां समुल्लासकरक्रमरदच्छदैः । प्रस्फुरत्पल्लवां नव्यदिव्याभरणभारिणीम् ॥ २६७ ॥ दिव्यवासोनिवसन्तीं कन्यां कल्प-
लतामिव । वादयन्तीं स्वय वीणां मधुरध्वनिबन्धुराम् ॥ २६८ ॥ गीतनृत्यादिदक्षाभिः सखीभिः परिवारिताम् ।[1]तां निरीक्ष्य च
विसेरनयनोऽयं व्यचिन्तयत् ॥ २६९ ॥ (चतुर्भिः कलापकम्) किं रत्नाकरपुत्रीयं किं वा भवनवासिनी । किं वा देवाङ्गना
किं वा मकरध्वजवल्लभा ॥ २७० ॥ नेयं नेयं न सा नैषा निमेषादिति मन्यते । असौ विद्याधरी रूपाधरीकृतपराङ्गना ॥ २७१ ॥
(युग्मम्) तत्कटाक्षावली पञ्चबाणबाणावलीनिभा । निपपात कुमारस्योपरि प्रीतिपरिप्लुता ॥ २७२ ॥ तस्याः कुमारलावण्यं पिब-
न्त्या दृक्पुटस्थितम् । समुल्ललास विषयतृष्णा काप्यतिशायिनी ॥ २७३ ॥ तस्याः सुकुशलत्वेऽपि वादयन्त्या विपञ्चिकाम् । अभू-
दपस्वरः सख्यः प्राहुस्तामथ विस्मिताः ॥ २७४ ॥ तवापि वादयन्त्या किं सखि ! वीणामपस्वरः । जृम्भारम्भान्विता तन्द्रा दृशो-
रस्थिरता च ते ॥ २७५ ॥ भ्रष्टा च रसना स्थानात्कम्पश्चाङ्गेषु सर्वतः । पर्यस्तमुत्तरीयं च तन्नः कथय कारणम् ॥ २७६ ॥ क्षोभः
समुद्रवेलायां नादृष्टे राजनन्दने । विन्यस्ताङ्गा सखीक्रोडे सनिश्वासाथ साब्रवीत् ॥ २७७ ॥ तापो ममाङ्गमारोहत्तदिदं सहमाज-
नि । ताः प्राहुः यत्तवाप्यङ्गे भवेत्तापस्तदद्भुतम् ॥ २७८ ॥ स्वयं शशिप्रभा त्वं च लावण्यामृतवाहिनी । तद्गम्यते श्रीतिलकनाम-
धेये निजे पुरे ॥ २७९ ॥ तातः खेचरराजस्ते श्रीचन्द्राम्भा च तावकी । शशिकान्ता तयोर्ध्वान्तमयास्त्वद्विरहे दिशः ॥ २८० ॥
कुमारोऽथ समुद्दिश्य पाञ्चालीमित्यवोचत । अद्भुतं रञ्जयत्येषा हृदयं यच्छशिप्रभा ॥ २८१ ॥ सित्वाथ प्रोचिरे सख्यो भावनिन्ह-

[1] दिव्यवस्त्रधारिणीम् । [2] चन्द्रे ।

वकारिणि ! । कारणं ज्ञातमधुना वयस्यैका च तां जगौ ॥२८२॥ मनोरथास्तवापूर्वा नरविद्याधरोज्झनात् । देवे तवाभिलापोऽभू-
देष युक्तश्च ते वरः ॥ २८३ ॥ शङ्कामहे न देवत्वाद्दिव्यनेपथ्यतथ्यरुक् । मन्यते देव एवायं नृपु चेद्रूपमीदृशम् ॥ २८४ ॥
तदूर्ध्वमूर्ध्वलोकोऽयं विदधे वेधसा कुतः । सोचे निमेषभूस्पर्शादेष राजाङ्गजो ध्रुवम् ॥ २८५ ॥ दिव्या नेपथ्यलक्ष्मीर्यत्तद्दृष्ट-
कृतं पुनः । अन्यथा न प्रवेशोऽपि घटतेऽत्र जिनालये ॥ २८६ ॥ प्रेमाम्बुपूर्णचित्तालवालोद्यत्कामभूरुहौ । यावत्तौ स्तस्तदा-
गच्छच्छशीकान्ता तदन्तिकम् ॥ २८७ ॥ उवाच च त्वया वत्से ! कथमद्य चिरायितम् । शीघ्रं चलास्ति तातस्ते दुःखितो विर-
हाद्यतः ॥ २८८ ॥ अनिच्छन्त्यपि जननीभयादथ चचाल सा । अलसा स्वविमानेन वलितग्रीववीक्षिका ॥ २८९ ॥ कुमारोऽपि
तदास्येन्दुस्फूर्त्या हृदयपुष्करे । कालं कियन्तमप्यस्थाद्वीचिमालीव वीचिमान् ॥ २९० ॥

अथो कुमारश्चैत्यस्य जगतीं यावदीक्षते । चारणश्रमणं तावदेकं ध्यानस्थमैक्षत ॥ २९१ ॥ तं प्रणम्य सरोमाञ्चः स
स्तौति स प्रभो ! मया । त्वं कषायाग्नितप्तेन सुधाकुण्डमिवेक्षितः ॥ २९२ ॥ निधिर्गृहे दरिद्रस्य कल्पद्रुस्तरौ मरौ । प्रभाकरश्च
सरसि शुष्के दृष्टो मया भवान् ॥ २९३ ॥ विचिन्त्य तस्य भव्यत्वं विमुच्य ध्यानमञ्जसा । तस्याख्यद्धर्मकल्पद्रोर्मूलं सम्यक्त्व-
मीरितम् ॥ २९४ ॥ तच्च देवो जिनः साधुर्गुरुस्तत्त्वं तदीरितम् । प्रपन्नेऽत्रानिबद्धायुर्जीवो याति न दुर्गतिम् ॥ २९५ ॥ तच्च
जीवादितत्त्वेषु सम्यक् श्रद्धानतो भवेत् । कस्यापि हि निसर्गेण कस्यापि गुरुयोगतः ॥२९६॥ श्रुत्वेति नलिनीगुल्मो दर्शनं प्रत्य-
पद्यत । उल्लङ्घितं भवमिव तेन स्वं सत्वमन्यते ॥ २९७ ॥ नन्तुमन्यानि तीर्थानि गतेऽथ गगनाध्वना । चारणश्रमणे सोऽभूत्
तद्वियोगेन दुर्मनाः ॥ २९८ ॥ यावद्याति पुनर्देवाधिदेवं नन्तुमन्तरे । तावद्विद्याधरं तस्य पुरो ध्यायन्तमैक्षत ॥ २९९ ॥ उवाच

न जिनाधीश ! तव पादप्रसादतः । विद्या विद्याधरस्यास्य तत्क्षणं सन्तु सिद्धिदाः ॥ ३०० ॥ वास्तत्सत्त्वेन सिद्धाश्च दिवि दध्वान
दुन्दुभिः । जज्ञे कुसुमवृष्टिश्च खेचरोऽथातिविस्मितः ॥ ३०१ ॥ ससम्भ्रमं कुमाराङ्घ्री नत्वा प्राह महामते ! । तव वाक्याच्चिरादद्य
विद्यासिद्धिर्ममाजनि ॥ ३०२ ॥ तव प्रत्युपकर्तुं तन्न क्षमोऽहं तथापि हि । सद्यो विद्यां गृहाणेमां विधायानुग्रहं मयि ॥ ३०३ ॥
कुमारः प्राह विद्यास्ते सिद्धा अर्हत्प्रभावतः । तथापि त्वद्वचः कार्यमित्युक्त्वा ताः स आददे ॥ ३०४ ॥ तत्क्षणं दुन्दुभिध्वानः
पुष्पवृष्ट्यान्वितोऽभवत् । तद्वीक्ष्य विस्मितोऽतीव कुमारं प्राह खेचरः ॥ ३०५ ॥ त्वमेव धन्यमूर्धन्यो विद्यानां यस्य भव्यवत् ।
बभूव तत्क्षणं सिद्धिः कष्टसाध्याः परस्य याः ॥ ३०६ ॥ विद्यासिद्धेरपि ततो मन्येऽहं तव दर्शनम् । आत्मनोऽभ्यधिकं त्वं हि
मर्यकल्याणकारणम् ॥ ३०७ ॥ तत्प्रसद्य त्वया सिद्धपुरे पादोऽवधार्यताम् । तत्र मे जयसिंहाख्यः पिता विद्याधरेश्वरः ॥ ३०८ ॥
हरिविक्रमनामाहं सुतस्तस्यातिवल्लभः । तद्राज्यलक्ष्मीः सकला सफलीक्रियतां त्वया ॥ ३०९ ॥ (युग्मम्) विद्याभिः शोभमा-
नोऽथ स कलाभिरिवेणभृत् । शशिप्रभां समालोक्य पल्लवोत्फुल्लमानसः ॥ ३१० ॥ तस्या नेत्रत्रिभागेनालोकितानि मुहुर्मुहुः ।
कृतानि वलितग्रीवं स्मरत्सरशरायितान् ॥ ३११ ॥ सद्यो विमानमारुह्याचलद्वैताढ्यसम्मुखः । तस्यायातश्च पोतेशोऽर्कसेवार्थं समु-
दधे ॥ ३१२ ॥ ऊचे च भवतामध्ये तावन्तं कालमीक्षितः । मयाधुना तु किं कार्यं तद्भक्त्या रञ्जितोऽथ सः ॥३१३॥ प्रददौ नलि-
नीगुल्मः साङ्गलग्नं निभूषणम् । दिव्यं देवीभिरन्यच्च कुमाराय ततोऽर्पितम् ॥ ३१४ ॥ (युग्मम्) सर्वस्यापि जनस्याथ विस्मयः
सुमहानभूत् । पोतेशोऽचिन्तयत्पुण्यजनभक्तिर्न निष्फला ॥३१५॥ ऊचे कुमारः स्वच्छन्दं विदधेहि प्रयाणकम् । वैताढ्यपर्वतेऽहं
तु यास्ये सुन्दर सुन्दरे ॥३१६॥ कार्यः प्रमादो युष्माभिः पुनः पुनर्नते मयि । इति पोतेशवचनं प्रतीच्छन्स दिवं ययौ ॥३१७॥

प्रसर्पदम्भांसि सरांसि पश्यन्नुद्यानमालाश्च विशालसालाः । पुराणि वप्रोन्नतगोपुराणि प्रापत्पुरं सिद्धपुरं कुमारः ॥ ३१८ ॥ नलिनी-गुल्मस्य जनुस्तद्यात्रा तदनु रत्नसारकथा । कन्यासम्यक्दर्शनविद्यालाभाश्च चैत्येऽत्र ॥ ३१९ ॥

इति राजगच्छे श्रीरत्नप्रभसूरिशिष्य-श्रीमानतुङ्गाचार्यविरचिते श्रीश्रेयांसचरिते महाकाव्ये भवत्रयनिबद्धे प्रथमभववर्णने पञ्चमः सर्गः ॥

च जिनाधीश! तव पादप्रसादतः। विद्या विद्याधरस्यास्य तत्क्षणं सन्तु सिद्धिदाः ॥ ३०० ॥ तास्तत्सत्त्वेन सिद्धाश्च दिवि दध्वान दुन्दुभिः। जज्ञे कुसुमवृष्टिश्च खेचरोऽथातिविस्मितः ॥ ३०१ ॥ ससम्भ्रमं कुमाराङ्घ्री नत्वा प्राह महामते!। तव वाक्याच्चिरादद्य विद्यासिद्धिर्ममाजनि ॥ ३०२ ॥ तव प्रत्युपकर्त्तुं तन्न क्षमोऽहं तथापि हि। सद्यो विद्यां गृहाणेमां विधायानुग्रहं मयि ॥ ३०३ ॥ कुमारः प्राह विद्यास्ते सिद्धा अर्हत्प्रभावतः। तथापि त्वद्वचः कार्यमित्युक्त्वा ताः स आददे ॥ ३०४ ॥ तत्क्षणं दुन्दुभिध्वानः पुष्पवृष्ट्यान्वितोऽभवत्। तद्वीक्ष्य विस्मितोऽतीव कुमारं प्राह खेचरः ॥ ३०५ ॥ त्वमेव धन्यमूर्धन्यो विद्यानां यस्य मन्त्रवत्। बभूव तत्क्षणं सिद्धिः कष्टसाध्याः परस्य याः ॥ ३०६ ॥ विद्यासिद्धेरपि ततो मन्येऽहं तव दर्शनम्। आत्मनोऽप्यधिकं त्वं हि सर्वकल्याणकारणम् ॥ ३०७ ॥ तत्प्रसद्य त्वया सिद्धपुरे पादोऽवधार्यताम्। तत्र मे जयसिंहाख्यः पिता विद्याधरेश्वरः ॥ ३०८ ॥ हरिविक्रमनामाहं सुतस्तस्यातिवल्लभः। तद्राज्यलक्ष्मीः सकला सफलीक्रियतां त्वया ॥ ३०९ ॥ (युग्मम्) विद्याभिः शोभमानोऽथ स कलाभिरिवेणभृत्। शशिप्रभां समालोक्य पल्लवोत्फुल्लमानसः ॥ ३१० ॥ तस्या नेत्रत्रिभागेनालोकितानि मुहुर्मुहुः। कृतानि वलितग्रीवं स्मरत्स्मरशरायितान् ॥ ३११ ॥ सद्यो विमानमारुह्याचलद्वैताढ्यसम्मुखः। तस्यापातश्च पोतेशोऽर्कस्येवार्घं समुद्दधे ॥ ३१२ ॥ ऊचे च भरतामध्वे तावन्तं कालमीक्षितः। मयाधुना तु किं कार्यं तद्भक्त्या रञ्जितोऽथ सः ॥३१३॥ प्रददौ नलिनीगुल्मः स्वाङ्गलग्नं विभूषणम्। दिव्यं देवीभिरन्यच्च कुमाराय ततोऽर्पितम् ॥ ३१४ ॥ (युग्मम्) सर्वस्यापि जनस्याथ विस्मयः सुमहानभूत्। पोतेशोऽचिन्तयत्पुण्यजनभक्तिर्न निष्फला ॥३१५॥ ऊचे कुमारः स्वच्छन्दं विदधेहि प्रयाणकम्। वैताढ्यपर्वतेऽहं तु याता सुन्दर सुन्दरे ॥३१६॥ कार्यः प्रसादो युष्माभिः पुनः पुनर्नते मयि। इति पोतेशवचनं प्रतीच्छन्स दिवं ययौ ॥३१७॥

होचितं चाग्र्यग्रहलग्नं विलोकितम् । हूताहूताश्च सर्वेऽपि समेयुः खेचराधिपः ॥ १७ ॥ देव्या भानुश्रियो येन भागिनेयी शशि-
प्रभा । तेनाहूतः समं देव्याभ्येतो भुवनभानुराट् ॥ १८ ॥ नलिनीगुल्मराजोऽपि वैरिसिंहाभिधां दधत् । कृतरूपान्तरोऽद्भुतो-
परोधेन समागमत् ॥ १९ ॥ प्रासादेषु न्यवीक्षन्त खेचरेन्द्रा यथोचितम् । सर्वेषामुचितं चक्रे श्रीचन्द्रः खेचराधिपः ॥ २० ॥
समासन्ने मुहूर्तेऽथ जामेय्या रूपसम्पदम् । वीक्ष्य भानुश्रिया प्रोचे श्रीचन्द्रः खेचरेश्वरः ॥ २१ ॥ योग्योऽस्या नलिनीगुल्मो
वरस्तन्न वरं कृतम् । भवद्भिर्यदहं पृष्टा न प्राकार्येऽत्र विस्तृते ॥ २२ ॥ स प्राह नाधुनात्राऽर्थे कर्तुं किञ्चन शक्यते । मिलि-
ता येन भूपालाः सर्वेऽहंपूर्विकाजुषः ॥ २३ ॥ श्रीचन्द्रेण ततो द्वाःस्थमुखेनेत्यूचिरेऽखिलाः । राधावेधी धवः पुत्र्या नात्र तद्वः
पराभवः ॥ २४ ॥ एवं मते तैर्विवाहदिवसे च समागते । श्रीचन्द्रः खेचराधीशो बहिर्मञ्चे स्वयं स्थितः ॥ २५ ॥
अथ शेषेषु मञ्चेषु परे विद्याधराधिपाः । सर्वेऽपि मिलितास्तत्र पौरलोकश्च कौतुकात् ॥ २६ ॥ ततः सा स्फारशृङ्गार-
सारा सारविभूषणा । प्रतीहारीकरस्थस्रक् नृपाणां पुरतोऽभवत् ॥२७॥ नृपाः शशिप्रभां प्रेक्ष्य क्षुभिताः सागरा इव । वेहलोत्कलि-
काश्चक्रुर्विकारान्मान्मथानथ ॥ २८ ॥ कोऽपि सिंहासने स्तब्धमूर्त्तिस्तस्थौ नराधिपः । खेचरः स्थैर्यदम्भेन परः करमदर्शयत्
॥ २९ ॥ कोऽपि मुक्तालताग्रचन्दनोच्छेदनच्छलात् । हारिहारलतारम्यमुरस्थलमलोकत ॥ ३० ॥ कश्चित्तद्दर्शनोत्क्षिप्तकम्प-
मानवपुर्लतः । न वेद गलितं लीलाकमलं करवारिजात् ॥ ३१ ॥ परः प्रोवाच जातान्येतदीयाद्दर्शनादपि । कृतकृत्यानि नो
जन्म जीवितं नयनानि च ॥ ३२ ॥ कस्यैतावन्ति पुण्यानि यस्य कण्ठे स्वयं स्रजम् । क्षेप्स्यत्यसौ जगत्त्रय्यां सर्वधन्यशिरोमणेः

१ श्रेष्ठं ग्रहलग्नम् । २ सागरपक्षे महत्तरङ्गाः, नृपपक्षे तु अतीवोत्कण्ठाः ।

षष्ठः सर्गः ।

अथ विज्ञातवृत्तान्तो जयसिंहनृपः सुतात् । कुमारस्य प्रमुदितः प्रतिपत्तिं स्वयं व्यधात् ॥ १ ॥ ऊचे चेयं तवायत्ता राज्यश्रीः सकलापि हि । स्वैरं विलसते सोऽथ हरिविक्रमसंयुतः ॥ २ ॥ स्थानानि रमणीयानि नित्यं नवनवानि च । स्वेच्छया लोकमानः सन् लोकमालासमन्वितः ॥ ३ ॥ वैताढ्यकाञ्चनपुरोद्यानमागम्य तत्र च । अशोकस्य तले यावन्निविष्टः किल तिष्ठति ॥ ४ ॥ पुरे कोलाहलस्तावन्महानुच्छलितोऽथ च । किमेतदिति सोऽपृच्छत्ततश्च हरिविक्रमम् ॥ ५ ॥ (चतुर्भिःकलापकम्) शुद्धिं विज्ञाय स प्राह निश्चय खेचराधिपः । यक्षन् प्रियाया धम्मिल्लं दष्टः सूक्ष्मेन भोगिना ॥ ६ ॥ परलोककृते तत्रानाथंमन्यः पुरीजनः । तत्सुताभावतश्चाभिषिषिचे दिव्यपञ्चकम् ॥ ७ ॥ वदतोऽस्येति तान्येयुर्नलिनीगुल्मसन्निधौ । गजेन गर्जता सोऽभिषिच्य स्कन्धेऽधिरोपितः ॥ ८ ॥ अहेषत हयो व्योम्नि सोऽवीज्यत च चामरैः । छत्रं शिरस्यभूद्व्योम्नि दिवि दध्वान दुन्दुभिः ॥ ९ ॥ देवताविहिता नाना पुष्पवृष्टिर्दिवोऽपतत् । ततश्च मन्त्रिप्रमुखैः खेचरैरपरैरपि ॥ १० ॥ अथ विद्याधरस्त्रीभिः क्रियमाणोरुमङ्गलः । सम्प्राप सौधं जातश्च स महाखेचराधिपः ॥ ११ ॥

इतः श्रीतिलकपुरे श्रीचन्द्रः खेचरेश्वरः । वरस्य चिन्तां कुर्वाणः पुत्र्या प्रोचे सखीमुखात् ॥ १२ ॥ वरः स मे स्याद्यः कोऽपि राधावेधं विधास्यति । अन्यथा शरणं वह्निरथ राजाकुलोऽभवत् ॥ १३ ॥ प्रोक्तश्च मन्त्रिभिर्देव ! राधास्तम्भादि कार्यताम् । आकार्यन्तां युवानश्च विद्याधरधराधिपाः ॥ १४ ॥ नृपादेशादथ बहिर्मण्डपो विहितो महान् । स्तम्भः स्थूलोऽतिदीर्घश्च भ्रमच्चक्राष्टकः कृतः ॥ १५ ॥ तदग्रे स्थापिता चित्तरञ्जिका शालभञ्जिका । आगन्तुखेचरेन्द्रार्थं प्रासादाश्च वितेनिरे ॥ १६ ॥ पाणिग्र-

चन्द्रावतंसकस्यापि शरः प्रचरति स न । इत्थं सर्वेऽपि ते नीता लक्षभ्रष्टा विलक्षताम् ॥ ५१ ॥ श्रीचन्द्रेऽथ परिम्लानमुखचन्द्रे
तदावदत् । वेत्री देव ! कलापात्रवैरिसिंहोऽस्ति भूपतिः ॥ ५२ ॥ नृपः प्रोवाच खेचरवंश्यैः खेचरनायकैः । यन्न सिद्धं प्रसिद्धैर-
प्येतैर्विदितविक्रमैः ॥ ५३ ॥ तत्किं मनुष्यमात्रेणार्येणाज्ञातकुलेन च । सेत्स्यत्यनेन श्रुत्वेति नलिनीगुल्म उत्थितः ॥ ५४ ॥ तं
वीक्ष्य विस्मिताः केऽपि केचित्पुनरसूयिताः । केऽपि श्लाघां व्यधुः कैश्चिल्लज्जितं कासितं परैः ॥ ५५ ॥ कैश्चिद्विलोकितं कैश्चिद्ध-
सितं खेचरेश्वरैः । कुमारस्तु धनुर्दण्डे सन्धत्ते स शिलीमुखम् ॥ ५६ ॥ प्रपश्यन् तैलकुण्डान्तश्चक्रकर्माष्टकान्तरम् । भव्यसत्त्व
इवाविध्यत् प्रव्रज्यामिव पुत्रिकाम् ॥ ५७ ॥ जज्ञे जयाजयारावोऽध्वनत्तूर्यचतुष्टयम् । न्यास्थत्कण्ठे कुमारस्य वरमालां शशिप्रभा
॥ ५८ ॥ रत्नवृष्टिं विधायोच्चैरुवाच च नभस्थिता । अहो सुष्ठु वृतं सुष्ठु वृतमित्यथ देवता ॥ ५९ ॥ कुमारी विस्मिता दध्यौ यो
ध्यातः सुचिरं मया । प्रत्यक्षः परमात्मेव स एवायमजायत ॥ ६० ॥ श्रीचन्द्रकनकरथभूभृद्भुवनभानवः । खेचरेन्द्राः परेऽत्रापि
यावद्विस्मितमानसाः ॥ ६१ ॥ अयं किमन्वयोत्तंसश्चिन्तयन्तीति चेतसि । सद्यः कुमारं स्वं रूपं तावदाविरभावयत् ॥ ६२ ॥
(युग्मम्) तस्मिन्कलानिधौ दृष्टे विस्फूर्जितनिजप्रभे । पितृस्वजनसन्तापनिर्वापणमभूत् क्षणात् ॥ ६३ ॥ आगच्छ वत्स ! वत्सेति
जल्पन् भुवनभानुराट् । सानन्दाश्रुः समुत्कण्ठाप्रसारितभुजद्वयः ॥६४॥ तमालिलिङ्ग सर्वाङ्गचङ्गमङ्गीकृतो मुदा । भून्यस्तमस्तकः
पुत्रः पश्चात्तमनत्पुनः ॥६५॥ (युग्मम्) राजभिः कनकरथादिकैरथ परैरपि । अङ्कपालीकृतो बालकाललीलायितो यथा ॥ ६६ ॥
अथ भानुश्रियो देव्याश्चरणाम्बुजयोरयम् । अलिलीलायितं कुर्वंस्तयाशीर्भिः समेधितः ॥ ६७ ॥ ऊचिरे खेचरा नैवान्यस्य
लीलायितं भवेत् । ईदृशं भुवनभानुभूनेतुः नन्दनं विना ॥ ६८ ॥ सिंहस्यैव सुतः कुम्भिकुम्भपाटनसम्पटुः । नान्योद्यानेषु कल्प-

॥ ३३ ॥ असौ नन्दन्ति नन्दन्त्यां चत्वारीमानि मानये । शृङ्गारजन्मा शृंगारो रूपं सौभाग्यमेव च ॥ ३४ ॥ परः क्षिप्तामपि मुखेऽखण्डयन्नेर वीटिकाम् । अपरः स्वेदपृषतैर्भाल मुक्ताङ्कित व्यधात् ॥ ३५ ॥ दुर्लभं दर्शनं न स्यादस्या इति विचिन्त्य च । सर्वेऽपि तदङ्गेषु दृष्टिः क्षिप्तेति कैश्चन ॥ ३६ ॥ अत्रान्तरे प्रतीहारी कन्यां हारीतलोचनाम् । उवाच भुजमुत्क्षिप्यत्य सुधासोदरया गिरा ॥ ३७ ॥ अयं नृपः सुमालीति रणे शालीनतास्पदम् । अयं लीलापुरस्वामी सुन्दरो रूपसुन्दरः ॥ ३८ ॥ अयं चन्द्रावतंसाख्योऽवतंसः शौर्यशालिषु । विद्युन्मालेर दुष्प्रेक्ष्यो विद्युन्माली नृपः स्वयम् ॥ ३९ ॥ अय क्षेमङ्करो नाम प्रजाक्षेमङ्करो नृपः । अयं च चन्द्रकान्ताख्यश्चन्द्रकान्तयशोभरः ॥ ४० ॥ अयं श्रीवैरिसिंहाख्यो देवताकृतसन्निधिः । यः पुण्यैरर्पितं प्राप प्राज्यं राज्यमयत्नतः ॥ ४१ ॥ देवि! विद्याधराधीशा इमे यौवनशालिनः । येषां यशोभरो माति नातिशायी जगत्त्रये ॥ ४२ ॥

इत्थ तव पुरो देवि ! रूपकीर्तिपुरस्सरैः । गुणैर्युता मयाख्याता नृपा वृणु निजेच्छया ॥ ४३ ॥ इति खेचरराजौघे प्रतीहारीप्रकाशिते । प्राह विद्याधराधिपप्रेरितो वेत्रिपुङ्गवः ॥ ४४ ॥ कलासु कुशलाः सर्वे यूयं विद्याधराधिपाः । राधावेधं विधायाशु कुमारीयमुदूह्यताम् ॥ ४५ ॥ श्रियेव कण्ठविन्यस्तवरमाला यथानया । नरोत्तमाः प्रभवत दीप्यमानसुदर्शनाः ॥ ४६ ॥ सुमाल्यथ धनुर्माली विधाय सशर करम् । उत्थितो बन्दिवृन्देन क्रियमाणजयध्वनिः ॥ ४७ ॥ स दृष्टिमुष्टिसन्धानं दधत्कम्प्रकरः शरम् । पपात तैलकुण्डस्य मध्ये मूपकलीलया ॥ ४८ ॥ अथ प्रेक्षकलोकेन साट्टहासं परस्परम् । करे तालां ददानेनाजनि प्रहसनं तदा ॥ ४९ ॥ नृपस्य सुन्दराख्यस्य राधावेधं विधास्यतः । कोदण्डदण्डपातेन नैपाख्या सुन्दराभवत् ॥ ५० ॥

१ निर्लज्जतायाः स्थानम् ।

नन्दमयानन्यम् । आपृच्छय कनकरथं कनकाद्यपुराद्ययौ ॥ ८७ ॥ ततश्च सहितः पित्रा कुमारः श्रीपुरं ययौ । नानाविधविमानौघमण्डितव्योममण्डपः ॥ ८८ ॥ सपुत्रं भुवनभानुं नृपं मत्वा समागतम् । प्रभुर्विद्याधराधीशाः सर्वे प्राभृतसम्भृताः ॥ ८९ ॥ प्रणम्य भुवनभानुं तदर्पितमहोपदाः । आगामिनीमिव च्छायां ते कुमारं च शिश्रियुः ॥ ९० ॥ विद्याधराधिराजैश्चास्य र्थमभ्यर्थितः स तैः । धन्यंमन्यास्तदुद्वाहात्कन्याः परिणिनाय च ॥ ९१ ॥ तत्र शाश्वतानि चैत्यानि द्विधा प्रांशूनि स व्यधात् । रथयात्रादिभिश्चक्रे भूचक्रे च प्रभावना ॥ ९२ ॥ कुमारस्यानुभावेनाननुभूतः पुराऽभवत् । प्रमोदः खेनरेन्द्राणां न यो वचनगोचरः ॥ ९३ ॥

इति स्थित्वा चिरं तत्र समं भुवनभानुना । स्वराज्यश्रीदर्शनायागात्काञ्चनपुरं च सः ॥ ९४ ॥ सकृतप्राभृतः स्वानुगैर्विद्याधराधिपैः । कारागृहं चकाराशु शून्यवासं तु सर्वतः ॥ ९५ ॥ तद्राज्यश्रियमालोक्य पिता दध्यौ प्रमोदभाक् । धन्योऽस्मि यस्य पुत्रो मे पुण्यवान् पुण्यपोषकः ॥ ९६ ॥ गत्वा पुर्यां शुभायां तद्राज्ये विन्यस्य नन्दनम् । शाश्वतान्युत्तमार्थं द्रागिति ध्यात्वा तमब्रवीत् ॥ ९७ ॥ शुभायां गम्यते सोऽथ तथेति प्रतिपद्य तत् । स्वराज्यभारमारोप्य श्रीचन्द्रे खेनरप्रभौ ॥ ९८ ॥ वयःस्थखेचरीचक्रस्यारतिं प्रतिपादयन् । पुरोपरि पुरं कुर्वन् विमानैर्मिलितैर्दिवि ॥ ९९ ॥ खेचरेन्द्रैरनुव्रज्यमानो मानोरुसम्मर्दैः । पथस्थखेचराधीशकृतोत्कोचान् कृतार्थयन् ॥ १०० ॥ तरून्पुरीर्गिरीन्ग्रामानुद्यानानि सरांसि च । पश्यन्निरन्तराणी च सान्तराण्यपि वेगतः ॥ १०१ ॥ स्थाने स्थाने च सम्भाष्य खेचरेशान् विसर्जयन् । पुरीपरिसरोद्यानं सपितृकोऽप आगमत् ॥ १०२ ॥ सुबुद्धिरथ पुर्यन्तरपर्यन्तप्रमोदभाक् । सद्यान्मुक्तावचूलाद्यैः स प्रपञ्चानकारयत् ॥ १०३ ॥ संयुतान् तोरण-

1 उद्यानि । 2 °हृतलञ्चान् । 3 सुधागौरगैः ।

द्रोरुद्भयो नन्दनं विना ॥ ६९ ॥ अहो पुण्यं पितुः पुत्रो यद्देशान्तरनिर्गतः । लेभे राज्यं च कन्यां च मिलितश्च महोत्सवे ॥७०॥
महे महामहप्रायो ह्ययं स्वजनसङ्गमः । सौभाग्यस्योपरि स्फीतः समभून्मञ्जरीसमः ॥ ७१ ॥ कर्पूरपूरगन्धेन मिथो द्राक्षरसोऽजनि ।
सुधासरोवर स्वर्णकमलैः पूरितं ह्रदः ॥ ७२ ॥ ततश्च प्रध्वनत्तूर्यं पठन्मङ्गलपाठकम् । प्रनृत्यन्नर्तकीचक्रमभूदुपयमस्तयोः ॥ ७३ ॥
श्रीचन्द्रेण नरेन्द्रेण प्रोचे करविमोचने । उपनीता मया तुभ्यं राज्यश्रीः सुतया सह ॥ ७४ ॥ स्वभुजोपार्जितामेतामेतां च त्वं
प्रपालय । निधिं विषयसौख्यानां पत्रालीकलितां तथा ॥ ७५ ॥ त्वं गच्छन्नचलं नित्यं सहस्रांशुरिवोदयम् । पूर्वाशायामिवै-
तस्यां रागं क्वचन मा मुचः ॥ ७६ ॥ पुत्रि ! त्वमप्यमुष्याज्ञां दध्याः शिरसि सर्वदा । लक्ष्मीमिव यथा धत्ते हृदयं पुरुषोत्तमः
॥ ७७ ॥ अक्षयस्नेहयोः शुभ्रगुणप्रभवयोर्द्वयोः । युवयोस्तेजसा सर्वं समुद्योतयतोः कुलम् ॥ ७८ ॥ प्रभञ्जनसमुद्भूतपराभववि-
हीनयोः । सम्बन्धः सुचिरं भूयाद्वर्तिपावकयोरिव ॥ ७९ ॥ (युग्मम्) सार्द्रद्राक्षारसप्रख्या शिक्षा ताभ्यामुरीकृता । उभाभ्या-
मपि माधुर्यधुर्या सन्तापहारिणी ॥ ८० ॥ स्वस्वराज्यानुमानेन परेऽपि खचराधिपाः । वरस्य नलिनीगुल्मस्योपदामादधुर्मुदा
॥ ८१ ॥ नन्दनागमसम्भूतमुदा भुवनभानुराट् । वर्धापनानि सर्वेषु निजदेशेष्वकारयत् ॥ ८२ ॥ दिनाः केऽपि ययुस्तस्यामृता-
मोदमया इव । नित्यं नव्यानि नव्यानि मङ्गलानि प्रतीच्छतः ॥ ८३ ॥ पाणिग्रहणमुद्दिश्य सपर्यां जिनवेश्मसु । सर्वेषु नलिनी-
गुल्मः कारयामास भक्तिभाक् ॥ ८४ ॥ देशकालोचितैर्वस्त्रैर्विचित्रैः सङ्घपूजनम् । स चक्रे रथयात्राश्च ददौ बोधिमबोधिषु ॥८५॥
इत्थं मुदा कुमारस्य गते काले कियत्यपि । स्थानं वधूवरं निन्ये निजं मातामहो मुदा ॥ ८६ ॥ दिनानि कत्यपि स्थित्वा तत्रा-

१ उपहारम् ।

प्रौढाभिरभितो वृतः । सुंत्रामेव सुरस्त्रीभिस्ताराभिरिव चन्द्रमाः ॥ १२१ ॥ मुक्ताभिर्नायक इव सरिद्भिर्वा सरित्पतिः ।
वशाभिरिव यूथेशो हंसीभिर्वा सितच्छदः ॥ १२२ ॥ स्वगुणैर्भुवनं जिग्ये राज्ञा भुवनभानुना । सोऽप्यनेन जित इति वदन्तं
प्रवरस्वरम् ॥ १२३ ॥ चेलोत्क्षेपं प्रकुर्वाणं कुर्वन् जयजयस्वरम् । पावयन् मञ्चगं लोकं दृशाऽमृतरसस्पृशा ॥ १२४ ॥ मुक्तालि-
मालिते रत्नाकरवन्मन्दिरे विशत् । स शशिप्रभया सार्धं श्रियेव पुरुषोत्तमः ॥ १२५ ॥ (पञ्चभिः कुलकम्) हरितालाक्षतदधि-
दूर्वागोरोचनादिभिः । स्वर्णस्थालस्थितं सोऽर्घं प्रत्यैच्छद्वनिताकृतम् ॥ १२६ ॥ ततः कतिपयेष्वेष गत्वा चैत्येषु भावभृत् ।
जिनान्सम्पूज्य विधिना विदधे चैत्यवन्दनाम् ॥ १२७ ॥ तत्रापि गीतसङ्गीतसुस्फीतं प्रमदाकुलम् । सुवर्णवृष्ट्या संतोष्य गणशो
मार्गणानपि ॥ १२८ ॥ मङ्गलानन्दसन्तोषमहोत्सवमयीमिव । समग्रां नगरीं कुर्वन् पुनः स्वस्थानमागमत् ॥ १२९ ॥ (युग्मम्)
ततो वर्धापनं स्पर्धाबन्धनृत्यद्वधूजनम् । जिनेशसङ्घपूजादिसहितं महितं कृतम् ॥ १३० ॥
अथ प्रतिदिनं स्वस्वपुरेभ्यः परितोषिणः । सेवाहेवाकिनो भूपास्तस्यायान्ति नवा नवाः ॥ १३१ ॥ तस्याज्ञां शूरतां
लोकानुरागं च विलोकयन् । निरीक्ष्य भुवनभानुर्दध्यावानन्दमेदुरः ॥ १३२ ॥ यदि साम्प्रतमायान्ति श्रीमदानन्दसूरयः ।
राज्याभिषेकमहिमां कुमारस्य करोमि तत् ॥ १३३ ॥ तथा तत्पदमूलेऽहं प्रव्रज्याराज्यमाददे । अन्तरङ्गद्विपद्भङ्गपरिष्वङ्गतरङ्गि-
तम् ॥ १३४ ॥ राज्यं हि खलमैत्रीवद्विरसान्तं पयोधिवत् । कुग्राहसहितं वेश्याचित्तवच्च सुदुर्ग्रहम् ॥ १३५ ॥ पातालवच्च
दुष्पूरं पुरातननिशान्तवत् । बहुच्छिद्रान्वितं यत्नपाल्यं सर्पकरण्डवत् ॥ १३६ ॥ राज्ये दुर्गतितुल्येऽसिन्नसिपत्रवनावृते । विधातुं

---

१ इन्द्र इव । २ हंसः ।

सविवेकाना प्रतिबन्धो न युज्यते ॥ १३७ ॥ किं च भोगाश्चिर भुक्ताश्चिरं राज्यं च पालितम् । प्राप्तं नयनसाफल्यं सुपुत्रमुखवीक्षणात् ॥ १३८ ॥ अनुभूत महासौख्य तदीयविनयार्पितम् । रत्ननिर्मितचैत्यानि बहुशः कारितानि च ॥ १३९ ॥ सत्कृत' शतशः संघो रथयात्राश्च कारिताः । कृता शक्त्यानुमानेन शासनस्य प्रभावना ॥ १४० ॥ यदन्यदपि कर्त्तव्यं तत्सर्वं विहित मया । रोगा भोगा इव त्याज्यास्तद्रोगाः साम्प्रत मया ॥ १४१ ॥

इत्थ विचिन्तयन्त त समेत्योद्यानपालकः । नृप वर्धापयामासानन्दद्यूरिसमागमात् ॥ १४२ ॥ रोमाञ्चितवपुः सोऽथ दत्त्वाऽस्मै पारितोषिकम् । कुमारशुद्धान्तयुतोऽभ्येत्य सूरीनवन्दत ॥ १४३ ॥ आनन्दामृतसम्भारनिर्भरोद्भिन्नकण्टकः । उपाविक्षदय दक्ष' सयोजितकरद्वयः ॥ १४४ ॥

अथादिशद्गुरुर्मार्गोयुभावेव शिवाध्वनि । सुश्राद्धानां धर्म एक' श्रमणानां परः पुनः ॥ १४५ ॥ रागद्वेषवशादेतौ दुर्लभौ भविनां भवे । अर्थकामौ नृणां वक्रवक्रशौरिवशादिव ॥ १४६ ॥ यन्मनुष्यभवे क्षेत्र कुल धर्मोपदेशकः । सम्यक्त्वप्रतिपत्तिश्च श्रावकद्वादशव्रती ॥ १४७ ॥ दुर्लभेत्यथ कस्यापि शुभकर्मप्रकर्षतः । प्रव्रज्यापरिणामः स्याद्विश्रामः शिवसम्पदः ॥ १४८ ॥ भवेति प्राप्य सामग्रीं समग्रामीदृशामिमाम् । दुष्प्रापां प्राप्य विफलीकुर्वन्ति न विवेकिन ॥ १४९ ॥ यजरामृत्युरोगादिबहुभीष्मविभीषके । भवप्रेतवनेऽमुष्मिन् वसन नैव युज्यते ॥१५०॥ उच्छीर्षस्थोरगस्यैव पश्चाऽऽस्यासगतस्य वा । कृतान्तदन्ताग्रस्थस्य काऽऽस्था जीवस्य जीविते ॥१५१॥ मृगाक्षीमृगतृष्णासु नर मूढ कुरङ्गवत् । विधिव्याधो जराधन्वा व्याधिबाणश्च विध्यति ॥१५२॥ दु खदंष्ट्राकरालस्य व्यालस्य समवर्तिनः । पुरतो नश्यमानोऽपि क्वापि छुटति नो भवी ॥ १५३ ॥ विधक्षेत्रे कृतान्तोऽय नवः

कोऽपि कृपीवलः । लुनाति यदकालेऽपि जन्तुसस्यानि दुर्मतिः ॥ १५४ ॥ न जरा न रुजो यत्र तत्रापि त्रिदशालये । काल-
पाशाः कृतान्तस्य पतेयुः किं पुनर्नृषु ? ॥ १५५ ॥ किं यमस्य प्रसन्नत्वं धृष्टत्वं वा नृणां किमु । यद् व्याधिबहुलेऽप्यत्र
निमेषमपि जीवितम् ॥ १५६ ॥ यदि स्मरति जीवानां दुःखं दुर्गतिसम्भवम् । कम्प्रसम्पत्कदाप्यङ्गे न तद्विरमति ध्रुवम् ॥ १५७ ॥
तेषां जन्मजरामृत्युरोगा न स्युः कदाचन । ये सदाप्युपयुञ्जन्ति धर्मकर्मरसायनम् ॥ १५८ ॥ महामहायते मृत्युर्जगत्यत्र स एव
हि । यत्र जाते भवेन्मोक्षोऽनन्तसौख्यो मनीषिणाम् ॥ १५९ ॥

नत्वा प्राह नृपो राज्ये नलिनीगुल्ममङ्गजम् । निवेश्य भवतां पार्श्वे प्रपत्स्येऽहं मुनिव्रतम् ॥ १६० ॥ मा कार्षीः प्रतिबन्धं
त्वमिति वाक्यं गुरूदितम् । शीर्षे विन्यस्य शेषावदेष स्वपस्त्यमागतः ॥ १६१ ॥ सर्वान् विद्याधराधीशानाह्वा च न्यायमार्गगः ।
कुमारस्याभिषेकस्य महिमानमयं व्यधात् ॥ १६२ ॥ ऊचे च निखिलान् लोकानयं माता पिता सुहृत् । बन्धुः प्राणाः परित्राणं सर्व-
मप्ययमेव च ॥ १६३ ॥ अयं मदधिको दृश्यः कार्याज्ञास्य न चान्यथा । प्रतीपकारिणोऽप्यस्योचितं लङ्घ्यं कदापि न ॥१६४॥
नरेन्द्र! भवताप्युर्वी प्रपाल्या कामधेनुवत् । तथा यथा ददात्यर्थान् कामितानखिलानपि ॥ १६५ ॥ नेतव्योपचयं राज्यश्रीश्च
न्यायरसायनात् । सप्तस्वपि तथाङ्गेषु यथा न स्याज्जरातुरा ॥१६६॥ प्रदीपकलिकेवेयमन्यायमरुताऽऽहता । उत्सेधमपि सम्प्राप्ताऽव-
श्यमेव विनश्यति ॥ १६७ ॥ द्यूतादिव्यसनाद्भोगासक्तितोऽनवधानतः । दुर्जनानां च विश्वासाद्राज्यलक्ष्मीर्विनश्यति ॥ १६८ ॥
निजे कृतापराधेऽपि जने वत्सलतां भजेः । जयन् षडन्तरङ्गारीन् बाह्यान् जेष्यस्ययत्नतः ॥ १६९ ॥ ज्ञानवृद्धविदग्धैश्च गोष्ठीप्रष्ठः

१ गृहम् ।

सविवेकानां प्रतिबन्धो न युज्यते ॥ १३७ ॥ किं च भोगाश्चिरं भुक्ताश्चिरं राज्यं च पालितम् । प्राप्तं नयनसाफल्यं सुपुत्रमुखवीक्षणात् ॥ १३८ ॥ अनुभूतं महासौख्यं तदीयविनयार्पितम् । रत्ननिर्मितचैत्यानि बहुशः कारितानि च ॥ १३९ ॥ सत्कृतः शतशः संघो रथयात्राश्च कारिताः । कृता शक्त्यानुमानेन शासनस्य प्रभावना ॥ १४० ॥ यदन्यदपि कर्त्तव्यं तत्सर्वं विहितं मया । रोगा भोगा इव त्याज्यास्तद्भोगाः साम्प्रतं मया ॥ १४१ ॥

इत्थं विचिन्तयन्तं तं समेत्योद्यानपालकः । नृपं वर्धापयामासानन्दसूरिसमागमात् ॥ १४२ ॥ रोमाञ्चितवपुः सोऽथ दत्त्वाऽसै पारितोषिकम् । कुमारशुद्धान्तयुतोऽभ्येत्य सूरीनवन्दत ॥ १४३ ॥ आनन्दामृतसम्भारनिर्भरोद्भिन्नकण्टकः । उपाविक्षदयं दक्षः संयोजितकरद्वयः ॥ १४४ ॥

अथादिशद्गुरुर्मार्गावुभावेव शिवाध्वनि । सुश्राद्धानां धर्म एकः श्रमणानां परः पुनः ॥ १४५ ॥ रागद्वेषवशादेतौ दुर्लभौ भविनां भवे । अर्थकामौ नृणां चक्रचक्रशौरिवशादिव ॥ १४६ ॥ यन्मनुष्यभवे क्षेत्रं कुलं धर्मोपदेशकः । सम्यक्त्वप्रतिपत्तिश्च श्रावकद्वादशव्रती ॥ १४७ ॥ दुर्लभेत्यथ कस्यापि शुभकर्मप्रकर्षतः । प्रव्रज्यापरिणामः स्याद्विश्रामः शिवसम्पदः ॥ १४८ ॥ मत्वेति प्राप्य सामग्रीं समग्रामीदृशामिमाम् । दुष्प्रापां प्राप्य विफलीकुर्वन्ति न विवेकिनः ॥ १४९ ॥ यज्जरामृत्युरोगादिवह्नि- भीष्मविभीषके । भवप्रेतवनेऽमुष्मिन् वसनं नैव युज्यते ॥१५०॥ उच्छीर्षस्थोरगस्येव पञ्चाऽऽस्यास्यगतस्य या । कृतान्तदन्ताग्रस्थस्य काऽऽशा जीवस्य जीविते ॥१५१॥ मृगाक्षीमृगतृष्णासु नरं मूढं कुरङ्गवत् । विधिव्याधो जराधन्वा व्याधिबाणश्च विध्यति ॥१५२॥ दुःखदंष्ट्राकरालस्य व्यालस्य समवर्तिनः । पुरतो नश्यमानोऽपि क्वापि छुटति नो भवी ॥ १५३ ॥ विश्वक्षेत्रे कृतान्तोऽयं ...

कोऽपि कृषीवलः । लुनाति यदकालेऽपि जन्तुसस्यानि दुर्मतिः ॥ १५४ ॥ न जरा न रुजो यत्र तत्रापि त्रिदशालये । काल-
पाशाः कृतान्तस्य पतेयुः किं पुनर्नृषु१ ॥ १५५ ॥ किं यमस्य प्रसन्नत्वं धृष्टत्वं वा नृणां किमु । यद् व्याधिबहुलेऽप्यत्र
निमेषमपि जीवितम् ॥ १५६ ॥ यदि स्मरति जीवानां दुःखं दुर्गतिसम्भवम् । कम्प्रसम्पत्कदाप्यङ्गे न तद्विरमति ध्रुवम् ॥ १५७ ॥
तेषां जन्मजरामृत्युरोगा न स्युः कदाचन । ये सदाप्युपयुञ्जन्ति धर्मकर्मरसायनम् ॥ १५८ ॥ महामहायते मृत्युर्जगत्यत्र स एव
हि । यत्र जाते भवेन्मोक्षोऽनन्तसौख्यो मनीषिणाम् ॥ १५९ ॥

नत्वा प्राह नृपो राज्ये नलिनीगुल्मनङ्गजम् । निवेश्य भवतां पार्श्वे प्रपत्स्येऽहं मुनिव्रतम् ॥ १६० ॥ मा कार्षीः प्रतिबन्धं
त्वमिति वाक्यं गुरूदितम् । शीर्षे विन्यस्य शेषावदेष स्वपंस्त्यमागतः ॥ १६१ ॥ सर्वान् विद्याधराधीशानाह्वा च न्यायमार्गगः ।
कुमारस्याभिषेकस्य महिमानमयं व्यधात् ॥ १६२ ॥ ऊचे च निखिलान् लोकानयं माता पिता सुहृत् । बन्धुः प्राणाः परित्राणं सर्व-
मप्ययमेव च ॥ १६३ ॥ अयं मदधिको दृश्यः कार्याज्ञास्य न चान्यथा । प्रतीपकारिणोऽप्यस्योचितं लङ्घ्यं कदापि न ॥१६४॥
नरेन्द्र! भवताप्युर्वी प्रपाल्या कामधेनुवत् । तथा यथा ददात्यर्थान् कामितानखिलानपि ॥ १६५ ॥ नेतव्योपचयं राज्यश्रीश्च
न्यायरसायनात् । सप्तस्वपि तथाङ्गेषु यथा न स्याज्जरातुरा ॥१६६॥ प्रदीपकलिकेवेयमन्यायमरुताऽऽहता । उत्सेधमपि सम्प्राप्ताऽव-
श्यमेव विनश्यति ॥ १६७ ॥ द्यूतादिव्यसनाद्भोगासक्तितोऽनवधानतः । दुर्जनानां च विश्वासाद्राज्यलक्ष्मीर्विनश्यति ॥ १६८ ॥
निजे कृतापराधेऽपि जने वत्सलतां भजेः । जयन् षडन्तरङ्गारीन् बाह्यान् जेष्यस्ययत्नतः ॥ १६९ ॥ ज्ञानवृद्धविदग्धैश्च गोष्ठीप्रष्ठः

१ गृहम् ।

सविवेकानां प्रतिबन्धो न युज्यते ॥ १३७ ॥ किं च भोगाश्चिरं भुक्ताश्चिरं राज्यं च पालितम् । प्राप्तं नयनसाफल्यं सुपुत्रमुखवीक्षणात् ॥ १३८ ॥ अनुभूतं महासौख्यं तदीयविनयार्पितम् । रत्ननिर्मितचैत्यानि बहुशः कारितानि च ॥ १३९ ॥ सत्कृतः शतशः संघो रथयानाश्च कारिताः । कृता शक्त्यानुमानेन शासनस्य प्रभावना ॥ १४० ॥ यदन्यदपि कर्त्तव्यं तत्सर्वं विहितं मया । रोगा भोगा इव त्याज्यास्तद्भोगाः साम्प्रतं मया ॥ १४१ ॥

इत्थं विचिन्तयन्तं तं समेत्योद्यानपालकः । नृपं वर्धापयामासानन्दसूरिसमागमात् ॥ १४२ ॥ रोमाञ्चितवपुः सोऽथ दत्वाऽस्मै पारितोषिकम् । कुमारशुद्धान्तयुतोऽभ्येत्य सूरीनवन्दत ॥ १४३ ॥ आनन्दामृतसम्भारनिर्भरोद्भिन्नकण्टकः । उपाविशदयं दक्षः संयोजितकरद्वयः ॥ १४४ ॥

अथादिशद्गुरुर्मार्गाद्युभावेव शिवाध्वनि । सुश्राद्धानां धर्म एकः श्रमणानां परः पुनः ॥ १४५ ॥ रागद्वेषवशादेतौ दुर्लभौ भविनां भवे । अर्थकामौ नृणां चक्रवकशौरिवशादिव ॥ १४६ ॥ यन्मनुष्यभवे क्षेत्रं कुलं धर्मोपदेशकः । सम्यक्त्वप्रतिपत्तिश्च श्रावकद्वादशव्रती ॥ १४७ ॥ दुर्लभेत्यथ कस्यापि शुभकर्मप्रकर्षतः । प्रव्रज्यापरिणामः स्याद्विश्रामः शिवसम्पदः ॥ १४८ ॥ मत्वेति प्राप्य सामग्रीं समग्रामीदृशामिमाम् । दुष्प्रापां प्राप्य विफलीकुर्वन्ति न विवेकिनः ॥ १४९ ॥ यज्जरामृत्युरोगादिबहुभीष्मविभीषिके । भवप्रेतवनेऽमुष्मिन् वसनं नैव युज्यते ॥१५०॥ उच्छीर्षस्थोरगस्येव पन्नाऽऽस्यासगतस्य वा । कृतान्तदन्ताग्रस्थस्य काऽऽशा जीवस्य जीविते ॥१५१॥ मृगाक्षीमृगतृष्णासु नरं मूढं कुरङ्गवत् । विधिव्याधो जराधन्वा व्याधिबाणश्च विध्यति ॥१५२॥ दुःखदंष्ट्राकरालस्य व्यालस्य समवर्तिनः । पुरतो नश्यमानोऽपि क्वापि छुटति नो भवी ॥ १५३ ॥ विश्वक्षेत्रे कृतान्तोऽयं नवः

दीनादीनामयं दानं प्रददावनुकम्पया । प्रव्रज्योचितमन्यच्च सर्वमेष न्यधापयत् ॥ १८६ ॥ वाह्यां नरसहस्रेणारुह्याथ
शिबिकामयम् । भानुश्रीमुख्यशुद्धान्तयुतः शुद्धान्तमानसः ॥ १८७ ॥ तदीयदीक्षासञ्जातदीक्षाकूतैः परैरपि । सहितो मन्त्रि-
सामन्तादिभिर्व्रतजिघृक्षुभिः ॥ १८८ ॥ महाभूपेन नलिनीगुल्माख्येनानुगामिना । सबाष्पनयनैः पौरैः प्रेक्ष्यमाणः पितेव सः
॥ १८९ ॥ विस्मापयन् जनं विश्रुतयाप्यश्रुतपूर्वया । गच्छन्नपूर्वया भत्यासेनयाऽदृष्टपूर्वया ॥ १९० ॥ गत्वोद्यानं सदानन्दः
श्रीमदानन्दसद्गुरुम् । त्रिश्च प्रदक्षिणीकृत्य ननाम मतिधाम सः ॥ १९१ ॥ ऊचे च व्रतपोतेन मां तारय भवाम्बुधेः । भगवन्नथ
च प्राव्राजयत्तं विधिवद्गुरुः ॥ १९२ ॥ मन्त्रिसामन्तवर्गं च निसर्गविनयोज्ज्वलम् । शुद्धान्तं दीक्षयित्वा च प्रवर्त्तिन्यै
समार्पयत् ॥ १९३ ॥
नृपस्तु नलिनीगुल्मो जनेन बहुना युतः । प्रपेदे देशविरतिं स देशरतिकार्यपि ॥ १९४ ॥ गुरुणा भुवनभानुराजर्षिरु-
पबृंहितः । धन्यस्त्वमसि यातोऽसि यतः पारं भवाम्बुधेः ॥ १९५ ॥ स्वयं सफलजन्मार्हद्दीक्षायाः प्रतिपत्तितः । परेषामपि भव्या-
नामाविर्भावितसत्पथः ॥ १९६ ॥ पञ्चदेवद्रुमप्रायमहाव्रतविराजिते । रमतां व्रतपर्यायनन्दने विबुधो भवान् ॥ १९७ ॥ लब्धस-
द्गुणधर्मस्त्वं क्रियाकाण्डोऽवधानवान् । स्नेहकुण्डाधरीकारि स्थानं विरचयन् सना ॥ १९८ ॥ मनःस्तंभे शासनाम्नाष्टचक्रीपरतः
स्थिताम् । सामाचार्यभिधां राधां विध्य सिद्धिवधूप्रदाम् ॥ १९९ ॥ (युग्मम्) कषायान्कष विनयवैयावृत्त्योद्यमं कुरु । जिगीषुर्भव
तपस्सु राजसु द्वादशस्विव ॥ २०० ॥ दृश्याः समतया सर्वे सत्त्वाः सत्त्ववता त्वया । चन्दनालेपके वासीच्छेदके च समो भवेः
॥ २०१ ॥ नित्यं संयमभारोऽयं वोढव्यो भवता तथा । वाञ्छितं लभसे स्थानं यथा वृषभवन्मुने ! ॥ २०२ ॥ तथेति प्रतिपद्यैष

सदा भवेः । यानपानसमास्ते हि पततां व्यसनार्णवे ॥१७०॥ षड्प्यवसरं प्राप्तान् गुणान् त्वं परिशीलयन् । महीशान् लीलया
जेताऽन्याननन्तगुणानपि ॥१७१॥ शिक्षां प्रदायेति प्राह नृपो मां व्रतहेतवे । यूयं सर्वेऽनुजानीत साम्प्रतं तद्धि साम्प्रतम् ॥१७२॥
श्रुत्वेति नलिनीगुल्मोऽन्तःपुर खेचराधिपाः । सर्वमप्यञ्जसा जज्ञे नयनोदकमन्दिरम् ॥ १७३ ॥ ऊचे च नलिनीगुल्मो
लगित्वा पदपद्मयोः । अनाथं मा कृथास्तात! सहसा मां कृपानिधे! ॥ १७४ ॥ यद्वः स्याद्विरहे राज्यं सुखं लक्ष्मीर्महोत्सवः ।
मरणेनापि न मे तेन महतापि प्रयोजनम् ॥ १७५ ॥ मा भूद्दिवसो यत्र यौष्माकीणपदाब्जयोः । मदीयः केशपाशो न रोलम्बनि-
कुरम्बति ॥ १७६ ॥ मयि भूमण्डलीबाले न्यस्ते सिक्ते वचोमृतैः । सपल्लवे जनप्रीत्या यशःकुसुमसंयुते ॥ १७७ ॥ पूज्यपा-
दीयतोषेण फलितेऽस्त्यद्भुतैः फलैः । नाहं मनोरथानां वो भविता प्रतिबन्धकः ॥१७८॥ (युग्मम्) परेऽप्यूचुरिदं देव! युक्तं वदति
भूपतिः । ततोऽथ तनयं प्राह त्वं हि धीरशिरोमणिः ॥ १७९ ॥ ततो वत्स! तवाधैर्यैः कथं भावी जनः परः । तदिदं ते विवे-
कस्य सदृशं वचनं न हि ॥ १८० ॥ त्वं हि वत्स! स्वयं वेत्सि यमेन ग्रस्यते जनः । को नाम प्रतिबन्धस्तद्भवे क्षणविनश्वरे
॥ १८१ ॥ तत्त्वं धीरः स्वयं भूत्वा संस्थापय निजं जनम् । न युक्तं मुखमालिन्यं मम व्रतमहोत्सवे ॥ १८२ ॥ इदमेव सुपुत्राणां
कार्यमार्यजनेरितम् । पित्रोर्धर्मे स्थिरीरात् कार्यो भारस्य धारणात् ॥१८३॥ सम्बोध्येति सुतं राजा संवेगावेगसङ्गतः । बालकेली-
न्द्रजालाभं भवसौख्यं विचिन्तयन् ॥ १८४ ॥ राज्यलक्ष्मीं विदन् भोगानुचितां वा रजस्वलाम् । जिनेन्द्रसङ्घपूजादि कारयामास
भक्तिमाह ॥ १८५ ॥ (युग्मम्)

१ भाळस्थाले ।

प्यसे राजमुनिगुर्वागमात्प्रभो! ॥ २१८ ॥ दत्त्वा विभूषणं तस्याङ्गलग्नं तुष्टिपुष्टिमान् । ऊचे धन्यः सुतोऽयं यज्जन्मे गुरुजनागमः
॥ २१९ ॥ मध्ये महोत्सवस्यायमपरोऽभून्महोत्सवः । गुरोः पितुश्च मातुश्चागमनं यदजायत ॥ २२० ॥ उक्त्वेत्याघोषणं चक्रे
सबालस्थविरो जनः । सर्वः स्वर्द्ध्यनुमानेन गुरूनमतु सादरः ॥ २२१ ॥ ततो वासनया राजाज्ञया च द्विगुणोन्मदः । अचलीद-
चलाधीशपृष्ठतः प्रीतमानसः ॥ २२२ ॥ उद्यानमेत्यावातार्षीत् कुञ्जराद्राजकुञ्जरः । त्रिश्च प्रदक्षिणीचक्रे भव्यचक्रे धुरन्धरः
॥ २२३ ॥ स्वर्णाम्बुजसमासीनमनमन्मुनिपुङ्गवम् । साधूंश्च क्रमशस्तातं भवातङ्कविवर्जितम् ॥ २२४ ॥ शिरःसरसिजं न्यस्य स
चिरं पितृपादयोः । अस्थान्न तु सुतस्नेहादयं तरलितो बुधः ॥ २२५ ॥ अथ प्रवर्तिनीं साध्वीं मातरं च प्रणम्य सः । गुरोः पादा-
न्तमागत्य तमुदारगिरावदत् ॥२२६ ॥ स्वं च स्वं च सुतं मन्ये कृतार्थं युष्मदागमात् । ये युता गुरुभिस्ते हि महाद्रव्या व्ययाः
परे ॥ २२७ ॥ गुरुः प्राह महाराज! कियन्मात्रमिदं ननु । द्रष्टास्यदृष्टपूर्वं यदेतस्मादुत्सवान्तरम् ॥ २२८ ॥
इति यावद्गुरुर्ब्रूते तावत्पित्रोस्तदीययोः । उत्पेदे केवलं देवागमश्च सहसाऽभवत् ॥ २२९ ॥ किमेतदिति भूपेनानुयुक्ता
गुरवोऽवदन् । त्वत्पित्रोः केवले जाते सुरा महिम कुर्वते ॥ २३० ॥ ततोऽतिमुदितो गत्वा नृपः केवलिनाविमौ । स चक्रे केवल-
ज्ञानमहिमानममानधीः ॥ २३१ ॥ पर्युपास्य चिरं मासकल्पेऽभ्यर्थ्य गुरूनयम् । स्वस्थानमागमत्पर्युपास्ते च सततं गुरून्
॥ २३२ ॥ सुतस्तु वर्द्धते नित्यं शुक्लपक्षशशाङ्कवत् । जन्मनि कृतहर्षत्वात् हर्षचंद्र इतीरितः ॥ २३३ ॥ अन्यदा स्वजनैः
सोऽथ कारितो गुरुवन्दनम् । गुरुणा धर्मलाभेनार्भकः सोप्यभिनन्दितः ॥ २३४ ॥
सम्पूर्णे मासकल्पे च विजहुर्गुरवोऽन्यतः । मासानशनतो भूपपितरौ ययतुः शिवम् ॥ २३५ ॥ सूरयोऽपि पदे न्यस्य श्रुत-

गुरुं प्राह प्रमादतः। स्खलनेष्वनुशास्योऽहमवश्यं पूजितक्रमैः ॥२०३॥ अथ स द्विविधां शिक्षां भिक्षां च विधिनाग्रहीत्। रसानां
परिहार च विहार च वितेनिवान् ॥ २०४ ॥

नलिनीगुल्मराजस्तु तमनुव्रज्य तं स्मरन्। संवेगरङ्गतो विप्रत्प्रव्रज्याया मनोरथम् ॥ २०५ ॥ उज्झितो गुरुणाऽऽयच्छके-
नाथ गुरुणा धृतः। पौरैः परिगतस्थानमागतः खेदसङ्गतः ॥ २०६ ॥ सभां विसृज्य पल्यङ्के यावन्निद्रां विनास्ति सः। ताव-
ल्लक्ष्मीः समागच्छत्सहंसरूपदाम्बुजा ॥२०७॥ दिव्याभरणसम्भारैः खण्डयन्ती तमोभरम्। भूपेनोत्थाय पल्यङ्कात्प्रणता सहसा च
सा ॥ २०८ ॥ ऊचे च नृप! धीर! त्वं धीरत्वं दृढमाश्रय। मा समर्पय खेदस्यात्मानं पित्रोर्वियोगतः ॥ २०९ ॥ एवंविधं चरित्रं
हि भवेत्परमगात्रयोः। केवलज्ञानीनाख्यताविमौ हि चरमाङ्गकौ ॥ २१० ॥ तथास्म्यहं तयोः स्थानेऽधुना तत्त्वं प्रपालय।
राज्यमस्खलितं प्राज्यं प्रतापभरभासुरः ॥ २११ ॥ उक्त्वेति तदनुज्ञाता लक्ष्मीर्देवी तिरोदधे। तदीययानुशास्त्या च मुमुदे मेदि-
नीश्वरः ॥ २१२ ॥ ततो राजर्षिविहारज्ञानादिदिनरैः सदा। आख्यायमानशुद्धिः सन् हृदि तोषं मुमोच सः ॥ २१३ ॥ अमान-
भक्तिभिः सेव्यमानो मानोदयान्वितः। नरखेचरभूपालचक्रवाले रसोमसात् ॥ २१४ ॥ स्वयं स्मरन्नपि चिरं पितरं नितरामयम्।
चित्रं विस्मारयामास तं जनस्य स्वतेजसा ॥ २१५ ॥

तस्याथ भुञ्जतो राज्यद्रूपं श्रीजिनशासने। प्रभावनां कुर्वतश्च कालो भूयान्व्यतीयिवान् ॥ २१६ ॥ देवी शशिप्रभा तस्या-
न्यदा सुतमजीजनत्। कर्तुमारेभिरे वर्धापनानि नगरीजनाः ॥ २१७ ॥ तं पुत्रजन्म सानन्दं समेत्योद्यानपालकः। ऊचे वर्धा-

१ दृधिवीम्।

...ेन मनसा व्रतम् ॥ २५४ ॥ प्रतिबन्धं विधा मा त्वमिति सूरिभिरीरितः । स गत्वाऽ-
ङ्गारमानसः । लाखाम पूज्यपादा... ...ेन मनसा व्रतम् ॥ २५४ ॥ कुमारमभिषिच्यायं राज्ये आह जनानिति । मान्या युष्माभिरस्याज्ञाऽम्लाना शेषेव
जूहवद्राज्ञः खेचरान् भूचरानपि ॥ २५५ ॥ कुमारमभिषिच्यायं राज्ये आह जनानिति । मान्या युष्माभिरस्याज्ञाऽम्लाना शेषेव
शीर्षगा ॥ २५६ ॥ कल्पद्रुकल्पमस्याङ्घ्रीयुग्मं भक्त्यम्बुसेकतः । वृद्धिं नीतं परां सम्यक् पुष्कलैः फलिता फलैः ॥२५७॥ नरेन्द्र!
भवताप्येष कृतकृत् स्निग्धबन्धुवत् । महत्यपि कृते मन्तौ शिक्षणीयो जनः शनैः ॥ २५८ ॥ शिष्यवर्गे सुगुरुवत्तुल्यचित्तो जने
भवेः । सतां च मानसे वासं राजहंस! श्रियेः सदा ॥ २५९ ॥ तथा त्रिवर्गमव्यग्रः साधये स्वं नराधिपः । यथा पृथ्वीकुटुम्बं ते
जायते सुखितान्वहम् ॥ २६० ॥ नीतिदूतिः तथा मान्या यथा कीर्तिस्तव प्रिया । खलेभ्यो मुखमालिन्यं तनुते सा सुधोज्ज्वला
॥ २६१ ॥ शिक्षां दत्त्वेति लोकस्य लोकेशस्य च भूपतिः । बद्धमोक्षं व्यधान्मोक्षगामी दत्तं हि लभ्यते ॥ २६२ ॥ उद्दध्रे दुस्थि-
तानर्चा जिनार्चानामकारयत् । साधर्मिकेषु वात्सल्यं कृत्वा चाघोषयत्पुरि ॥ २६३ ॥ यः कोऽपि बालो वृद्धो वा सधनो निर्ध-
नोऽपि वा । दीक्षां गृह्णाति नारी ना तस्याहं कारये महम् ॥ २६४ ॥ यथावरोधनं बाष्पपूरदत्तावरोधनम् । बहुधा बोधयित्वाह
विरहो यदि दुस्सहः ॥ २६५ ॥ युष्माकं मद्भवस्तर्हि भवभ्रंशाय यत्यताम् । यथा राज्यं सहैवासीत्प्रव्रज्यापि तथास्तु नः ॥ २६६ ॥

तन्मते कृतशृङ्गारः स्तूयमानः स्तुतिव्रतैः । सहस्रवाह्यामारूढः शिबिकां स्वर्विमानिताम् ॥ २६७ ॥ चामरैर्वीज्यमानश्च
विधृतातपवारणः । साह्लादं कुलबालाभिर्गीयमानोरुमङ्गलः ॥ २६८ ॥ उच्चालिताञ्चलं वर्ध्यमानो वृद्धाभिराशिषा । पौराङ्गारैः
प्रमोदेन प्रदत्तार्थः पदे पदे ॥२६९ ॥ श्रियं भोक्तुं च मोक्तुं च जानते केचिदीदृशाः । श्लाघ्यमानो जनैरित्थं गुणग्रहण-
तत्परैः ॥ २७० ॥ पतिमार्गानुगामिन्यो धन्या एताः सतीतमाः । इत्यन्तःपुरिकाश्लाघाः शृण्वन्नागरनिर्मिताः ॥ २७१ ॥

सागरपारगम् । वज्रदत्तमुनिं जग्मुर्मासाऽनशनतः शिवम् ॥२३६॥ विहरन्तोऽथ ते साधुपरिवाराः समागमन् । उडुयुक्तोडुपप्राया नभसीव शुभापुरि ॥ २३७ ॥ यौवराज्ये तदा सूनुमभिषिञ्चन्नरेश्वरः । वर्धापितः समागत्योद्यानपालेन तत्क्षणात् ॥ २३८ ॥ नृपः प्रमुदितस्तस्य तुष्टिदानमदात्तदा । तादृक् यादृक् न त्रुटत्यासप्तमादपि पूरुषात् ॥ २३९ ॥ युवराजेन सार्धं च चलितो वन्दितुं गुरुम् । द्वितीयेनेव रूपेण प्रतिरूपेण भूतले ॥ २४० ॥ नत्वा विधिवदासीनोऽपृच्छत् क्षेमं गुरुर्जगौ । गुरूणां तस्य पित्रोश्च सम्प्राप्तिं परमे पदे ॥२४१॥ सबाष्पमथ भूपालमित्थं गुरुरबोधयत् । मा खेदं कुरु राजेंद्र ! मोक्षेऽगातां सुखावहे ॥२४२॥ यस्माद्शोचनीयास्ते ते च कल्याणभाजनम् । कृतकृत्याश्च ते राजन् ये प्रापुर्निर्वृतिं पुरीम् ॥ २४३ ॥ किं च राजन् यथा भुक्तभोगैर्युक्तमिदं कृतम् । तैस्तथा सविवेकस्यापरस्यापि सुसङ्गतम् ॥ २४४ ॥ यतो बाल्ये युवत्वेऽपि वृद्धत्वेऽपि च यैः समम् । न वियोगः कदाप्यासीत्तेष्वेतेषु परं भवम् ॥ २४५ ॥ सह्यते विरहस्तेन न शक्नोति पुनर्जनः । मोक्तुं स्वजनसंयोगानहो महिम मोहजम् ॥ २४६ ॥ चिन्त्यतां च विपर्यासो निजावयवसञ्चये । शिरस्थोऽपि हि यत्केशपाशः पश्य विरज्यते ॥२४७॥ यदभूत्पटु दूरस्थसूक्ष्मशब्दश्रुतावपि । न शृणोति श्रवोयुग्मं तज्भेरीं सन्निधावपि ॥ २४८ ॥ कपोले भजतः कार्ष्ण्यं भ्रुवौ स्थानं च मुञ्चतः । रसना दशनाभावात्किमश्नाति ब्रवीति किम् ॥ २४९ ॥ अङ्गे यत्र पुनः पेतुः शबलाः सुदृशां दृशः । वलिभिः कलितं तद्धि दुःप्रेक्ष्यं दूरतोऽभवत् ॥ २५० ॥ इत्थं विरागताहेतौ मति यो न विरज्यते । भवतः स ध्रुवं दूरभव्यो भाव्योऽथवाऽभवी ॥ २५१ ॥ आसन्नसिद्धयो ये तु कुर्वन्ति स्वं हितं हि ते । विज्ञा विज्ञाय संसारनाटकोत्थविडम्बनाम् ॥ २५२ ॥

निशम्य देशनामित्थं संवेगावेगरङ्गिणीम् । नृपो निर्वेदमेदस्वी जगादेति कृताञ्जलिः ॥ २५३ ॥ कुमारमभिषिच्याहं निरह-

ङ्गारमानसः । लास्यामि पूज्यपादान्ते दान्तेन मनसा व्रतम् ॥ २५४ ॥ प्रतिबन्धं विधा मा त्वमिति सूरिभिरीरितः । स गत्वाऽ-
जूहवद्राज्ञः खेचरान् भूचरानपि ॥ २५५ ॥ कुमारमभिषिच्यार्यं राज्ये प्राह जनानिति । मान्या युष्माभिरस्याज्ञाऽम्लाना शेषेव
शीर्षगा ॥ २५६ ॥ कल्पद्रुकल्पमस्याङ्घ्रीयुग्मं भक्त्यम्बुसेकतः । वृद्धिं नीतं परां सम्यक् पुष्कलैः फलिता फलैः ॥२५७॥ नरेन्द्र!
भवताप्येष कृतकृत् स्निग्धबन्धुवत् । महत्यपि कृते मन्तौ शिक्षणीयो जनः शनैः ॥ २५८ ॥ शिष्यवर्गे सुगुरुवत्तुल्यचित्तो जने
भवेः । सतां च मानसे वासं राजहंस! श्रियेः सदा ॥ २५९ ॥ तथा त्रिवर्गमव्यग्रः साधये स्वं नराधिपः । यथा पृथ्वीकुटुम्बं ते
जायते सुखितान्वहम् ॥ २६० ॥ नीतिदूतिः तथा मान्या यथा कीर्तिस्तव प्रिया । खलेभ्यो मुखमालिन्यं तनुते सा सुधोज्वला
॥ २६१ ॥ शिक्षां दत्त्वेति लोकस्य लोकेशस्य च भूपतिः । बद्धमोक्षं व्यधान्मोक्षगामी दत्तं हि लभ्यते ॥ २६२ ॥ उदध्रे दुस्थि-
तानर्चा जिनार्चानामकारयत् । साधर्मिकेषु वात्सल्यं कृत्वा चाघोषयत्पुरि ॥ २६३ ॥ यः कोऽपि बालो वृद्धो वा सधनो निर्ध-
नोऽपि वा । दीक्षां गृह्णाति नारी ना तस्याहं कारये महम् ॥ २६४ ॥ यथावरोधनं बाष्पपूरदत्तावरोधनम् । बहुधा बोधयित्वाह
विरहो यदि दुस्सहः ॥ २६५ ॥ युष्माकं मद्भवस्तर्हि भवभ्रंशाय यत्यताम् । यथा राज्यं सहैवासीत्प्रव्रज्यापि तथास्तु वः ॥ २६६ ॥

तन्मते कृतशृङ्गारः स्तूयमानः स्तुतिव्रतैः । सहस्रवाह्यामारूढः शिविकां स्वर्विमानिताम् ॥ २६७ ॥ चामरैर्वीज्यमानश्च
विधृतातपवारणः । साह्लादं कुलबालाभिर्गीयमानोरुमङ्गलः ॥ २६८ ॥ उच्चालिताञ्चलं वर्ध्यमानो वृद्धाभिराशिषा । पौरैर्गौरैः
प्रमोदेन प्रदत्तार्थः पदे पदे ॥२६९ ॥ श्रियं भोक्तुं च मोक्तुं च जानते केचिदीदृशाः । श्लाघ्यमानो जनैरित्थं गुणग्रहण-
तत्परैः ॥ २७० ॥ पतिमार्गानुगामिन्यो धन्या एताः सतीतमाः । इत्यन्तःपुरिकाश्लाघाः शृण्वन्नागरनिर्मिताः ॥ २७१ ॥

गतोऽभिराममारामं याप्ययानादवातरत् । सूरिं स्वर्णाम्बुजासीनं नत्वा चैवं व्यजिज्ञपत् ॥ २७२ ॥ (सप्तभिः कुलकम्)

शरण्यं मां भवारण्यश्रान्तिश्रान्तिजुषं विभो! । सार्थवाहतया भूत्वा नय सिद्धिपुराध्वनि ॥ २७३ ॥ ततः सपरिवारस्य नलिनीगुल्मभूपतेः । विधितो विधिवद्दीक्षां गुरुर्गुरुगुणोऽददात् ॥ २७४ ॥ गृहिधर्मं सहर्षस्य हर्षचन्द्रमहीपतेः । आसन्नसिद्धिकैः सार्धं नागरैर्गुरवो ददुः ॥ २७५ ॥ आदिदेशश्चेति राजर्षे! महात्मन्नधुना त्वया । उन्मुद्रिता शिवस्य द्वा मुद्रिता सा तु दुर्गतेः ॥ २७६ ॥ ततस्तीर्थकरादिष्टे सन्मार्गे सञ्चरोद्यतः । स नत्वाह कथं नाथ! बन्धोऽर्हन्नामकर्म्मणः ॥ २७७ ॥ उवाच सूरी राजर्षे! विंशत्या स्थानकैरिमैः । वक्ष्यमाणैस्तदेकादिवशेनापि हि बध्यते ॥ २७८ ॥ तथाह्यर्हत्सु सिद्धेषु द्विधा प्रवचनेऽपि च । श्रीसङ्घरूपे सिद्धान्तरूपे धर्मोपदेशके ॥ २७९ ॥ जन्मना षष्टिवर्षेषु समवायधरेषु च । श्रुताद्विंशतिवर्षेषु व्रतात्रिः स्थविरेषु च ॥ २८० ॥ बहुश्रुतेषु सूत्रेणार्थेन वा तद्वयेन वा । तपस्वीषु च वात्सल्यं सद्भूतगुणकीर्तनैः ॥ २८१ ॥ ज्ञानाभ्यसनं च सदा दर्शने विनयेऽपिच । आवश्यके च शीलं च सर्वेष्वनतिचारिता ॥ २८२ ॥ क्षणे लवे च संवेगसद्ध्यानासेवनादिभिः । तपसा साधुदानेन वैयावृत्योद्यमेन च ॥ २८३ ॥ समधिकरणाद्गुर्वादीनां अध्ययनात्तथा । नव्यज्ञानस्य भक्त्या च श्रुते सर्वज्ञदेशिते ॥ २८४ ॥ प्रभावनावशादर्हच्छासनस्य च नित्यशः । तदुद्यम्यं त्वयैतेषु स्थानकेषु यथोचितम् ॥ २८५ ॥

स तथेति प्रतिश्रुत्य स्थित्वाहानि कियन्त्यपि । विहृतो गुरुभिः सार्धं स्थानकोद्यमतत्परः ॥ २८६ ॥ एकादशाङ्गभृज्जज्ञेऽवधिज्ञानी च स क्रमात् । गुर्वाज्ञया विजहेऽथापरराजर्षिसंयुतः ॥२८७॥ प्रबोधयत्ययं गोभिर्भव्याम्भोजानि सूर्यवत् । ज्ञानादीनि कुवलयान्यपि मूर्त्या स सोमया ॥ २८८ ॥ साधुसिंहः स भिन्दानः कुतीर्थिकगजव्रजम् । प्रभावनां च तीर्थस्य कुरुते गुरुतेजसा

॥ २८९ ॥ विद्याधरधराधीशैर्नराधीशैः परैरपि । सक्तिव्यक्तिसमासक्तितत्परैः स्तूयते सदा ॥ २९० ॥ यत्र यत्र व्रजत्येष ग्रामा-
करपुरादिषु । तत्र तत्रास्य सौभाग्यभाग्यश्लाघा प्रवर्धते ॥ २९१ ॥ संगीतेष्वपि गीतेषु भावसारैश्च गीयते । योपाभिरपदोपा-
भिरपि वर्धापनादिषु ॥२९२॥ द्रव्ये क्षेत्रे च काले च भावे चाप्रतिवद्धधीः । अत्रभ्रात्तीर्थकृन्नाम विंशत्याः स्थानकैरयम् ॥ २९३ ॥
स्वहस्तदीक्षितैः शिष्यैरथायं परिवारितः । गुरून्नत्वा शुभापुर्यामागतान्नन्तुमागमत् ॥ २९४ ॥ स तान्केवलिनोऽनंसीद्विधाय
त्रिः प्रदक्षिणाम् । सेव्यमानान् महीन्द्रेण हर्षचन्द्रेण हर्षतः ॥२९५॥ ते प्राहुस्तं महासत्त्व! धन्यस्त्वं पुण्यवानसि । यत्त्वया तीर्थ-
कृन्नामकर्म धर्मजुपाऽर्जितम् ॥ २९६ ॥ महात्माहो महात्माहो इत्याह सकला सभा । राजर्षिः प्राह किं न स्याद्वन्द्यपादप्रसादतः
॥ २९७ ॥ माता तातः सुतो वन्धुः प्रिया मित्रं च तन्नहि । कुर्वन्ति गुरवस्तुष्टा यदकारणवत्सलाः ॥ २९८ ॥ राजा वा राज-
राजो वा शक्रो वा न तदश्नुते । सुखं यल्लभते धर्मगुरुपादनतौ रतः ॥ २९९ ॥

अथौचित्यसमासीनं राजर्षिं राजपुङ्गवः । प्रणम्य सुखविहारमपृच्छत्तुष्टमानसः ॥ ३०० ॥ तं निरीक्ष्य महाहर्षं हर्षचन्द्रो
महीपतिः । उवाच जनकस्नेहरोहन्मोहप्ररोहभृत् ॥ ३०१ ॥ चिरं गुरुपदोपास्तिं विधाय धरणीधवः । ययौ स्वस्थानमस्थानमंहसां
मानसं दधत् ॥ ३०२ ॥ विहृत्यान्यत्र गुरवो राजर्षिं स्वपदे न्यधुः । ऊचुश्च साधुयूथं त्वं मुनिनाग! प्रपालयेः ॥ ३०३ ॥
शिक्षां दत्त्वेति ते मासानशनेन शिवं ययुः । परे विजहुर्भव्याब्जविबोधनदिनाधिपाः ॥ ३०४ ॥ कृत्वा चिरतरं कालमुपकारं
जनव्रजे । प्रसन्नचन्द्रनामानं शिष्यं कृत्वा निजे पदे ॥ ३०५ ॥ त्रिंशतं दिवसान् यावत् प्रान्ते प्रायं विधीय च । भगवान्नलिनी-

१ अनशनम् ।

गुल्मो महाशुक्रं दिवं ययौ ॥ ३०६ ॥ शक्रसामानिकस्तत्रासमानद्युतिडम्बरः । सप्तदशसरित्नाथोपमायुरमरोऽभवत् ॥ ३०७ ॥

स तत्र तुर्यमेदिन्यवधि स्वावधिबोधतः । अधो निध्यायति सोर्द्ध्वं स्वकल्पस्तूपकावधि ॥ ३०८ ॥ प्राणापानानयं कुर्वन् सप्तदशार्धमासकैः । तत्संख्याब्दसहस्रैश्च मनसाऽऽहारमग्रहीत् ॥ ३०९ ॥ स्वविभूषणमूल्यैकदेशदेशीयमप्ययम् । जगज्ञानश्च मानं स दधे धर्मविरोधिनम् ॥ ३१० ॥ चतुःपाणिप्रमाणोऽप्यममानोऽपि स्वमानसे । पोतस्थितः पथमिव यान्तं कालं न वेद सः ॥३११॥ उपकारं करिष्येऽहं जगत्त्रय्यां जिनत्वतः । नाधिना बाधितस्तेन जानन्नपि दिवश्च्युतिः ॥ ३१२ ॥ शुक्राधीशोऽन्यदा ज्ञात्वाऽऽसनकम्पेन केवलम् । विदेहे श्रीजिनेन्द्रस्य घण्टाघोषादघोषयत् ॥ ३१३ ॥ श्रुत्वा घण्टास्वनं सोऽपि महर्द्धिकलितोऽचलत् । वन्दनाय जिनेन्द्रस्य शुक्रेन्द्रेण समन्वितः ॥ ३१४ ॥ प्राप्तः समवसरणमुत्तीर्य स्वविमानतः । भक्तियुक्तो जिनं नत्वोचितस्थाने न्यविक्षत ॥ ३१५ ॥ सर्वभाषापरिणतां शृण्वतोऽस्यार्हतो गिरम् । प्रस्तावं प्राप्य पप्रच्छ शुक्रनाकस्य नायकः ॥ ३१६ ॥ कथं त्रैलोक्यनाथास्य सुरस्यान्यसुरव्रजात् । अधिकं रूपकान्त्यादि जिनराजस्ततोऽवदत् ॥ ३१७ ॥ तीर्थनाथस्य जीवोऽयं मथवन्नघव-र्जितः । तेनैतस्याधिकं सर्वमित्युक्ते हरिरब्रवीत् ॥ ३१८ ॥ तीर्थकृत्त्वं कथमयं कदा च समुपार्जयत् । भविताहन् क्व च क्षेत्रे कुले कुत्र पवित्रधीः ॥ ३१९ ॥ त्रिकालज्ञोऽथ भूतं च भाविनं च भवं विभुः । पुरः प्ररूपयामास पुरुहूतस्य विस्तरात् ॥ ३२० ॥ सानन्दाथ सभा सर्वा प्रतिबुद्धा समुद्यता । सम्यक्त्वदेशविरतिव्रतार्हश्रामकर्मसु ॥ ३२१ ॥ पर्युपास्य चिरं सोऽथ तीर्थनाथं प्रणम्य च । गच्छति स्म सुरेन्द्रेण स्तुतः शुक्रसुरालये ॥ ३२२ ॥ अपरा निर्जरास्तस्य पदद्वंद्वाग्रतोऽलुठन् । अर्द्धासनासनात्तं च

---

१ अर्द्धासनोपवेशनात् ।

शुक्रेन्द्रः समभावयत् ॥ ३२३ ॥ सप्तमे [1]सप्तसप्त्याभः कल्पेऽनल्पेन तेजसा । तमो निघ्नन्सुखमयं समयं गमयत्ययम् ॥ ३२४ ॥
अवसानेऽपि षण्मास्यामयं नास्पृश्यताधिभिः । घनाघनघनच्छन्नोऽप्यंशुमानंशुमालिनः ॥३२५॥ श्रेयांसभर्तुरिति देवभवेन सार्ध-
माद्यो भवो निगदितो मयकापि किञ्चित् । सिन्धोरलं जलमु[2]दञ्चनकैर्ग्रहीतुं किं स्यात्पयोधरभरैरनुदञ्चि[3]तस्य ॥ ३२६ ॥
काञ्चनपुरस्य राज्यं राधावेधः शशिप्रभोपयमः । जनकव्रततत्तनुजव्रतसप्तमनायकगतयोऽत्र ॥ ३२७ ॥

इति श्रीचन्द्रगच्छे श्रीरत्नप्रभसूरिशिष्याचार्यश्रीमानतुङ्गसूरिविरचिते श्रेयांसचरिते
महाकाव्ये भवत्रयनिबद्धे प्रथमद्वितीयभववर्णनो नाम षष्ठः सर्गः ॥

---

१ सूर्यसदृशः । २ उन्नतैः । ३ अधःस्थितस्य ।

सप्तमः सर्गः ।

इतश्च जम्बुद्वीपस्य भरते मालवामिते । आस्ते [1]विशेपकप्रायं नाम्ना सिंहपुरं पुरम् ॥ १ ॥ यद्राज्ञाकलितं लक्ष्मीभूषितं रत्नमन्दिरम् । विभाति वार्धिवत्पौरैः सहितं सञ्चारिभिः ॥ २ ॥ कैलासविशदानेकजिनप्रासादसुन्दरम् । अनेकधनदावासं यद्दूरीकुरुतेऽलकाम् ॥ ३ ॥ जनेन यसता यमाचारकार्मणकर्मणा । वशिता इव नोज्झन्ति धर्मकल्याणकीर्त्तयः ॥ ४ ॥ श्रिया प्रसालशाऽलीरा लङ्काऽलङ्कारवर्जिता । विजिनेवाभ्युवासैका शैले दुर्गेऽपरा जले ॥ ५ ॥ नित्यं चैत्येषु तन्वन्तो जनाः पूजां जिनेशितुः । धूपधूममिषायत्र दूरयन्तीव दुष्कृतम् ॥ ६ ॥

विष्णुनामा नृपस्तत्र बलिबन्धविधिक्षमः । विभ्रत्सुदर्शनं हस्ते बलेन गुरुणाऽन्वितः ॥ ७ ॥ यस्य निष्कण्टके पृथ्वीमण्डले निखिलेऽपि हि । पदत्राणविहीनेव कीर्त्तिरस्खलिताभ्रमत् ॥ ८ ॥ अहीनगुणयुक्तो यः श्रिया च विबुधाधिपः । महीपतिस्त्रिजगती राजत्येनैव राजते ॥ ९ ॥ विष्णुदेवीति तस्यास्ति वल्लभा प्राणवल्लभा । एकचित्ततया दध्रे या नाभन्यपि नान्तरम् ॥ १० ॥ उदयं याऽचलं प्राप्यारण्डभूतसमन्विता । तमस्तोमापहरणशीला मार्त्तण्डमूर्तिवत् ॥ ११ ॥ गजयानापि सा [2]सिंहयानेवेशस्य वल्लभा । श्रीह्रीभ्यां कापि न जयविजयाभ्यामिवोज्झिता ॥ १२ ॥ तया शच्येव सुत्रामा सुत्रामा स महीतले । समं पञ्चविधान् दिव्यानिन्द्रियार्थानसेवत ॥ १३ ॥

---

१ तिलकमिव । २ पार्वतीव ।

इतश्च नलिनीगुल्मजीवः पीवरमुद्धरः । सप्तदशपयोध्यायुः[1] प्रपाल्याऽच्योष्ट शुक्रतः ॥ १४ ॥ ज्येष्ठमाःकृष्णपक्षस्य पष्ठ्यां
श्रवणगे विधौ । कादम्बवदवातार्पीद्विष्णुदेव्युदरं सरः ॥ १५ ॥ गर्भे समागते तस्मिन् ज्ञानत्रयभृति प्रभौ । नारका अप्यमोदन्त
तत्क्षणं किं परेऽङ्गिनः ॥ १६ ॥ सुखशय्यास्थिता देवी सुप्तजाग्रद्दशास्थिता । स्वप्नांश्चतुर्दशाऽपश्यत् पुण्यद्रुमसुमाश्रियः ॥ १७ ॥
अभ्रभूवल्लभं शुभ्रं चतुर्दशनमुन्नतम् । विशन्तं वदनेऽद्राक्षीत्सा सप्ताङ्गप्रतिष्ठितम् ॥ १८ ॥ पीनोन्नतमहास्कन्धवन्धं संहतिसङ्गतम् ।
सुवृत्तशृङ्गं चश्वं च धवलं धवलं रुचा ॥ १९ ॥ जृम्भाव्यात्तमुखं पुच्छच्छटाच्छोटितभूतलम् । मृगारातिं मृगारातिमध्याऽपश्यच्च
निर्मलम् ॥ २० ॥ शुण्डोत्पाटितकल्याणकलशैः कुञ्जरैः श्रियम् । स्नप्यमानां स्ववदने विशतीं च व्यलोकत ॥ २१ ॥ अमन्द-
स्फुरदामोदमिलद्रोलम्बमालिताम् । प्रफुल्लफुल्लमालां च मालामालोकतामलम् ॥ २२ ॥ द्वैराज्यमिव कुर्वन्तं मुखस्य मृगलाञ्छनम् ।
मुखे विशन्तमद्राक्षीन्मृगाक्षी पूर्णमण्डलम् ॥ २३ ॥ हृदयान्तरसंलीनमिव हर्तुं तमोभरम् । मार्त्तण्डमण्डलं च द्युयोपितः कर्णकु-
ण्डलम् ॥ २४ ॥ स्थितमुन्नतवंशाग्रे विशुद्धगुणसंश्रयम् । महाध्वजमपश्यच्च प्रधानपुरुषोपमम् ॥ २५ ॥ (युग्मम्) मनोज्ञदिव्यसु-
मनोमालया मुद्रिताननम् । विशन्तं च मुखे पूर्णकलशं जलसम्भृतम् ॥ २६ ॥ सरः स्फुरत्तरङ्गं च पद्मिनीखण्डमण्डितम् ।
आत्मादर्शमिवादर्शदसौ त्रिभुवनश्रियः ॥ २७ ॥ (युग्मम्) अनुव्रजन्निव निजं नन्दनं मृगलाञ्छनम् । कल्लोलमाली कल्लोलकलितो
दहशे तया ॥ २८ ॥ दीप्यमानं विमानं च रत्नसम्भारभासुरम् । चिरप्ररूढप्रणयवशादिव सहागतम् ॥ २९ ॥ अधोविधानतो
मत्वेवाविशेपज्ञमम्बुधिं । हित्वाऽऽगतमपश्यच्च रत्नोच्चयमुदर्चिपम् ॥ ३० ॥ (युग्मम्) रत्नेन्द्रर्काः पुरायाताः स्वामे सब्रह्मचारिणः ।

---

१ सप्तदशसागरोपमायुः । २ हंसवत् । ३ हस्तिनम् । ४ वृषभम् । ५ समुद्रः । ६ सतीर्थ्याः ।

इति धूमध्वजस्त्यक्तध्वजः शीघ्रमिवागमत् ॥ ३१ ॥ इत्थं चतुर्दश स्वमान् वीक्ष्य देवी व्यबुध्यत । आगत्य च नरेन्द्राय कथयामास तांस्तथा ॥ ३२ ॥ मुदितो मेदिनीन्दुस्तामाह धन्यासि देवि! यत् । एते चतुर्दश स्वमा लभ्यन्तेऽद्भुतभाग्यतः ॥ ३३ ॥ तज्जगत्त्रयविख्यातकीर्तिर्देवादिपूजितः । कल्याणवल्लिकन्दस्ते भविता देवि! नन्दनः ॥ ३४ ॥ ततो मुदितया देव्या वदत्येवं भवत्विति । निबद्धः शकुनग्रन्थिर्दुकूलस्याञ्चले निजे ॥ ३५ ॥

अथो युगपदागत्य हरयो हर्षनिर्भराः । इलातललुलन्मौलि नत्वा नुतिमिति व्यधुः ॥ ३६ ॥ देवि त्वं मेरुभूमीव सनन्दनसमन्विता । ददाना विबुधानन्दं नन्द कल्याणनिर्मिते! ॥ ३७ ॥ त्वमेव श्लाघ्यसे देवि! जगद्दीपप्रदायिनि! । भवगर्ते निपततां जगतां त्राणकारिणि! ॥ ३८ ॥ किं ते जगत्त्रयं देवि! पादपीठे न लुठ्यति । यस्या जगत्त्रयाधीशः कुक्षौ वसति तीर्थकृत् ॥ ३९ ॥

इति स्तुत्वा जिनस्वाम्बां गन्धाम्बुकुसुमोत्करैः । वृष्टिं विधाय नत्वा च ययुः स्वर्गं सुरेश्वराः ॥ ४० ॥ प्राभातिकेषु वाद्येषु वाद्यमानेषु भूपतौ । निद्रादरिद्रनयनेऽपठन्मङ्गलपाठकाः ॥ ४१ ॥ तेजस्विमौलिरत्नस्य प्रभाकर्तुः प्रभावतः । अपूर्वं पूर्वदिग्देव! सौन्दर्यं दधतेऽधुना ॥ ४२ ॥ श्रुत्वेति मुदितो भूपः कृतप्राभातिकक्षणः । आदिदेश प्रतीहारमाह्वातुं स्वमपाठकान् ॥ ४३ ॥ तदाहूताश्च ते स्नातानुलिप्ता दिव्यवाससः । महामूल्याल्पनेपथ्याः सौधे त्वरितमाययुः ॥ ४४ ॥ ते द्वाःस्थावेदिताऽऽयाता दापिताहर्सनासनाः । सत्कारपूर्वकं पृष्टाः स्वमार्थं विष्णुभूभुजा ॥ ४५ ॥

---

१ निर्धूमः ।

परस्परं विचार्यत प्राहुर्दवाक्षु... ः सद्भाग्यलभ्यः स्यादेकैकः किं चतुर्दश ॥ ४६ ॥ प्रत्येकं फलमेतेषां तद्देवे-
नावधार्यताम् । दानवर्षिकरो भावी गजस्वप्नेन नन्दनः ॥ ४७ ॥ वृषभस्वप्नतः सर्वधराभारधुरन्धरः । पञ्चास्यस्वप्नतो भावी महा-
बलपराक्रमः ॥ ४८ ॥ श्रियोऽभिषेकवीक्षातः सुमेरौ मज्जनोचितः । मालावलोकनात्सेव्यमानः सुमनसां चयैः ॥ ४९ ॥ चन्द्रस्य
दर्शनान्नेत्रानन्दकर्त्ता कलानिधिः । रवेरालोकनाल्लोककोकशोकनिषेधकः ॥ ५० ॥ ध्वजस्य दर्शनाद्विश्वप्रासादशिखरस्थितः । कल्या-
णामृतपूर्णस्य पूर्णकुम्भस्य दर्शनात् ॥ ५१ ॥ तापापहः श्रियो गेहं भावी पद्मसरोवरात् । भावी रत्नाकरस्वप्नाद्गुणरत्नमहाकरः ॥ ५२ ॥
(युग्मम्) विमानादागतः सैष विमानस्य च दर्शनात् । रत्नोच्चयनिरीक्षातो नररत्ननिषेवितः ॥ ५३ ॥ भावी कर्मेन्धनप्लोषक्षमश्च
शिखिदर्शनात् । लेशोद्देशेन दैवैतत्फलमेषामुदाहृतम् ॥ ५४ ॥ कल्पद्रुमाद्यधःकर्त्ता देवेन्द्रादिनतक्रमः । तीर्थेशस्तनयो भावी
विश्वत्रितयनायकः ॥ ५५ ॥ श्रुत्वेत्यानन्दितो विष्णुर्विष्णुदेव्यै निवेद्य तत् । तुष्टिदानं ददौ तेषामासप्तमनरं स्थिरम् ॥ ५६ ॥
देवीभूपावथात्मानमानन्दसरिदाप्लवात् । मन्येते स्म सुधासिक्तमथ लोकत्रयोर्ध्वगम् ॥ ५७ ॥

अथ वैश्रवणः प्राप्य पाकशासनशासनम् । सुवर्णधनवस्त्राद्यैर्नृपपस्त्यमपूरयत् ॥ ५८ ॥ विष्णुदेव्याः पुनर्देव्यो जिनाम्बेति
समीपगाः । सदादेशविधायिन्यस्तस्थुः कर्मकरीनिभाः ॥ ५९ ॥ किं च यस्यै ददात्यम्बाऽऽदेशं यां वा निरीक्षते । कृतार्थं मन्यते
सा स्वं स्वामिदृष्टेव सेवकः ॥ ६० ॥ गर्भानुभावतो देवी गौररोचिर्व्यरोचत । अदभ्रशरदभ्रालीवान्तर्गतकलानिधिः ॥ ६१ ॥
देव्या निगूढगर्भाया गर्भोऽन्वहमवर्द्धत । राज्यराष्ट्रधनधान्यस्वर्णाद्यैर्वस्तुभिः सह ॥ ६२ ॥ वर्धन्ते च दयादाक्ष्यदाक्षिण्यप्रमुखा
गुणाः । गर्भानुभावतो देव्या जगत्त्रयमुदा सह ॥ ६३ ॥ किं च स्वर्णमयी प्रौढा शय्या माणिक्यमण्डिता । देवताधिष्ठिता मर्त्या-

नाक्रम्याऽस्ति नृपौकसि ॥ ६४ ॥ तत्रारोहद्विष्णुदेवी तदाक्रमणदोहदात् । तुष्टा च देवताऽरक्षत्तां हि तीर्थकृतः कृते ॥ ६५ ॥ त्रिथस्याद्दोहदास्तस्या दोहदा अपरे पुनः । देवैरेव प्रपूर्यन्ते ज्ञानविज्ञानवाञ्छितैः ॥ ६६ ॥ काश्यपीशस्य वश्याश्च बभूवुर्भूभुजाः परे । जगत्त्रितयनाथस्य गर्भस्थस्यानुभावतः ॥ ६७ ॥ गृहवाहकवच्चिन्ता सौधर्माधिपतिर्व्यधात् । सवित्र्या तीर्थनाथस्य सुखदुःखादिगोचरम् ॥ ६८ ॥ चक्षूरक्षाकृते चास्य देवमानवयोषितः । नानाविधानि विदधुर्मङ्गल्यानि गृहे गृहे ॥ ६९ ॥

ततस्तपस्यमासस्य[1] श्यामे द्वादशवासरे । श्रवणस्थे निशानाथे ग्रहेषु बलशालिषु ॥ ७० ॥ पूर्वाशेव दिनाधीशमत्रिदृष्टिरिवोडुपम् । श्रीविष्णुः सुषुवे सूनुरतं चाक्रभूरिव ॥ ७१ ॥ उदयं च समायाते तत्र काश्यपगोत्रजे । तमोपहे जनस्याशाः प्रकाशाः किमु कौतुकम् ॥ ७२ ॥ मन्दमन्दमवाद्वायुः कोरकाणि[2] विकासयन् । मरुतामपरेषामप्यागमं पालयन्निव ॥ ७३ ॥ लोकत्रयेऽपि चालोकः ससंरम्भं व्यजृम्भत । पुष्पाणां पञ्चवर्णानां वृष्टिः स्पष्टमजायत ॥ ७४ ॥ समुल्ललास विश्वापि विश्वा विश्वाभृद्दन्विता । मत्वेव भाविनं स्वस्य पतिं विश्वत्रयीपतिम् ॥ ७५ ॥ पुष्पितं वनराजीभिर्नृत्तं वनशिखण्डिभिः । कूजितं कलकण्ठीभिः कुण्ठितं विश्वविद्विषैः ॥ ७६ ॥ बभूव च क्षणं नारकाणामपि सुखासिका । ग्रामाकरपुरादीनामपरेषां च का कथा ॥ ७७ ॥

अथासनप्रकम्पेन प्रयुक्तावधयः क्षणात् । अष्टाधोलोकवासिन्यः समेयुर्दिक्कुमारिकाः ॥ ७८ ॥ नत्वा जिनं तदम्बां च न भेतव्यं निगद्य च । पृथ्वीं सम्मार्जयामासुः परितः सूतिकागृहम् ॥७९॥ अष्टोर्द्ध्वलोकवासिन्यः प्राग्वदीत्येव चाययुः । गन्धोदकेन वृष्टिं ताश्चक्रुश्च परितो गृहम् ॥ ८० ॥ एयुश्च प्राच्यरुचकादष्टौ दर्पणपाणयः । अप्राच्यरुचकाचाष्टस्वर्णभृङ्गारधारिकाः ॥ ८१ ॥

१ फाल्गुनमासस्य । २ कुड्मलानि । ३ भा० टी०

प्रतीच्यरुचकादष्टौ दधाना व्यजनं करे । उदीच्यरुचकाच्चाष्ट प्रस्फुरच्चामरैः करैः ॥ ८२ ॥ विदिग्रुचकतोऽप्येयुश्चतस्रो दीपिकाकराः । स्वस्वदिक्षु च तास्तस्थुर्गुणगानपरायणाः ॥ ८३ ॥ ततश्च मध्यरुचकाच्चतस्रो दिक्कुमारिकाः । ताः कृन्तन्त्यर्हतो नालं चतुरङ्गुलवर्जितम् ॥ ८४ ॥ गर्तं निखन्य तद्रत्नपूरणैः परिपूर्य च । दूर्वाभिर्विपुलं पीठबन्धं तदुपरि व्यधुः ॥ ८५ ॥ विमुच्य पश्चिमां सूतिगृहस्यापरदिक्त्रये । चतुःशालान्वितानेता विदधुः कदलीगृहान् ॥ ८६ ॥ नीत्वा सुतान्वितां देवीं दक्षिणे कदलीगृहे । व्यधुरभ्यङ्गमभ्यङ्ग्य रत्नसिंहासने तयोः ॥ ८७ ॥ पूर्वदिक्कदलीगेहे रत्नसिंहासनेऽथ ताः । तौ संस्नाप्य विभूष्याथ दिव्यवस्त्रविभूषणैः ॥ ८८ ॥ उदीचीसदने नीत्वा रत्नसिंहासने न्यधुः । हरिचन्दनमानाय्य प्रेष्यैः क्षुद्रहिमाद्रितः ॥ ८९ ॥ तद्भस्मीकृत्य ताश्चक्रुः रक्षापोट्टलिकां तयोः । पर्वतायुर्भवेत्यूचुश्चास्फाल्य मणिगोलकौ ॥ ९० ॥ (युग्मम्) ततः सतनयां सूतिगृहमानीय मातरम् । तस्थुस्तद्गुणगानैकतानाः परमया मुदा ॥ ९१ ॥

चकम्पिरे सुरेशानामासनानि शनैस्ततः । नर्त्तनाभिमुखानीव जिनजन्मोत्थहर्षतः ॥ ९२ ॥ सौधर्मेन्द्रोऽवधिज्ञानादज्ञासीत्कम्पकारणम् । एकादशजिनेशस्य जन्म जन्मफलप्रदम् ॥ ९३ ॥ कराभ्यामथ कुर्वाणो मुकुटं मुकुटोपरि । सिंहासनपादुके च परित्यज्य ससम्भ्रमः ॥ ९४ ॥ प्रस्थानमिव सप्ताष्टपद्या गत्वा जिनं प्रति । नत्वा शक्रस्तवान्नुत्वा भजति स्म निजासनम् ॥ ९५ ॥ (युग्मम्) स्वस्वामिशासनान्वेषी नैगमेषी बिडौजसा । आदिष्टोऽज्ञापयत्सुरान् जिनजन्माद्य भारते ॥ ९६ ॥ सोऽथ घण्टां सुघोषाख्यां सभायां योजनायताम् । त्रीन्वारांस्ताडयामास दुश्छात्रमिव पाठकः ॥ ९७ ॥ तन्नादेन विमानानां नेदुर्घण्टाः परा अपि । एकस्मिंस्ताडिते भीतिमन्तश्छात्रा इवापरे ॥ ९८ ॥ शब्दाद्वैतेन तेनाथ सावधाना दिवौकसः । सेनानीविहितां श्रुत्वा घोषणां जहृषुर्हृदि

॥ ९९ ॥ विमानं वासवादेशात्पालकः पालकाभिधम्। लक्षयोजनमाधाय प्रयाणाय व्यजिज्ञपत् ॥१००॥ ततस्तत् सपरिवारः समारोहत्पुरन्दरः। परैः परिवृतं तत्रातोद्यध्वनितबन्धुरम् ॥१०१॥ द्वीपवार्धीनसंख्यातांस्तद्व्यतीत्य क्षणादपि। तत्संक्षिप्तं समाविक्षत्क्रमात् सिंहपुरोपरि ॥ १०२ ॥ शक्रः प्रदक्षिणीकृत्यार्हज्जन्मौको विमानगः। उत्तीर्य जिनमम्बां च नत्वा भक्तिपरोऽस्तवीत् ॥ १०३ ॥

नन्द त्वं सुचिरं देवि! यया नाथं जगत्रयम्। जनयित्वा जिननाथं सनाथं साम्प्रतं कृतम् ॥ १०४ ॥ अम्ब! वन्द्या जगत्रय्याः कथं न भवती त्वया। तस्याः सन्तमसान्धायाश्चक्षुर्दत्तो जिनेश्वरः ॥ १०५ ॥ रत्नखानिः त्वमेवासि चिन्तारत्नजिनोद्भवात्। धन्या त्वमेव या श्लाघ्या निःसङ्गैरपि साधुभिः ॥ १०६ ॥ स्तुत्वैवं प्रतिरूपं च न्यस्यावस्वापिनीमपि। प्रदाय पञ्चरूपोऽभूदयसौ भक्तिनिर्मितः ॥ १०७ ॥ रूपेणैकेन गोशीर्षचन्दनद्रवचर्चिते। करयुग्मे जिनं न्यस्यान्येन च्छत्रमधारयत् ॥ १०८ ॥ द्वाभ्यामचालयच्चारुचामरे चामरेश्वरः। पञ्चमेन पविं बिभ्रदभूत् पत्तिवदग्रतः ॥ १०९ ॥

समं विमानमालाभिर्महर्द्धिकसुपर्वणाम्। सुपर्वपर्वतं प्राप सुपर्वाधिपतिः क्षणात् ॥ ११० ॥ यत्र रत्नशिलासु स्वबिम्बं वीक्ष्य द्युयोषितः। अपराशङ्कया कोपं स्वप्रियेषु प्रकुर्वते ॥१११॥ अर्केन्दुकरसम्पर्कात् निर्गच्छद्वह्नितोययोः। विभागो ज्ञायते यत्र सूर्यचन्द्राश्मनोः सदा ॥ ११२ ॥ पञ्चवर्णमणिज्योतिःप्रकरेण जिनागमे। देवदूष्यकृतहट्टशोभावाद्यश्च शोभते ॥ ११३ ॥ दिक्षु सर्वासु विस्तारितारतारकमालया। यः प्रभोः प्राभृतीकर्तुं भाति प्रार्द्धितमौक्तिकः ॥ ११४ ॥ तत्रातिपाण्डुकम्बलशिलायां सिंहविष्टरे। निविष्टः क्रोडविन्यस्तजिनराजो जिनाग्रजः ॥११५॥ परेऽपि नानायानाधिरूढा व्यूढाऽमलश्रियः। कलिताः सुरकोटीभिस्तत्रेयुर्नाकनायकाः ॥११६॥ सूर्येन्दुव्यन्तराधीशभवनाधीशवासवाः। सर्वेऽपि हि जिनं नत्वा निविष्टाः स्थानके निजे ॥११७॥ आदेशादच्यु-

सौवर्णान् राजतान् रात्नान् स्वर्णरूप्यमया-
तेन्द्रस्याऽऽनीततीर्थाम्भसः सुराः । कुम्भानष्टोत्तरान्यष्टसहस्राण्यष्टधा न्यधुः ॥ ११८॥
नपि । स्वर्णरत्नमयान् रूप्यरत्नजांस्त्रयीमयान् ॥ ११९॥ भौमांश्चापूरयन् वारा घनसारादिसंयुतान् । कलितान्पुष्पमालाभिश्चन्दनद्र-
वचर्चितान् ॥१२०॥ ततोऽच्युतसुराधीशः स्वपरिच्छदसंयुतः । वाद्यमानेषु वाद्येषु नृत्यत्यप्सरसां गणे ॥१२१॥ (त्रिभिर्विशेषकः)
हाहाहुहुपरिगते तारं गायति तुम्बरौ । वीक्षमाणे सरोमाञ्चं चतुर्विधसुरव्रजे ॥ १२२ ॥ इन्द्रेषु केष्वप्यादर्शं दर्शयत्सुमणीमयम् ।
कालागुरुगुरुं धूपमुत्क्षिपत्सु च केषुचित् ॥१२३॥ परे सुरसमाजे चाञ्चलोत्क्षेपविधायिनि । दृग्दोषं हन्तुमिद्राणीगणे कुर्वति मङ्गलम्
॥१२४॥ (चतुर्भिः कलापकम्) नष्टकष्टाः परेऽप्यष्ट कल्पेन्द्राः कल्पवेदिनः । अभ्यषिञ्चन्परेऽपीन्द्रा विभुं सद्भक्तिनिर्भराः ॥१२५॥
अथ शक्रवदीशानस्वाम्युत्सङ्गादिकर्मसु । चत्वारि न्यस्य रूपाण्येकेनास्थत् शूलभृत्पुनः ॥ १२६ ॥ सौधर्मवासवो भक्तिच-
तुरश्चतुरो वृषान् । ज्ञानोत्पत्तौ विभुरिवोज्ज्वलानाविरभावयत् ॥ १२७॥ तच्छृङ्गोत्थितधाराभिरष्टभिः शुभ्रकान्तिभिः । शासनमातृ-
भिरिव जिनमस्नपयद्वृपः ॥ १२८ ॥ दिव्यया गन्धकापाय्या रूपयित्वा वपुर्विभोः । आनर्चादिमकल्पेन्द्रः कल्पद्रुकुसुमैरिमम्
॥ १२९ ॥ विभूष्याभरणैरष्टमङ्गल्यान्यलिखत्पुरः । तारताराक्षतैर्दिव्यैरथ स्तोतुं प्रचक्रमे ॥ १३० ॥
मोहादिकांहिपश्रेणिभञ्जनैकप्रभञ्जन ! । मनोरञ्जन ! भव्यानां निरञ्जन ! नमोऽस्तु ते ॥ १३१ ॥ मिथ्यात्वदावपाथोद ! प्रमो-
दप्रद ! देहिषु । जय प्रत्तभवक्षोद ! सुधासोदरगीर्भर ! ॥ १३२ ॥ कल्याणवल्लीसुरभे जितकल्याण ! वर्णतः । कल्याणकाम !
कल्याणपञ्चकस्तुत्य ! ते नमः ॥ १३३ ॥

---

१ जलेन । २ ईशानेन्द्रः । ३ इन्द्रः ।

अरण्यवासयोग्योऽपि त्वत्केतननिकेतनम् । प्राप्य वार्द्धीणसः शृङ्गं धत्ते श्वापदसंहतौ ॥ १३४ ॥ धन्योऽयमपि ते नित्यं सेवाहेवाकलालसः । धिक् सौमनस्यमपि नस्तत्र देव! दवीयसाम् ॥ १३५ ॥ सद्धर्मसज्जने त्वद्य त्वदीये जन्ममज्जने । यत्नः पुण्यमभूत्तेन पुनर्दर्शनमश्नुवे ॥१३६॥ स्तुत्वेति विरते सौधर्मेन्द्रेऽपरपुरन्दराः । गत्वा नन्दीश्वरे तस्थुः सौधर्मेन्द्रागमावधि ॥ १३७ ॥ सौधर्मेन्द्रः पुनः पञ्चरूपः सिंहपुरे विभुम् । मातुः पार्श्वेऽमुचद्विद्याप्रतिरूपं जहार च ॥ १३८ ॥ नाथनेत्रपथे न्यास्यदथ श्रीदामगेन्दुकम् । क्षौमकुण्डलयुग्मे चोच्छीर्षस्थे नाकनायकः ॥ १३९ ॥

जिनस्य जिनमातुश्च चिन्तयिष्यति योऽशमम् । तस्यार्यकमञ्जरीव भेत्स्यते सप्तधा शिरः ॥ १४० ॥ इत्थं पुरे समग्रेऽप्युद्घोष्य वृष्टिं विधाय च । सुवर्णरत्नगन्धाम्बुसुमैः स्वामिनमानमत् ॥ १४१ ॥ जिनस्य न्यस्तवान् स्तन्यमङ्गुष्ठेष्वेवमन्वहम् । सुधां सुधान्धसामीशः स्वर्स्त्रीः पञ्च च धात्रिकाः ॥ १४२ ॥ गत्वा नन्दीश्वरे पूर्वायातदेवाधिपैः समम् । विधायाष्टाहिकां जग्मुः स्वस्वः स्वर्गनायकाः ॥१४३ ॥

अथ वीक्ष्य जिनं दोषोच्छेदकं साध्वसादिव । हित्वा महीतलं क्वापि जगाम सहसा निशा ॥ १४४ ॥ वासरश्रीः सूर्यबिम्बादर्शं दर्शयितुं किल । समागमत्त्रिभुवनस्वामिनः सहसा प्रगे ॥ १४५ ॥ अथ मङ्गलतूर्याणां बन्दिनां च रवैः समम् । प्रोद्गच्छद्भिर्विष्णुदेवी सहसैव व्यबुध्यत ॥ १४६ ॥ दिव्याभरणवस्त्रस्रग्विलेपनविराजितम् । कल्पद्रुमोपमं पुत्रं दृष्टवत्यतिलोकवत् ॥ १४७ ॥ अथ प्रियंवदा नाम भुजिष्याऽवर्द्धयन्नृपम् । त्रैलोक्याभ्युदयस्थैर्यजन्मना पुत्रजन्मना ॥ १४८ ॥ विष्णुभूपो महादाना-

१ खड्गी । २ अनिष्टम् । ३ एरण्डकफलवत् । ४ भयादिव । ५ दासी ।

विद्रुमच्छायः स्वामिनो मरुमार्गवत् । युक्तं दृष्टो मृगदृशां पिपासां वर्धयत्ययम् ॥ १८३ ॥ मुखे लावण्यपाथोधौ संयुक्ते शुक्तिशु-
क्तिभिः । रसोद्भवप्रभा भान्ति कुन्देन्दुविशदा रदाः ॥१८४॥ तिस्रः कण्ठोपकण्ठस्था लेखा लेखाधिप[1]प्रभोः । भान्ति विश्वत्रयोदा-
रप्रगुणत्वप्रकाशिकाः ॥ १८५ ॥ विभातः स विभोर्बाहुदण्डावाजानुलम्बिनौ । जगत्रयद्विषौ रागद्वेषौ पेष्टुमिवोदितौ ॥ १८६ ॥
कराङ्गुलीषु भान्ति स प्रवालप्रतिमा नखाः । दीपा इव दशविधयतिधर्मप्रकाशने ॥१८७॥ श्रीवत्सः स्वामिनो वक्षःस्थलेऽतिविपुले
बभौ । भवाम्भोधिसमुद्धारधर्मवेडाविडम्बकः ॥ १८८ ॥ तुच्छेनापि हि मध्येन जिनेशस्य जिता वयम् । ध्यात्वेतीव वनेऽद्यापि
वसन्ति नखरायुधाः[2] ॥ १८९ ॥ अम्भोनिधिर्विभोर्नाभीगाम्भीर्येण विनिर्जितः । इवीव पृथिवीप्रान्तस्थितः पूत्कुरुतेऽनिशम् ॥१९०॥
मेरुः स्वामिकटिं वीक्ष्य जात्यजाम्बूनदद्युतिम् । स्वतटीं तादृशीमिच्छन् मध्ये धत्ते महौषधीः ॥ १९१ ॥ विराजते जिनस्योरू
मांसलौ परिवर्तुलौ । जन्ममृत्यू विनिर्जित्य कीर्तिस्तम्भाविवोद्धितौ ॥ १९२ ॥ राजन्तेऽर्हत्पदद्वन्द्वे पद्मरागसमा नखाः । दशकल्पा-
धिपालीकानलीकतिलका इव ॥ १९३ ॥ अशीतिधनुरुत्तुङ्गः स्वर्णवर्णो जिनेश्वरः । बभौ काञ्चनशैलस्य सञ्चरन् शिखरः किल
॥१९४॥ अष्टोत्तरसहस्रेण लक्षणैः परिलक्षितः । कलाभिः स्वयमाश्लिष्टो ज्ञानत्रयपवित्रधीः ॥१९५॥ सुधावर्षी गिरा सूक्तमुक्ताम-
णिमहोदधेः । गर्भाविर्भावकः शास्त्रे विस्मयं कस्य नाददे ॥१९६॥ (युग्मम्) तारुण्यरूपसौभाग्यभाग्यश्रीगुणकीर्तयः । भूपकानि
क्रमात्कीर्त्या भूषितं तु जगत्रयम् ॥१९७॥ सवयोभिः समं राजपुत्रैरश्वेभवाहनात् । नाट्यादिकविनोदाच्च कालो यात्यस्य धीनिधेः
॥ १९८ ॥ शास्त्रं कला वा विज्ञानं पूर्वपक्षस्तथोत्तरम् । तत्किञ्चिन्नास्ति नो यत्र श्रीश्रेयांसस्य कौशलम् ॥ १९९ ॥ धर्माद्धर्मार्थि-

---

१ लेखाधिपो इन्द्रः तस्य प्रभोः भगवतः । २ सिंहाः ।

स्तुतिमुखो मन्त्रिप्रमुखो निखिलो जनः । विहितोचितसन्मानः प्रैषि राज्ञा ससम्मदम् ॥ १६६ ॥ महामहेऽथ विहिते षष्ठीजागरणादिके । द्वादशे दिवसे राजा स्वजनाह्वानपूर्वकम् ॥ १६७ ॥ विधायामानसन्मानं भोज्यवस्त्रविभूषणैः । विशत्स्वक्षतपात्रेषु दिव्यवस्त्रादिशालिषु ॥ १६८ ॥ शय्याक्रमणतो गर्भे नाम प्राकृतभाषया । सेज्जंसो निरुक्तत्वेन श्रेयांस इति संस्कृते ॥ १६९ ॥ प्रतिष्ठितं प्रभोः प्राज्यप्रमोदप्रसरोद्धुरम् । कल्पद्रुवज्जिनेन्द्रोऽथ वर्धते विबुधैर्वृतः ॥ १७० ॥ (चतुर्भिः कलापकम्) देवैश्च नरदेवैश्च लाल्यमानः प्रतिक्षणम् । सिते सिते नृपस्त्रीभिश्चुम्ब्यमानमुखाम्बुजः ॥ १७१ ॥ अत्युल्लापे च निर्मीयमाणं प्रियवचःशतम् । पदे पदे क्रियमाणसुकल्याणः सहस्रशः ॥१७२॥ स्वःस्त्रीभिर्मण्डनस्नानक्रीडनक्रोडधारणैः । मुहुर्मुहुर्लाल्यमानो बालभूत्यो जिनेश्वरः ॥ १७३ ॥ अगण्यपुण्यलावण्यजातसर्वाङ्गचङ्गिमा । जिनेन्द्रश्चन्द्रवल्लोकलोचनानन्ददोऽभवत् ॥ १७४ ॥ (चतुर्भिः कलापकम्)

असाधारणशरीरशोभाहृतहृदेव सः । उपगूढो विभुर्गाढं सर्वाङ्गं यौवनश्रिया ॥ १७५ ॥ अलिकज्जलसङ्काशः केशपाशः शिरस्यभूत् । त्रिजगज्जयिनोऽङ्गस्य नीलरत्नातपत्रवत् ॥ १७६ ॥ विभाति त्रिजगद्भर्तुर्भालमुज्ज्वलभाऽऽलयम् । नेत्रनीलाम्बुजद्वन्द्वक्षेत्रायाताष्टमीन्दुवत् ॥ १७७ ॥ अंसस्थलावलम्बिन्यौ विराजेते विभोः श्रुती । अंसस्थोभयलोकश्रीसुवर्णोत्तरिके इव ॥ १७८ ॥ श्यामले कुटिलाकारे भातो भ्रूलतती विभोः । स्वर्गापवर्गगद्वारोद्घाटने कुञ्चिके इव ॥ १७९ ॥ निर्मले पक्ष्मले नेत्रे जगन्नेत्रस्य तापिनः । वीक्ष्य प्रपेदिरे खेदात् झम्पा नीलोत्पलैर्जले ॥१८०॥ मनसो प्रतिमानस्य प्रतिस्पर्धावशादिव । उन्नतः सरलश्चासीन्नासावंशो जिनेशितुः ॥ १८१ ॥ मानाधिकास्यकासारकान्त्यम्बुधरणक्षमे । कपोलपालिके भातोऽभितो भर्तुः समुन्नते ॥१८२॥ अधरो

१ भूलते।

विद्रुमच्छायः स्वामिनो मरुमार्गवत् । युक्तं दृष्टो मृगदृशां पिपासां वर्धयत्ययम् ॥ १८३ ॥ मुखे लावण्यपाथोधौ संयुक्ते सूक्तियु-
क्तिभिः । रसोद्भवप्रभा भान्ति कुन्देन्दुविशदा रदाः ॥१८४॥ तिस्रः कण्ठोपकण्ठस्था लेखा लेखाधिपप्रभोः[1] । भान्ति विश्वत्रयोदा-
रग्रगुणत्वप्रकाशिकाः ॥ १८५ ॥ विभातः स विभोर्बाहुदण्डावाजानुलम्बिनौ । जगत्त्रयद्विपौ रागद्वेषौ पेष्टुमिवोदितौ ॥ १८६ ॥
कराङ्गुलीषु भान्ति स्म प्रवालप्रतिमा नखाः । दीपा इव दशविधयतिधर्मप्रकाशने ॥१८७॥ श्रीवत्सः स्वामिनो वक्षःस्थलेऽतिविपुले
वभौ । भवाम्भोधिसमुद्धारधर्मवेडाविडम्बकः ॥ १८८ ॥ तुच्छेनापि हि मध्येन जिनेशस्य जिता वयम् । ध्यात्वेतीव वनेऽद्यापि
वसन्ति नखरायुधाः[2] ॥ १८९ ॥ अम्भोनिधिर्विभोर्नाभीगाम्भीर्येण विनिर्जितः । इतीव पृथिवीप्रान्तस्थितः पूत्कुरुतेऽनिशम् ॥१९०॥
मेरुः स्वामिकटिं वीक्ष्य जात्यजाम्बूनदद्युतिम् । स्वतटीं तादृशीमिच्छन् मध्ये धत्ते महौषधीः ॥ १९१ ॥ विराजते जिनस्योरू
मांसलौ परिवर्तुलौ । जन्ममृत्यू विनिर्जित्य कीर्तिस्तम्भाविवोर्द्धितौ ॥ १९२ ॥ राजन्तेऽर्हत्पदद्वन्द्वे पद्मरागसमा नखाः । दशकल्पा-
धिपालीकानलीकतिलका इव ॥ १९३ ॥ अशीतिधनुरुत्तुङ्गः स्वर्णवर्णो जिनेश्वरः । वभौ काञ्चनशैलस्य सञ्चरन् शिखरः किल
॥१९४॥ अष्टोत्तरसहस्रेण लक्षणैः परिलक्षितः । कलाभिः स्वयमाश्लिष्टो ज्ञानत्रयपवित्रधीः ॥१९५॥ सुधावर्षी गिरा सूक्तमुक्ताम-
णिमहोदधेः । गर्भाविर्भावकः शास्त्रे विस्मयं कस्य नाददे ॥१९६॥ (युग्मम्) तारुण्यरूपसौभाग्यभाग्यश्रीगुणकीर्तयः । भूपकानि
क्रमात्कीर्त्या भूपितं तु जगत्त्रयम् ॥१९७॥ सवयोभिः समं राजपुत्रैरश्वेभवाहनात् । नाट्यादिकविनोदाच्च कालो यात्यस्य धीनिधेः
॥ १९८ ॥ शास्त्रं कला वा विज्ञानं पूर्वपक्षस्तथोत्तरम् । तत्किञ्चिन्नास्ति नो यत्र श्रीश्रेयांसस्य कौशलम् ॥ १९९ ॥ धर्माद्धर्मार्थि-

---

१ लेखाधिपो इन्द्रः तस्य प्रभोः भगवतः । २ सिंहाः ।

भिर्दानादर्थिभिः कामिनीजनैः । सौभाग्याच्च स एवैक सर्यतेऽर्थो जगत्रये ॥ २०० ॥ यत्र यत्र विश्चर्याति तत्र तत्र जनोऽखिलः ।
अनुयाति गुणाकृष्टः कङ्कुभानिव नेस्तितः ॥ २०१ ॥ नरकिन्नरगीर्वाणासुरखेचरयुग्मकैः । स एव गीयते देवः सर्वेष्वपि हि
पर्वसु ॥ २०२ ॥ सुवर्णरचिते रत्नखचिते निचिते श्रिया । प्रासादे तस्युपस्तस्य लीलया यान्ति वासराः ॥ २०३ ॥

अन्यदा विष्णुभूपाले समलङ्कृतपर्षदि । समग्रमन्त्रिसामन्तमण्डलाधीशमाण्डिते ॥ २०४ ॥ ढौक्यमाने च सीमालभूपालप्राभृ-
तव्रजे । प्रतीहारः समागत्य नत्वा भूपं व्यजिज्ञपत् ॥२०५॥ (युग्मम्) देव! कस्यापि भूपस्य समृद्धस्य समागताः । प्रधानपुरुषाः
सन्त्यपूर्वा द्वारि निवारिताः ॥ २०६ ॥ ऊचे राज्ञाथ तत्कालस्फुरद्दक्षिणबाहुना । महता विनयेनैतान् शीघ्रमेव प्रवेशय ॥ २०७ ॥
ततः प्रवेशितास्तेन ते नतेन स्वमौलिना । कृतप्रणामा आसीना नृपतेर्देशितासनु ॥ २०८ ॥ यावन्निरुपमस्थानलक्ष्मीसम्वीक्षणा-
दिमे । तिष्ठन्ति विस्मयस्फारविस्फारितविलोचनाः ॥ २०९ ॥ तावन्नेपथ्यलक्ष्मीवान् स्तूयमानः स्तुतिव्रतैः । मुच्यमानपथो
राजलोकेन च ससम्भ्रमम् ॥ २१० ॥ जयध्वनिमुखैश्चानुगम्यमानोऽनुजीविभिः । श्रीश्रेयांसः समागच्छदतुच्छस्वपरिच्छदः
॥ २११ ॥ (त्रिभिर्विशेषकम्) सभ्यैरभ्युत्थितं तस्य स प्रणम्य महीपतिम् । उदयाद्रौ रविरिव निविष्टो रत्नविष्टरे ॥ २१२ ॥
सदस्यैः सादरं चैष प्रणतो नतमस्तकैः । प्रधानास्ते कुमारस्य रूपमुच्चैर्न्यरूपयन् ॥ २१३ ॥ विस्मिताः प्रोचिरे चैष महोरूपमहो-
मदः । अहो शरीरलावण्यमगण्यमहिमास्पदम् ॥२१४॥ रूपं वेधा विधायैतत् जयं प्राप जगत्रये । अस्य रूपेण लोकोऽयं भव्यस्तोऽ-
प्युत्तमोऽभवत् ॥ २१५ ॥ अद्य जन्मकृतार्थं नश्चक्षूंपि सफलानि च । अद्यैव सुदिनं जज्ञे कुमारस्यावलोकनात् ॥ २१६ ॥

१ नायिवः । २ स्तुतिपाठकैः ।

सर्वैः सुपर्वभिर्युक्तं कुमारस्यास्य जन्मनि। सर्वस्वर्गावताराभं चिरं नन्दत्वदः पुरम् ॥२१७॥ देव ! त्वमेव धन्योऽसि येन पूर्वमहीभृतः ।
उल्लासैनं दिनाधीशं त्रिलोक्यां स्वः प्रकाशितः ॥ २१८ ॥ त्रैलोक्यरमणीवर्गरमणीयतमं च तत् । नन्दताद्रमणीरत्नं यत्करेऽस्य
लगिष्यति ॥ २१९ ॥ ततो विष्णुमहाराजः ससम्भ्रममुवाच तान् । कुतो यूयं सुधार्येण केन कार्येण चागताः ॥ २२० ॥ ततः
कृताञ्जलिपुटः प्रमोदामोदमेदुरः । एको मुख्यतमस्तेषु प्राह देवावधार्यताम् ॥ २२१ ॥
पुरमस्तीह काम्पील्यं कल्याणकपिशीर्षकैः । वप्रस्थैर्भाति यत्प्रासपङ्क्तबन्धं पुरेष्विव ॥ २२२ ॥ मुक्ताः स्वस्तिकविन्यस्ता यत्र
शोणाश्मकुट्टिमे । भ्रान्त्या दाडिमबीजानां गृह्यन्ते चञ्चुभिः शुकैः ॥ २२३ ॥ यत्र स्फटिकहर्म्याग्रस्थिताः स्वःस्त्रीभ्रमं स्त्रियः ।
देशान्तरागतनृणां कुर्वन्ति व्योमगा इव ॥२२४॥ यत्र ध्वजपटप्रान्ते क्वणत्किङ्किणीनां गणः । स्वसौन्दर्यदर्शनायाह्वयतीव सुरालयम्
॥ २२५ ॥ आनन्दवर्धनो नाम जनतानन्दवर्धनः । नृपस्तत्र यशो यस्य विश्वव्यापीन्दुधामवत् ॥ २२६ ॥ यद्वैरिनगरागारस्तम्भेषु
विपुलेष्वलम् । जयप्रशस्तिपिशुनघूणानामक्षरावली ॥ २२७ ॥ चित्तस्यानन्ददा तस्यानन्दश्रीर्नामतः प्रिया । यदास्यकमलादास्यमा-
घचेन्दुः सदाङ्कितः ॥ २२८ ॥ तयोर्विषयसौख्येन याति काले कियत्यपि । देवी कल्पलतां स्वप्ने निध्याय प्रत्यबुध्यत ॥ २२९ ॥
देव्या निवेदिते राजा निजाख्यां सत्यतां नयन् । प्राह पुत्री गुणग्रामसमग्रा ते भविष्यति ॥२३०॥ गर्भमुद्वहते देवी सुखात्तस्या-
नुभावतः । बभूवातिप्रिया पत्युः सौभाग्यस्येव भेषजात् ॥२३१ ॥ सम्पूर्णसमये देवी सुखेन सुषुवे सुताम् । पारिजातलता चारु-
सौरभां मञ्जरीमिव ॥ २३२ ॥ प्रभाकरेण गात्रेण मुखेन शुचिरोचिषा । पुष्पदन्तयुतेवासीज्जातमात्रापि साद्भुतम् ॥ २३३ ॥ तस्या
जन्मनि भूपेन तथा चक्रे महोत्सवः । यथा विस्मयते सोच्चैरखिलो नगरीजनः ॥ २३४ ॥ रवीन्दुप्रेक्षणाषष्ठीजागरप्रमुखा महाः ।

मिर्दानादर्थिभिः कामिनीजनैः । सौभाग्याच्च स एवैक सर्पतेऽर्थो जगत्त्रये ॥ २०० ॥ यत्र यत्र विधुर्याति तत्र तत्र जनोऽखिलः ।
अनुयाति गुणाकृष्टः ककुभानिव नंस्थितः ॥ २०१ ॥ नरकिंनरगीर्वाणासुरखेचरयुग्मकैः । स एव गीयते देवः सर्वेष्वपि हि
पर्वसु ॥ २०२ ॥ सुवर्णरचिते रत्नखचिते निचिते श्रिया । प्रासादे तस्थुपस्तस्य लीलया यान्ति वासराः ॥ २०३ ॥
अन्यदा विष्णुभूपाले समलङ्कृतपर्षदि । समग्रमन्त्रिसामन्तमण्डलाधीशमण्डिते ॥ २०४ ॥ ढौक्यमाने च सीमालभूपालप्राभृ-
तव्रजे । प्रतीहारः समागत्य नत्वा भूपं व्यजिज्ञपत् ॥२०५॥ (युग्मम्) देव! कस्यापि भूपस्य समृद्धस्य समागताः । प्रधानपुरुषाः
सन्त्यपूर्वा द्वारि निवारिताः ॥ २०६ ॥ ऊचे राज्ञाथ तत्कालस्फुरद्दक्षिणबाहुना । महता विनयेनैतान् शीघ्रमेव प्रवेशय ॥ २०७ ॥
ततः प्रवेशितास्तेन ते नतेन स्वमौलिना । कृतप्रणामा आसीना नृपतेर्दर्शितासनु ॥ २०८ ॥ यावन्निरुपमस्थानलक्ष्मीसम्वीक्षणा-
दिमे । तिष्ठन्ति विसयस्फारविस्फारितविलोचनाः ॥ २०९ ॥ तावन्नेपथ्यलक्ष्मीवान् स्तूयमानः स्तुतिव्रतैः । शुभ्यमानपथो
राजलोकेन च ससम्भ्रमम् ॥ २१० ॥ जयध्वनिमुखैश्चानुगम्यमानोऽनुजीविभिः । श्रीश्रेयासः समागच्छदतुच्छस्वपरिच्छदः
॥ २११ ॥ (त्रिभिर्विशेषकम्) सभ्यैरभ्युत्थितं तस्य स प्रणम्य महीपतिम् । उदयाद्रौ रविरिव निविष्टो रत्नविष्टरे ॥ २१२ ॥
सदस्यैः सादर चैप प्रणतो नतमस्तकैः । प्रधानास्ते कुमारस्य रूपमुच्चैर्न्यरूपयन् ॥ २१३ ॥ विस्मिताः प्रोचिरे चैप महोरूपमहो-
मदः। अहो शरीरलावण्यमगण्यमहिमास्पदम् ॥२१४॥ रूपं वेधा विधायैतत् जयं प्राप जगत्त्रये । अस्य रूपेण लोकोऽय मध्यस्थोऽ-
प्युत्तमोऽभवत् ॥ २१५ ॥ अद्य जन्मकृतार्थं नश्चक्षूंपि सफलानि च । अद्यैन, सुदिनं जज्ञे कुमारस्यावलोकनात् ॥ २१६ ॥

१ नाथिव ।, २ स्तुतिपाठकैः ।

करपल्लवशालिन्यौ कैरजप्रसवाञ्चिते । तस्या भुजलते पुण्यवदाश्लेपात्फ-
स्थिताः । त्रिवर्गमूलमेपेति प्रकटीकुर्वते किल ॥ २५२ ॥ करपल्लवशालिन्यौ कैरजप्रसवाञ्चिते । तस्या भुजलते पुण्यवदाश्लेपात्फ-
लिष्यतः ॥ २५३ ॥ उरोरुहभरेणास्याः पीवरेणोन्नतेन च । अङ्गातिरिक्तं लावण्यं पिण्डीभूतमिवेक्ष्यते ॥ २५४ ॥ अतिकान्तिज-
लापूर्णनाभीलावण्यवापितः । तस्या वलित्रयव्याजाल्लहर्य इव निर्ययुः ॥ २५५ ॥ विधिर्विधाय पीनत्वं स्तनस्तम्बनितम्बयोः ।
त्रुट्यद्दलिकभावेन मध्यं तुच्छं विनिर्ममे ॥ २५६ ॥ मनोभुवस्त्रिभुवनराज्यविन्यासपर्वणि । तदुरूकदलीस्तम्भौ न्यस्तौ यौवनम-
त्रिणा ॥ २५७ ॥ तत्पदौ प्रसरत्शोणनखरत्नकरोत्करौ । अतिपीतं रसस्फीतमुद्गिरन्तीव याचकम् ॥ २५८ ॥ आत्मानं निर्मली-
कर्त्तुं जातकालुष्यमन्यतः । युवतीजनयोग्याभिः या कलाभिः किलाश्रिता ॥ २५९ ॥

नृपस्तद्गुणरूपानुरूपं वरमनाप्नुवन् । स्वान्तेन चिन्ताचान्तेन यावदस्ति समाश्रितः ॥ २६० ॥ तावदेको निमित्तज्ञश्चित्तज्ञ
इव भूपतेः । आगतोऽप्रच्छि मे पुत्र्या वरः कोऽस्या भविष्यति ॥ २६१ ॥ वीक्ष्य तल्लक्षणान्येप सविशेपधृताद्भुतः । उवाच पट्टदे-
व्येपा भवित्री चक्रवर्तिनः ॥ २६२ ॥ नृपः प्रोवाच यद्येवं विचिन्त्य प्रत्ययांस्ततः । कानप्याख्याहि स प्राह श्रूयतामवधानतः
॥ २६३ ॥ यस्यां गन्ता सुरेशस्य रथो मातलिसारथिः । यस्य काम्पील्यपूर्वाशावस्थिता च महासरित् ॥ २६४ ॥ अगाधा दास्यते
मार्गमावासस्थानकं तथा । उद्वोढुमागतस्यात्र वहिष्यत्यन्यतश्च सा ॥२६५॥ (युग्मम्) पट्टेभस्ते चतुर्दन्तः स्तम्भमुन्मूल्य शुभ्ररुक् ।
नामतो जयकलसो यस्य यास्यति सन्मुखः ॥२६६॥ यस्याऽशोकवनासन्नो दिव्यदेवकुले स्थितः । विश्वेशधनदो यक्षोऽभ्युत्थास्यति
ससम्भ्रमः ॥ २६७॥ दत्तावासस्य यस्याथ रत्नासननिपेदुपः । विनापि दोहदं फुल्लः कंकेल्लिर्भविता स्वयम् ॥ २६८ ॥ छायातरोरि-

१ नख० ।

विस्तरेण कृतास्तेन तुल्या तनयजन्मनः ॥ २३५ ॥ द्वादशेऽथ दिने सम्यक् सन्मान्य स्वजनं जनम् । श्रीकान्तेति तनूजायास्तस्या
नाम प्रतिष्ठितम् ॥२३६॥ तस्यां गर्भगतायां हि श्रीरत्यन्तमवर्धत। आनन्दश्रीर्महादेवी कान्तकायलता तथा ॥ २३७ ॥ (युग्मम्)
धात्रिभिः पञ्चभिर्लाल्यमाना साथ व्यवर्धत । निर्लक्ष्मा प्रतिपच्चन्द्रकलेव प्रतिवासरम् ॥२३८॥ किं च देव! सुतादस्मा-
दसौ कल्पलतागता । यत्स्या परमोत्कर्षं राज्यश्रीर्लम्भिताखिला ॥ २३९ ॥ जनेन कुलदेवीवल्लक्ष्मीवत्कामधेनुवत् । विद्यावज्ञार-
वीव्याराध्यते मम्लेन सा ॥ २४० ॥ तदीयेन प्रभावेण मनसा चिन्तितान्यपि । पूर्यन्ते सर्वकार्याणि जनस्याचिन्त्यशक्तिना
॥ २४१ ॥ चिरकालं समाश्लेषादशेषाद्भुतमेलनैः । कृतार्थमन्यवद्बालभावस्तस्या न्यवर्तत ॥ २४२ ॥ सहसापि समागत्य कुव-
शियौवनश्रिया । अङ्कपालीकृता बाला प्रियसख्येव सादरम् ॥ २४३ ॥ अञ्जनस्वजनस्तस्याः केशपाशोऽशुभत्तराम् । समापात
इवासन्न सुरभित्वेन भोगभृत् ॥ २४४ ॥ श्रीकण्ठकण्ठसौन्दर्यनर्या तदलकावली । नेत्राम्बुजभ्रमाभ्येताऽलिराजिरिव राजते
॥ २४५ ॥ तस्या भालस्थलं नर्म भास्वर विद्यात्यलम् । अर्धोदिततदिनाधीशबिम्बस्य प्रतिबिम्बताम् ॥ २४६ ॥ मणिकुण्डलभारेण
जातवेदाशिशधिरम् । विश्रामकामतः कर्णौ लीनावंशस्थले किल ॥ २४७॥ पञ्चमसद्विपच्छीर्षे धर्तुं वां युज्यते कथम् । उपाल-
ञ्जुमिव दृशौ तस्याः कर्णान्तिमागते ॥ २४८ ॥ वक्रा भजन्ति मालिन्यं सरलास्तु समुन्नतिम् । भ्रूनासातः कुमारीति किलाख्याति
जनाग्रतः ॥ २४९ ॥ चन्द्रं द्विधा विधायाङ्कमाकृष्येव तदन्तरात् । कपोलौ कल्पितौ तस्या वेधसाऽनल्पमेधसा ॥ २५० ॥ दन्त-
च्छदेन शोणेन दशनैः कुन्दसोदरैः । तत्सौभाग्यद्रुमः पल्लवितः कुसुमितस्तथा ॥ २५१ ॥ तिस्रो रेखाः प्रकाशास्तत्कण्ठकन्दलसं-

१ °कृकाटसंस्थिताः ।

करपल्लवशालिन्यौ कैरजप्रसवाञ्चिते । तस्या भुजलते पुण्यवदाश्लेपात्क-
स्थिताः । त्रिवर्गमूलमेपेति प्रकटीकुर्वते किल ॥ २५२ ॥ करपल्लवशालिन्यौ कैरजप्रसवाञ्चिते । तस्या भुजलते पुण्यवदाश्लेपात्क-
लिष्यतः ॥ २५३ ॥ उरोरुहभरेणास्याः पीवरेणोन्नतेन च । अङ्गातिरिक्तं लावण्यं पिण्डीभूतमिवेक्ष्यते ॥ २५४ ॥ अतिकान्तिज-
लापूर्णनाभीलावण्यवापितः । तस्या वलित्रयव्याजाल्लहर्य इव निर्ययुः ॥ २५५ ॥ विधिर्विधाय पीनत्वं स्तनस्तम्बनितम्बयोः ।
त्रुट्यद्दलिकभावेन मध्यं तुच्छं विनिर्ममे ॥ २५६ ॥ मनोभुवस्त्रिभुवनराज्यविन्यासपर्वणि । तदुरूकदलीस्तम्भौ न्यस्तौ यौवनम-
त्रिणा ॥ २५७ ॥ तत्पदौ प्रसरत्शोणनखरत्नकरोत्करौ । अतिपीतं रससफीतमुद्गिरन्तीव याचकम् ॥ २५८ ॥ आत्मानं निर्मली-
कर्तुं जातकालुष्यमन्यतः । युवतीजनयोग्याभिः या कलाभिः किलाश्रिता ॥ २५९ ॥
नृपस्तद्गुणरूपानुरूपं वरमनाप्नुवन् । स्वान्तेन चिन्ताचान्तेन यावदस्ति समाश्रितः ॥ २६० ॥ तावदेको निमित्तज्ञश्चित्तज्ञ
इव भूपतेः । आगतोऽप्रच्छि मे पुत्र्या वरः कोऽस्या भविष्यति ॥ २६१ ॥ वीक्ष्य तल्लक्षणान्येप सविशेपधृताद्भुतः । उवाच पट्टदे-
व्येपा भवित्री चक्रवर्तिनः ॥ २६२ ॥ नृपः प्रोवाच यद्येवं विचिन्त्य प्रत्ययांस्ततः । कानप्याख्याहि स प्राह श्रूयतामवधानतः
॥ २६३ ॥ यस्यां गन्ता सुरेशस्य रथो मातलिसारथिः । यस्य काम्पील्यपूर्वाशावस्थिता च महासरित् ॥ २६४ ॥ अगाधा दास्यते
मार्गमावासस्थानकं तथा । उद्वोढुमागतस्यात्र वहिष्यत्यन्यतश्च सा ॥२६५॥ (युग्मम्) पट्टेभस्ते चतुर्दन्तः स्तम्भमुन्मूल्य शुभ्ररुक् ।
नामतो जयकलसो यस्य यास्यति सन्मुखः ॥२६६॥ यस्याऽशोकवनासन्नो दिव्यदेवकुले स्थितः । विश्वेशधनदो यक्षोऽभ्युत्थास्यति
ससम्भ्रमः ॥ २६७॥ दत्तावासस्य यस्याथ रत्नासननिपेदुपः । विनापि दोहदं फुल्लः कंकेल्लिर्भविता स्वयम् ॥ २६८ ॥ छायातरोरि-

१ नख० ।

चैतस्य छाया न च चलिष्यति । पूर्वाह्णेऽप्यपराह्णेऽपि यदीयमहिमाश्रयात् ॥ २६९ ॥ श्रीरिव श्रीपतेरेषा तस्य वक्षसि वत्स्यति ।
श्रुत्वेति प्रत्ययान्मम मुदितो मेदिनीपतिः ॥ २७० ॥ ततश्चिन्ता नरेन्द्रस्य निवृत्ता वरगोचरा । आनन्दप्रसृतो भूरिदानमादेशिने
ददौ ॥ २७१ ॥ ऊचे च लोकाः पुत्रार्थं प्रातास्यन्त्यथुधा मुधा । सुतापि काप्यभ्यधिकं लभतेऽभ्युदयं स्वयम् ॥ २७२ ॥
...ाहोभिः कतिपयैः श्रीकुण्डिनपुरेशितुः । शशिशेखरराजस्य जयसिंहाख्यया सुतः ॥ २७३ ॥ क्षोभयन् भूतलं सैन्यै-
...दरः । आगाचक्रे च संप्रीतो दर्शनं काश्यपीभुजः ॥ २७४ ॥ (युग्मम्) विदधे तस्य सन्मानमसमानमिलापतिः ।
... गतो नन्तुं जामि जामेयकायुताम् ॥ २७५ ॥ प्रतिपत्तिः कृता देव्या श्रीकान्ता च सखीवृता । दृष्टा तेन निजोत्सङ्गे
...पाय निवेशिता ॥२७६॥ देव्याऽऽनन्दश्रियाऽऽनन्दजुषाऽपृच्छि सहोदरः । क्षेमं जनकवर्गस्य स तेनानन्दयच्च ताम् ॥२७७॥
...ण्डलद्वितयं चापभुपानयदुपायने । श्रीश्रेयांसाभिधां तत्र वीक्ष्य देवी जगाद तम् ॥ २७८ ॥ कस्याख्येयं वदन्तीति श्रीकान्ता
कर्णयोर्न्यधात् । जयसिंहो हसित्वाह देवि! प्रश्नः कुतोऽयको ॥ २७९ ॥ अप्रकाशप्रकाशेन प्रकाशितजगज्जनम् । जगत्त्रयप्रकाशे
किं कोऽपि ...र्त्यहर्मणिम् ॥ २८० ॥ भवत्या भवति प्रश्नोऽथवा देवि! सुसङ्गतः । असूर्यंपश्यताभाजो राजदारा यदीरिताः
...देवि! यैरेष जनैर्नैर निरीक्षितः । ते सत्यं भुवि जात्यन्धा यद्वा निष्फललोचनाः ॥ २८२ ॥ तदीयचरितं
...ः । तेऽद्यापि मर्मगा यद्वा जन्मतः श्रुतिवर्जिताः ॥ २८३ ॥ येषां च रसना तस्य प्रवृत्ता न गुण-
...समधिकं मूकलोकतः ॥ २८४ ॥ पिब श्रुतिभ्यां तस्मात्त्वं तदीयचरितामृतम् । यथा श्रुती ते जिह्वा

मे देवि! यान्ति कृतार्थताम् ॥ २८५ ॥ अथोत्कण्ठितया देव्या विस्मयाकुलचित्तया । प्रोचे सानन्दया शीघ्रं तच्चरित्रं निवेदय
॥ २८६ ॥ मातुलस्य गिरात्यन्तं कुतूहलरसाकुला । सावधानाऽजनि श्रोतुं चरित्रं राजपुत्र्यपि ॥ २८७ ॥ प्रारम्भि जयसिंहेना-
ख्यातुं सर्वं यथास्थितम् । तयोः पुरः कुमारस्य वृत्तं जन्मोत्सवाद्यपि ॥ २८८ ॥ आख्याते सति देवी श्रीश्रेयांसमभिनंद्य सा ।
प्राहाख्याहि कथं प्रापि तत्कुण्डलयुगं त्वया ॥ २८९ ॥

स प्राह कुण्डिनपुरे तातेऽलङ्कृतपर्षदि । तत्पादपद्मरोलम्बलीलां मयि च तन्वति ॥ २९० ॥ वास्तव्यश्रेष्ठिनो दानशूराख्यस्य
तनूजनिः । आगादाम्रकुमाराह्वः प्रतीहारनिवेदितः ॥ २९१ ॥ (युग्मम्) सदः प्रविश्य देवस्य रत्नसम्भृतभाजनम् । पुरो विमुच्य
नत्वा चोचितस्थाने न्यविक्षत ॥ २९२ ॥ नरदेवो निरीक्ष्याथ महामूल्यं मणीगणम् । नृलोकासम्भवं प्राह रत्नान्येतानि ते
कुतः? ॥ २९३ ॥ सम्पन्नानि कथं द्रव्यार्जनार्थं च गतस्य ते । इतः स्थानकतः काल एतावान् व्यतिचक्रमे ॥ २९४ ॥ व्यजिज्ञ-
पदथ श्रेष्ठिसुतः सिंहपुरे प्रभो! । विष्णुनामा नरेन्द्रोऽस्ति बलेन कलितः सदा ॥ २९५ ॥ तत्राहं गतवान् विष्णोर्जज्ञे च तनय-
स्तदा । कृतजन्मोत्सवो मेरौ वासवैः ससुरासुरैः ॥ २९६ ॥ तस्य जन्मोत्सवे रत्नस्वर्णवृष्टिः सुरैः कृता । पुरेऽखिलेऽपि तत्राप-
महं रत्नान्ययत्नतः ॥ २९७ ॥ तत्रैव नगरे पूर्णकामोऽहं नाथ! तस्थिवान् । श्रीश्रेयांसोत्सवान्नित्यं पश्यामि च नवान्नवान्
॥ २९८ ॥ कियन्त्यन्यानि नगराश्चर्याणि कथयामि च । वक्तुं सहस्रजिह्वोऽपि यानि न प्रभवेत् प्रभो! ॥ २९९ ॥ किं च तस्य
कुमारस्य रूपं किञ्चित्तदद्भुतम् । यत्पश्यतां क्षुधा तृष्णा दुःखं च छिद्यते नृणाम् ॥ ३०० ॥ देवः प्राह तदाकर्ण्य पुरापि श्रुतमी-
दृशम् । प्रत्ययस्त्वधुना जज्ञे विशेषाद्वचसा तव ॥ ३०१ ॥ मर्त्यमात्रः कुमारोऽयं नत्वयं निश्चयो हृदि । एवंविधप्रभावेण किञ्चि-

चैतस्य छाया न च चलिष्यति । पूर्वाह्णेऽप्यपराह्णेऽपि यदीयमहिमाश्रयात् ॥ २६९ ॥ श्रीरिव श्रीपतेरेषा तस्य वक्षसि वत्स्यति ।
श्रुत्वेति प्रत्ययान्सप्त मुदितो मेदिनीपतिः ॥ २७० ॥ ततश्चिन्ता नरेन्द्रस्य निवृत्ता वरगोचरा । आनन्दमधुतो भूरिदानमादेशिने
ददौ ॥ २७१ ॥ ऊचे च लोकाः पुत्रार्थे ग्रातास्म्यन्त्यबुधा मुधा । सुतापि काप्यभ्यधिकं लभतेऽभ्युदयं स्वयम् ॥ २७२ ॥
अथाहोभिः कतिपयैः श्रीकुण्डिनपुरेशितुः । शशिशेखरराजस्य जयसिंहाख्यया सुतः ॥ २७३ ॥ क्षोभयन् भूतलं सैन्यै-
रानन्दश्रीसहोदरः । आगाच्चक्रे च संप्रीतो दर्शनं काश्यपीभुजः ॥ २७४ ॥ (युग्मम्) विदधे तस्य सन्मानमसमानमिलापतिः ।
द्वितीयेऽह्नि गतो नन्तुं जामिं जामेयकायुताम् ॥ २७५ ॥ प्रतिपत्तिः कृता देव्या श्रीकान्ता च सखीकृता । दृष्टा तेन निजोत्सङ्गे
वात्सल्याच्च निवेशिता ॥२७६॥ देव्याऽऽनन्दश्रियाऽऽनन्दजुषाऽप्रच्छि सहोदरः । क्षेमं जनकवर्गस्य स तेनानन्दयच्च ताम् ॥२७७॥
कुण्डलद्वितयं चापमुपानयदुपायने । श्रीश्रेयांसाभिधां तत्र वीक्ष्य देवी जगाद तम् ॥ २७८ ॥ कस्याख्येयं वदन्तीति श्रीकान्ता
कर्णयोर्न्यधात् । जयसिंहो हसित्वाह देवि! प्रश्नः कुतोऽसकौ ॥ २७९ ॥ अश्रङ्काशप्रकाशेन प्रकाशितजगज्जनम् । जगत्त्रयप्रकाशे
किं कोऽपि पृच्छत्यहर्मणिम् ॥ २८० ॥ भवत्या भवति प्रश्नोऽथवा देवि! सुसङ्गतः । असूर्यंपश्यताभाजो राजदारा यदीरिताः
॥ २८१ ॥ किं वच्मि देवि! यैरेष जनैर्नैव निरीक्षितः । ते सत्यं भुवि जात्यन्धा यद्वा निष्फललोचनाः ॥ २८२ ॥ तदीयचरितं
यैश्च न श्रुतं देवि! मानवैः । तेऽद्यापि गर्भगा यद्वा जन्मतः श्रुतिवर्जिताः ॥ २८३ ॥ येषां च रसना तस्य प्रवृत्ता न गुण-
स्तुतौ । ते कथं गणयन्ति समधिकं मूकलोकतः ॥ २८४ ॥ पिब श्रुतिभ्यां तस्मात्त्वं तदीयचरितामृतम् । यथा श्रुती ते जिह्वा

१ सूर्यम् ।

मे देवि! यान्ति कृतार्थताम् ॥ २८५ ॥ अथोत्कण्ठितया देव्या विस्मयाकुलचित्तया । प्रोचे सानन्दया शीघ्रं तच्चरित्रं निवेदय ॥ २८६ ॥ मातुलस्य गिरात्यन्तं कुतूहलरसाकुला । सावधानाऽजनि श्रोतुं चरित्रं राजपुत्र्यपि ॥ २८७ ॥ प्रारम्भि जयसिंहेनाख्यातुं सर्वं यथास्थितम् । तयोः पुरः कुमारस्य वृत्तं जन्मोत्सवाद्यपि ॥ २८८ ॥ आख्याते सति देवी श्रीश्रेयांसमभिनंद्य सा । प्राहाख्याहि कथं प्रापि तत्कुण्डलयुगं त्वया ॥ २८९ ॥

स प्राह कुण्डिनपुरे तातेऽलङ्कृतपर्षदि । तत्पादपद्मरोलम्बलीलां मयि च तन्वति ॥ २९० ॥ वास्तव्यश्रेष्ठिनो दानशूराख्यस्य तनूजनिः । आगादाम्रकुमाराह्वः प्रतीहारनिवेदितः ॥ २९१ ॥ (युग्मम्) सदः प्रविश्य देवस्य रत्नसम्भृतभाजनम् । पुरो विमुच्य नत्वा चोचितस्थाने न्यविक्षत ॥ २९२ ॥ नरदेवो निरीक्ष्याथ महामूल्यं मणीगणम् । नृलोकासम्भवं प्राह रत्नान्येतानि ते कुतः? ॥ २९३ ॥ सम्पन्नानि कथं द्रव्यार्जनार्थं च गतस्य ते । इतः स्थानकतः काल एतावान् व्यतिचक्रमे ॥ २९४ ॥ व्यजिज्ञपदथ श्रेष्ठिसुतः सिंहपुरे प्रभो! । विष्णुनामा नरेन्द्रोऽस्ति बलेन कलितः सदा ॥ २९५ ॥ तत्राहं गतवान् विष्णोर्जज्ञे च तनयस्तदा । कृतजन्मोत्सवो मेरौ वासवैः ससुरासुरैः ॥ २९६ ॥ तस्य जन्मोत्सवे रत्नस्वर्णवृष्टिः सुरैः कृता । पुरेऽखिलेऽपि तत्रापमहं रत्नान्ययत्नतः ॥ २९७ ॥ तत्रैव नगरे पूर्णकामोऽहं नाथ! तस्थिवान् । श्रीश्रेयांसोत्सवान्नित्यं पश्यामि च नवान्नवान् ॥ २९८ ॥ कियन्त्यन्यानि नगराश्चर्याणि कथयामि च । वक्तुं सहस्रजिह्वोऽपि यानि न प्रभवेत् प्रभो! ॥ २९९ ॥ किं च तस्य कुमारस्य रूपं किञ्चित्तदद्भुतम् । यत्पश्यतां क्षुधा तृष्णा दुःखं च छिद्यते नृणाम् ॥ ३०० ॥ देवः प्राह तदाकर्ण्य पुरापि श्रुतमीदृशम् । प्रत्ययस्त्वधुना जज्ञे विशेषाद्वचसा तव ॥ ३०१ ॥ मर्त्यमात्रः कुमारोऽयं नत्वयं निश्चयो हृदि । एवंविधप्रभावेण किञ्चि-

वैनस्य छाया न च पतिष्यति । पूर्वाह्णेऽप्यपराह्णेऽपि यदीयमहिमाथयात् ॥ २६९ ॥ श्रीरिव श्रीपतेरेषा तस्य वक्षसि वत्स्यति ।
युत्वेति प्रत्ययान्नाम मुदितो मेदिनीपतिः ॥ २७० ॥ ततश्चिन्ता नरेन्द्रस्य निवृत्ता परगोचरा । आनन्दप्रयुतो भूरिदानमादेशिने
दशे ॥ २७१ ॥ ऊचे च लोकाः पुत्रार्थे प्रताम्यन्त्यबुधा मुधा । सुतापि काप्यभ्यधिकं लभतेऽभ्युदयं स्वयम् ॥ २७२ ॥
अथाहोभिः कतिपयैः श्रीकुण्डिनपुरेशितुः । शशिशेखरराजस्य जयसिंहाख्यया सुतः ॥ २७३ ॥ क्षोभयन् भूतलं सैन्यै-
रानन्दश्रीमहोदरः । आगात्चक्रे च संप्रीतो दर्शनं काश्यपीभुजः ॥ २७४ ॥ (युग्मम्) विदधे तस्य सन्मानमसमानमिलापतिः ।
र्निर्वेऽद्धि गतो नन्तुं जामि जामेयकायुताम् ॥ २७५ ॥ प्रतिपत्तिः कृता देव्या श्रीकान्त्या च सखीश्वरा । दृष्टा तेन निजोत्सङ्गे
मङ्गलाय निवेशिता ॥२७६॥ देव्याऽऽनन्दश्रियाऽऽनन्दजुषाऽप्रच्छि सहोदरः । क्षेमं जनकवर्गस्य स तेनानन्दयच्च ताम् ॥२७७॥
कुन्दलक्ष्मितयं चायमुपानयदुपायने । श्रीश्रेयांसाभिधां तत्र वीक्ष्य देवी जगाद तम् ॥ २७८ ॥ कृसाख्येयं वदन्तीति श्रीकान्ता
कर्णयोर्न्यधात् । जयसिंहो हसित्वाह देवि! प्रश्नः कुतोऽस्य को ॥ २७९ ॥ अथश्लक्ष्णप्रकाशेन प्रकाशितजगज्जनम् । जगत्त्रयप्रकाशे
किं कोऽपि पृच्छत्यहर्मणिम् ॥ २८० ॥ भवत्या भवति प्रश्नोऽथवा देवि! सुसङ्गतः । असूर्यंपश्यताभाजो राजदारा यदीरिताः
॥ २८१ ॥ किं वच्मि देवि! यैरेष जनैर्नैव निरीक्षितः । ते सत्यं भुवि जात्यन्धा यद्वा निष्फललोचनाः ॥ २८२ ॥ तदीयचरितं
येन न श्रुतं देवि! मानवैः । तेऽद्यापि गर्भगा यद्वा जन्मतः श्रुतिवर्जिताः ॥ २८३ ॥ येषां च रसना तस्य प्रवृत्ता न गुण-
स्तवे । ते कथं गणयन्ति समधिकं भूर्भ्लोकतः ॥ २८४ ॥ पिब श्रुतिभ्यां तस्माच्चं तदीयचरिताभृतम् । यथा श्रुती ते जिह्वा

१ धुर्यं ।

मे देवि! यान्ति कृतार्थताम् ॥ २८५ ॥ अथोत्कण्ठितया देव्या विसयाकुलचित्तया । प्रोचे सानन्दया शीघ्रं तच्चरित्रं निवेदय ॥ २८६ ॥ मातुलस्य गिरात्यन्तं कुतूहलरसाकुला । सावधानाऽजनि श्रोतुं चरित्रं राजपुत्र्यपि ॥ २८७ ॥ प्रारम्भि जयसिंहेनाख्यातुं सर्वं यथास्थितम् । तयोः पुरः कुमारस्य वृत्तं जन्मोत्सवाद्यपि ॥ २८८ ॥ आख्याते सति देवी श्रीश्रेयांसमभिनंद्य सा । प्राहाख्याहि कथं प्रापि तत्कुण्डलयुगं त्वया ॥ २८९ ॥

स प्राह कुण्डिनपुरे तातेऽलङ्कृतपर्षदि । तत्पादपद्मरोलम्बलीलां मयि च तन्वति ॥ २९० ॥ वास्तव्यश्रेष्ठिनो दानशूराख्यस्य तनूजनिः । आगादाम्रकुमाराह्वः प्रतीहारनिवेदितः ॥ २९१ ॥ (युग्मम्) सदः प्रविश्य देवस्य रत्नसम्भृतभाजनम् । पुरो विमुच्य नत्वा चोचितस्थाने न्यविक्षत ॥ २९२ ॥ नरदेवो निरीक्ष्याथ महामूल्यं मणीगणम् । नृलोकासम्भवं प्राह रत्नान्येतानि ते कुतः? ॥ २९३ ॥ सम्पन्नानि कथं द्रव्यार्जनार्थं च गतस्य ते । इतः स्थानकतः काल एतावान् व्यतिचक्रमे ॥ २९४ ॥ व्यजिज्ञपदथ श्रेष्ठिसुतः सिंहपुरे प्रभो! । विष्णुनामा नरेन्द्रोऽस्ति वलेन कलितः सदा ॥ २९५ ॥ तत्राहं गतवान् विष्णोर्जज्ञे च तनयस्तदा । कृतजन्मोत्सवो मेरौ वासवैः ससुरासुरैः ॥ २९६ ॥ तस्य जन्मोत्सवे रत्नस्वर्णवृष्टिः सुरैः कृता । पुरेऽखिलेऽपि तत्रापमहं रत्नान्ययत्नतः ॥ २९७ ॥ तत्रैव नगरे पूर्णकामोऽहं नाथ! तस्थिवान् । श्रीश्रेयांसोत्सवान्नित्यं पश्यामि च नवान्नवान् ॥ २९८ ॥ कियन्त्यन्यानि नगराश्चर्याणि कथयामि च । वक्तुं सहस्रजिह्वोऽपि यानि न प्रभवेत् प्रभो! ॥ २९९ ॥ किं च तस्य कुमारस्य रूपं किञ्चित्तदद्भुतम् । यत्पश्यतां क्षुधा तृष्णा दुःखं च छिद्यते नृणाम् ॥ ३०० ॥ देवः प्राह तदाकर्ण्य पुरापि श्रुतमीदृशम् । प्रत्ययस्त्वधुना जज्ञे विशेषाद्वचसा तव ॥ ३०१ ॥ मर्त्यमात्रः कुमारोऽयं नत्वयं निश्चयो हृदि । एवंविधप्रभावेण किञ्चि-

वैतस्य छाया न च चलिष्यति । पूर्वाह्णेऽप्यपराह्णेऽपि यदीयमहिमाश्रयात् ॥ २६९ ॥ श्रीरिव श्रीपतेरेषा तस्य वक्षसि वत्स्यति ।
श्रुत्वेति प्रत्ययान्सत्य मुदितो मेदिनीपतिः ॥ २७० ॥ ततश्चिन्ता नरेन्द्रस्य निवृत्ता वरगोचरा । आनन्दप्रयुतो भूरिदानमादेशिने
ददौ ॥ २७१ ॥ ऊचे च लोकाः पुत्रार्थे शाताम्यन्त्यबुधा मुधा । सुतापि काप्यभ्यधिकं लभतेऽभ्युदयं स्वयम् ॥ २७२ ॥

अथाहोभिः कतिपयैः श्रीकुण्डिनपुरेशितुः । शशिशेखरराजस्य जयसिंहाख्यया सुतः ॥ २७३ ॥ क्षोभयन् भूतलं सैन्यै-
रानन्दश्रीसहोदरः । आगाचक्रे च संप्रीतो दर्शनं काश्यपीभुजः ॥ २७४ ॥ (युग्मम्) विदधे तस्य सन्मानमसमानमिलापतिः ।
द्वितीयेऽह्नि गतो नन्तुं जामिं जामेयकायुताम् ॥ २७५ ॥ प्रतिपत्तिः कृता देव्या श्रीकान्ता च सखीवृता । दृष्टा तेन निजोत्सङ्गे
वात्सल्याच्च निवेशिता ॥२७६॥ देव्याऽऽनन्दश्रियाऽऽनन्दजुषाऽप्रच्छि सहोदरः । क्षेमं जनकवर्गस्य स तेनानन्दयच्च ताम् ॥२७७॥
कुण्डलद्वितयं चायमुपानयदुपायने । श्रीश्रेयांसाभिधां तत्र वीक्ष्य देवी जगाद तम् ॥ २७८ ॥ कसाख्येयं वदन्तीति श्रीकान्ता
कर्णयोर्न्यधात् । जयसिंहो हसित्वाह देवि! प्रश्नः कुतोऽसकौ ॥ २७९ ॥ अथाङ्काग्रप्रकाशेन प्रकाशितजगज्जनम् । जगत्त्रयप्रकाशे
किं कोऽपि पृच्छत्यहर्मणिम्[1] ॥ २८० ॥ भवत्या भवति प्रश्नोऽथवा देवि! सुसङ्गतः । अद्दृष्टंपश्यताभाजो राजदारा यदीरिताः
॥ २८१ ॥ किं वच्मि देवि! यैरेष जनैर्नैव निरीक्षितः । ते सत्यं भुवि जात्यन्धा यद्वा निष्फललोचनाः ॥ २८२ ॥ तदीयचरितं
यैश्च न श्रुतं देवि! मानवैः । तेऽद्यापि गर्भगा यद्वा जन्मतः श्रुतिवर्जिताः ॥ २८३ ॥ येषां च रसना तस्य प्रवृत्ता न गुण-
स्तुतौ । ते कथं गणयन्ति स्वमधिकं मूकलोकतः ॥ २८४ ॥ पिब श्रुतिभ्यां तस्मात्त्वं तदीयचरितामृतम् । यथा श्रुती ते जिह्वा

१ सूर्यम् ।

मे देवि! यान्ति कृतार्थताम् ॥ २८५ ॥ अथोत्कण्ठितया देव्या विस्मयाकुलचित्तया । प्रोचे सानन्दया शीघ्रं तच्चरित्रं निवेदय
॥ २८६ ॥ मातुलस्य गिरात्यन्तं कुतूहलरसाकुला । सावधानाऽजनि श्रोतुं चरित्रं राजपुत्र्यपि ॥ २८७ ॥ प्रारम्भि जयसिंहेना-
ख्यातुं सर्वं यथास्थितम् । तयोः पुरः कुमारस्य वृत्तं जन्मोत्सवाद्यपि ॥ २८८ ॥ आख्याते सति देवी श्रीश्रेयांसमभिनंद्य सा ।
प्राहाख्याहि कथं प्रापि तत्कुण्डलयुगं त्वया ॥ २८९ ॥

स प्राह कुण्डिनपुरे तातेऽलङ्कृतपर्षदि । तत्पादपद्मरोलम्बलीलां मयि च तन्वति ॥ २९० ॥ वास्तव्यश्रेष्ठिनो दानशूराख्यस्य
तनूजनिः । आगादाम्रकुमाराह्वः प्रतीहारनिवेदितः ॥ २९१ ॥ (युग्मम्) सदः प्रविश्य देवस्य रत्नसम्भृतभाजनम् । पुरो विमुच्य
नत्वा चोचितस्थाने न्यविक्षत ॥ २९२ ॥ नरदेवो निरीक्ष्याथ महामूल्यं मणीगणम् । नृलोकासम्भवं प्राह रत्नान्येतानि ते
कुतः? ॥ २९३ ॥ सम्पन्नानि कथं द्रव्यार्जनार्थं च गतस्य ते । इतः स्थानकतः काल एतावान् व्यतिचक्रमे ॥ २९४ ॥ व्यजिज्ञ-
पदथ श्रेष्ठिसुतः सिंहपुरे प्रभो! । विष्णुनामा नरेन्द्रोऽस्ति बलेन कलितः सदा ॥ २९५ ॥ तत्राहं गतवान् विष्णोर्जज्ञे च तनय-
स्तदा । कृतजन्मोत्सवो मेरौ वासवैः ससुरासुरैः ॥ २९६ ॥ तस्य जन्मोत्सवे रत्नस्वर्णवृष्टिः सुरैः कृता । पुरेऽखिलेऽपि तत्राप-
महं रत्नान्ययत्नतः ॥ २९७ ॥ तत्रैव नगरे पूर्णकामोऽहं नाथ! तस्थिवान् । श्रीश्रेयांसोत्सवान्नित्यं पश्यामि च नवान्नवान्
॥ २९८ ॥ कियन्त्यन्यानि नगराश्चर्याणि कथयामि च । वक्तुं सहस्रजिह्वोऽपि यानि न प्रभवेत् प्रभो! ॥ २९९ ॥ किं च तस्य
कुमारस्य रूपं किञ्चित्तदद्भुतम् । यत्पश्यतां क्षुधा तृष्णा दुःखं च छिद्यते नृणाम् ॥ ३०० ॥ देवः प्राह तदाकर्ण्य पुरापि श्रुतमी-
दृशम् । प्रत्ययस्त्वधुना जज्ञे विशेषाद्वचसा तव ॥ ३०१ ॥ मर्त्यमात्रः कुमारोऽयं नत्वयं निश्चयो हृदि । एवंविधप्रभावेण किञ्चि-

तरान्तरं हि तत् ॥ ३०२ ॥ अपूर्वो विष्णुराजस्य महिमा हि महीतले । यत्पुरीद्वाररत्नानि लुठन्ति प्रतिचत्वरम् ॥ ३०३ ॥ न यान्यन्यनरेन्द्राणामसुद्राणामपि श्रिया । वसन्ति श्रीगृहे पुण्यमहो पुण्यमहो इति ॥ ३०४ ॥ एवं तस्य कुमारस्य शृण्वतश्चरितानि मे । लोकोत्तराण्यकुण्ठाऽभूदुत्कण्ठा द्रष्टुमिष्टवत् ॥३०५॥ उत्सुकत्वेन विज्ञप्तास्तातपादास्ततो मया । यथादेशो भवेत्सिंहपुरे तत्तात! याम्यहम् ॥३०६॥ श्रेयांसवीक्षापीयूषरसेनापूरये दृशौ । जन्मजीवितयोः स्वस्य गृह्णामि विपुलं फलम् ॥ ३०७ ॥ ततः प्राहोचितो वत्सानुरागो गुणशालिषु । किन्तु सिंहपुरं दूरे सरण्यां भूरयोऽरयः ॥ ३०८ ॥ त्वया गमनवार्तापि न कर्त्तव्या कुमार! तत् । ततस्तत्र शिलाक्षिप्तमीनवन्न रतिं लभे ॥ ३०९ ॥ तदन्तिकगतो ध्यायाम्युपायान् बहुधाप्यहम् । तदेकतानचेता न जाने सरसनीरसे ॥ ३१० ॥ बहुना किं मम स्नेहः श्रेयांसे कोऽप्यभूत्तथा । यथा न पित्रोर्नो बन्धौ न चान्यत्रापि कुत्रचित् ॥ ३११ ॥

ततः खड्गसहायः सन्ननाख्याय विनिर्गतः । संजाते यामिनीयामयुग्मे शोकवनान्तरम् ॥ ३१२ ॥ असव्यबाहुस्फुरणात् द्विगुणोत्साहसाहसः । श्रीश्रेयांसक्रमौ ध्यायन्निरगान्नगरादपि ॥ ३१३ ॥ पथि व्रजाम्यखण्डैश्च प्रयाणैः प्रीतमानसः । अहं तस्य प्रभावेण न वेद्म्यध्वपरिश्रमम् ॥ ३१४ ॥ नाममन्त्रमहिम्नास्याटवीषु विकटास्वपि । नापदः श्वापदव्रातप्रभवाः प्राभवन्कचित् ॥ ३१५ ॥ समुल्लङ्घ्य महामार्गमगां कालक्रमादहम् । पुरं सिंहपुरं यावत्प्रवेक्ष्यामि किलान्तरे ॥ ३१६ ॥ तावत्केनाप्यहं यूना समुदा समुदायिना । अश्वादुत्तीर्य सहसा प्रणतोऽस्मि सविस्मयम् ॥ ३१७ ॥ कृताञ्जलिः स च प्रोचे विधायानुग्रहं मयि । आरोहत तुरङ्गेऽत्र तमारोहमहं ततः ॥ ३१८ ॥ चिन्तितं च मयावश्यमुत्तमः शकुनो मम । अद्भुतोऽभ्युदयः कोऽपि मन्ये मेऽत्र भविष्यति ॥ ३१९ ॥ श्रीश्रेयांसप्रभोर्भक्तिकल्पवल्ली महाफला । मन्ये तस्याः फलिष्यन्त्याः स एष कुसुमोद्गमः ॥३२०॥ चिन्तय-

न्नित्यहं तेन निन्ये निजनिकेतने । स्नपितो भोजितः सन्मानितश्च वसनादिभिः ॥ ३२१ ॥ ऊचे च श्रारसा सवा भवता सेवकोऽ-
स्म्यहम् । प्रभवो यूयमित्युक्त्वा तेनातीवप्रमोदितः ॥ ३२२ ॥ ततश्च स मयालोकि प्रसादपरया दृशा । अत्यादरा त्तदीयात्तु
वक्तुं शक्तं न किंचन ॥३२३॥ स मामुवाच किं यूयं कुण्डिनान्नगरादिह । एताः खङ्गसखा एव ममाख्याहि प्रयोजनम् ॥३२४॥
पृष्टश्च प्रत्यभिज्ञातो भवता कथमस्म्यहम् । स प्राह तत्र वास्तव्योऽस्म्यहमर्थार्जनाकृते ॥ ३२५॥ इहागां तु श्रीकुमारनामा कामा-
धिको मया । अर्थः समर्जितो बाढं कुमारस्फारसद्गुणैः ॥ ३२६ ॥ प्रसादपात्रं जातोऽस्मि श्रीश्रेयांसविभोस्तथा । न प्रयामि
निजपुरं तदीयविरहासहः ॥ ३२७ ॥ अद्य पुण्यवशाद्युष्मत्पादा अप्यवलोकिताः । अतिश्रेष्ठमिदं यद्वस्तद्दिदृक्षा प्रवर्त्तते ॥३२८॥
आगमं वः कुमाराग्रे ततो विज्ञपयाम्यहम् । उक्त्वेति कथयामास स गत्वा विष्णुजन्मनः ॥ ३२९ ॥ ततस्तेन समं सिंहद्वारदे-
शमहं गतः । पश्यामि स द्युता चण्डरश्मिरश्मिस्मयापहम् ॥३३०॥ मन्दुरा हस्तिशालाश्च रत्नकाञ्चननिर्मिताः । यत्पुरोऽन्यनराधीशस्रे-
न्दिरा अप्यनिन्दिराः ॥ ३३१ ॥ समृद्धिं तादृशीं वीक्ष्य मया विस्मितचेतसा । आत्मा स्वर्गमिव प्राप्तो तदा मेने महामुदा ॥३३२॥
अथ निर्यद्विशद्वृन्दारकवृन्दसुसङ्कटम् । असङ्ख्यनृपसामन्तमन्त्रिप्रमुखमण्डितम् ॥ ३३३ ॥ सूरीभिर्वारनारीभिः प्रध्वनद्रत्न-
शङ्ककम् । सलीलं चाल्यमानोरुचारुचामरचारु च ॥ ३३४ ॥ निर्मायमाणद्वात्रिंशत्पात्रनाट्यमनोहरम् । ऊर्ध्वहस्तपठद्बन्दिवृन्द-
शब्दितदिङ्मुखम् ॥ ३३५ ॥ आस्थानमीदृक् प्राप्तोऽहं प्रतीहारनिवेदितः । श्रीश्रेयांसमपश्यं च रत्नसिंहासनस्थितम् ॥ ३३६ ॥
तमिन्द्रमिव मे वीक्ष्य सुधासिक्ताऽभवत्तनुः । प्रणम्य च निविष्टोऽहमुचिते दापितासने ॥ ३३७ ॥ स प्रदाय मयि प्रीतः प्रसाद-

१ लक्ष्मिरहिता इत्यर्थः ।

विशदां दृशम् । विदधे कुशलप्रश्नं सुधारसकिरा गिरा ॥ ३३८ ॥ यावच्चापि पिधुर्षोनान्मम सम्भाषहेतवे । अपृच्छत्पथि समास्ते कुमार कति वासराः ॥ ३३९ ॥ मया त्रिंशद्दिनानीति प्रोक्ते प्रोवाच मां प्रभुः । दुष्करं भवता चक्रे भक्तेः किं वास्तु दुष्करम् ॥ ३४० ॥ उत्तंसत्स्वमुकुटं मेऽदादङ्गलग्नं विभूषणम् । तातराज्याधिकं राज्यं श्रीकङ्कणपुरस्य च ॥ ३४१ ॥ प्राप्तेऽपि राज्ये सुस्वामिश्रेयांसविरहासहः । स्थितोऽस्मि दिवसाः पञ्च सप्रपञ्चमुपासने ॥ ३४२ ॥ श्रीकुमारः स तु श्रेष्ठिसुतो राज्यस्य चिन्तकः । तस्योपकारं स्मरता मया मन्त्रिपदे कृतः ॥ ३४३ ॥ परेषु राजपुत्रेषु सेवमानेषु सत्स्वपि । मात्राधिकप्रसादस्य भूर्यभूवाहमेव हि ॥ ३४४ ॥ तस्याज्ञयाहमायातः श्रीकङ्कणपुरं ततः । विस्मापिताखिलजनां राज्यलक्ष्मीं निरीक्षितुम् ॥ ३४५ ॥ मया तत्रागतेनास्याः कुमार्याः ख्यातिरश्रुता । श्रुता रूपे यतोऽम्येतोऽकुण्ठोत्कण्ठोऽत्र कौतुकात् ॥ ३४६ ॥ इदं कुण्डलयुग्मं च भाति नान्यस्य कर्णयोः । विसोढुमनयोर्भारं श्रुती नान्यस्य च क्षमे ॥ ३४७ ॥ अस्या एव समुचितं किलेदं शिल्पिनाऽघटि । महान्तो हि महार्हाणां भवन्ति भवनं परम् ॥ ३४८ ॥ निवेद्येति निजावासे जयसिंहनृपे गते । श्रीकान्तपुत्रः श्रीकान्तामविष्य-द्विषमैः शरैः ॥ ३४९ ॥ जृम्भारं भवती दृष्ट्वा पृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च सादरम् । वपुस्तापवती मात्रा वत्से ! किं तव बाधते ॥ ३५० ॥ मन्ये कुण्डलयुग्मेऽस्मिन् रम्ये परिहिते सति । अतीवतीव्रशोभा त्वं दृष्टिदोषादसीदृशी ॥ ३५१ ॥ स्वस्थानं प्राप्य पल्यङ्के भव सख्यो यथा तव । चक्षुर्दोषापहारीणि मङ्गल्यानि प्रकुर्वते ॥ ३५२ ॥ प्रत्यासन्नेऽपि पल्यङ्के सा कथं कथमप्यथ । जगाम काममरयुष्णनिश्वासौघं विमुञ्चती ॥ ३५३ ॥ किं कुर्वाणेऽथ कुर्वाणे कर्मधूपनकादिकम् । सखीजने महादुःखभरेणापि सखीजने

१ कामः । २ बाणैः ।

॥ ३५४ ॥ सा सुप्तमत्ता मूर्तीव निमीलितदृगम्बुजा । कुमारमेव ध्यायन्त्यनालपन्ती सखीजनम् ॥ ३५५ ॥ सुधामधुरया वाचा
भूयोभूयः कृतादराम् । तेन सम्भाष्यमाणापि तस्थौ मौनावलम्बिनी ॥ ३५६ ॥ (त्रिभिर्विशेषकम्) दैवोपालम्भकसखीजनस्याश्वा-
सनाय सा । हुंकारमात्रं श्रेयांसनामगर्भममुञ्चत ॥ ३५७ ॥ अथ मन्मथविकारमवबुध्य स्वबुद्धितः । सखीजनेन साऽऽलापि निपुणे-
नेङ्गितादिषु ॥ ३५८ ॥ सखि! धन्यतमासि त्वं योग्ये स्थानेऽनुरागतः । कमला कमलादन्यं निवासं भजते कथम् ॥ ३५९ ॥ को
वा न मन्यते कल्पलताकल्पद्रुसङ्गमम् चन्द्रचन्द्रिकयोर्योगः शस्यः कस्य न चेतसि ॥ ३६० ॥ त्वं धीरत्वं समालम्ब्य किं तु
कालविलम्बनम् । क्षमस्व देवि! जायन्ते यथा तव मनोरथाः ॥ ३६१ ॥ इति कोमलया वाचा सदाचारविचारिणा । सखीजनेन
साऽऽश्वासि निःश्वासिमुखपङ्कजा ॥ ३६२॥ किं तु नान्तर्न च बहिर्न जने विजने न च । नासने शयने वापि न वने भवनेऽपि च
॥ ३६३ ॥ न रात्रौ नाह्नि कुर्वाणाऽवतस्था सा कुलस्थितिम् । रतिं रतिप्रियेणेव गोपितां कापि नाप सा ॥३६४॥ (युग्मम्) केवले
कुण्डले पश्यन्त्यर्चन्ती प्रणमन्त्यपि । वाचयन्ती च तन्नामवर्णान् जपति मन्त्रवत् ॥ ३६५ ॥ त्वरितत्वरितं गत्वा तस्याः प्रियस-
खीजनः । तदानन्दश्रियो देव्या कथयामास साऽतुपत् ॥ ३६६ ॥ विशेषवादिनी वत्सा यद्विष्णुनृपनन्दने । जगच्चूडामणौ तत्र
प्रतिबिम्बविधायिनी ॥३६७॥ इदं मया पुराप्यासीन्निजचेतसि चिन्तितम् । चन्द्रचूडं विना चन्द्रकला कस्य विभूषणम् ॥ ३६८॥
तदैवमानुकूल्यं स्यात्सर्वं कल्याणकारणम् । मन्मनोवाञ्छितार्थस्य संवादकमभूदिदम् ॥ ३६९ ॥ वत्साया वाञ्छितमिति गत्वा तस्यै
निवेद्यताम् । श्रीकान्तायै तदाख्यन्त सख्यः प्रमुदितास्ततः ॥३७०॥ हारहूरानुकारिण्या[1] वाण्या मातुस्तयाऽथ सा । किञ्चित्प्रशान्त-

१ द्राक्षानुकरणकारिण्या ।

सन्तापा सखीकथितयाऽभवत् ॥ ३७१ ॥ चन्द्रचन्दनहाराणां शैत्यं न बहु मन्यते । न जिघ्रति च पुष्पाणि न कर्णयति काकलीम्
॥ ३७२ ॥ किं च प्रोज्झितनीलाब्जा नेक्षते मुकुरे मुखम् । विरक्ता कोकिलारावाद्गिरं नोद्गिरति स्वयम् ॥ ३७३ ॥ स्मरं स्मरन्ती
कुसुमबाणं पुष्पाणि पाणिना । श्वासानि लुम्पति नरैः मा कपोतकपोतवत् ॥ ३७४ ॥ इदमद्भुतमद्भुतं यदेषा द्वेपनत्यपि । मारेऽति
माररूपेण कुमारे प्रेम पुष्यति ॥ ३७५ ॥ अभीक्ष्णमेव श्रेयांसनाथमन्त्राक्षराणि सा । जीवरक्षाकृते भूयो नयन्ती स्मृतिगोचरम्
॥ ३७६ ॥ निरुद्धबाह्यव्यापारकृतानिजमानसा । यावत्प्रपञ्चयोगेन समयं गमयत्यसौ ॥ ३७७ ॥ यावच्च सपरीवारः कुमारी-
दुःखदुःखितः । युष्मान् ज्ञापयितुं किञ्चित् किलोपक्रंस्यते नृपः ॥ ३७८ ॥ तावत्कुमारीकारूपमनरूपमुदीरितम् । श्रुत्वा स्वस्वकु-
माराणां कृते परनरेश्वरैः ॥ ३७९ ॥ प्रधानपुरुषाः सौवास्तां वरीतुं निरूपितुम् । सर्वे युगपदाऽऽजग्मुः सहाऽग्रहिता इव ॥३८०॥
सापेक्षचित्तश्चिद्रूपो भूपोऽभाषत तानिति । कुमारा भवतां सम प्रत्ययान्पूरयन्ति चेत् ॥ ३८१ ॥ कन्यारत्नमिदं चैतद्दन-
मेव ततो मया । स्वस्वस्वामिगणं गत्वा तथ्यता कथ्यतामिति ॥ ३८२ ॥ वैर्गत्वा कथिते भूपाः प्राहिण्वन् स्वस्वनन्दनान् । ते
च सैन्ययुता स्वर्गभागीरथीमुपागमन् ॥३८३॥ तत्रैके मार्गितुं मार्गं शुद्धायां भुव्यशेरत । पूजयन्त्यपरेऽन्ये च मानयन्त्युपयाचितम्
॥ ३८४ ॥ नमन्त्यन्ये स्तुवन्त्यन्येऽन्ये च तिष्ठन्त्युपोषिताः । सविशेषा वहत्येषा तथापि हि तरङ्गिणी ॥ ३८५ ॥
अत्रान्तरे च काम्पील्यपुरतो निर्गता वयम् । ससैन्याः सम्मुखा आगन् कुमारा बहवोऽपि हि ॥ ३८६ ॥ तत्प्रसीद तथा
देव! यथा तत्रागमो भवेत् । कुमारस्वक्रिणः शीघ्रं पूर्यतेऽसत्प्रसुस्पृहा ॥ ३८७ ॥ कुमार्याः प्रतिरूपं तु नानिन्येऽनेन हेतुना ।
यथामालेखितुं कोऽपि न समर्थो यथास्थितम् ॥ ३८८ ॥ वृत्तान्तमेनमाकर्ण्याखिलया सभया सह । विस्मयं परमं प्राप श्रीमान्

१ संवीतम् । २ कुर्वते ।

विष्णुनरेश्वरः ॥ ३८९ ॥ कृत्वा समानं सन्मानं प्रधानानामथो नृपः । स्वमन्त्रमण्डपे गत्वाऽमन्त्रयन्मन्त्रिभिः समम् ॥ ३९० ॥
तथाहि प्रत्ययाः सप्त पूरणीयाः सुदुस्तराः । न पूर्यन्ते यदि ततो जायतेऽतीव लाघवम् ॥ ३९१ ॥ नैमित्तिकेन चादिष्टा सा पत्नी
चक्रवर्तिनः । अर्हन्नेव कुमारोऽयं कथं सेत्स्यत्यदस्ततः ॥ ३९२ ॥ प्रत्ययेष्वपि पूर्णेषु सन्देहस्तत्करग्रहे । श्रूयन्ते येन गर्वनाः
कुमाराः सर्वभूभुजाम् ॥ ३९३ ॥ कुमारेण समं ते च कर्त्तारो विग्रहं ध्रुवम् । सा कन्या नैव चानेतुं शक्यतेऽत्र पुरेऽधुना ॥ ३९४ ॥
आयान्ती ह्रियते तैर्हि कुमारैरन्तरास्थितैः । सुधेव वारिधेर्मध्ये राहुप्रभृतिदानवैः ॥ ३९५ ॥ ज्ञानगर्भाभिधो मन्त्रिमुख्योऽथ प्राह
भूपतिम् । देव ! मा संशयं कार्षीः सर्वप्रत्ययपूरणे ॥ ३९६ ॥ प्रभावादस्य कल्पद्रोः कुमारस्याखिलान्यपि । कल्पितान्यपरस्यापि
स्युरस्यैव न किं ततः ॥ ३९७॥ कुमारस्य वै सुकृतैः प्राक्तनैः सा कृता ध्रुवम् । रूपश्रीः प्रवरा तस्यास्तादृशी कथमन्यथा ॥३९८॥
नैमित्तिकेन चादिष्टश्चक्र्ययं नापरो नरः । यत्कुमारः प्रभोर्दर्मनक्रवर्ती जगत्त्रये ॥३९९॥ कलिं कुमाराः कर्तारोऽनेनेति न कथापि
हि । ताराः स्फारा अपि पुरो न सूरस्य स्फुरन्ति यत् ॥ ४०० ॥ पञ्चास्यस्य पुरः शौर्यं कुरङ्गाणां किमङ्कयेत् । सर्पारातेः पुरः
सर्पाः परिसर्पन्ति किं क्वचित् ॥ ४०१ ॥ किं न साकं कुमारेण युध्यते नैकनागरम् । द्वारवत्येव तदपि गतोऽथुलवतो गिनः
॥ ४०२ ॥ तदेवात्र विधातुं न युक्तं कालविलम्बनम् । महीभृतो महान्तोऽपि वज्रस्य तृणगुच्छिदाः ॥ ४०३ ॥ इत्थं चतुर्मति-
मरावसथस्य तस्यामात्यस्य वाक्यमुचितं रुचितं निशम्य । निश्चित्य भूमिमघवा नयनाभनाभूद्भूयः मदः प्रमदभूरि समागदत्सः
॥ ४०४ ॥ श्रीश्रेयांसस्य जनिस्तारुण्यं रूपवर्णनं रागः । श्रीकान्तायास्तस्मिन्निह प्रधानागमा ऽत्र ॥ ४०५ ॥

इत्याचार्यश्रीमानतुङ्गविरचिते श्रीश्रेयांसचरिते महाकाव्ये मयत्रगनिपद्धे
श्रीकान्ताया रागवर्णनो नाम सप्तमः सर्गः

अष्टमः सर्गः।

अथादेशं कुमारस्याऽऽदात्काम्पील्यपुरं प्रति। तस्य प्रपद्यमानस्य दिवि दध्वान दुन्दुभिः ॥ १ ॥ जाते जयजयारावमुखरे नगरीजने। मङ्गलानि कुमारस्य व्यधादविधवाजनः ॥ २ ॥ अथ ढक्कामहाघोषक्षोभितक्षोणिमण्डलः। गजाश्वरथपादातमश्रिसामन्तसंयुतः ॥ ३ ॥ श्वेतवारणमारूढो विधृतातपवारणः। नदच्चतुर्विधातोद्यः पठन्मङ्गलपाठकः ॥ ४ ॥ गजगर्जितनादेन हयहेषारवैरपि। चित्कारैः रथचक्राणां शब्दाद्वैतमिवादधत् ॥ ५ ॥ ऊर्ध्वीकृतध्वजभुजैः किंकिणीगणनिक्कणैः। संचरद्भीरथैर्लोकसम्मर्दादिव संयुतः ॥ ६ ॥ पदातिभिरसंख्यातैः गङ्गखेटकपाणिभिः। विधुं [1]विधुंतुदेवोग्रैराक्रामद्भिरिवावृतः ॥ ७ ॥ रूपवानिति बालाभिः पराभिर्धिक्[2]भूरिति। वृद्धाभिर्देव इति चान्यान्यभावं निरीक्षितः ॥ ८ ॥ स्वयं प्रसाददानेन कुमारेण संभाजितैः। तैः प्रधाननरेस्तुष्टैः महाचालीदिलाप्रभुः ॥ ९ ॥ (नवभिः कुलकम्)

प्रयाणं प्रथमं यावदगात्त्रिभुवनाधिपः। तावत्पुरन्दरः प्रैषीद्रथं मातलिसारथिम् ॥ १० ॥ प्रणम्य मातलिः प्राह प्रहितं त्वत्कृते प्रभो!। ज्ञात्वा गुरेभ्यश्चारेभ्यः प्रष्टं प्राचीनबर्हिषा ॥ ११ ॥ विष्टपत्रितयाधीश! त्रिविष्टपसमागतम्। समारुह्य रथं नाथ! प्रथयेन्द्रमनोरथम् ॥ १२ ॥ (युग्मम्) श्रीश्रेयांसः सुराधीशरथारूढः सुराध्वना। व्रजन् विद्याधरैः सिद्धैश्चाभ्यर्च्यत पदे पदे ॥ १३ ॥ भूगोचरजनैर्दीयमानार्घस्तिग्मरश्मिवत्। कालक्रमाद्‌गङ्गवर्षतटिनीतटमाप तत् ॥ १४ ॥ कुमारस्पर्शे रुद्धे तत्तीरे

[1] राहुरेव। [2] कामदेव। [3] लक्ष्मीः।

परितोऽपि हि। तदावासनिवासाय रत्नगर्भाऽन्यतोऽवहत् ॥१५॥ स्कन्धावारः कुमारस्य तत्रास्थादखिलोऽप्यथ । नृरत्नेऽन्तर्गते तस्मिन्
रत्नगर्भा हि साहृता ॥ १६ ॥ अथाश्चर्यमिदं प्रेक्ष्य श्रुत्वा चेन्द्ररथागमम् । विदर्पाश्च निरासाश्च कुमाराः केऽपि जज्ञिरे ॥ १७ ॥
अचिन्तयंश्च तन्मुख्याः पूर्वः सुकृतसञ्चयः । पश्चादप्ययमायातो यदग्रेसरतां गतः ॥ १८ ॥ तद्युज्यतेऽङ्घ्रिसेवास्य विद्वेषः को
गुणेषु यत् । अहंयूनपरानेते स्वदूतान्प्रेष्य चावदन् ॥ १९ ॥ गर्वं विमुच्य श्रेयांसं नमताऽऽनतमस्तकाः । यदेष भुवनत्रय्याः क्षयर-
क्षणयोः क्षमः ॥ २० ॥ पुरुहूतोऽप्यनाहूतमस्य प्रैपीन्निजं रथम् । जलाशयाप्यदादस्यावासस्थानं महानदी ॥ २१ ॥ दयामयतया
किं तु न पीडयति दर्पिणः । तदस्य पुरतो दर्पे कुशलं न भविष्यति ॥ २२ ॥ तक्षकस्य फणारत्नग्राही किं कुशली भवेत् ।
दशना एव भज्यन्ते गजानामद्रिभेदने ॥ २३ ॥ जगद्दीपेऽत्र परमं कृशानुभावधारके । मा लभध्वं सुतेजस्के पक्षहानिं पतङ्गवत्
॥ २४ ॥ जगत्त्रयेशिनाऽनेन दधानानां विरोधिताम् । क मन्दमेधसां स्थानं भवतां च भविष्यति ॥२५॥ तन्मत्सरं परित्यज्य क्षम्यतां
नम्यतामयम् । त्रैलोक्यपूजनीयेऽस्मिन्नमतां च न लाघवम् ॥ २६ ॥ लक्ष्मीर्लोकद्वयस्यापि स्यादस्य पदवन्दनात् । श्रुत्वेति तेऽपि श्रेयांसं
नन्तुं प्रगुणतां गताः ॥२७॥ ते सर्वेऽपि हि साशङ्का मिलिता इत्यमन्त्रयन् । इदं न सर्वथाऽस्माभिः साम्प्रतं साम्प्रतं कृतम् ॥२८॥
श्रीकान्तां यद्विबुध्यापि श्रेयांसासक्तचेतसाम् । समेतास्तत्कथं केनास्येन दृश्यो जगत्पतिः ॥ २९ ॥ दुश्चेष्टितक्षमणतः कथं कुर्यात्स
निर्वृतिम् । अथोचे चन्द्रचूडाख्यः कुमारोऽतन्द्रमीदृशम् ॥ ३० ॥ मा शङ्कध्वं यतः सैष दयालुर्नतवत्सलः । तद्गत्वा नमत स्कन्ध-
बन्धन्यस्तपरश्वधाः ॥ ३१ ॥

१ सेना। २ अभिमानिनः। ३ इन्द्रः। ४ शेषनागस्य। ५

तथेति कृत्वा तन्मन्त्रं ते सिंहद्वारमागताः । श्रीश्रेयांसप्रभोरग्रे द्वाःस्थेन च निवेदिताः ॥ ३२ ॥ देवदेवप्रतापेन परितापितविग्रहाः । अनाप्नुवन्तः स्वस्थाने निर्वृत्तिं राजनन्दनाः ॥ ३३ ॥ कण्ठन्यस्तकुठारास्ते देव ! प्रणतिचारिणः । त्वं निर्निर्वापयिषिपवः सन्ति द्वारि निवारिताः ॥ ३४ ॥ प्रभुः प्राहोत्ततः पर्शुमुत्तार्यैतान्प्रवेशय । द्वाःस्थेन कथिते प्रीतास्तथा कृत्वाऽथ तेऽविशन् ॥३५॥ (युग्मम्) अबद्धकेशास्ते विश्वनाथाऽऽस्थानमुपागमन् । संकीर्णं राजसेनानीमण्डलेशपुरस्सरैः ॥ ३६ ॥ इदं दुश्चेष्टितमपि देवाभूदुदयाय नः । यत्कल्पपादपप्राया देवपादा विलोकिताः ॥ ३७ ॥ दूरतोऽपि हि भून्यस्तमस्तकैस्तैर्नतः प्रभुः । विश्वस्थालिकारूढमुसौढकरकोरकैः ॥ ३८ ॥ अयमसत्कृतोऽनर्थोऽप्यर्थोऽभूद्देवदर्शनात् । तद्राज्यं जीवितं चापि देवायत्तं समस्ति नः ॥ ३९ ॥ ततः सर्वमिदं नेयमुपयोगं यथारुचि । देवप्रसादतो लोकद्वयश्रीर्नः करस्थिता ॥ ४० ॥ शिवः प्रजापतिर्लक्ष्मीवल्लभो विबुधाधिपः । कलानिधिरहीनश्च भास्वान् देव ! त्वमेव नः ॥४१॥ त्वद्दर्शनामृतस्यन्दैः सिक्तान्यङ्गानि नः प्रभो ! । चित्रं कल्याणवल्लर्यः सद्योऽभूवन् विकस्वराः ॥ ४२ ॥ इति विज्ञपयत्स्वेषु ज्ञातविष्णुसुतागमः । ज्ञातापरनृपसुतवृत्तान्तश्च कनीपिता ॥ ४३ ॥ कारितापणशोभश्च सर्वसैन्यसमन्वितः । आनन्दवर्धननृपः कुमारमभियातवान् ॥ ४४ ॥ विहितौचित्य आसीनं कुमारं वीक्ष्य सादरम् । आबालाप्रनयप्रान्तमुवाच मुदिताशयः ॥ ४५ ॥ (अष्टभिः कुलकम्) प्रभो ! त्वद्दर्शनादन्यं मन्ये स्वं कल्पपादपः । क्वापि प्ररोहं प्राप्नोति नाधन्यस्य गृहाङ्गणे ॥४६॥ त्वद्दर्शनसुधापानादिहाप्यनिमिषोऽभवम् । तव कल्याणिनः सङ्गाद्यासि कल्याणभाजनम् ॥४७॥ इहालवाले ममाशाम्रोऽभ्युदितः सुरभिस्तव । आगमात्पल्लवः सोऽस्तु पुष्पितः फलितोऽपि च ॥४८॥ ढक्काऽथ वादिता तस्या नादेन च द्विधा-

१ सञ्जीभूता इत्यर्थः ।

जनो रत्नानि गृण्हानस्तदाख्यामस्पृपाऽब्रुधत् । याति त्रिभुवनाधीशे कुमारैः परि-
भवत् । अगाधापि नदी रत्नगर्भा रत्नान्यदर्शयन् ॥४९॥ जनो रत्नानि गृण्हानस्तदाख्यामस्तृपाऽब्रुधत् ॥५१॥ अथाशोकवनोद्यानमध्ये
वारिते ॥ ५० ॥ प्रभौ परिसरायाते पट्टेभोऽप्यभियातवान् । ऊर्ध्वीकृतकरो गर्जन् प्रभुणा तर्जितश्च सः ॥५१॥ अथाशोकवनोद्यानमध्ये
प्रविशतः प्रभोः । अभ्युत्थानं व्यधात् यक्षोऽञ्जलिबन्धं च मर्त्यवत् ॥ ५२ ॥ अथाशोकतरोर्मूले रत्नासनगते विभौ । सोऽपुष्पत्तस्य च
च्छाया दूरतोऽप्यागमत्तलम् ॥५३॥ इत्याश्चर्यचयं वीक्ष्य जनोऽत्यर्थं चमत्कृतः । उवाच पुण्यप्राग्भारः कोऽप्यपूर्वो जगत्प्रभोः ॥५४॥
भोगोपभोगयोग्यानि वस्तून्यानन्दवर्धनः । उपानैषीत्कुमारस्यान्येषामपि यथोचितम् ॥ ५५ ॥ आकार्य गणकाल्लग्नं गणितं रुचिर-
ग्रहम् । श्रीकान्ता तत्तदाख्यातेर्वर्धिता च सखीजनैः ॥५६॥ प्रसाददानं सानन्दा साऽदात्ताभ्यश्च पुष्कलम् । चक्रे विवाहसामग्री प्रगुणा
पक्षयोर्द्वयोः ॥ ५७ ॥ सुमुहूर्तेऽथ कुल्याभिरतुल्याभिर्विधौ निजे । सर्वौषधीयुतैर्नीरैरस्नप्यत वधूवरम् ॥ ५८ ॥ क्रियमाणे ततोऽ-
माने माने मानोचिते जने । वाद्यमानेषु वाद्येषु माद्यद्भिर्वाद्यकारकैः ॥ ५९ ॥ उलुलुरावमुखरे[1] सधवारमणीगणे । तयोः कुमा-
रयोर्जज्ञे पाणिग्रहमहामहः ॥ ६० ॥ पट्टेभाश्वादिवस्तूनि सुसाराण्यपराण्यपि । भुवनस्वामिनेऽदत्त स्वसुरः करमोचने ॥ ६१ ॥
(युग्मम्) इत्यानन्देन महता स विवाहमहामहः । तयोः सम्पूर्णतां प्राप प्रीणिताखिलविष्टपः ॥ ६२ ॥ सत्कारं सचमत्कारं सोत्कर्ष
प्रतिवासरम् । नवं नवमनुभवन् क्रियमाणं नराधिपैः ॥ ६३ ॥ कत्यप्यहानि काम्पील्येऽनुपाल्यातिसुखेन तम् । प्रस्थातुं स्वपुरे
नाथं सचक्रे स्वसुरः पुनः ॥ ६४ ॥ (युग्मम्)
तेनापरैश्च भूपालैरनुव्रजनकारिभिः । कलितः कलितोत्कण्ठं वीक्ष्यमाणः पुरीजनैः ॥ ६५ ॥ निरगान्नगराद्गत्वा प्रया-

[1] विवाहाद्यानन्दोत्सवे स्त्रीभिः क्रियमाणो ध्वनिःस्तेन मुखरे ।

णानि च कल्यपि । समं कुमारास्ते सर्वे स्थानं तत्प्रहिता ययुः ॥ ६६ ॥ आनन्दवर्धनमहाराजोऽपि हि निजां सुताम् । साधुः संस्थाप्य तथोग्यामदात् शिक्षां मुहुर्मुहुः ॥ ६७ ॥ निजदृष्ट्या सुधावृष्ट्या विसृष्टः स्वामिना नृपः । सन्मानपूर्वकं सोऽथ रूपं भगवतोऽद्भुतम् ॥ ६८ ॥ लावण्यमसपत्नं च कीर्तिस्फूर्तिमती धृती । दृष्टिर्नवसुधावृष्टिः सौभाग्यं विश्वजित्वरम् ॥६९॥ दर्पिदर्पापहं देहबलं प्रतिकलं कलम् । प्रशंसन् सास्रदृष्ट्या च पश्यन्वलितकन्धरः ॥ ७० ॥ ईदृशेन नृरत्नेन वंद्येन जगतामपि । कदा पुनर्भवेत् सङ्ग इत्यधायि स्वमानसे ॥ ७१ ॥ त्रिलोकनेता जामातारमानमेव जगत्पतिम् । कृतार्थंमन्यमानोऽगात्कथञ्चन निजं पुरम् ॥ ७२ ॥ (पञ्चभिः कुलकम्) श्रीश्रेयांसोऽपि मार्गस्थनृपमौलिगमौलिभिः । चुम्ब्यमानपदाम्भोजद्वन्द्व इन्दिदिरैरिव ॥ ७३ ॥ करुणारसनिमग्नचक्षुःप्रक्षेपमात्रतः । सन्तापं शमयन् राज्ञां परस्परविरोधिनाम् ॥ ७४ ॥ क्षोभयन्नगराण्युच्चैः स्थाने स्थाने स्वसम्पदा । प्राप सिंहपुरोद्यानं सहस्राम्रवणाभिधम् ॥ ७५ ॥ (त्रिभिर्विशेषकम्)

प्रवर्धितः प्रधानेन विष्णुराट् पारितोषिकम् । दत्त्वातिमात्रं नगरे महोत्सवमकारयत् ॥ ७६ ॥ ऊर्ध्वीकृता ध्वजा यत्र प्रक्वणत्किङ्किणीगणाः । लोकमाकारयन्तीव द्रष्टुं स्वामिप्रवेशकम् ॥ ७७ ॥ पञ्चवर्णैर्दुकूलैश्च हट्टशोभा विनिर्मिता । गगने चित्रकृच्चित्रकर्म निर्मापयत्यलम् ॥ ७८ ॥ बद्धाः प्रतिगृहं नीलपत्रैर्वन्दनमालिकाः । गृहश्रियामश्मगर्भमणिग्रैवेयकप्रभाः ॥ ७९ ॥ स्थाने स्थाने कृता मञ्चाः सप्रपञ्चा नभोलिहाः । नभोऽध्वगस्य व्रजतो विश्रामस्थानकोपमाः ॥ ८० ॥ यत्र पुष्पोपहारेषु लीना मधुपधोरणी । सुपर्वकृतनीलाश्मदृष्टिभ्रमविधायिनी ॥ ८१ ॥ (पड्भिः कुलकम्)

१ भ्रमरैरिव । २ सूर्यस्य ।

स्वामी शुभे मुहूर्त्तेऽथ स्फारशृङ्गारताररुक् । शक्रस्य रथमारूढः स इवाऽध्यक्षतां गतः ॥ ८२ ॥ प्रमोदतस्तदात्वेन मिलिते दिविषद्गणे । राजमाने पुरे तत्र सुरेश्वरपुरप्रभे ॥ ८३ ॥ महोत्सवमहानन्दमहाकल्याणवस्तुभिः । निर्मिते इव सञ्जाते पुरलोकेऽखिलेऽपि हि ॥ ८४ ॥ अवगीते च सङ्गीते जायमाने पदे पदे । मञ्चे मञ्चे पणस्त्रीभिः क्रियमाणे च मङ्गले ॥ ८५ ॥ विभोः पार्श्वे स्थितां स्त्रीषु वदन्तीष्विति कासुचित् ॥ ८६ ॥ पुण्यैकपात्रमेषैव कान्तां विलोक्य श्रीकान्तां ज्योत्स्नां पूर्णविधोरिव । रमणीनां शिरोमणी । अयं विश्वत्रयीवन्द्यो यस्याः प्रियतमोऽभवत् ॥८७॥ अस्माकं भाग्यहीनानामकृतार्थदृशां पुनः । पाणिग्रहणमप्येतन्नाभवन्नयनातिथिः ॥ ८८ ॥ अपरासु प्रभोरङ्गेऽस्ताघे लावण्यपूरतः । कथञ्चनोद्धरन्तीषु परिमग्नां दृशं भृशम् ॥ ८९ ॥ अपरासु विभो रूपं प्रेक्ष्य विच्छेदभीरुषु । परित्यक्तनिमेषासु कुर्वतीषु सुरीभ्रमम् ॥ ९० ॥ कास्वप्येवं वदन्तीषु कुमाराननर्जितः । ह्रियेवेन्दुर्वराकोऽयं तस्माद् भ्राम्यति ताम्यति ॥ ९१ ॥ कुमारस्य प्रतापेनास्खलितेन जितः किल । रविर्वहति सन्तापं जल्पन्तीष्विति कास्वपि ॥९२॥ अष्टापदस्य वृष्ट्या च सुष्ठु निर्वापयन्मनः । दारिद्र्यातपसन्तापसम्प्रतापितमर्थिनाम् ॥ ९३ ॥ पराद्ध्र्या निजर्द्ध्या च जनयन् जनविस्मयम् । वन्दिभिः स्तूयमानश्च दर्श्यमानोऽङ्गुलीशतैः ॥ ९४ ॥ मानसं विपुलं स्वच्छं विदित्वेव जगत्प्रभोः । हंसश्रेणीभिरेताभिरभितश्चामरालिभिः ॥ ९५ ॥ वीज्यमानो जय जय जयेत्युक्तिपरं जनम् । सुप्रसादविशदया बाढमानन्दयन् दृशम् ॥ ९६ ॥ जनेनादृष्टपूर्वेण विस्तरेण समागमत् । सौधे रत्नमये शोभाविडम्बितविमानके ॥ ९७ ॥ (षोडशभिः कुलकम्) विभोः प्रविशतः सौधे मङ्गलानि सहस्रशः । अहंपूर्विकया चक्रुर्वारवध्वः समन्ततः ॥ ९८ ॥ रोहणं रत्नखान्येव वध्वा श्रीकान्तया युतम् । निरीक्ष्य भुवनाधीशं पितरौ मुदमापतुः ॥ ९९ ॥ कृत्वा जनिकृतोर्भक्तिं तदा तस्योचितां

मुदा । सिंहासने मणिमये निषण्णस्य जगद्गुरोः ॥ १०० ॥ विदधे मङ्गलान्यस्या गर्वमङ्गलशालिनः । आशिषामूर्जितस्यापि ददे पञ्चविधाशिषः ॥ १०१ ॥ (युग्मम्) किं बहूक्तेन कोऽप्यस्ति नैव स त्रिजगत्यपि । न यस्तेन प्रवेशेन प्रापदानन्दविस्मयौ ॥ १०२ ॥ राजानोऽथ विभुं नत्वा जातोद्वाहमहोत्सवम् । उपेत्य वर्धयामासुर्भूरिप्राभृतसम्भृताः ॥ १०३ ॥

अथ त्रिभुवनार्कस्यार्कतूलमदृशं भवम् । जानतोऽपि स्फुटं ज्ञानैस्त्रिभिर्नयनसन्निभैः ॥१०४॥ भवानदपतजन्तु सुदिधीर्परिपि न्यपम् । जानतः प्रतिबन्धं च पित्रोः प्राग्भवसम्भवम् ॥ १०५ ॥ कर्मभोगफलं वेद्यमवश्यमिति पश्यतः । सुविशालं कलयतः सुखं विषयसम्भवम् ॥ १०६ ॥ पश्यतो गीतनृत्यादि देवानामपि दुर्लभम् । परोपकारकरणरसिकस्य कृपात्मनः ॥ १०७ ॥ कुमारैर्गुणविस्तारैर्गम्भीरैर्भरमीरुभिः । सहस्रशस्तैः गजातमैन्यैः संसेवितस्य च ॥ १०८ ॥ विभोः कुमारपर्याये क्षणवत्क्षणशालिनः । हायनानां व्यतीयाय लक्षाणामेकविंशतिः ॥ १०९ ॥ (षड्भिः कुलकम्)

अथ जानन्नपि स्वामिस्वरूपं निर्जरैः सकैः । रूपदर्शनसञ्जाताऽत्यद्भुतो नाकनायकः ॥ ११० ॥ विष्णुभूपान्तिकगतमेत्य स्वामिनमानमत् । मस्तकन्यस्तहस्तश्च वदति स्म सविस्मयम् ॥ १११ ॥ लोकोत्तराद्भुतरूपालोकनाद्धोकनायकः । निर्निमेषी कृतार्था ममाद्य नयनावली ॥११२॥ त्वल्लावण्यामृतरसं ये पिबन्ति निरन्तरम् । विलोचनपुटैः श्लाघ्या विश्वे देव ! त एव हि ॥११३॥ त्रिलोक्यामपरः कः स्याद्विष्णुराजेन सन्निभः । विभुः कल्पद्रुमो यस्यावतीर्णस्त्वं गृहाङ्गणे ॥ ११४ ॥ प्रथमां कृतकृत्येषु रेखां नृपविशेषकः । एष एव समाप्नोति भुवनत्रयमध्यतः ॥ ११५ ॥ नृपः श्रीयांश नाद्यापि कृतार्थोऽहं सुरेश्वरः । चेद्द्रक्ष्यसि राज्याभिषेकमस्य भवामि तत् ॥ ११६ ॥ यन्मया प्रभुशः प्रोचे कुमारो भवतो महाः । दृष्टा जन्मादिका राज्याभिषेकस्तपयशिष्यते ॥११७॥

नृपैरुदुह्यमानाज्ञो नृपोऽसि
मया व्यूढश्चिरं राज्यभारः श्रान्तोऽधुनास्म्यहम् । तत्त्वं कथं समर्थोऽपि तं नोद्वहसि मानदः ॥ ११८ ॥ इत्थमुक्तोऽपि
त्वं तथापि हि । वत्स ! राज्याभिषेकं ते मम दृष्टिर्दिदृक्षति ॥ ११९ ॥ किं वा बहूदितेनाऽथ मया बद्धस्तवाञ्जलिः । ॥१२१॥
नो किञ्चित्कुमारः प्रतिपद्यते ॥१२०॥ तत्सम्प्रति कुमारेन्द्रं तथा कुरु ऋभुप्रभो ! । मनोरथद्रुमोऽस्माकं जायते सफलो यथा
अथ स्वामिपदन्यस्तशिरोम्भोजः सुरेश्वरः । प्रोचे ममोपरि विभो ! प्रसीद करुणां कुरु ॥ १२२ ॥ निपुणोऽपि नये नाथ !
चेत्त्वं तातं न मन्यसे । जने गुरुजनावज्ञा तत्त्वयैव प्रदर्शिता ॥ १२३ ॥ अयुक्तमुक्तमथवा मया तरलितात्मना । लोकोत्तरचरि-
त्रस्य कोऽहं तव विचारणे ॥ १२४ ॥ ततोऽविनयमर्थस्व सह विश्वपितामह ! । डिम्भदुश्चेष्टितानि स्युर्गुरूणां प्रमदाय यत् ॥ १२५ ॥
किं बहूक्तैस्तव पुरो धृतश्चैलाञ्चलो मया । तन्मे निजकभृत्यस्य शृङ्गारं देहि सुप्रभो ! ॥ १२६ ॥
अथ शक्रस्य पित्रोश्चादरं वीक्ष्य गुरुं तथा । मेने यद्गुरुयाश्चान्यथा गुरुषु नो नृणाम् ॥ १२७ ॥ महाप्रसाद इत्यूचे हरिः
प्रमदमेदुरः । नृपः पौरपरीवारान्वितो मुदमुवाह च ॥ १२८ ॥ सुरैः सुरेशस्तीर्थेभ्यो नीराण्यानाययत्ततः । चक्रतुः शक्रभूशक्रौ
सामग्रीमखिलामपि ॥ १२९ ॥ सुरासुरा नराः पौरा नरेन्द्राश्च समीपगाः । मिलिताः कलिता भक्त्या महता कौतुकेन च ॥१३०॥
अथ प्रथमतः शक्रश्चक्रे श्रीधर्मचक्रिणः । राज्याभिषेकं कल्याणकुम्भैः कल्याणकामनः ॥ १३१ ॥ पश्चाद्विष्णुनरेन्द्रेणानन्दाश्रुप्लुतदृ-
ष्टिना । सुसङ्गतमिदं येनाग्रजावरजता तयोः ॥ १३२ ॥ व्यधापयत्प्रमोदेन प्रभोरग्रे पुरन्दरः । तूर्यत्रिकाणि रम्भादिनृत्यारम्भाणि
कौतुकी ॥ १३३ ॥ कृतार्थं मन्यमानः स्वं विभो राज्याभिषेकतः । चिरं राज्यं विधेहीति प्रोच्य शक्रोऽगमद्दिवम् ॥ १३४ ॥

१ सुवर्णकलशैः ।

विष्णुराह महाराज! कृतार्थं इयतास्म्यहम्। याचे तु राज्यलक्ष्मीं ते पश्येयं सुचिरं दृशा ॥ १३५ ॥ सुप्रशस्यं पुरमिदं राज्यं जनपदो जनः। जातो येषां महाराज! स्वामी त्वं पुण्यपण्यतः ॥ १३६ ॥

श्रीश्रेयांसो महाराजो जज्ञेऽथाप्रतिशासनः। स्वयंप्रभैव सर्वत्र विभोराज्ञा चचार च ॥ १३७ ॥ पृथिवीं पालयत्यस्मिन्पृथ्वीपाले जनः सुखी। समृद्धश्चाभवन्नाममालायां भयनाम च ॥ १३८ ॥ विरुद्धानामपि मिथः स्निग्धबान्धवतोऽभवत्। दुर्विनीता विनीतत्वं भेजुर्दीना अदीनताम् ॥ १३९ ॥ दुर्भगा अपि सौभाग्यं द्रविणं निर्धना अपि। सरोगा अपि नैरुज्यं धर्मं प्रापुः परा अपि ॥ १४० ॥ परकार्यकराश्चासन्निजकार्यकरा अपि। दुर्बुद्धयोऽपि सुधियो विभौ भजति वैभवम् ॥ १४१ ॥ अथ कश्चिन्नरेन्द्रश्चेदहंयुर्दूरदेशगः। दर्शयत्यविनीतत्वं धूमध्वज इवाधिकम् ॥ १४२ ॥ ततः स्थानस्थितः स्वामी तस्य सम्मुखमानसम्। दापयत्याशु स स्वाच प्रणतः प्रीणितप्रभुः ॥ १४३ ॥ इति राज्यश्रियं श्रीमान् श्रेयांसः श्रेयसां निधिः। परिपालयति प्रीत्या सम्प्रीणितजगत्प्रभुः ॥ १४४ ॥ कालेनास्य च कान्तायां श्रीकान्तायां महेशितुः। सोमस्वमपिशुनीतः सुतोऽभूद्भूरिभाग्यभूः ॥ १४५ ॥ जन्मोत्सवं विधायैष सोमचन्द्र इतीरितः। स्वमानुसारतो धात्रीलाल्यमानो व्यवर्धत ॥ १४६ ॥ जातः क्रमात्कलायोग्यो ग्राहितः सकलाः कलाः। क्रमेण परिरब्धश्च लब्धया यौवनश्रिया ॥ १४७ ॥ ततः स कलितोऽङ्गेन चङ्गेन रुचिमालिना। आननेन च चन्द्रेण रूपेण च नवार्चिषा ॥ १४८ ॥ बुधेन मनसा नेत्रयुगेन गुरुणापि च। कविश्लाघ्येन वृत्तेन तेजसा स्थावरेण च ॥ १४९ ॥ ताराभिर्नखराजीभिरिति ग्रहमयोऽपि सः। न तु ग्रहमयो लोकचमत्कारकरोऽभवत् ॥ १५० ॥ (त्रिभिर्विशेषकम्) अथ चन्द्रयशोमुख्या विख्यातनृपनन्दनाः। पित्रा मोहद्रुमद्रोहकारिणा परिणायिताः ॥ १५१ ॥

अथ प्रभौ महाराजे राज्यश्रीपरिपालके । कुमारे सोमचन्द्रे च युवराजपदस्थिते ॥ १५२ ॥ जिनस्य पितरावायुः प्रपाल्य
स्वर्गमीयतुः । सनत्कुमारनामानं तत्कीर्तिश्रुतये किल ॥ १५३ ॥ (युग्मम्) ततो भवस्थितिं चित्ते भावयन् भुवनप्रभुः । राजलो-
कान्वितः कालोचितं व्यधित स्वर्द्धितः ॥ १५४ ॥ अशक्त इव तं द्रष्टुमनिष्टं स्पष्टमर्यमा । प्राप द्वीपान्तरं सन्ध्या चक्रन्द च
खगारवैः ॥ १५५ ॥ निर्यदिन्दिन्दिर[1]श्रेणीच्छलेन नलिनीगणः । सकज्जलमिवाऽस्रौघं[2] म्लानाम्बुजमुखोऽमुचत् ॥ १५६ ॥ आगा-
न्निशाऽऽश्वासयितुमिव नारीः शुचातुराः । ताराः स्वर्गगपित्रर्घपुष्पौघरुचयोऽस्फुरन् ॥१५७॥ लोकं शोकाग्निना तप्तं निर्वापितुमना
इव । सुधाकरः सुधातुल्यैः करैरुदयमागमत् ॥ १५८ ॥ दिनस्यादौ दिनेशोऽथ निजमाश्वासितुं जनम् । दुस्सहं विरहं सोढुमसहः
प्रागिवागतः ॥ १५९ ॥
भगवान् सर्वभावज्ञः स्वयं धीरशिरोमणिः । जनं निरीक्ष्य दुःखार्त्तं जगादेति जगद्गुरुः ॥ १६० ॥ शुचं विमुच्य धीरत्वं
श्रयध्वं तत्त्वचिन्तनात् । हरिर्हरिरिव स्वैरगतिदुर्ललितो यतः ॥ १६१ ॥ आयुर्वायुहताम्भोदनिभं प्रेमेन्द्रजालभम् । संयोगाः स्वम-
वद्दृष्टनष्टाः कष्टावहाः पराः ॥ १६२ ॥ किंचिन्न शोच्यमत्रास्ति प्रीतिस्थानं न किञ्चन । विवेकमेकमेवात्र भजत त्यजताऽरतिम्
॥ १६३ ॥ कृतान्ताऽदान्ततां मोहं विहाय ध्यायताऽनिशम् । श्रुत्वेति विदधे शोकशैथिल्यमखिलो जनः ॥ १६४ ॥
अथ नाथः क्षतक्षारक्षेपरक्षणदक्षिणः । दीक्षां जिघृक्षुरप्युर्वी[3]प्रतीक्ष्यः स प्रतीक्षते ॥ १६५ ॥ कियत्यपि गते काले मेल-
यित्वाऽखिलानपि । इलाधीशानिलाधीशं सोमचन्द्रं विभुर्व्यधात् ॥१६६॥ उवाच चानुमन्यध्वं संयमग्रहणाय माम् । स्नेहग्रन्थिश्लथं

१ भ्रमरश्रेणीदम्भेन । २ अश्रुसमूहम् । ३ जगत्पूज्यः ।

विष्णुराह महाराज! कृतार्थ इयतास्म्यहम् । याचे तु राज्यलक्ष्मीं ते पश्येयं सुचिरं दृशा ॥ १३५ ॥ सुप्रशस्तं पुरमिदं राज्यं जनपदो जनः । जातो येषां महाराज! स्वामी त्वं पुण्यपण्यतः ॥ १३६ ॥

श्रीश्रेयांसो महाराजो जज्ञेऽथाप्रतिशासनः । स्ववंशभैत्र सर्वत्र विभोराज्ञा चचार च ॥ १३७ ॥ पृथिवीं पालयत्यस्मिन्पृथ्वीपाले जनः सुखी । समृद्धग्रामवद्ग्राममालायां भयनाम च ॥ १३८ ॥ विरुद्धानामपि मिथः स्निग्धगान्धवतोऽभवत् । दुर्विनीता विनीतत्वं भेजुर्दीना अदीनताम् ॥ १३९ ॥ दुर्भगा अपि सौभाग्यं द्रविणं निर्धना अपि । सरोगा अपि नैरुज्यं धर्मं प्रापुः परा अपि ॥ १४० ॥ परकार्यकराश्चासन्निजकार्यकरा अपि । दुर्बुद्धयोऽपि सुधियो विभौ भजति वैभवम् ॥ १४१ ॥ अथ कश्चिन्नरेन्द्रश्चेदहंधुर्दूरदेशगः । दर्शयत्यविनीतत्वं धूमध्वज इवाधिकम् ॥ १४२ ॥ ततः स्थानस्थितः स्वामी तस्य सम्मुखमानसम् । दापयत्याशु स साम प्रणतः प्रीणितप्रभुः ॥ १४३ ॥ इति राज्यश्रियं श्रीमान् श्रेयांसः श्रेयसां निधिः । परिपालयति प्रीत्या सम्प्रीणितजगत्प्रभुः ॥ १४४ ॥ कालेनास्य च कान्तायां श्रीकान्तायां महेशितुः । सोमस्वप्नपिशुनीतः सुतोऽभूद्भूरिभाग्यभूः ॥ १४५ ॥ जन्मोत्सवं विधायैष सोमचन्द्र इतीरितः । स्वमानुसारतो धात्रीलाल्यमानो व्यवर्धत ॥ १४६ ॥ जातः क्रमात्कलायोग्यो ग्राहितः सकलाः कलाः । क्रमेण परिरब्धश्च स्वयंवरा यौवनश्रिया ॥ १४७ ॥ ततः स कलितोऽङ्गेन चङ्गेन रुचिमालिना । आननेन च चन्द्रेण रूपेण च नगार्चिषा ॥ १४८ ॥ बुधेन मनसा नेत्रयुगेन गुरुणापि च । कविश्लाघ्येन वृत्तेन तेजसा स्थावरेण च ॥ १४९ ॥ ताराभिर्नखराजीभिरिति ग्रहमयोऽपि सः । न तु ग्रहमयो लोकचमत्कारकरोऽभवत् ॥ १५० ॥ (त्रिभिर्विशेषकम्)
अथ चन्द्रयशोमुख्या विख्यातनृपनन्दनाः । पित्रा मोहद्रुमद्रोहकारिणा परिणायिताः ॥ १५१ ॥

पीठमकम्पत । पाकशत्रोरवधितो वेद कम्पस्य कारणम् ॥ १८३ ॥ उत्थायाऽभ्येत्य सप्ताष्टपदीं नत्वा जिनाधिपम् । आदिशद्धनदं
द्रव्यैर्जिनौकः परिपूरय ॥ १८४ ॥ स आदाय तदादेशमादिशज्जृम्भकाऽमरान् । नृपादेशान्महामात्या इव सेवकपूरुषान् ॥ १८५ ॥
राजराजाज्ञया तेऽथ राजराजस्य वेश्मनि । चिरं स्वर्णश्रियाऽवर्षन् पुष्करावर्तमेघवत् ॥ १८६ ॥ ततश्च भगवान् दीनदुःस्थितानां
च रोगिणाम् । नग्नभुग्नविपन्नग्नगतद्दकूपीठसर्पिणाम् ॥ १८७ ॥ द्विपथे त्रिपथे वापि चत्वरे च चतुर्मुखे । नियुक्तैर्घोषणापूर्वं स्वर्ण-
दानमदापयत् ॥ १८८ ॥ एका कोटिः सुवर्णस्य लक्षैरभ्यधिकाऽष्टभिः । आप्रातराशतः प्रीत्या प्रत्यहं प्रतिपद्यते ॥ १८९ ॥ ततः
सर्वेषु देशेषु कलिङ्गमगधादिषु । स्पष्टामष्टापदैर्वृष्टिं दृष्ट्वा व्यस्तारयन्निमाम् ॥ १९० ॥ जनोऽवक् लोकयुग्मस्य पावनं देवदर्शनम् ।
महादारिद्र्यसंहारि पुण्यप्राग्भारकारि च ॥ १९१ ॥ प्रावर्धन्त निधानानि दीयमानानि भूरिशः । समं दानरसेनेवाऽनुपमेन जिने-
शितुः ॥ १९२ ॥ तत्किञ्चन महादानं तत्रादीयत यत्र ते । श्रूयन्ते दायका एव देहि देहीति भापकाः ॥ १९३ ॥ जिनेन ददता
दानं दीनेष्वेतत्प्रकाशितम् । शिवमन्दिरसोपानमिदमेवादिमं जने ॥१९४॥ तत्संयमरथाऽऽरोहं मोहं हित्वा प्रकुर्वते । अयं शिवपुरी-
मार्गोऽनुसर्त्तव्यो जिनेन्द्रवत् ॥ १९५ ॥ इति प्रवर्तमानेऽस्मिन् दाने सोमेन्द्रभूपतिः । निजानुवाच सर्वत्र सत्रागारप्रवर्तने ॥१९६॥
क्षुधितास्तृषिताः केचित्केचिदायान्ति ये जनाः । पाखण्डिनो गृहस्था वा तथारूपाः परेऽपि वा ॥ १९७ ॥ तेषां समुचितस्थान-
स्थानामाश्वस्तचेतसाम् । चतुर्विधोऽपि दातव्य आहारः स्फारताप्रदः ॥ १९८ ॥ किञ्चेभा मन्दभद्राद्या विमानसदृशा रथाः । सप्ता-
श्वसन्निभाश्चाश्वा दुकुलमणिभूषणम् ॥ १९९ ॥ दर्शयतार्थिवर्गस्य ग्रामाकरपुराण्यपि । यो यच्च याचते तस्य तद्दातव्यमशङ्कि-

१ इन्द्रस्य । २ °क्षआनाम् ।

धत्ते धर्मे साहाय्यमक्षयम् ॥ १६७ ॥ वियोगकातरं चित्तं क्रियतां कातरेतरत् । अपि साहाय्यकर्तृणां फलं तुल्यं शुभाशुभे ॥ १६८ ॥ दुःश्रवं श्रुतिभिः पीत्वा विभोर्वचनमीदृशम् । अदम्भवाष्पदम्भेन तेऽवमन्निव दुर्जरम् ॥ १६९ ॥ स्वामिनाऽऽश्वासितास्तेऽथ सुधामधुरया गिरा । सगद्गदेन शब्देन जगदुः सगदा इव ॥ १७० ॥ नाथानाथा वयं स्मस्त्वा विना वैदेशिका इव । गम्यागम्यविभागं न ज्ञास्यामश्च गवाक्षवत् ॥ १७१ ॥ यद्यप्यस्तीदृशं नाथ! तथापि विशदे पथि । पथिकस्य प्रभोर्निम्नकारिणो वैरिणो वयम् ॥ १७२ ॥ ततो भवतु भद्रं वः फलन्तु च मनोरथाः । स्वामिन्! मित्रसहस्रेण प्रोचेऽथ भगवानिति ॥ १७३ ॥ यो मार्गो भवतो नाथ! भवितानः स एव हि । स्वामिनाऽनुमते तेषां तोषपोषः परोऽभवत् ॥ १७४ ॥

श्रीश्रेयांसे जिनाधीशे विभ्रत्यथ मतिं व्रते । विज्ञायासनकम्पेनाऽभ्येयुर्लोकान्तिकामराः ॥ १७५ ॥ ते च सारस्वतादित्या वह्न्यो वरुणा अपि । गर्दतोयाश्च तुंपिताऽव्याबाधा चाप्यरिष्टकाः ॥१७६॥ इति व्यजिज्ञपन्पादपीठपूजनपूर्वकम् । प्रणम्य मस्तकन्यस्तहस्तास्तमिति तुष्टुवुः ॥१७७॥ चेलाञ्चलाग्रसंलग्नतृणवद्राज्यमञ्जसा । परित्यजन् जगन्नाथ! स्तुत्यस्त्वं जगतामपि ॥ १७८ ॥ श्रीश्रेयांसजिनाधीश! सुराधीशनतक्रम! । जय! मोहमहामल्लजयेऽतुलपराक्रम! ॥१७९॥ यद्यपि त्व जगन्नाथ! धर्मतीर्थप्रवर्तने । उद्यतः स्वयमेवासि तारणाय शरीरिणाम् ॥ १८० ॥ तथापि नोऽधिकारोऽयमितिकृत्वा निवेद्यते । हितं समस्तजन्तूनां नाथ! तीर्थं प्रवर्तय ॥ १८१ ॥

इत्युक्त्वा तेषु यातेषु दानं दातुं जगद्गुरुः । सांवत्सरिकमारेभे भारेभे नखरायुधः ॥ १८२ ॥ विभौ वात्सरिकं दित्सौ दानं

१ काम एव गजस्तस्मिन् ।

सोमचन्द्रस्ततो राजा निजानिति समादिशत् । विधीयतां विभोर्योग्या शिविका विमलप्रभा ॥ २१८ ॥ मणिवेदीयुता न्यस्तर-
तसिंहासनान्विता । प्रक्कणत्किंकिणीजालामालिता रजतप्रभा ॥ २१९ ॥ (युग्मम्) तदैव ते समादेशं निष्प्रतिपत्तिमादधुः । तस्याः
समानां शक्रोऽपि सुपर्वभिरकारयत् ॥२२०॥ सा नानामणिभिः क्लिप्तशक्रकोदण्डविभ्रमा । अनेकभङ्गिस्तम्भाद्या मुक्तास्रग्भिर्विभू-
पिता ॥ २२१ ॥ सा पूर्वशिबिकामध्येऽनुप्रवेशं समातनोत् । प्रभा प्रदीपकस्येव प्रभायां शीतरोचिषः ॥ २२२ ॥ सिंहासनादथो-
त्थाय जिनेशः शिविकामिमाम् । अनु प्रदक्षिणीकुर्वन्नारुरोह महोद्यमम् ॥२२३॥ उपाविशच्च पूर्वाभिमुखे सिंहासने विभुः । अवहंश्च
शिरोभिस्तां सुरासुरनराधिपाः ॥ २२४ ॥ शाश्वतेन विमानेन शशी चैकः समागतः । जिनस्य शिरसि श्वेतमातपत्रमदीप्यत ॥२२५॥
रेजे हरिकरोद्धूतं स्वामिनश्चामरद्वयम् । सुवर्णशिखरिप्रस्थझरन्निर्झरसोदरम् ॥ २२६ ॥ सोमचन्द्रादिभूपालैरच्युताद्यच्युताग्रजैः ।
शिविका बालिकेवेयं मन्दमन्दमचाल्यत ॥ २२७ ॥ विभुमालोकितुं लोका निलयेभ्यो विनिर्ययुः । उदयन्तमिवादित्यमर्घाद्यैरप्युपा-
चरन् ॥ २२८ ॥ विमानच्छादितादित्यैरपि द्योतितभूतलैः । विभुं विलोकितुं व्योम व्यापि वैमानिकव्रजैः ॥ २२९ ॥ अमर्त्यमर्त्य-
सङ्घातनिर्घोषः कोऽपि सोऽभवत् । मथ्यमानो भवाम्भोधिरिव यत्रानुमीयते ॥ २३० ॥
तदा देवनिकायेनागच्छतागच्छतापि च । विमानस्थेन गगनाङ्गणमित्थमभाषत ॥ २३१ ॥ पद्मचम्पककंकेल्लिसिद्धार्थशणखंड-
वत् । स्वर्गवासिवनं साक्षाद्विकसत्कुसुमोत्करम् ॥२३२॥ मर्त्यामर्त्यकृतस्तूर्यनिर्घोषः कोऽपि सोऽजनि । यत्रस्ता वन्यदन्तीद्रा इवापुर्दि-
ग्गजेन्द्रताम् ॥ २३३ ॥ विभोश्च पुरतोऽप्यासीत् मणिमय्यष्टमङ्गली । कलसच्छत्रभृङ्गारध्वजाश्चामर्त्यहस्तगाः ॥ २३४ ॥ महाप-

१ इन्द्रैः ।

तम् ॥ २०० ॥ तथेति प्रतिपद्यैते नराधीशस्य शासनम् । आरम्भन्त सरभसं विधातुं तत्तथैव हि ॥ २०१ ॥ इति निष्क्रमणदाने दीयमाने मविसये । संवत्सरेण पूर्णेन सर्वसंख्याऽजनीदृशी ॥ २०२ ॥ शतानि त्रीण्यष्टाशीत्यधिकानिस्वर्णकोटयः । अशीतिस्वर्णलक्षाश्च ददिरे निष्क्रमोत्सवे ॥ २०३ ॥ असौ वलिविधानं तद्विधाय विधिवद्विभुः । उपवासी चकारे वादित्सुर्व्रतविधिं निधिम् ॥ २०४ ॥ तदा चाऽऽसनकम्पेन मत्वा दीक्षाक्षणं विभोः । समेयुः कृतसङ्केता इव सर्वेऽपि वासवाः ॥२०५॥ ते सुरेन्द्रा नरेन्द्रश्चा मिलितास्ते सहस्रशः । सोमचन्द्रप्रभृतयो विभुमेरं व्यजिज्ञपन् ॥ २०६ ॥ विदध्मो भगवन्दीक्षाऽभिषेकं भवतामिति । विभोर्देशमिवामाघाऽऽदेशमेते मुदं दधुः ॥ २०७ ॥ अथाऽच्युतसुराधीशः सुरैरानाय्य संमदात् । तीर्थोदकानि कलशैरष्टोत्तरसहस्रशः ॥ २०८ ॥ अभ्यषिञ्चद्विभुं स्वर्णमयैरन्येऽपि वासवाः । विदधुश्चन्द्रसूर्यान्ता अभिषेकं जगद्गुरोः ॥ २०९ ॥ सोमचन्द्रधराधीशस्ततोऽपरनृपैः समम् । ऋद्ध्या महत्या विदधेऽभिषेकं भुवनप्रभोः ॥ २१० ॥ दिव्यया गन्धकाषाय्या रूपिताङ्गस्ततो विभुः । गोशीर्षचंदनालिप्तो वसानो दिव्यवाससी ॥ २११ ॥ किरीटकुण्डलकटीसूत्रहारादिभूषितः । विसारिपारिजातादिमालालङ्कृतकन्धरः ॥ २१२ ॥ उपर्वो त्वमेवासि जगतां यः समुद्यतः । त्रैलोक्यशत्रून् कामादीन्निहन्तुं भुवनप्रभो ! ॥ २१३ ॥ (त्रिभिर्विशेषकम्) तमोपहं तवोदेतु शासनं रविबिम्बवत् । कुतीर्थिकदिवान्धानां दृष्टिसङ्कोचकारणम् ॥२१४॥ तथा प्रसरतात्कीर्तिलता ते त्रिजगद्वने । यथा पतन्त्यस्तल्लीनाः प्राप्नुवन्त्यतुलं फलम् ॥ २१५ ॥ अम्लापयन् जगन्नेत्रमालतीकलिकावलिम् । प्रकाशकर्ता त्वमसि जगद्दीपो निरञ्जनः ॥ २१६ ॥ स्तुत्वेति त्रिजगद्बन्धुं सङ्गीतकमकारयत् । द्वात्रिंशत्पात्र सम्बन्धनाटकेन मनोहरम् ॥ २१७ ॥

१ अङ्कतो संख्या चेयम् ३,८८,८०,००००० ।

पतद्भिः कुसुमैः पुष्पप्रकरैर्वा प्रकुर्वति ।
नम्रेरितलतादोर्दण्डैः स्वं महामहम् । अपराणि वनानीवाह्वयमाने विलोकितुम् ॥ २५३ ॥ पतद्भिः कुसुमैः पुष्पप्रकरैर्वा प्रकुर्वति । संम्प्राप्त इव वाचालमरालावलिकाच्छलात्
सरश्रकालिदंभेन निवद्धस्वर्णपङ्के ॥ २५४ ॥ सर्वर्त्तुकतया सर्वोद्यानमध्ये जयध्वजम् ॥ २५६ ॥ एतस्मिन् बाहुदन्तेयदत्तबाहुर्जिना-
॥ २५५ ॥ महाबलैरपि निरन्तरपल्लवदुस्तरे । कथञ्चिदपि सम्प्राप्त प्रवेशद्वारनिर्गमे ॥ स्वयं जगदलङ्कारोऽलङ्कारांस्तत्र सोऽमुचत् ।
धिपः । याप्ययानात्समुत्तीर्य तिंदुकद्रुतले स्थितः ॥ २५७ ॥ (सप्तभिः कुलकम्) राज्यश्रियं विमुच्याथ पटप्रान्तररेणुवत्
संयमश्रीपरीरम्भप्रत्यूहप्रतिमान् प्रभुः ॥२५८॥ द्विचत्वारिंशतं वर्षलक्षाणि परिरक्षिताम् । देवदूष्येण
॥ २५९ ॥ तपस्यस्य त्रयोदश्यां श्यामायां श्रुतिगे विधौ । पूर्वाह्णे च स्वयं लोचं स चक्रे पञ्चमुष्टिकम् ॥ २६० ॥ ततः सिद्धनमस्कारं कृत्वा सामायिकं
देवेन्द्रः केशपाशं प्रतीष्य तम् । क्षिप्त्वा क्षीरार्णवेऽभ्येत्य कोलाहलमवारयत् ॥ २६१ ॥
प्रभुः । प्रत्यपद्यत सावद्यवर्जनं त्रिविधं त्रिधा ॥ २६२ ॥

तुर्यज्ञानं ततो जज्ञे मनःपर्यायनामकम् । वभूव च क्षणं नारकाणामपि तदा मुदम् ॥ २६३ ॥ तैश्चातीव प्रसादस्य पात्रै-
सिंत्रैर्जगद्गुरोः । सहस्रेण नृपैरात्तं व्रतं स्वामिप्रसादवत् ॥ २६४ ॥ ततश्चतुर्विधाऽऽतोद्यनादो जयजयध्वनिः । सुरासुरनरकृतो
व्याप ब्रह्माण्डमण्डपम् ॥ २६५ ॥ विश्वत्रयेप्यवामस्य वामस्कंधे विभोर्न्यधात् । अदूष्यं देवदेवस्य देवदुष्यमृभुप्रभुः ॥ २६६ ॥
विश्वनाथं प्रणम्याथ सर्वसाधुसमन्वितम् । सुरेन्द्राश्च नरेन्द्राश्च सर्वेऽपि स्वपदं ययुः ॥२६७॥ ततः सपरिवारोऽपि विजहारान्यतः
प्रभुः । द्वितीयदिवसे प्राप पुरं सिद्धार्थनामकम् ॥ २६८ ॥ काले गोचरचर्यायास्तत्र नन्दगृहेशितुः । गृहे जङ्गमकल्पद्रुर्जगाम

१ इन्द्रेण दत्तो बाहुर्यस्य सः । २ फाल्गुनस्य । ३ गृहीत्वा । ४ अनुकूलस्य ।

ताकाः कादिन्त्रमालाभिः कलितास्ततः । याति वैडूर्यदंडस्मातपत्रं च निर्मलम् ॥ २३५ ॥ सिंहासनं पादपीठं पादुकायुक्मणीमयम् । उह्यमानं तु पुरुषैः पुरो याति जगद्गुरोः ॥ २३६ ॥ ततश्च रत्नपर्याणविभूषणगणान्वितम् । अष्टोत्तरं तुरङ्गाणां शतं याति नरैर्वृतम् ॥ २३७ ॥ ततः स्वर्णप्रतिमानप्रविष्टदशनद्वयम् । शतमष्टोत्तरं माद्यद्विरदानां चचाल च ॥ २३८ ॥ अचलत्किङ्किणीघण्टाध्वजच्छत्रलमद्भुतम् । अष्टोत्तरं शतं स्यंदनानां नानायुधैर्युतम् ॥ २३९ ॥ उद्भटानां भटानां च शतमष्टोत्तरं पुनः । ययौ सेनान्यसङ्ख्यानि चतुरङ्गाणि तानि तु ॥ २४० ॥ प्राक् महेन्द्रध्वजच्छ्यातिच्छत्रपरिवारितः । स योजनसहस्रोच्चः सहस्रकुंडमीवृतः ॥ २४१ ॥ लम्बमानपुष्पमालः स्फुरद्वैडूर्यदण्डगः । अचालीदमरोत्क्षिप्तः प्रकणत्किंकिणीगणः ॥ २४२ ॥ तत्पुरश्चटुनर्मादिनिपुणा लोकहासकाः । गीतनर्तनवादित्रखेलयकौतुककारकाः ॥२४३॥ अथोग्रभोगराजन्यक्षत्रियामात्रसैन्यपाः । अश्वेभरथयानाधिरूढाः प्रौढर्द्धयोऽचलन् ॥ २४४ ॥ असङ्ख्यातास्ततो देवा देव्योऽपि च विमानगाः । निजेन परिवारेण कलिताश्चलिता मुदा ॥ २४५ ॥ सोमचन्द्रनृपः स्नात्वा कृत्वा शृङ्गारमद्भुतम् । जयकुञ्जरमारूढः सितच्छत्रविभूषितः ॥ २४६ ॥ चामरैर्वीज्यमानश्च बहुसैन्यसमन्वितः श्रीश्रेयांसप्रभोः पृष्टस्थितस्तदनु च स्थितः ॥ २४७ ॥ प्रभुर्देहप्रभापूरपिशङ्गितदिशावतिः । प्रासादस्थे जने चेलोत्क्षेपं कुर्वति सर्वतः ॥ २४८ ॥ सुपर्वसु च कुर्वत्सु कुसुमप्रकरं पुनः । सुरीविद्याधरीनारीजने नृत्यं प्रकुर्वति ॥ २४९ ॥ दीयमानेषु दानेषु पठत्सु सुरवन्दिषु । सहसाम्रवणं प्राप निष्पापः परमेश्वरः ॥ २५० ॥ (त्रिभिर्विशेषकम्) पत्रवल्लीयुते तत्र मण्डितश्रीसुरप्रभे । शुभतिलकलिते तरुणातिमदप्रदे ॥ २५१ ॥ रसालमञ्जरीजालमञ्जुगुञ्जन्मधुव्रतैः । प्रभोरेतस्य कुर्वाणे सौवागतिकतामिव ॥ २५२ ॥ पव-

१ चकाज इति भाषायाम् । २ कचुपताकाभिः युक्तः ।

भवेऽक्षया ॥ २८८ ॥ विहृतेऽथ विभौ नन्दः पीठं तत्पदयोर्व्यधात् । पदप्रतिकृतिं कोऽपि नाक्रामति यथा विभोः ॥ २८९ ॥
स्वामिनो ज्ञानचारित्रदर्शनैरसमैरथ । भावयतो वर्धमानैरात्मानं प्रतिवासरम् ॥ २९० ॥ अप्रतिवद्धविहारान्मोहं दलयतो भृशम् ।
कुर्वतश्च तपःकर्म कर्ममर्मभिदेलिमम् ॥ २९१ ॥ विहृत्याब्दद्वयं सिंहपुरे पुनरुपेयुषः । सहस्राम्रवणे दीक्षावृक्षाधःस्थितिशालिनः
॥ २९२ ॥ शुक्लध्यानाभिधयुग्माद्घातिकर्मविघातिनः । पूर्वाह्णे माघमासाऽमावास्यायाः श्रुतिगे विधौ ॥ २९३ ॥ नित्यमस्खलितं
पूर्णं निर्व्याघातमनुत्तरम् । केवलज्ञानमुत्पेदे लोकालोकप्रकाशकम् ॥ २९४ ॥ (पञ्चभिः कुलकम्)
अथासनप्रकम्पोत्थाऽवधिज्ञानोपयोगतः । विज्ञाय केवलं भर्त्तुरिन्द्राः सर्वे समागमन् ॥ २९५ ॥ जिनाधीशस्य समवसरणं
कर्तुमिच्छवः । मरुत्कुमाराः पृथिवीमायोजनममार्जयन् ॥ २९६ ॥ ततो मेघकुमारास्तामभ्यषिञ्चन्पयोभरैः । चन्दनद्रवकाश्मीर-
घनसारादिवासितैः ॥ २९७ ॥ भूमिः साम्भोभिषेकेण वाष्पं बहुममुञ्चत । निजोत्सङ्गप्रवृद्धस्य रजसः शमनादिव ॥ २९८ ॥
रत्नादिदलिकैर्भूमिं वध्नन्ति व्यन्तरामराः । जानुदघ्नैर्विचित्रैश्च कुसुमैः पूरयन्ति ताम् ॥ २९९ ॥ व्यन्तरेन्द्रा व्यधुस्तत्र चतुरस्तोर-
णानपि । रूप्यं वप्रं व्यधुश्चात्र देवा भवनवासिनः ॥ ३०० ॥ ससुवर्णमयैः शुभ्रः कपिशीर्षैरसज्जत । सहस्रमौलिरत्नाढ्यः कुण्डली
कुण्डलीशवत् ॥ ३०१ ॥ ज्योतिष्कदेवा तन्मध्ये प्राकारं कनकैर्व्यधुः । दाक्षिण्याद् दक्षिणादत्तमिव मेरुमहीभृता ॥ ३०२ ॥
तत्र रत्नमयान्येते कपिशीर्षाणि चक्रिरे । तन्मध्यगार्कविम्बेभ्यः स्थापितानीव कानिचित् ॥ ३०३ ॥
विमानवासिनो रत्नवप्रं तस्याऽन्तरा व्यधुः । प्रत्यक्षं विभुना रागं दर्शयन्त इवोज्झितम् ॥ ३०४ ॥ तत्राभूत्कपिशीर्षालिः
पञ्चवर्णमणीमयी । सर्ववर्णाद्विरोधित्वमाख्यान्तीव जिनान्तिके ॥ ३०५ ॥ विभुं विभुं समासाद्य माद्यच्चित्ता इवाखिलाः ।

जगतांपतिः ॥ २६९ ॥ तदा च तद्गृहे पुत्राभिधानकरणोत्सवः । आस्ते स्वजनवर्गश्चाखिलोऽपि हि निमन्त्रितः ॥ २७० ॥ देशाचाराच्च तत्रत्यो जनः क्षीरान्नभोजनः । परमान्नादिकं तत्र बह्वास्ते प्रगुणीकृतम् ॥२७१॥ भगवन्तं ततो वीक्ष्य नन्दः सानन्दमानसः । श्रीश्रेयांसः प्रभुरयमुपेत इति चिन्तयन् ॥२७२॥ ससम्भ्रमं समुत्थाय परैः परिजनैर्युतः । सप्ताष्टानि पदान्यागात्सम्मुखो भुवनप्रभोः ॥२७३॥ शीर्षेण हर्षतो भूमिं घट्टयित्वा पुनः पुनः । प्रभोश्चेलाञ्चलेनाशु चरणौ पर्यमार्जयत् ॥२७४॥ ततो भालतलन्यस्तहस्तः शस्तमिदं जगौ । अद्य मे सफलं जन्म पुण्यान्यद्योदितानि च ॥ २७५ ॥ सफलं जीवितं चाद्य पवित्रं च गृहाङ्गणम् । यच्चिन्तामणिकल्पद्रुनिधिरत्नं समागतः ॥ २७६ ॥ नामापि श्रूयते नाथ त्वदीयं सुकृतोदयात् । किं पुनर्दर्शनमिदं दर्शनानन्ददायिनम् ॥ २७७ ॥ तदसौ श्रीः परिजनो ममेदं जीवितं वपुः । सर्वमेतत्त्वदायत्तमनुगृह्णातु मां प्रभुः ॥ २७८ ॥ उक्त्वेति स ऋजुप्रज्ञः स्वर्णरत्नादिकं पुरः । अमुञ्चच्च प्रभुस्तच्च प्रत्यैच्छन्निष्परिग्रहः ॥ २७९ ॥ ततः परान्नं तदुपनीतं द्रव्यादिशुद्धिमत् । मत्वा श्रेयांसतीर्थेशः पाणिपात्रमधारयत् ॥ २८० ॥ प्रादात्तदुच्चरोमाञ्चकवचः स च पायसम् । दिवि देवनिकायेन प्रहतो दुन्दुभिस्ततः ॥२८१॥ सुगन्धैः कुसुमैर्वृष्टिः कृता गन्धोदकैरपि । अर्धत्रयोदशस्वर्णकोट्यश्चापतन् गृहे ॥२८२॥ मन्दान्दोलितवल्लीकः सुरभिः पवनो ववौ । चेलोत्क्षेपोऽप्यविक्षेपोऽभवज्जयजयध्वनिः ॥ २८३ ॥ अहो दानमहोदानमित्युद्घुष्टं च निर्जरैः । आस्फालयच्च त्रिपदीं तुष्टं देवकदम्बकम् ॥ २८४ ॥ तूर्यत्रिकमनोहारि धारिताघमितिप्रभोः । त्रैलोक्यानन्दकं जज्ञे पारणं पुण्यकारणम् ॥ २८५ ॥ स्तुमस्तं गृहिणं नन्दमथ चानन्दनन्दनम् । यन्नामकरणे विश्वस्वामी स्वजनतामगात् ॥२८६॥ दत्ते निमन्त्रितः सत्यं महानिति यतो विभुः । अर्धत्रयोदशस्वर्णकोटीर्भक्तः प्रदत्तवान् ॥ २८७ ॥ स्वाजन्यं स्वामिनः किञ्चिदिहलोकोत्तरं पुनः । येन भुक्तिश्च मुक्तिश्च तस्मिन्नेव

इत्थं सभा द्वादशाऽस्थुर्द्वितीयस्य तु
भवनपतिज्योतिष्कव्यन्तरामराः । ऐश्यां वैमानिका देवा मानवा मानवीयुताः ॥ ३२४ ॥ स्वामिपार्श्वेऽभवत्तेषा-
मध्यगाः । नित्यवैरा अपि प्राणिगणा वैरविवर्जिताः ॥ ३२५ ॥ यानान्यस्थुस्तृतीयान्तः सुरासुरनृणामपि । वासवा वासनाजुषः ॥ ३२७ ॥
मपि विश्राममूरिव ॥ ३२६ ॥ अथ प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य च जगद्गुरुम् । स्वस्वस्थान उपाविक्षन् वासवा वासनाजुषः ॥ ३२७ ॥
सोमचन्द्रादयोऽप्यत्र मनुजेन्द्राः समाययुः । नत्वा प्रदक्षिणापूर्वं तस्थुः स्थाने पुरोदिते ॥ ३२८ ॥
सौधर्मेन्द्रः पुनर्नत्वा शेखरं शेखरोपरि । कुर्वन् करद्वयेनैवं पंणायामुपचक्रमे ॥ ३२९ ॥ श्रीश्रेयांसजिनाधीश ! दिनाधीश !
ततः क्षितौ । मन्दधीरप्यहं धीर इव त्वां स्तौमि भावतः ॥ ३३० ॥ दुष्कर्ममत्तमातङ्गघटापाटनलम्पटे । सिंहे त्वय्यवतीर्णेऽभूत्सत्यं
सिंहपुरं प्रभो ! ॥ ३३१ ॥ भेदो मानसिको वाचनिको वाप्यस्तु दूरतः । त्वज्जन्मदायिनो देव ! नाभिधानेऽपि भिन्नता ॥ ३३२ ॥
एकविष्णुसुतः कामो विष्णुद्वयसुत ! त्वया । यज्जितस्तत्र किं चित्रं द्वाभ्यामेको हि जीयते ॥ ३३३ ॥ मासानां श्रावणज्येष्ठ-
तपस्तपसां त्वया । कल्याणपञ्चका न्यक्षाः श्यामला विमलीकृताः ॥ ३३४ ॥ मासि यत्रावतीर्णोऽसि हित्वा स्वर्गमपि प्रभो ! ।
ज्येष्ठत्वं त्रिजगज्ज्येष्ठ ! न स्यात्तस्य कथं भुवि ॥ ३३५ ॥ त्वया निजावतारेण यत्पष्ठी बहुमानिता । तत्तस्यां लिखितं लोको मन्येऽहं
बहु मन्यते ॥ ३३६ ॥ विश्वोपकारिणां भूमिरुहां पत्रापहारिणः । फल्गुता फाल्गुनस्यापि हृता त्वज्जन्मना जिन ! ॥ ३३७ ॥
यदादि समभूद्वृद्धिर्जिनेश ! तव जन्मना । तदादि मन्महे वृद्धिद्वादशी प्रथिता जने ॥ ३३८ ॥ त्वदीयदीक्षया नाथ ! सर्वकर्मवि-
शुद्धया । द्वितीयदिवसे जज्ञे सर्वशुद्धा त्रयोदशी ॥३३९॥ उदितकेवलज्ञानादित्यादित्यात्त्वाभवत् । अनया माघमासस्यामावास्यापि

१ स्तुतिम् । २ तपः–माघमासः ।

शोलास्ते ननृतुरिव ध्वजैरूर्ध्वीकृतैर्भुजैः ॥ २०६ ॥ इन्द्रनीलमयास्तत्र तोरणाश्च विरेजिरे । कक्षा इव जिनाधीशं प्रति तीर्थकरश्रियः ॥ २०७ ॥ द्वाराणि द्वादशैतेषु प्राकारेषु विरेजिरे । सभाद्वादशकस्यापि प्रवेशाय पथा इव ॥ २०८ ॥ प्रतिद्वार धूपघटीं वापीं चापि व्यधुः सुराः । जाड्यतापप्रतीकारकारिणः कौतुकादिव ॥ २०९ ॥ रत्नशालस्य मध्ये च विदधुर्व्यन्तरामराः । रत्नसिंहासनं रत्नपादपीठसमन्वितम् ॥ २१० ॥ उत्फुल्लपल्लवं तस्योपरि कंकेल्लिपादपम् । तं द्वादशगुण स्वामिशरीरस्य समुच्छ्रयात् ॥ २११ ॥ छादयन्त च समवसृत्युर्वीमखिलामपि । कौसुम्भैरिव वासोभिः सन्ध्याभ्रारुणपल्लवैः ॥२१२॥ (युग्मम्) उपर्युपरिगं छत्रत्रयं तत्र सुरा व्यधुः । जगत्त्रितयसाम्राज्यलक्ष्मीव्यापनकर्मठम् ॥ २१३ ॥ सहस्रयोजनाऽऽयामः श्वेतकेतनकैतवात् । भव्यान् भवरिपोस्त्रातुं जगद्धस्त इवोर्द्धितः ॥ २१४ ॥ मध्यवप्रद्वयीमध्ये विभुविश्रामहेतवे । ऐशान्यां विदधुर्देवा देवच्छन्दं मणीमयम् ॥ २१५ ॥ व्यन्तरा धर्मचक्रं च सौवर्णकमले न्यधुः । आश्लेपकारिणौ पद्मपद्मबंधू इव स्फुटौ ॥ २१६ ॥ वैसुपद्मेषु नवसु निदध घरणद्वयम् । तत्रैष्विव जिनस्याग्रे प्रस्फुरत्सु पुरःपुरः ॥ २१७ ॥ स्तुवन्त्रिदशकोटीभिः परितः परिवारितः । पूर्वद्वारेण समवसरणे प्राविशत्प्रभुः ॥ २१८ ॥ ततः प्रदक्षिणीचक्रे चैत्यद्रुं विधिवेप यत् । नमस्तीर्थायेत्युदित्वा पूर्वामुख उपाविशत् ॥ २१९ ॥ परकाष्ठात्रिके मैत्तिकाग्रास्था व्यन्तरामराः । रूपत्रयं व्यधुस्तुल्यं प्रभोरेव प्रभावतः ॥ २२० ॥ एकमूर्तिरपि तदा चतुर्मूर्तिधरोऽभवत् । चतुर्गतिगतान् जन्तूनुद्दिधीर्षुरिव प्रभुः ॥ २२१ ॥ अभूद्भामण्डलं मौलिपृष्ठगं भुवनप्रभोः । तेजसा निर्जितं जातं सूर्यबिम्बमिवानुगम् ॥ २२२ ॥ साधुस्वर्गावधूसाध्वीसभा दिशि विभास्वतः । नैर्ऋतेऽथ भुवनवनज्योतिष्कयोषितः ॥ २२३ ॥ वायव्या

१ वप्राः । २ सुवर्णकमलेषु । ३ भक्तेरुत्कर्षे स्थिताः ।

नवमः सर्गः ।

अथ कुन्दद्युता दन्तद्युता त्रिजगतीगुरुः । वृन्दारुवृन्दे धर्मस्य वर्णिकां दर्शयन्निव ॥ १ ॥ एकयापि सर्वभाषापरिणामादनेकया । नभोऽम्भोधरसम्भूतगर्जगम्भीरधीरया ॥२॥ विश्वसन्तापहारिण्या सुधारसकिरा गिरा । जिनेन्द्रः सुप्रमां धर्मकथां कर्तुं प्रचक्रमे ॥ ३ ॥ (त्रिभिर्विशेषकम्) कल्पद्रुम एवायं सर्वसङ्कल्पितप्रदः । दानशीलतपोभावैश्चतुःशाखः स बुध्यताम् ॥४॥ दानं प्रथममेतेषु बहुधा तच्च विश्रुतम् । ज्ञानप्रदानं तेष्वाद्यं सर्वकल्याणकारकम् ॥ ५ ॥ ज्ञानी ज्ञानेन विज्ञाय कृत्याऽकृत्यान्तरं ततः । परित्यज्य अकृत्यानि कृत्यानि विदधाति च ॥ ६ ॥ सुखपात्रं यशःपात्रं कुर्वन् कृत्यानि जायते । अत्रामुत्र तु गीर्वाणनिर्वाणश्रीपदं भवेत् ॥ ७ ॥ अज्ञानी तु परभवे भवेद्दुःखस्य भाजनम् । ततो ज्ञानस्य दाता स्यात्समग्रसुखदायकः ॥ ८ ॥ कथ्यते दुष्प्रतीकारोऽत एव ज्ञानदायकः । एकजन्मोपकारीणि दानान्यन्यानि जन्मिनाम् ॥९॥ क्षेमङ्करोपकारि च लोकद्वयसुखप्रदम् । ज्ञानप्रदानमेवैकं तेनेदं प्रथमं मतम् ॥ १० ॥ अथाभयप्रदानं स्यादिष्टं निखिलदेहिनाम् । यस्मादारोग्यमायुश्च सुखं सौभाग्यमद्भुतम् ॥ ११ ॥ जीवानां यद्विना कष्टानुष्ठानानि बहून्यपि । सकलान्यफलानि स्युरूपरक्षिप्तबीजवत् ॥ १२ ॥ विद्या लक्षणहीनेव रूपहीनेव नाटिका । अलोचनं मुखमिव निर्लावण्येव चारुता ॥ १३ ॥ व्योमेव रविचन्द्राभ्यां विना तारावलीव च । विलास इव निःश्वस्य लिप्सेव विनयं विना ॥ १४ ॥ ज्ञानहीनो गुरुरिव निर्वारीव सरोवरम् । विचारहीनो वैद्यो वा महीपतिरिवानयः ॥ १५ ॥ निर्लज्जेव कुलवधूः सद्वृक्ष इव निष्फलः । न शोभते दयाहीनं धर्मकर्म सुबह्वपि ॥ १६ ॥ (चतुर्भिः कलापकम्) गर्भे जन्मनि बालत्वे युवत्वे चापि यन्मृतिः । आधयो व्याधयो वा स्युर्दौर्भाग्यं बन्धनं तथा ॥ १७ ॥ अपराण्यपि दुःखानि हिंसाविषमहीरुहः । कुसुमानि

जिनधरः ॥ ३४० ॥ अवधिज्ञानतो वेत्ति भाविनं तेऽपुनर्भवम् । श्रावणे मासहं तेन तं स्तुवेऽनन्तसातदम् ॥ ३४१ ॥ शुक्लं मासाधिको भक्तौ श्रावणः श्रवणाङ्कुरोः । कदाप्यारोप्य नामुञ्चयस्त्वां सिद्धिविहङ्गिकाम् ॥ ३४२ ॥ तिथिर्द्वयोस्तृतीयापि सौभाग्यभाग्यभूः । भुक्ताहारे भवान्यस्यां मुक्तिश्रीभूषणं विभो ! ॥ ३४३ ॥ श्रेयांसं त्वां स्मरन्तः स्वं श्रेयांसं मन्वते जनाः । मन्ये तेषां क्षणादेव त्वयि देव ! लयोऽजनि ॥३४४॥ कल्याणपञ्चकेनेति स्तुतस्त्वं जिननायक ! । वितरानन्तकल्याणानन्दकल्याण-मेर मे ॥ ३४५ ॥ स्तुत्वेति भावेन जिनाधिनाथं सौधर्मनाथः पुनरेव नत्वा । समस्तवैमानिकमानवानां पुरोन्यपीदत् विभुसम्मु-खीनः ॥ ३४६ ॥ इह विभुविवाहराज्याभिषेकपितृदेवलोकगतिदीक्षाः । उदितानि केवलोद्भवसमवसृतिस्थापनानि सर्गेऽत्र ॥३४७॥

इत्याचार्यमानतुङ्गसूरिविरचिते श्रीश्रेयांसचरिते महाकाव्ये भयत्रयनिषद्धे केवला-लोकवर्णनो नाम अष्टमः सर्गः ॥

तत्र दर्शयितुं स्वास्यं जनस्याग्रे न शक्नुतः ॥ ३६ ॥
हि जीर्यत्यशनवत् क्रमात् ॥ ३५ ॥ दारिद्र्येणातिरौद्रेणापद्रुतौ तौ विमानितौ । तत्र दर्शयितुं स्वास्यं जनस्याग्रे न शक्नुतः ॥ ३६ ॥
पर्यालोच्य ततो यातां पाटलीपुत्रपत्तने । तौ लक्ष्मीभारतीहीनाविति शुश्रुवतुर्जनात् ॥ ३७ ॥ यथार्थाख्यो गुणनिधिरुपाध्या-
योऽत्र तिष्ठति । धनी परोपकारस्य करणे च समुद्यतः ॥ ३८ ॥ तौ विज्ञाय तदावासं गतावनमतां च तम् । तौ सुरूपौ विपण्णौ
च वीक्ष्याऽयं हृद्यचिन्तयत् ॥ ३९ ॥ धिगस्तु वेधसो दुर्मेधसो विलसितं हहा! । एवंविधेऽपि रूपे यदिमौ दारिद्र्यविद्रुतौ ॥४०॥
ध्यात्वेत्युचे युवां कौ तु किमर्थं च समागतौ । तस्याग्रे तौ स्ववृत्तान्तं सर्वमप्याख्यतां ततः ॥ ४१ ॥ उक्तौ तेनाथ च कला-
गुरुणा करुणावता । मद्गृहे तिष्ठतां वत्सौ दास्ये वां भोजनाद्यहम् ॥ ४२ ॥
अथ तौ तत्र निश्चिन्तौ भोजनाच्छादनादिके । कलां जगृहतुस्तस्मात्कलाचार्यात्कलानिधेः ॥ ४३ ॥ दिनैः कतिपयैर्जातौ
तौ कलासु विशारदौ । इत्यूचतुरुपाध्यायं प्रणम्य विहिताञ्जली ॥ ४४ ॥ विद्यादानादन्नदानाद्भयत्राणाच्च पोषणात् । तात-
स्त्वमसि नौ तातो चतुर्धान्यत्किमुच्यते ॥४५॥ एकैकस्य कृतस्यास्य नाऽऽवामाऽऽनृण्यभाजनम् । भवावो जीवितेनापि परं किमपि
नास्ति नौ ॥४६॥ प्रसद्यादिशत प्रीत्या स्वस्थानगमनाय नौ । यावः प्रभावतस्ते स्यात् पाणिग्रहविधिर्यथा ॥४७॥ तदीयविनयप्रीतः
प्राहोपाध्यायपुङ्गवः । कन्ये मम स्तो दास्ये वां चिन्ता कार्या न साम्प्रतः ॥ ४८ ॥ उक्त्वेति तौ निजसुतोद्वाहं तेन विधापितौ ।
अपुत्रश्च सपत्नीकः सोऽग्रहीत्तापसव्रतम् ॥ ४९ ॥ कालेनाव्यवसायत्वात्तद्द्रव्ये परिनिष्ठिते । दारिद्र्योपद्रुतौ जातौ विषादमलिनाननौ
॥ ५० ॥ निर्भाग्याविति निर्भीभ्यां भार्याभ्यामभिभाषितौ । निर्भर्त्स्यैते नरत्वेन घटितौ यत् युवामपि ॥ ५१ ॥ वेधसा स्वं च

१ पत्न्यः ।

फलं तु स्यान्नरकस्यैव यातना ॥ १८ ॥ तदाहारादिदानेभ्योऽभयदानं विशिष्यते । प्राणदं श्लाघते वध्यो राज्यस्यापि प्रदायकात् ॥ १९ ॥ धर्मोपष्टम्भदानं तु त्रितयं बहुधा हि तत् । शय्याचतुर्विधाहारवस्त्रपात्रादिभेदतः ॥ २० ॥ रत्नत्रययुते पात्रे धर्मार्थं बहुमानतः । दीयमानं निरवद्यं जायते तन्महाफलम् ॥ २१ ॥ पात्रं सप्तविधं जैनं बिम्बं भवनमेव च । संघश्चतुर्विधः शस्ता पुस्तकानां च संहतिः ॥ २२ ॥ क्षेत्रेषु सप्तस्वेतेषु धनबीजं निवेश्य यः । सिञ्चेद्भावाम्भसा तस्य शिवश्रीसस्यमक्षयम् ॥ २३ ॥ नियोजयन्ति ये पात्रे नाप्यत्राऽऽनिधनं धनम् । ते श्रियः स्युर्विना वृत्तिं पत्तयः पत्तयस्तु न ॥ २४ ॥ पुरस्सरीकृतधनास्तद्धना भूमिबन्धनम् । कुर्वन्तो यान्त्यधो भूमावत्र चित्रमसम्बलाः ॥ २५ ॥ पुण्यप्राप्यमिह प्राप्य पात्रं चित्तं धनं तथा । दानं दत्ते न यो मूढस्तेनात्मा वञ्चितो हहा ! ॥ २६ ॥ धनेन बह्वधीनेनाऽस्थिरेणाऽसुखदायिना । निश्चलं निरपायं च धीमानर्जयते सुखम् ॥ २७ ॥ तस्माद्दाने सुपात्रस्य यत्यं मतिमता सदा । प्राग्भवे दत्तसद्दानः श्रीदत्तोऽत्र निदर्शनम् ॥ २८ ॥

तथाह्यस्ति जयपुरे पुरे क्षत्रियगोत्रजः । चण्डसिंहाभिधश्चण्डसिंहो वैरीभदारणे ॥ २९ ॥ तस्यास्ति चन्द्ररेखाख्या रेखाप्राप्ता सखीजने । निर्मला चन्द्ररेखावद्गुणरेखान्विता प्रिया ॥ ३० ॥ तयोर्विषयसौख्येन याति काले कियत्यपि । उभावभूतां तनयौ सनयौ विनयान्वितौ ॥३१॥ प्रथमो वैरिसिंहाख्यो रणसिंहाभिधः परः । रामसौमित्रिवत्प्रीतिकलितौ तौ परस्परम् ॥३२॥ तयोश्च यौवनारम्भे स्वकर्मपरिणामतः । आलेख्यशेषतां प्राप चण्डसिंहः शिरोरुजा ॥ ३३ ॥ तदीयविरहार्चिष्मत्तापनिर्वापणनिधौ । शिश्राय तत्प्रिया वह्निं चन्दनद्रवशीतलम् ॥ ३४ ॥ सुतौ शोकयुतौ कृत्वा स्वपित्रोरौर्ध्वदेहिकम् । जातावशोकौ शोको

१ कृपणाः । २ मृत्युम् ।

हि जीर्यत्यशनवत् क्रमात् ॥ ३५ ॥ दारिद्र्येणातिरौद्रेणापद्रुतौ तौ विमानितौ । तत्र दर्शयितुं स्वास्यं जनस्याग्रे न शक्नुतः ॥ ३६ ॥
पर्यालोच्य ततो यातां पाटलीपुत्रपत्तने । तौ लक्ष्मीभारतीहीनाविति शुश्रुवतुर्जनात् ॥ ३७ ॥ यथार्थाख्यो गुणनिधिरुपाध्या-
योऽत्र तिष्ठति । धनी परोपकारस्य करणे च समुद्यतः ॥ ३८ ॥ तौ विज्ञाय तदावासं गतावनमतां च तम् । तौ सुरूपौ विषण्णौ
च वीक्ष्याऽयं हृद्यचिन्तयत् ॥ ३९ ॥ धिगस्तु वेधसो दुर्मेधसो विलसितं हहा ! । एवंविधेऽपि रूपे यदिमौ दारिद्र्यविद्रुतौ ॥४०॥
उक्तौ तेनाथ च कला-
ध्यात्वेत्युचे युवां कौ तु किमर्थं च समागतौ । तस्याग्रे तौ स्ववृत्तान्तं सर्वमप्याख्यतां ततः ॥ ४१ ॥
गुरुणा करुणावता । मद्गृहे तिष्ठतां वत्सौ दास्ये वां भोजनाद्यहम् ॥ ४२ ॥
अथ तौ तत्र निश्चिन्तौ भोजनाच्छादनादिके । कलां जगृहतुस्तस्मात्कलाचार्यात्कलानिधेः ॥ ४३ ॥ दिनैः कतिपयैर्जातौ
तौ कलासु विशारदौ । इत्यूचतुरुपाध्यायं प्रणम्य विहिताञ्जली ॥ ४४ ॥ विद्यादानादन्नदानाद्भयत्राणाच्च पोषणात् । तात-
स्त्वमसि नौ तातो चतुर्धान्यत्किमुच्यते ॥४५॥ एकैकस्य कृतस्यास्य नाऽऽवामाऽऽनृण्यभाजनम् । भवावो जीवितेनापि परं किमपि
नास्ति नौ ॥४६॥ प्रसद्यादिशत प्रीत्या स्वस्थानगमनाय नौ । यावः प्रभावतस्ते स्यात् पाणिग्रहविधिर्यथा ॥४७॥ तदीयविनयप्रीतः
प्राहोपाध्यायपुङ्गवः । कन्ये मम स्तो दास्ये वां चिन्ता कार्या न साम्प्रतः ॥ ४८ ॥ उक्त्वेति तौ निजसुतोद्वाहं तेन विधापितौ ।
अपुत्रश्च सपत्नीकः सोऽग्रहीत्तापसव्रतम् ॥ ४९ ॥ कालेनाव्यवसायत्वात्तद्द्रव्ये परिनिष्ठिते । दारिद्र्योपद्रुतौ जातौ विषादमलिनाननौ
॥ ५० ॥ निर्भाग्याविति निर्भीभ्यां भार्याभ्यामभिभाषितौ । निर्भर्त्स्येते नरत्वेन घटितौ यत् युवामपि ॥ ५१ ॥ वेधसा स्वं च

1 पूज्यः ।

मन्येथे कलावन्तमिलातले । ययोरतीवसन्देहः स्वोदरस्यापि पूरणे ॥ ५२ ॥ इति स्वसकलत्राभ्यामिति निर्भर्त्सितावितौ । विग-
गवलितौ चित्तेऽचिन्तयामासतुश्चिरम् ॥ ५३ ॥ रूपसौभाग्यलावण्यकुलशीलकलादिकम् । तारुण्यमपि मानश्च सर्वं लक्ष्म्या विरा-
जते ॥ ५४ ॥ तया विरहितानां तु मानम्लानिः पदे पदे । मध्येमहाजनं देवकुले राजकुलेऽपि च ॥ ५५ ॥ मानतो मानवान-
न्यान् मानवात्स जयत्यलम् । निश्छद्मपद्मया सद्म यदीयं स्यादलङ्कृतम् ॥ ५६ ॥ उज्झिताखिलसङ्गानां विमानानां तपस्विनाम् ।
निर्धनाना महर्षीणामेव स्यान्महनीयता ॥ ५७ ॥ सरः सरसिजैर्हीनमचन्द्रं च नभस्तलम् । न जनानन्दकं यद्वत्तद्वज्जीवितम-
श्रियम् ॥ ५८ ॥ सा साहस विना न स्याद्वाऽऽलस्यविहतात्मनाम् । भास्वानपि भवेद्भास्वानधिरूढस्तुलाशिरः ॥ ५९ ॥ विहिते
मथनायासे घृष्टभुजचतुष्टये । हरेरपि करे लक्ष्मीरभूदन्यस्य का कथा ! ॥ ६० ॥ दत्तं यद्वा समानं यैर्दानं प्राच्यभवे भवेत् ।
विनापि तेषामायासमनायासं भवत्यसौ ॥ ६१ ॥ क्षेत्रे नोप्तं यतो बीजं नोद्गच्छति कथञ्चन । रविबिम्ब विना न स्यात्प्रकाशश्च
जगत्यपि ॥ ६२ ॥ नयनेन विना रूपं न च लोको विलोकते । न पयोदं विना वृष्टिरिष्टा दृष्टा च कुत्रचित् ॥ ६३ ॥ केचिद्वि-
वेकिनो दानं ददत्येतेन हेतुना । स्तोकं स्तोकादपि परलोकसौख्यसमीहया ॥ ६४ ॥ तदावाभ्यामधन्याभ्यां न दानं प्राग्भवे
ददे । अन्यथा कथमीदृक्षा दुःस्थावस्था प्रसर्पति ॥ ६५ ॥
ध्यात्वेति पाटलीपुत्रात्सबन्धुः स विनिर्गतः । श्रीवर्धनाभिधे तीर्थे गतश्चाराधयत् श्रियम् ॥ ६६ ॥ षण्मासकालप-
र्यन्ते लक्ष्मीतोषणकारणात् । स्वशीर्षं च्छिन्दतस्तस्य प्रत्यक्षा कमलाऽभवत् ॥ ६७ ॥ ऊचे च वत्स ! तुष्टाहं भविता विमलस्ततः ।
अङ्गोद्भवश्च पृथिवीनाथत्वाद्भुतभाग्यभृत् ॥ ६८ ॥ किन्त्वगौ निर्दया नीचगामिनी गुणवैरिणी । चपला चञ्चला चेति ख्यायसा-

इत्युक्त्वा तत्क्षणं लक्ष्मीरलक्ष्या चक्षुषोरभूत् ॥ ७० ॥
राधितास्म्यहम् ॥ ६९ ॥ तेन स्तेनस्येव तव वृद्धत्वे भविता वधः । पूरितं सकलं तस्य सदनं शुभवस्तुभिः ।
सोऽथ हर्षविषादाभ्यां समकालमुरीकृतः । सहितो रणसिंहेन वैरिसिंहो गृहं ययौ ॥७१॥ प्रससार परीवारसहितो महितो
तुष्टया कमलादेव्याऽलङ्कृतं कमलोलिवत् ॥ ७२ ॥ दत्तशुल्कवणिगिव सर्वत्राऽस्खलितस्ततः ।
जनैः ॥ ७३ ॥ आरूढस्तुरगं फुल्लमायूरातपवारणः । याति राजकुलादौ स मानमाप्नोति चाधिकम् ॥ ७४ ॥
इत्थं विलसतस्तस्य निजकानुजसंयुतः । श्रीस्वमसूचितः पुत्रोऽजनि लक्षणलक्षितः ॥ ७५ ॥ तस्य जन्ममहं कृत्वा महता
विस्तरेण सः । स्वप्नानुसारतो नाम श्रीदत्त इति दत्तवान् ॥ ७६ ॥ स क्रमाद्वर्धमानोऽभूदधृष्यो बालकालतः । जग्राह कालेनाल्पेन
कलाश्च सकला अपि ॥ ७७ ॥ ललाद्वेलस्वभावेन सत्त्वबलश्च स यौवने । तृणवद्गणयत्युच्चैर्जगन्निजभुजाश्रिया ॥ ७८ ॥ अन्यदा
रणसिंहस्य सर्पदष्टा मृता प्रिया । अन्यदारकृते सोऽथ जगादाऽग्रेऽग्रजन्मनः ॥ ७९ ॥ आर्य ! यामि जयपुरे पाणिग्रहणहेतवे । स प्राह
वत्स ! गत्वालं ममास्ति प्रचुरं धनम् ॥ ८० ॥ तत्ते ज्ञानं कुलीनाश्च कन्याः सन्त्यत्र भूरिशः । स्थितोऽयमथ तस्यार्थेऽग्रजः कन्या
विलोकते ॥ ८१ ॥ गवाक्षस्थोऽन्यदाऽपश्यद्रणसिंहः पणस्त्रियम् । रथाधिरूढां गच्छन्तीं स्फारशृङ्गारधारिणीम् ॥ ८२ ॥ स तां
वीक्ष्यानुगानाह केयं ते च न्यवेदयन् । देव ! कामपताकेयं सत्यनामा पणाङ्गना ॥ ८३ ॥ स तद्गतमनाः साभिलाषमालोकित-
स्तया । सानुरागो बभूवास्यां व्ययति द्रव्यमद्भुतम् ॥ ८४ ॥ तयाऽतिसुखितः पाणिपीडावार्त्तां करोति न । अग्रजः प्राह माऽस्थाने
वत्स ! द्रव्यव्ययं कुरु ॥ ८५ ॥ त्वद्योग्या वीक्षिताः सन्ति कन्याः पाणिग्रहं कुरु । वत्स ! वेत्सि न किं वेश्याजनस्य प्रेम
कृत्रिमम् ॥ ८६ ॥ तेनेति शिक्षितो द्रव्यावनुजो निजमानसे । द्रव्यव्ययमयं रक्षत्यमुतो व्यपदेशतः ॥ ८७ ॥ धनमेतत्त्वाधीनं

यावद्भूत्येत्ययं जगौ। द्रव्यमर्जयितुं दूरं यामि राज्यान्तरं ततः ॥ ८८ ॥ ध्यात्वेत्ययमनाख्याय निर्यायाऽसिसहायवान्। गतो
वियोगतोऽस्याभूदग्रजो दूनमानसः ॥ ८९ ॥ श्रीदत्तमन्यदा शस्त्राभ्यासं कुर्वन्तमैक्षत। भूपो वल्लभशक्त्याख्यः पाटलीपुत्रनायकः
॥ ९० ॥ द्वाःस्थस्य कथनात् ज्ञात्वा वैरिसिंहसुतं च तम्। दध्यौ विक्रमशक्तेः स्यात्कुमारस्यैष चेत्सुहृत् ॥ ९१ ॥ तत्सुन्दरं भवेत्
ध्यात्वा वैरिसिंहं जगौ नृपः। श्रीदत्तस्तव पुत्रोऽस्तु मदीयतनयान्तिके ॥९२॥ शस्त्राभ्यासमनेनाऽमा कुमारः कुरुते यथा। श्रीदत्तं
वैरिसिंहोऽथ प्रैषीन्नृपसुतान्तिके॥९३॥ स्नेहोऽन्योन्यं तयोर्जज्ञे भोजने शयने श्रमे। तस्थतुर्मिलितावेव तौ सदा युग्मजातवत् ॥९४॥
अथ श्रीदत्तपार्श्वे द्वौ राजपुत्रावुपागतौ। बाहुशालिवज्रमुष्टिनामानौ दूरनिर्वृतौ ॥९५॥ तावूचतुस्त्वया सार्धं कर्तुं मैत्रीमि-
हागतौ। आकृष्टो त्वद्गुणैः सोऽथ सन्मानं विदधे तयोः ॥ ९६ ॥ प्रतिबन्धाच्च शुश्रूषां तस्य तौ कुरुतः सदा। समदुःखसुखास्त-
स्थुर्बन्धुवच्च परस्परम् ॥ ९७ ॥ श्रीदत्तस्य भुजबलख्यातिमाकर्ण्य चान्यदा। समेता दक्षिणपथाच्चत्वारो राजनन्दनाः ॥ ९८ ॥
व्याघ्रोपेन्द्रमहापूर्वबलास्तुर्यश्च निष्ठुरः। ते प्राहुर्नः प्रतिज्ञासौ यो जयेन्नो भुजाहवे ॥ ९९ ॥ तस्य भृत्या भवामस्तं भृत्यं जित्वाथ
कुर्महे। श्रुत्वेति सम्मुखस्तेषां श्रीदत्तोऽगाद्बलोद्धुरः ॥ १०० ॥ युध्यमानः समं तैः स नियुद्धनिपुणाशयः[1]। एकैकं भ्रमयित्वोर्ध्वे
प्राक्षेप्सीत्क्षोणिमण्डले ॥१०१॥ सकलं ते दिशां चक्रमपश्यन्मूर्छया भ्रमत्। जनोऽजल्पदनल्पाऽस्य शक्तिः काऽपि मनःस्विनः
॥१०२॥ प्रसाददानं तस्याऽदान्महत्तुष्टो नरेश्वरः। परे वाचादिनाऽऽश्वास्ता नत्वा तं स्वामिनं व्यधुः ॥ १०३ ॥ श्रीदत्तस्तानथा-
शिक्षत्तेऽपि तस्थुस्तदन्तिके। श्रमं कर्तुं ययुः सर्वे गङ्गापुलिनमन्यदा ॥ १०४ ॥ कौतुकात्क्रीडतां तत्र ग्रीष्मे विक्रमशक्तिना।

1 बाहुयुद्धे मल्लयुद्धे निपुणाशयः।

अहं राजाऽसकौ मन्त्री द्वाःस्थाऽयं सैन्यपस्त्वयम् ॥ १०५ ॥ सर्वानित्यादिशद्वीक्ष्य श्रीदत्तमिदमभ्यधात् । ददाम्यहं महाबाहो!
तवापि सुमहत्पदम् ॥ १०६ ॥ श्रीदत्तोऽथ परैः प्रोचेऽस्माकं स्वामिस्त्वमेव हि । नानेनाऽलीकदर्पेण कार्यं नो नृपसूनुना ॥१०७॥
श्रुत्वेत्यमर्षतः प्राह श्रीदत्तं नृपनन्दनः । युध्यस्व बाहुयुद्धेन श्रीदत्तस्तं ततोऽवदत् ॥ १०८ ॥ स्वान्यशक्त्यन्तरं वेत्सि नेयद्भिरपि
वासरैः । तनोपि निस्त्रपो मूढ! चरित्रं स्वं यदीदृशम् ॥१०९॥ तन्निवर्तस्व मा स्वाख्यां विधेह्युभयथा वृथा । इत्युक्तोऽप्याह्वयन्
मुष्टिघातेनाहत्य पातितः ॥ ११० ॥ कुमारभृत्याः श्रीदत्तमित्रैरेव विजिग्यिरे । वातादिप्राप्तचैतन्यं कुमारं प्रोचिरे च ते ॥१११॥
धीमानसि जितोऽसि त्वमथ गङ्गातटस्थितः । तपस्वी प्राह हत्वैनं श्रीदत्तो भविता नृपः ॥११२॥ श्रुत्वेति सुहृदो हृष्टा नृपसूनुस्त्व-
चिन्तयत् । एकं तावदिदं दुःखं यदनेन जितोऽस्म्यहम् ॥११३॥ परं गृहीता राज्यं मां हत्वा शत्रुमिमं ततः । हन्मीति जनवाच्यर
भीरुश्छिद्राणि मार्गति ॥ ११४ ॥ तपस्विनो गिरा तस्य शल्यितः शल्यतुल्यया । अप्रतीकारया प्राप न रतिं क्वापि भूपभूः ॥ ११५ ॥
यूयं स्थाऽत्रैव प्रोच्येति
अन्यदा देवनघन्तः काऽपि देवाङ्गना श्रुता । रुदती करुणं श्रीदत्तेनोक्ताः सुहृदो निजाः ॥ ११६ ॥ यूयं स्थाऽत्रैव प्रोच्येति
तामाकर्षति यावता । तावता सा जलेऽमज्जत् पृष्ठे तस्यास्तथैव सः ॥ ११७ ॥ नाम्भो न दिव्यनारीं वाऽपश्यदुद्यानमेव सः ।
मध्ये च तस्य स्फटिकनिर्मितं देवमन्दिरम् ॥ ११८ ॥ तन्मध्ये देवतामेकामनर्घ्यकुसुमार्चिताम् । निरीक्ष्य नत्वा तां यावदस्थि
विस्मितमानसः ॥ ११९ ॥ निविष्टस्तावता तत्रोल्वणयौवनपावनाम् । रुचिरस्फारशृङ्गारां दिव्यरत्नविमानगाम् ॥ १२० ॥ धृतात-
पत्रां देवीभिर्वीज्यमानां च चामरैः । पराभिः सेव्यमानां च देवीमेकामुदैक्षत ॥ १२१ ॥ स्वयं मूर्तिमतीवाद्य कमला कमलानि
सा । आदाय पूजयामास देवतां देवतापि सा ॥१२२॥ (त्रिभिर्विशेषकम्) । विधाय तत्र सङ्गीतमविगीतं चचाल सा । तन्मार्गा-

युगतः सोऽपि चलितोऽद्रिमलोकत ॥ १२३ ॥ तस्य रत्नमयस्योपर्येवं प्रासादमैक्षत । स्फाटिकं तस्य चाग्रस्थं प्रौढं कंकेल्लिपादपम्
॥ १२४ ॥ तलेऽस्य रत्नपीठेन बद्धसोपविवेश सा । मणीमयासनेऽन्याश्च तदन्विकमुपाविशन् ॥ १२५ ॥ श्रीदत्तस्तत्तदाश्चर्यवि-
स्फारितविलोचनः । तत्र गत्वोचिते स्थाने निविष्टो वीक्षितस्तया ॥ १२६ ॥ न तूक्तः किञ्चिदथ सा चिरं चिक्रीड पासकैः ।
देव्यान्यया समं मध्ये प्रासादमथ साऽगमत् ॥ १२७ ॥ तदन्तर्मणिपल्यङ्कस्थायां तस्यां व्यचिन्तयत् । श्रीदत्तः स्वर्गमेवायं रम्य-
त्वात्सर्ववस्तुषु ॥ १२८ ॥ चिन्तयन्नित्यगात्तत्र तां स्थूलैरश्रुबिन्दुभिः । रुदतीमाह कासि त्वं हेतुना केन रोदिषि ॥ १२९ ॥
इति पृष्टाप्यजल्पन्ती सा पुनस्तेन भाषिता । कथं न कथयस्यग्रे मम त्वं दुःखकारणम् ॥ १३० ॥ मनुष्यमात्रं मत्वा मां भवती
माऽवमन्यताम् । दुःखं तवापनेतुं यदहं शक्तः स्वशक्तितः ॥ १३१ ॥

प्रमृज्याश्रुजलं साथ प्रोवाचास्ति पुरी वरा । नाम्ना रत्नप्रभा रत्नप्रभाभासितभूतला ॥ १३२ ॥ तस्याः स्वामिन्यहं पूर्वं नाम्ना
चन्द्रप्रभाऽभवम् । व्यन्तरीभिरनेकाभिः परितः परिवारिता ॥१३३॥ अधुना शक्तिकान्ताख्यव्यन्तरेण बलीयसा । निर्वासिताऽस्मि
देवेन देव्यहं स बली ततः ॥ १३४ ॥ सा तेनाधिष्ठिता बाढं दर्पिष्ठेन पुरी मम । महानादो महानादस्तस्या द्वारि च धारितः
॥ १३५ ॥ प्रसारितमहाकायमुखो जृम्भयितः सदा । स्फुलिङ्गपिङ्गनयनः स्फुरद्दंष्ट्राभयङ्करः ॥ १३६ ॥ सुतीक्ष्णखरनखरः
प्रलम्बोद्धुरकेसरः । कुण्डलीकृतलाङ्गूलो लीलाकलितकुण्डलीः ॥१३७॥ (त्रिभिर्विशेषकम्) तद्भयशङ्कया कोऽपि पुर्यन्तः प्रविशेच न ।
ततस्तिष्ठाम्यहं महाक्रीडारामे निजेऽधुना ॥ १३८ ॥ कियत्यपि गते काले तव कीर्तिः श्रुता मया । श्रीदत्तस्य समः कोऽपि
नान्योऽस्ति बलवानिति ॥ १३९॥ अनेन व्यपदेशेनात्रानीतोऽसि तवो मया । नृसिंह! सिंहं सहसा महसा त्वं पराभव ॥ १४० ॥

यन्नरत्वं सुरत्वं वा न प्रमाणमिलातले । कार्यं सिद्धेर्बलं मूलं सत्त्वेन सहितं पुनः ॥ १४१ ॥ आकर्ण्येति वीररससिक्ता तस्य
वपुर्लता । रोमाञ्चमिषतोऽङ्कुरपूरेण परिपूरिता ॥ १४२ ॥ तद्दर्शिताध्वना सिंहं साहसी सहसैव सः । गत्वा निर्भर्त्सयामास निर्भयो-
ऽर्भमिवाऽन्तकः ॥ १४३ ॥ पशुचूडामणे ! रेरेऽलीकशूरत्वगर्वित ! । नृसिंहेन मयारब्धो जीवन्नद्य क्व यास्यसि ॥ १४४ ॥ त्वया
जृम्भायमाणेन यद् प्राग्भवविजृम्भितम् । तदेव दूरं सर्त्तव्यं मर्त्तव्यं चाधुना हहा ! ॥ १४५ ॥ मृगाग्रे विक्रमस्ते स्यान्न पुनः
सरभाग्रतः । अखर्वं मुञ्च तद्गर्वं सर्वं त्वमसुभिः समम् ॥ १४६ ॥ श्रुत्वेति सिंहः पुच्छेनाच्छोटयामास भूतलम् । अकम्पत
समग्रा भूर्न तु श्रीदत्तचित्तभूः ॥ १४७ ॥ महानादो महानादममुञ्चच्चातिदारुणम् । अत्रुट्यन् गिरिशृङ्गाणि न तु श्रीदत्तमानसम्
॥ १४८ ॥ श्रीदत्तः प्राह कुरुषे किमेवं मे विभीषिकाम् । उत्फालः कालवत्सोऽथ श्रीदत्तं प्रत्यधावत ॥ १४९ ॥ तेन कण्ठं
निरुध्यैष प्रतिक्षिप्तः क्षितेस्तटे । यक्षीभूयावददहं भवत्पुरुपकारतः ॥ १५० ॥ अस्य प्रभावतो भावी त्वमजेयो जगत्यपि । मध्ये
कतिपयाब्दानां राज्यं च भविता तव ॥ १५१ ॥ ततोऽसिमुपनीयैष सहसाऽदृश्यतामगात् । स गत्वा पुरतो देव्याः सिंहवृत्तान्त-
माख्यत ॥ १५२ ॥ स्मित्वा सोचे मया भद्र सत्त्वं तव परीक्षितुम् । सिंहयक्षासिदानाद्यं कृतं कपटनाटकम् ॥ १५३ ॥ श्रुत्वेति
विस्मितश्चित्ते श्रीदत्तः पर्यचिन्तयत् । अपूर्वमहमद्दता मायाजालमलोकयम् ॥ १५४ ॥ अस्मादकृत्रिमादावर्जितोऽस्म्यदश्च तच्छुभम् ।
मृगाङ्कनामकं खड्गरत्नमेतन्महाद्युति ॥ १५५ ॥ क्व मर्त्यलोकः क्व स्वर्गो गमागमनमत्र च । अतः परमपि प्रेक्षे क्रियते किं
किमेतया ॥ १५६ ॥ पुरीं प्रति ततो देव्यां प्रस्थितायां सकौतुकात् । पुरो द्रष्टुं प्रचलितेऽपश्यद्वापीं मणीमयीम् ॥ १५७ ॥ जलके-

---

१ अष्टापदाग्रतः ।

लिङ्गे तत्र प्रविशन्निममज्ज सः । न पुरीं च न वापीं च न देवीं च व्यलोकत ॥ १५८ ॥ आत्मानं केवलं खड्गसखं सुरसरित्तटे । विस्मयेन विषादेन युक्त ऊर्ध्वस्थमीक्षते ॥ १५९ ॥ स्फुरणे वामनेत्रस्य दध्यौ सोऽनिष्टशंसदः । किं तया चिन्तया यामि सुहृदुत्कण्ठितो गृहम् ॥ १६० ॥ प्रस्थितो निपुराख्यं स मित्रमायातमैक्षत । तमालिङ्ग्य च पप्रच्छ क्व परे सुहृदो मम ॥ १६१ ॥ स प्रोवाच तदा 'सिद्धसिन्धौ मग्ने सति त्वयि । चिरं विलम्ब्य बहुधा लग्ना दातुं जलाञ्जलिम् ॥ १६२ ॥ बाहुशालिं निषिध्याह सुहृन्दति नश्चिरम् । श्रीदेव्या मुनिना चायमाख्यातोऽस्ति नृपो यतः ॥ १६३ ॥ पुनर्मित्रेण संयोगो वैरिसिंहगृहे ततः । कालक्रमेण भावी नो ध्यात्वेति चलिताः समे ॥ १६४ ॥ देवतौकसि याताश्च बाहुशाली ततोऽवदत् । किं देवि जीवितव्येन श्रीदत्तं सुहृदं विना ॥ १६५ ॥ निजेन शिरसा तस्मादुपहारं करोमि ते । तव प्रसादतः शीघ्रं यथा सङ्गच्छते स मे ॥ १६६ ॥ इत्युक्त्वा वार्यमाणोऽपि तया छिन्दति मस्तकम् । उद्भूय नभोवाणी वत्स! मा साहसं कृथाः ॥ १६७ ॥ स्वल्पेनापि हि कालेन भावी वो मित्रसङ्गमः । ततो यास्त्यविश्रामः पाटलीपुत्रपत्तनम् ॥ १६८ ॥ तावद्दक्षः क्रीडकाख्यः कितवः सम्मुखागतः । प्राह प्रचलिता यूयं यद्यासे मा प्रविश्यताम् ॥१६९॥ येनास्मिन्नगरे सर्वमन्यथा वर्ततेऽधुना । अस्माभिराकुलैः किं किमिति प्रश्नस्ततः कृतः ॥१७०॥ स प्राह शूलरोगेण प्रेतत्वं नृपतौ गते । राज्ये विक्रमशक्तिर्द्रागभ्यषिच्यत मन्त्रिभिः ॥ १७१॥ तेनाऽकार्यकृताऽऽकार्य तत्क्षणं जनस्तत्र । पृष्टः श्रीदत्तमारुयापि क्वास्ति स प्राह वेद्मि नो ॥ १७२ ॥ कुपतिः कुपितः सोऽथ भृत्यानित्यादिशद्द्रुशम् । सुतापलायिनममुं हत स्तेनमिव द्रुतम् ॥१७३॥ हाहारवमुखे लोकेऽथाकार्यमिति भाषिणि । विमर्द्य चक्षुपातैः स शूलाग्रस्यातिथिः कृतः ॥१७४॥

१ गङ्गायाम् ।

तद्गृहिण्या निरीक्ष्याशु तादृशं चासमञ्जसम् । दुःखैर्भृतमिवात्यन्तं हृदयं सहसाऽस्फुटत् ॥१७५॥ श्रीदत्तं सुहृदो वास्य यः कोऽप्या-
ख्याति मेऽग्रतः । स्वर्णकोटिं ददे तस्येत्याऽघोष्यत पुरेऽमुना ॥१७६॥ तद्यूयं मा यात पुर्यामात्मनः कुशलेच्छवः । श्रुत्वेत्युदन्त-
मस्माकं त्वद्वियोगाऽसुखद्रुमः ॥ १७७ ॥ तातस्यास्तोत्पल्लवितः पुष्पितो मातृमृत्युना । अस्माकं तु पातकिनाममृत्योः फलितो न
सः ॥ १७८ ॥ तदाऽस्माकमभूच्चित्तं गाढामर्षवशात्मनाम् । तं दुष्टं सर्वथा हन्तुमथ व्याघ्रबलोऽवदत् ॥ १७९ ॥ कोपाग्नौ तस्य
शलभीभावं मा भजताऽधुना । ससैन्योऽयं वयं स्तोकाः स सुहृद्दूरतस्तथा ॥ १८० ॥ तद्गच्छामोऽधुना दूरे बाहुशाली ततोऽवदत् ।
युक्तमाहैष मिलिते श्रीदत्तेऽस्तु यथोचितम् ॥ १८१ ॥ हर्षवत्यां पुरि मम गृहमस्ति महामहत् । तन्मित्रागमनं तत्रावस्थाय प्रति-
पाल्यते ॥ १८२ ॥ प्रच्छन्नो निष्ठुरस्त्वस्तु यावन्मित्रसमागमम् । तं गृहीत्वा समेताऽयमित्युक्ते पञ्च ते ययुः ॥ १८३ ॥ अहं
नित्यमिहायामि भवतो दर्शनाशया। श्रुत्वेति पित्रोर्दुःखेन श्रीदत्तो व्यलपत्तराम् ॥१८४॥ निष्ठुरः प्राह हृदयं निष्ठुरं कुरु सम्प्रति ।
विधेर्विलसितानां हि प्रतीकारेऽस्तु कः क्षमः ? ॥ १८५ ॥ लक्ष्मीमुनिवचनयोः सद्दाकिञ्चिन्न दृश्यते । श्रीदत्तेनेति गदिते निष्ठुरो
निष्ठुरं जगौ ॥ १८६ ॥ मैवं वद प्रभो ! यस्माद्देवतामुनिभाषिते । युगान्तेऽप्यन्यथाभावं भजतो न कदाचन ॥ १८७ ॥
श्रीदत्तोऽथ पितृरिपुघातने धूमकेतुवत् । बबन्ध वेणीं सन्धां च वैरिसिंहसुतो हि सः ॥ १८८ ॥ उद्दिश्याथ पुरं हर्षवतीं
प्रचलिताविमौ । मार्गाविज्ञतयाटव्यां पतितौ च विधेर्वशात् ॥ १८९ ॥ तत्रैका नायिका दृष्टा रुदती करुणस्वरम् । श्रीदत्तः प्राह
काप्येषा रुदत्याश्वास्यते वशा ॥ १९० ॥ निष्ठुरः प्राह मन्येऽत्र राक्षसीयं भविष्यति । परः प्राहातिकरुणस्वरा तन्नैव राक्षसी
॥ १९१ ॥ अथास्तु राक्षसी किं नौ कर्तेति वदतोस्तयोः । सेत्याह सार्थतो भ्रष्टा पतितास्म्यजने वने ॥ १९२ ॥ पुण्यैरद्य

यहो: कालादर्शनं भरतामभूत् । ततो मां नयतं कापि नगरे करुणा गिरा ॥ १९३ ॥ श्रीदत्ताऽनुमता साऽथ चलिताऽस्तं
रविर्ययौ । समं मकुरदम्भोजनलिनीखण्डशोभया ॥ १९४ ॥ अस्ताद्रिस्थरवेः शोणा रोचिषो रेजिरे तदा । नगशृङ्गस्थनारङ्ग-
रसौघस्य च्छटा इव ॥ १९५ ॥ द्वीपान्तरं गते सूरे पूर्वाशा तिमिरच्छलात् । आवृतान्धपटे चाभूदभिसर्तुं तमीप्रियम् ॥ १९६ ॥
ताराततिर्निशाशोभि व्रजतां सूर्यवाजिनाम् । विराजते राजिरिव पतिता फेनविप्रुषाम् ॥ १९७ ॥ प्रस्कारफेरुफेत्कारघूकघू-
त्कारदारुणाम् । प्रदत्तचातराऽऽतङ्कां नागर्षद्विपसूत्कृतैः ॥१९८॥ तामुल्लङ्घ्याटवीं शून्ये पुरे ते कचिदापयुः । तयोश्चेऽहं न शक्नोमि
चलितुं पदमप्यतः ॥ १९९ ॥ (युग्मम्) तत्रोपितानां निद्राणः श्रीदत्तो व्याहृतस्तया । यदि सुन्दर! सत्यं त्वं दुःखिनां दुःख-
रक्षकः ॥ २०० ॥ दीप्यमानामनङ्गेन ततो मां किं न रक्षसि?। मम त्वद्रूपशल्येन तालव्ये जीवितं गतम् ॥ २०१ ॥ त्वत्सङ्ग-
कलितानन्दमनसः स्पर्धयेव मे । त्वत्सङ्गमसुखाम्बुधेः शरीरमपि वाञ्छति ॥ २०२ ॥ दृशोः शैत्यं तनौ तापश्चित्तं त्वद्दर्श-
नामृतात् । मदनीनि विकारान्सा मन्मथोत्थान् बहून् व्यधात् ॥ २०३ ॥ श्रीदत्तस्तामथ स्फारशृङ्गारां चारुयौवनाम् । वीक्ष्या-
प्यावदत्तो न स्त्री यक्षितोऽहं तदेतया ॥ २०४ ॥ को वा न वञ्चितः स्त्रीभिः पटुभिः कपटैः स्फुटम् । दत्तेऽपि जीविते न स्वमेता
दर्शनि कस्यचित् ॥ २०५ ॥ न ग्रहा न च चूर्णं वा नेन्द्रजालं न वारुणी । तादृशं कुर्वते मोहं यादृशं हरिणीदृशः ॥ २०६ ॥
सयुक्तो नानुरागोऽस्यां परं जानामि वस्तुतः । व्याख्येति स जगादाऽहं करिष्यामि वचस्तव ॥ २०७ ॥ पुनः कथय काऽसि त्वं
किमेतच पुरं वद । सोचेऽहं व्यन्तरी चक्रे पुरं मायामयं मया ॥ २०८ ॥ श्रीदत्तः प्राह यद्येवं तद्युक्तं त्वयेरितम् । क त्वं

१ कन्दम् ।

दिव्याङ्गना काऽहं नरो नायं पथः सताम् ॥ २०९ ॥ लोकद्वयविरुद्धं यदिदं निन्द्यं च सर्वथा । वरं सर्पाऽसिवह्नीनां सङ्गो न तु परस्त्रियः ॥ २१० ॥ ततो वैलक्षतो रोषाऽरुणाक्षी सा जगाद तम् । राक्षस्या मे स्वरूपं न मन्यसे तन्न मन्यसे ॥२११॥ स्मित्वा स प्राह नो वेत्सि रक्षसामपि भीपकान् । भूत्वाथ राक्षसी घोरा साऽट्टहासादिकं व्यधात् ॥ २१२ ॥ स तां ततश्च विकटभ्रूकुटीसङ्कटालिकः । केशेष्वादाय निस्त्रिंशरत्नेनाहन्तुमुद्यतः ॥ २१३ ॥ सा दशाप्यङ्गुलीः क्षिप्त्वा मुखे प्राह विमुञ्च माम् । महापुरुष! मे मन्तुं क्षमस्वैकं कृपापर! ॥ २१४ ॥ मुक्तयाऽथ तया प्रोचे किं करोमि तव प्रियम् । तेनोचे प्रियमेतन्मे यन्निवृत्ताऽसि पापतः ॥ २१५ ॥ सोचे वीर! तथापीदं विपोच्छेदविधायकम् । अङ्गुलीयं गृहाणेति तद्दत्त्वा सा तिरोदधे ॥ २१६ ॥ अथ सुप्तविबुद्धेन निष्ठुरेण समं पथि । प्रातः स्थानात्ततोऽचालीत्स्मृत्वा तेन च भाषितः ॥२१७॥ क सा स्त्रीति तदाख्यातवृत्तान्तो विस्मितः परः । दध्याववयं न सामान्यो मान्यो दिविपदामपि ॥ २१८ ॥ कालेन हर्षवत्यां तावागतौ देवतागृहात् । निर्गच्छतोऽखिलान् स्वस्य सुहृदोऽपश्यदुन्मुदः ॥ २१९ ॥ ते पेतुस्तत्पदोः सार्धं श्रीदत्तानन्ददृग्जलैः । मूर्त्तेन तेनानन्देन श्लिष्टा रोमाञ्चिताश्च ते ॥ २२० ॥ पृष्टाख्यातसुविज्ञातवृत्तान्तास्ते बभाषिरे । अहो! शक्तिरहो! पुण्यसमृद्धिर्महिमाप्यहो! ॥ २२१ ॥ कृतार्थास्तद्वयं विश्वे विश्वे स्वामी यदीदृशः । प्राप्तो लोकोत्तराश्चर्यचर्याश्रीगृहसोदरः ॥ २२२ ॥ श्रीदत्तमित्रागमने तेषां हर्षप्रकर्षतः । पुरी हर्षवती नाम्ना तदाऽजनि यथातथा ॥ २२३ ॥ तैः समं बाहुशाली स गृहेऽगाद्बाहुशालिनः । नत्वा तत्पितरौ तत्र तस्थौ सुस्थितमानसः ॥ २२४ ॥

अन्यदा च वसन्तर्तौ ते बाह्योद्यानमागताः । नानाविधाभिः क्रीडाभिः क्रीडन्ति स च ससंयम् ॥ २२५ ॥ दृष्टा तत्र च कन्यैका कुर्वाणा कुसुमोच्चयम् । गृहीतचामरच्छत्रनारीभिः परिवारिता ॥२२६॥ तथ्यनेपथ्यलक्ष्मीभृन्नवयौवनशालिनी । विलेपन-

परिमलाऽऽकृष्टाऽलिकुलमालिनी ॥२२७॥ (युग्मम्) यूनान्तु मानसव्यूहमोहिन्या जातया यया। आत्मानं मन्यते कामो विश्वविश्व-
जयोद्धुरम् ॥२२८॥ श्रीदत्तश्चित्तमेतस्या हरंश्चित्तभुवा किल। युगपत्पञ्चभिर्बाणैर्निर्दयं निहतो हृदि ॥२२९॥ तस्या अप्यचलज्जृम्भा-
रम्भः कम्पस्तु नेत्रयोः। वपुः कण्टकितं स्वेदोऽङ्गभङ्गश्च सरज्वरात् ॥ २३० ॥ नीव्याः शिथिलतां सख्या श्लेषं तरलतां दृशोः।
सत्तस्य चोत्तरीयस्योरःस्थले स्थापनं पुनः ॥ २३१ ॥ धम्मिल्ले च स्थले सख्या पुनर्बन्धनडम्बरः। इत्थं विकारविस्तारः पप्रथे
मन्मथेरितः ॥ २३२ ॥ (युग्मम्) चिन्तातुरं च श्रीदत्तं वीक्ष्योचे बाहुशालिना। मुक्तक्रीडारसो मित्र! किमु ध्यायसि योगिवत्
॥ २३३ ॥ स प्राह प्राकृत इव किं भवानपि पृच्छति। स प्राहान्तिकथानेऽस्या भावो विज्ञायते स्फुटः ॥ २३४ ॥ श्रीदत्तेऽथ
गते पार्श्वे सहिते बाहुशालिना। उत्तस्थौ सहसाऽऽक्रन्दः पात पातेति घोषिताम् ॥ २३५ ॥ राजपुत्री हहा कष्टं दष्टा दुष्टेन भोगिना।
तदेतां विषमविषविवशां पात हि वशाम् ॥ २३६ ॥ अथ वज्राहत इव श्रीदत्तो ह्यचिन्तयत्। इदं धिगस्तु संसारनाटकं विर-
सान्तरम् ॥ २३७ ॥ मुह्यन्त्यत्र न ये धन्याः साधवस्ते सुबन्धवः। दुःखं खण्डितधर्माणां मादृशां तु पदे पदे ॥ २३८ ॥ पित्रो-
र्मृत्युस्तथासाश्च क्षणादेव क्षणायितम्¹। मदीयं हृदयं वज्रमयं मन्ये न भिद्यते ॥ २३९ ॥ तं विषादनिषादेन स्पृष्टं प्राह सुहृत्तमः।
किं देव! कुरुषे खेदमुपाये सति सोऽवदत् ॥ २४० ॥ क उपायः सुहृत्प्राहाङ्गुलीयं भवतोऽङ्गुलौ। श्रीदत्तः प्राह मे साधु स्मारितं
विषधावकम् ॥ २४१ ॥ सँल्लपन्ताविति श्रुत्वा तौ प्रतीहार आगतः। कन्यायाः प्रणिपत्याह श्रीदत्तं विनयेन सः ॥ २४२ ॥
कन्या श्रीहर्षदेवस्य भूभर्तुर्जीव्यतामियम्। प्राणभिक्षा भवत्यस्या भवद्भिः स्पर्शिताधुना ॥ २४३ ॥ तत्प्रपद्य स तां कन्यामन्वः-

1 परवशायितम्।

पुरस्य मध्यगां। विधाप्य विजने भूमिं चन्दनेन व्यलेपयत् ॥२४४॥ कर्पूरागुरुमुख्यानि द्रव्याण्यानाययच्च सः। चक्रे वलिविधानं
च ककुप्सु निखिलास्वपि ॥२४५॥ आडम्बरं विधायैवमङ्गुलीतोऽङ्गुलीयकम् । कन्याङ्गुलौ स चिक्षेप सुप्तबुद्धेव सोत्थिता ॥ २४६ ॥
पयः सस्राय नो गर्जिरूर्जितापि मता जने । तथापि गर्जिं पर्जन्यस्तनोति क्षोभहेतवे ॥२४७॥ किमिदं किमिदं भापमाणाऽद्राक्षीच्च
तं पुरः । उपलक्ष्य समन्दाक्षमभूत्तरललोचना ॥ २४८ ॥ तेनाख्याते च वृत्तान्ते सोचेऽहिरुपकारकः । शीघ्रसङ्गमकारित्वादा-
वयो रतिदावयोः ॥ २४९ ॥ तत्त्वया प्राणद! प्राणदानात्क्रीतं वपुर्मम । एवं तयोः सँल्लपतोः सहसा नृप आगमत् ॥ २५० ॥
श्रीदत्तोऽथ गतो गेहं कलितो वाहुशालिना । कन्यास्वरूपं चोवाच नृपस्याग्रे सखीजनः ॥ २५१ ॥ निवृत्ता पुत्रि! पीडेति
नृपोक्ते तनयाऽवदत् । सर्वाप्यर्तिरियर्ति स तातपादप्रसादतः ॥२५२॥ राज्ञोचे न स सामान्यो न्यरौत्सीद्यः क्षणाद्विपम् । उक्त्वे-
त्याह्वाय यद्वाहुशालिनो जनकं नृपः ॥२५३॥ तमुवाच स मे वाचा त्वं श्रीदत्तमिदं वद । यस्त्वया गुरुरद्योपकारोऽकारि विचारक!
॥२५४॥ यन्नः प्राणाधिका पुत्री कृष्टा मृत्योर्मुखाद् द्रुतम् । तत्तस्योपनय स्वर्णकोटिं च सिचयानि[1] च ॥२५५॥ सहस्रग्रामसँय्युक्त-
देशं चादेशतो मम । इत्यादेशं नृपस्यायं श्रीदत्तस्याग्रतोऽवदत् ॥ २५६ ॥ श्रीदत्तः प्राह देशेन स्वर्णादेशेन वा मम । न कार्यं
सर्वमेतद्धो मया तात! समर्पितम् ॥ २५७ ॥ उक्त्वेत्युपरि भूमौ तं दोलापल्यङ्कमाश्रितम् । अतुच्छं मूर्च्छितं कन्याविषसंक्रम-
णादिव ॥ २५८ ॥ निरीक्ष्य वाहुशाल्याह त्वं देव! किमसीदृशः । चिरमुच्छ्वासनिःश्वासान् दीर्घान् मुञ्चसि मूर्च्छितः ॥२५९॥
स प्राह सा नवा कापि हस्तभल्ली मनोभुवः । हृदये यस्य लगति यज्जीवति स एव हि ॥ २६० ॥ मृगाङ्कलेखाऽभिनवा सा

[1] वस्त्राणि।

कापि यद्दर्शने। मम चित्तपयोराशिर्भिनत्युत्कलिकाकुलः ॥ २६१ ॥ तन्मे विरहनव्याग्निदह्यमानस्य संशयः। जीवितव्येऽपि तन्वङ्ग्यास्तस्याः सङ्गरसं विना ॥ २६२ ॥ श्रुत्वेति तद्वचः सर्वे विषादं सुहृदो ययुः। वाहुशाली ततः प्राह सुहृदो मा विषीदत ॥ २६३ ॥ अस्मिन्नर्थे करिष्यामि तमुपायमहं यतः। तया सार्धं यथाऽवश्यं भविता सङ्गमो विभोः ॥ २६४ ॥ श्रीदत्तः प्राह निःश्वस्याऽऽश्वासमात्रमिदं वचः। यत्रार्कांशुप्रवेशो न नराणां तत्र का कथा ॥ २६५ ॥ वाहुशाल्याह भूपालमपि प्रक्षिप्य पञ्जरे। नियमेन कुमारीं तामानेष्यामस्तवान्तिके ॥ २६६ ॥

इति प्रजल्पतां तेषां वनितैका समागता। अपृच्छत्कमपि क्वास्ति श्रीदत्त इह सम्प्रति ॥ २६७ ॥ स प्राह मित्रयुक्तोऽस्ति गृहस्योपरि भूमिगः। सोचे तदन्तिके गत्वा त्वमाख्याहि तदाग्रतः ॥ २६८ ॥ एका मृगाङ्कलेखायाः सखी सङ्गमिकाख्यया तत्राङ्गुलीयमायाताऽर्पयितुं द्वारि तिष्ठति ॥ २६९ ॥ तेनाथ कथिते गत्वा श्रीदत्तो मुदितोऽभवत्। आशु प्रवेशयेत्येतत्कथिते प्राविशच्च सा ॥ २७० ॥ श्रीदत्तो विष्टरं तस्या ससम्भ्रममदापयत्। तत्कल्याणमपृच्छच्च साऽऽहैकान्तं वितीर्यताम् ॥ २७१ ॥ दूरस्थेषु सुहृत्स्वेषा प्राहैतत्किल कैतवम्। अङ्गुलीयार्पणं तस्यास्त्वेता कथयितुं दशाम् ॥ २७२ ॥ विषमेषुविमुक्तेषु विद्धाया विरहे तव। तस्याः दुःखाम्बुधिस्थाया वर्तते प्राणसंशयः ॥ २७३ ॥ संदिष्टं च तथा दिव्याङ्गुलीयन्यसनात्करम्। करेण मे गृहीत्वापि न युक्तं यदुपेक्षसे ॥२७४॥ अबला स्वप्रियानन्यशरणा मरणातिथिः। जायमाना स्मरशराघातैः किं काप्युपेक्ष्यते ॥२७५॥ तव योग्यानि भोग्यानि कुसुमाभरणानि च। प्रहितानि तया तान्यादाय सोऽङ्गे न्यधान्मुदा ॥२७६॥ वाहुशालिनमाकार्य श्रीदत्तस्तचदाख्यत। अपृच्छच्च कथं सार्धं तया योगोऽधुना भवेत् ॥ २७७ ॥ स प्राह वक्ति चेत्कन्या तातांहं येन जीविता। पाणिग्राही

इत्युक्त्वा लीलया ते स्यादथ सङ्गमिकाऽवदत् । नैवं विक्रमशक्तेः सा यद्दत्तास्ति
स एवास्तु वह्निर्वा शरणं मम ॥ २७८ ॥ ममायं प्राणनाथोऽस्तूपायोऽत्रान्यस्तु विद्यते ॥ २८० ॥
महीभुजा ॥ २७९ ॥ श्रीदत्तस्य कथं दत्ते ततः सा वक्ति वा कथम् । कामस्यायतने सायमनेकविध-
दिनैः कतिपयैर्भावी सप्रथो मन्मथोत्सवः । पौरान्तःपुरयुग्राजा तदोद्याने गमिष्यति ॥ २८१ ॥
नाटकम् । आलोकितुं कुमारी तु कृतशीर्षार्त्तिकैतवात् ॥२८२॥ स्वोपवने कायमाने स्थाता राजकुलान्तरे । अपद्वारेण निस्सृत्याऽहं
कन्यां विजने ततः ॥ २८३ ॥ प्रज्वाल्य कायमानं च तद्युक्त्यैष्यामि तेऽन्तिके । सा मित्रैः सहिता प्रेष्या भद्रसालपुरं प्रति
॥ २८४ ॥ त्वया तु नृपवृत्तान्तं मत्वा कतिपयैर्दिनैः । आगम्यं प्रच्छतः सर्वं तेनेत्यङ्गीकृतं वचः ॥ २८५ ॥ मित्रैरपि मतं
श्रीदत्तेन सन्मानिताऽथ सा । कार्येऽत्र त्वं विधिरसीत्युक्त्वा तां च विसृष्टवान् ॥२८६॥ श्रीदत्तः प्राह दत्तेयं यदस्तपितृवैरिणः ।
परिणेया ततोऽवश्यं मयाऽहतनयाध्वना ॥ २८७ ॥ सखी मृगाङ्कलेखायै गत्वाऽखिलमथाख्यत । तुष्टिदानमदात्तस्यै चिन्तिता-
भ्यधिकं च सा ॥ २८८ ॥

अथ कामोत्सवे प्राप्ते तत्सर्वं सा तथा व्यधात् । भद्रसालपुरे तेन प्रैषि मित्रैः समं च सा ॥ २८९ ॥ नृपः प्रदीपनं ज्ञात्वा
यावदायाति तावता । तत्सर्वं ज्वलितं वीक्ष्य पुत्रीशोकातुरोऽभवत् ॥ २९० ॥ कृत्वौर्ध्वदेहिकं राजा तस्याः सङ्गमिकायुजः ।
राज्ञो विक्रमशक्तेस्तद् ज्ञापयामास दुःखितः ॥ २९१ ॥ श्रीदत्तस्तच्च विज्ञाय भद्रसालपुरं प्रति । उत्को मृगाङ्कलेखायां यावद्याति
स वर्त्मनि ॥ २९२ ॥ अपश्यत्तावदायान्तीं घातसञ्जातजर्जराम् । पथि सङ्गमिकां शङ्कायुक्तोऽपृच्छत किं त्विदम् ॥ २९३ ॥

१ पर्णकुट्याम् । २ उत्कण्ठितः ।

सोचे किं वत्स्यहं तद्वि दैवयोगादजायत । वैरिणामपि यन्माऽभूत्तथाप्याऽऽज्यादि सोऽजदव् ॥ २९४ ॥ सोचे यत्र दिने कन्या
त्वया गृहीतवो दिनात् । तुर्ये दिने समागच्छत्सैन्यं किञ्चित्कृतश्रन ॥ २९५ ॥ तत्स्वामिना सहारब्धं युद्धं व्याघ्रबलादिभिः ।
तस्य मृगाङ्कलेखाया लिप्सया [1]सैंहिकेयवत् ॥ २९६ ॥ सुहृदस्तेऽभवन् शत्रुसैन्याब्धौ सक्तुमुष्टिवत् । आक्रोशन्ती शत्रुभटैः
केशाभिस्ताडिताऽस्म्यहम् ॥२९७॥ तामारोप्य हये सैन्यं यावं नो वेद्म्यतः परम् । क्वापि ते सुहृदो यावाः गा नीता क्वापि सेनया
॥ २९८ ॥ केवलं विलपन्तीं तामश्रौषं दूरतोऽप्यहम् । हा प्राणनाथ ! श्रीदत्त ! रक्ष रक्षेति भाषया ॥ २९९ ॥ श्रीदत्तस्य निशा-
म्येति नयनानि तदाभवत् । प्रेयसीकृपयाऽऽर्द्राणि शोणान्यरिषु रोषतः ॥३००॥ क एष क्रुद्धकालो योऽपहार्षीन्मम वल्लभाम् । करो-
मि युद्धरुं तस्य सैन्याम्भोधिमगस्त्यवत् ॥ ३०१ ॥ मम दर्शय तन्मार्गं यथा कुर्वे समीहितम् । इति जल्पति तत्रागुः सुहृदो घात-
पीडिताः ॥ ३०२ ॥ एतैरपि तदाख्याय प्रोचे नाद्यापि दूरगम् । सैन्यं महारथ ! त्वं तत्तच्छीर्षैर्भुवमर्चय ॥ ३०३ ॥ इत्युक्तः स
तदाख्यातवर्त्मना सैन्यमन्वगात् । मस्तलानक्षवत् शीर्षाण्यलुनाच्च स विद्विषाम् ॥ ३०४ ॥ दैवतादत्तनिस्त्रिंशरत्नमाहात्म्यतः परम् ।
पलयार्कमिव द्रष्टुमभून्न प्रभूष्णवः ॥३०५॥ गृहीतदिक्के शत्रूणां सैन्ये जीवितवाञ्छया । स्वप्रियां समुपादायाऽऽरोहाश्वं च स निर्ययौ
॥ ३०६ ॥ व्याघ्रैः सादिभिस्तस्य कुन्तपातोऽथ वाहितः । लभेऽश्वस्य च सोऽध्यानदय नेशुः परेऽखिलाः ॥३०७॥ अश्वारूढस्तया
सार्धं व्रजन् स पतितोऽटवीं । तामूचे च प्रिये ! प्राणैर्मोक्ष्यतेऽसौ तुरङ्गमः ॥ ३०८ ॥ ततोऽवतीर्य तां तस्यामुत्तीर्णायामथ क्षणात् ।
हये निपतिते दध्यौ श्रीदत्तो यदसौ कथम् ॥ ३०९ ॥ शिरीषसुकुमाराङ्गी हाहेति विषमे पथि । गमिष्यत्यनया सर्वं मरुत्ते

1 राहुवत् । 2 चातुक इति भाषायाम् । 3 लभयोः ।

अज्ञातकुलशीलं मां निर्धनं च समाश्रयत् ॥ ३११ ॥ ततो यदि-
दुष्करं कृतम् ॥३१०॥ राज्यं परिहृतं सत्स्वप्यन्येषु नृपजन्मसु । क्षणं विश्रम्य तद्वक्तुं करुणासार्द्रया दृशा ।
निजप्राणानेतस्यै वितराम्यहम् । तथापि विहितो न स्यादुपकारो मनागपि ॥ ३१२ ॥ न तृषार्ता ततस्तोयं कुतोऽप्या-
वीक्ष्य चोचे प्रियतमे ! पुरतो गम्यतेऽधुना ॥ ३१३ ॥ सा प्राह प्राणनाथाहं गन्तुं पदमपि क्षमा । तदार्कः
नय वेगतः ॥ ३१४ ॥ नीरं निरीक्षितुं नारीनिमित्तं शिखराणि सः । आरुरोह शिखरिणामादरालरितोऽपि हि ॥३१५॥ मन्ध्यारागहुताशने ।
पूर्वदिक्सङ्गकुपितामिव पश्चिमाम् । अनुनेतुमगादस्तानलं समं प्रकामयन् ॥ ३१६ ॥ अस्ते रवौ दिनश्रीद्रांक् सदुःखं रुदतीमिव
तमोधूमतरे तारास्फुलिङ्गनिकराङ्किते ॥ ३१७ ॥ लग्ना प्रवेष्टुं रोलम्बनिकुरम्बस्वकज्जलान् । अलिनीषु नयस्मासु ॥३१९॥ तदीयस्या-
॥ ३१८ ॥ (युग्मम्) अथो जलाशयं वीक्ष्य किञ्चित्पुंटकिनीपुटे । कृत्वा नयति पानीयं श्रीदत्ते प्राणरत्तमः विनापिता
नमलभमानः स विदधे स्वरान् । पुनः पुनस्तदीयाख्याभिलापाङ्किलपन्निति ॥ ३२० ॥ अनित्तायश्च केनापि श्वापदेन द्विषा क्रूरो-
तैः समेत्य हृता वा स्यादथवा विरहे मम ॥ ३२१ ॥ हृदयं स्फुटितं तस्या मूर्च्छिता वा तृषार्दिता । हाहा पापात्मना ॥ ३२३ ॥
सा कीदृशे मया ॥ ३२२ ॥ सा बाला कदलीगर्भसुकुमालामलाशया । क तीर्थं नः समं ध्वान्तादृश्वी क च दुर्गतिः लिङ्गिम-
कामान्धानां हि तन्नास्ति यद्दुःखं नोपपद्यते । उन्मादेषु समग्रेषु कामोन्मादो महानलः ॥३२४॥ भवनहरणं कन्दः परिवः
न्दिरे । मार्गो दुर्गतिपुर्याश्च गमनेऽसौ महारजः ॥ ३२५ ॥
इति चिन्तयताऽनेन भ्रमताप्यखिलां निशाम् । क्वापि न प्रापि सा पापीननेनेवाऽम्बुजान्यया ॥ ३२६ ॥ अथापद इव निशा-

1 कमलसमुद्गक सम्पुटे । 2 लक्ष्मीः ।

विरामे प्रमताऽमुना । यत्राधोऽस्ति मृतः स्नानं तदाऽऽपे च कथञ्चन ॥३२७॥ तत्र तस्याः पदश्रेणिं पदज्ञ इव वीक्ष्य सः । लग्नस्त-
शावनत्यत्र छन्नोर्व्यां मापि नैक्ष्यत ॥ ३२८ ॥ दध्यौ चक्रारवत्परावर्तः स्यात्सुखदुःखयोः । तत्किं कुर्वेऽधुना भ्रष्टपदो नृपति-
पोगिरन् ॥ ३२९ ॥ कर्तव्यताविमूढोऽयमगृणोच्छृङ्गकस्वरम् । ज्ञातुं तस्योद्भवं हित्वा खड्गरत्नं वटेऽचटत् ॥ ३३० ॥ तत्र पल्लीपतिः
मन्यपहितः गृहमाऽगमत् । तन्मृगाङ्काभिधं खड्गरत्नं तस्याऽग्रहीच्च सः ॥ ३३१ ॥ वटात् श्रीदत्त उत्तीर्याऽपृच्छत्तं कापि नायिका ।
प्रमन्ती मयाद्विदृष्टा विशिष्टा सोऽस्य नायकः ॥ ३३२ ॥ सखेदं वीक्ष्य तं प्राहाऽऽश्वासनाय विषीद मा । पल्लीं मे व्रज ते भार्या
वेणधैर गता भवेत् ॥ ३३३ ॥ भृत्या मे दर्शयिष्यन्ति तं च पल्लीपथं पुनः । खड्गं प्रतिनिवृत्तोऽहमर्पयिष्यामि ते द्रुतम् ॥३३४॥
नाभो तु त्वत्प्रियां तुभ्यमुपनेष्याम्यसंशयम् । स व्रजन् सह तद्भृत्यैः पल्लीपार्श्वमुपागतः ॥ ३३५ ॥ देवतायतनं वीक्ष्य शयितश्च
परिश्रमात् । रात्रिजागरणाद्धापि प्रमीलां प्राप निर्भरम् ॥ ३३६ ॥ प्रतिबुद्धो निगडितं वीक्ष्य स्वं स व्यचिन्तयत् । उद्धदानामयं
मन्ये सुन्दानामुपद्रवः ॥ ३३७ ॥ मृगाङ्कलेखया सार्धं तत्सख्या मत्रिभिर्निजैः । वियोगं प्राग् निगडनमधुना यदजायत
॥३३८॥ पाशिभिर्मा निपन्त्यैभिः किमप्यस्ति चिकीर्षितं । ध्यायन्तमित्युपेत्यैते भोजनाद्यैरुपाचरन् ॥ ३३९ ॥ मृगाङ्कलेखाध्याने-
ध्वतरस्मास निष्ठनः । आगान्मोहनिका नाम्ना भुजिष्या तमुवाच च ॥ ३४० ॥ कोऽसि त्वं क च वास्तव्यः किमर्थमिह चागतः ।
स गन्ताः पुरतः सर्वं स्ववृत्तान्तं ततोऽवदत् ॥ ३४१ ॥ तामपृच्छच्च चेटेति तदाऽऽख्याहि किमित्यहम् । नियन्त्रितोऽथ सा प्राह
पल्लीपं पल्लिनायकः ॥३४२॥ श्रीचण्डनामाऽऽग्राहरश्चण्डः सङ्ग्रामकर्मणि । ऊनेऽर्थे काऽपि कार्येऽस्या देव्याः इत्युपयाचितम् ॥३४३॥
गन्धपेन मो सिद्धकार्यो दास्याम्यहं बलिम् । तत्त्वं सलक्षणः प्राप्तो भृत्यानादिव्य पत्रिवः ॥३४४॥ श्रुत्वा तदाह श्रीदत्तो मुच्येऽहं

येन बन्धनात् । उपायः कोऽपि सोऽप्यस्ति सा प्राहाऽस्ति निशम्यताम् ॥ ३४५ ॥ अस्त्यस्य भूमिपालस्य सुन्दरी नामतः सुता ।
असरूपेण रूपेण प्रत्यक्षा सुरसुन्दरी ॥ ३४६ ॥ तयाऽत्राऽऽयातया दूरस्थितया त्वं विलोकितः । सङ्क्रान्तोऽसि च तत्कालं रत्ना-
दर्शनिभे हृदि ॥ ३४७ ॥ तस्याः स्मरशरोद्भूतविवरं हृदयान्तरम् । गुणैः प्रविष्टैराकृष्टं त्वदीयैः पशुवन्मनः ॥ ३४८ ॥ तया
कोऽयमिति ज्ञातुं प्रहिताऽहं तवाऽन्तिके । तत्करग्रहतः स्यात्ते मोक्षः स तदमन्यत ॥ ३४९ ॥ गत्वाऽऽख्याते तथा सुन्दर्यदादङ्गस्थ-
भूषणम् । प्रदोषे देवतापूजामिषं मातुः पुरोऽकरोत् ॥ ३५० ॥ चेट्या विवाहसामग्र्या चान्विता देवतागृहे । उपेत्यांदुकमाकृष्यो-
द्वाहं गन्धर्वमादधे ॥ ३५१ ॥ तं नियन्त्र्य भुजलतापाशेन निशि निर्दयम् । प्रातः क्षिप्त्वाऽन्दुके चेटीयुता सा स्वगृहं गता ॥ ३५२ ॥
इति प्रतिदिनं तस्याः प्रयान्त्यागर्भोऽभवत् । पृष्टाऽम्बयाऽऽख्यदखिलं सोचे सुन्दर्यसुन्दरम् ॥ ३५३ ॥ त्वयेदं विदधे तातो
यत्तेऽतिशयरोषणः । अनापृच्छ्येदृशं कार्यं कृतं न सहते स हि ॥ ३५४ ॥ वत्से ! त्वत्पतिजन्तोस्तत्कृतमन्तोर्विशेषतः । बभूव
जीविताशङ्का सुन्दर्यम्बामथाऽवदत् ॥ ३५५ ॥ अतः परं यदुचितं तत्त्वं मातर्विधेहि मे । ततः सुतायुता याता श्रीदत्तेन नताऽथ
सा ॥ ३५६ ॥ तयोचे पल्लिपो यावन्नावस्कन्दान्निवर्तते । तावन्नश्याऽन्यथा तु त्वां सागसं स हनिष्यति ॥ ३५७ ॥ यतो वक्रः
स्वभावेन नाम्नाऽप्येषोऽतिदारुणः । चित्तान्नोत्तारणीया तु सुन्दरी स्वप्रिया त्वया ॥ ३५८ ॥ स प्राहाम्ब ! कथं विसारयिष्ये
प्राणदामिमाम् । ऊचे चासिर्मम ग्राह्यः पल्लीशस्य करात्त्वया ॥ ३५९ ॥ आकृष्टनिगडः सोऽथाऽपद्वारेण निर्गतः । निर्गतं मन्यमा-
नस्स्वं शमनस्य मुखादिव ॥ ३६० ॥

१ निगडम् । २ गर्भः । ३ यमस्य ।

मृगाङ्कलेखां स्मरता तेन च ऐक्षि लुब्धकः । पृष्टश्च तेन श्रीदत्तो भ्राम्यस्येको वने कुतः ॥ ३६१ ॥ सविषादश्च कस्मात्त्वं
श्रीदत्तः प्राह मे प्रिया । भ्रष्टा वनेऽत्र तां पश्यन् भ्रमामीतस्ततस्ततः ॥ ३६२ ॥ स प्राह किं ते श्रीदत्तो नाम तेनापि भाषिते ।
लुब्धकः प्राह मा खेदं वृथा तदधुना कृथाः ॥ ३६३ ॥ यतः कतिपयदिनप्रान्तेऽदृश्यत बालिका । हा प्राणनाथ! श्रीदत्त! श्रीद-
त्तेति विलापिनी ॥३६४॥ मयाऽथ पृष्टयाऽऽख्यायि तया सर्वं ततो मया । आश्वास्योक्ता सुता त्वं मे पायिता च पयो दलैः ॥३६५॥
पल्लिं नीत्वा निजयूनां जानता कुलशीलताम् । मुक्ता नागतलग्रामे नागदत्तेभ्यमन्दिरे ॥३६६॥ ऊचे च नागदत्तेन वत्से! त्वं मम
पुत्रिका । अत्र भर्त्रागमं यावत्तत्सुखं तिष्ठ निष्ठया ॥३६७॥ अथ त्वामीक्षितुमहमिहाऽऽयातोऽसि तां ततः । गृहाण गृहिणीं गत्वा मया
सह महाशय! ॥३६८॥ श्रीदत्तः प्राह परमोपकारी त्वं ततो मम । राज्ये जाते त्वयाऽऽगम्यमवश्यं मम सन्निधौ ॥ ३६९ ॥ स
समं समुदा तेन तद्ग्रामं समुदागमत् । नागदत्तमपृच्छच्च क्व तिष्ठति मम प्रिया ॥ ३७० ॥ भद्रशालपुरे शूरसेनसैन्यपवेश्मनि ।
नीत्वा मुक्त्वा निशामेतां यावद्य त्वमिह स्थितः ॥ ३७१ ॥ प्रातस्त्वया सहागत्य दर्शयिष्याम्यहं तु ताम् । अतीवोत्कोऽहमित्युक्तः
सन्ध्यायां तत्र सोऽगमत् ॥ ३७२ ॥ पुरःप्रवेशे वाप्यम्भःस्नानाय प्राविशच्च सः । पृष्ठागच्छद्भटश्चौरो हारं हृत्वा तदा गतः ॥ ३७३ ॥
स तत्पदाग्रलग्ने बद्ध्वा तं नष्टोऽथापरः पुनः । पश्यच्चरलग्नं हारं प्रासश्चारथकैर्धृतः ॥ ३७४ ॥ निरायुधश्च बद्धस्तैरूचे रे! पाप! किं
त्वया । ज्ञातं हृत्वाप्यहं हारमेषां यास्यामि पश्यताम् ॥ ३७५ ॥ वैरिसिंहसुतो दध्यावहो भवविडम्बना । विनापि मन्तुं यदहं
मङ्कटेऽपतमीदृशि ॥ ३७६ ॥ यदिन्द्रियवशानां किं किमनिष्टं न जायते । दैन्यं लघुत्वमयशो नैःस्व्यं दुःखपरम्परा ॥ ३७७ ॥
पीयते प्रज्वलत्स्वामिस्तीव्रे खड्गेऽपि चल्यते । भिद्यते मौलिनाप्यद्रिः सर्पमण्यपि गृह्यते ॥ ३७८ ॥ गण्यन्तेऽपि हरेर्दन्ता भक्ष्यतेऽपि

हलाहलम् । न शक्यन्ते दमयितुमिन्द्रियाश्वाः सुदुर्दमाः ॥३७९॥ ये न तैः पातिता मन्ये त एव सुभटाः स्फुटाः । इन्द्रियाणां
वशोऽवश्यं लभतेऽपयशो नरः ॥ ३८० ॥ धन्यान्मन्ये मुनीनेवं भटान्मतिमतोऽपि च । सकलोऽपीन्द्रियग्रामो यैर्गाढं गलहस्तितः
॥ ३८१ ॥ अहहेन्द्रियवर्गस्य वलित्वं यन्न शक्यते । अमीषां दमनं कर्तुमपि ज्ञाननिकेतनैः ॥ ३८२ ॥ निर्वाणपूः प्रवेशद्वा[1]
इन्द्रियाणां दमो ध्रुवम् । तत्र वज्रार्गलाप्राया नितान्तं वनिता पुनः ॥ ३८३ ॥ इति विज्ञायते चार्यैर्नार्यो [2]हिरिरीपुद्गलाः । तथा च
सरधत्तूरपूरितानां सुवर्णताः ॥ ३८४ ॥ स नम्यः स निषेव्यश्च स सर्यः स प्रशस्यते । दुर्दान्ता येन केनापि दान्ता इन्द्रियवाजिनः
॥ ३८५ ॥ अहीनो यदहीनोऽयं श्रिया पातालनायकः । यच्चक्रीव महीचक्रमाक्रामति पराक्रमैः ॥३८६॥ क्रीडते स्वर्वधूभिश्च स्वर्गे
यत्स्वर्गनायकः । तदिन्द्रियदमलवोद्भवविलसितं ध्रुवम् ॥ ३८७ ॥ कृतार्थं जन्म तस्यैव सफलं तस्य जीवितम् । यः स्वार्थरसिकैः
श्रान्तो धूर्तैर्नो विप्रतारितः ॥ ३८८ ॥ अकृतागाः पुरा कोऽपि मयाऽनर्थे प्रपातितः । आलं वा कस्यचिद्दत्तं तन्ममेयं विडम्बना
॥ ३८९ ॥ चरन्ति जन्तवः स्वैरं प्रमादमदिरावशाः । तद्विपाकः कटुस्तेन त्रिगुप्ताः स्युर्विवेकिनः ॥३९०॥ चिन्तयन्नित्ययं नीय-
मानोऽपश्यन्मुनिद्वयम् । कपाटयुगलप्रायं पिधाने दुर्गतेः पुनः ॥ ३९१ ॥ सर्वस्वमिव धर्मस्य द्वारं शिवपुरस्य च । तद्वीक्ष्य परमा-
नन्दनन्दितो ह्यचिन्तयत् ॥ ३९२ ॥ कृतकृत्योऽस्म्यहं जातो व्यसने साधुदर्शनात् । अनयोर्हि प्रसादेन सर्वं मे भावि सुन्दरम्
॥ ३९३ ॥ यदप्यमी ध्रुवं धन्याः सर्वसङ्गविवर्जिताः । व्यसनानां विदूरस्थास्तीव्रव्रतविधायिनः ॥ ३९४ ॥ धर्मोऽयमेव रुचिरः
सर्वजीवदयामयः । पुरो मे जन्तुघातेन धर्मोऽधर्मो मतः पुनः ॥३९५॥ ततोऽमुतो व्यसनाब्धेर्यद्युत्तारो भविष्यति । अयं धर्मस्ततः

---

[1] प्रवेशद्वारम् । [2] पित्तलपुद्गलाः ।

द्यायों मया धर्मप्रदायकः ॥३९६॥ चिन्तयन्नित्ययं नीत उपकारणिकं भटैः । तत्पृष्टो निजवृत्तान्तं प्राह नाऽहं मलिम्लुचः ॥३९७॥
ते प्रोचुश्च न चौरस्त्वं तदाऽऽन्याहि गतः क्व सः । येन बद्धोऽञ्चले हारः स प्रोचे तन्न वेद्म्यहम् ॥ ३९८ ॥ असत्यभापक इति ते
तस्य वधमादिशन् । तन्मूर्ति वीक्ष्य पौराश्च कृतहाहारवं जगुः ॥ ३९९ ॥ चौरः साक्षानया मूर्त्या मूढाः कारणिकाः पुनः ।
पाषाणानसदृशां ये न विदन्ति पशूपमाः ॥ ४०० ॥ कथञ्चिदीदृशेनापि निष्पद्यते यदीदृशम् । जीवलोके सदाचारस्तत्र कोऽपि
मरिष्यति ॥ ४०१ ॥

अथ कोलाहलं श्रुत्वा बहुलं जालकस्थिता । मृगाङ्कलेखा पप्रच्छ निजकां परिचारिकाम् ॥ ४०२ ॥ कीदृक्कोलाहलमिदं
धूयते नगरान्तरा । स्फुरित्वा दक्षिणं चक्षुर्वामं स्फुरति मेऽधुना ॥ ४०३ ॥ शुद्धिं विधाय साख्यच्च तदग्रे कोऽपि पूरुषः । रूपनि-
र्जितकन्दर्पो नीयते वध्यभूमिकाम् ॥ ४०४ ॥ तं दृष्ट्वा कुरुते हाहारवं पुरजनोऽखिलः । ममापि प्रतिभात्येपोऽवश्यं न स्यान्मलि-
म्लुचः ॥ ४०५ ॥ यत्तु वो दक्षिणं चक्षुर्वामं च स्फुरति स्फुटम् । तत्किंचिद्दुःखमाख्याति देवि ! सौख्यं तवान्तिकम् ॥ ४०६ ॥

अथ सेनापतिगृहसमीपे स समागतः । तलारक्षपरिवृतो लज्जामिलितलोचनः ॥ ४०७ ॥ सा तं वीक्ष्योपलक्ष्याऽथाऽतीव-
भीतमुपानिता । वेपमानवपुर्वेपथिश्चमूपस्यान्तिकं गता ॥ ४०८ ॥ नत्वा प्रोवाच जामाता भवतां नीयतेऽधुना । हन्तुं निरागा
वध्योर्व्यामारधकमटैरिमैः ॥४०९॥ कृत्वा प्रसादं तत्त्राणं विधत्ताऽस्याऽविलम्बितम् । नो वा मे जीवितव्यस्याऽधुना दत्त जलाञ्जलिम्
॥ ४१० ॥ सेनानी प्राह पुत्रि ! त्वं निर्मन्तुं वेत्समुं कथम् । सा प्राह गद्गदं तात ! सोऽप्येवं कुरुते यदि ॥४११॥ विश्वं विश्वं ततः
कालः करोतु यदुपं कलिः । दूरं नश्यन्तु मर्यादा न्यायधर्मकथा अपि ॥ ४१२ ॥ धान्यां दोषैरमिश्राणां गुणनाथाश्रयः स हि ।

एक एव कृतो दोषशङ्का कार्याऽत्र नो ततः ॥ ४१३ ॥ तद्गिराथ चमूनाथः स्वनरांस्तन्निषेधने । प्रेष्य स्वयं ययौ भूपं तं मोचयि-
मुत्सुकः ॥ ४१४ ॥ विज्ञप्ते तत्स्वरूपेऽथ भूपेन स विमोचितः । आनायितस्तया गेहं स्नपितः परिधापितः ॥ ४१५ ॥ चन्दनाऽगु-
कस्तूरीकर्पूराद्युपनीय च । अनीयत स पल्यङ्के विश्रान्तोऽप्रच्छि चैतया ॥ ४१६ ॥ यथावृत्तं स्ववृत्तान्तं कथयामास तत्पुरः ।
क्वापि प्राप विषादं सा क्वापि हर्षं च साश्रुदृक् ॥ ४१७ ॥ तदा सेनापतिः सौधादागतो निजमन्दिरम् । पितृव्यं स्वं निरिक्ष्यो
नन्वाश्चर्यमहो ! महत् ॥ ४१८ ॥ यदयं रणसिंहो मे पितृव्य इति जल्पता । श्रीदत्तेन प्रणेमे स हर्षाश्रुणि विमुञ्चता ॥ ४१९ ॥
श्रीदत्तोऽयं समायातः सहोदरसुतो मम । तेनेति जल्पता गाढमुपगूढः ससम्भ्रमम् ॥४२०॥ श्रीदत्तोऽचिन्तयदहो अपूर्वं विधिचे
तम् । क्व तादृक् व्यसनश्रेणिः क्व चैषः स्वगृहागमः ॥ ४२१ ॥ रणसिंहोऽवदद्वत्स ! कुशलं सोदरस्य मे । सबाष्पनयनः सोऽथ स
वृत्तमभाषत ॥ ४२२ ॥ रणसिंहं चमूनाथं सखेदोऽथ तमालपत् । हन्तुं विक्रमशक्तिं त्वं वत्स ! शक्तिं प्रकाशय ॥ ४२३ ॥ त
निर्गत्य यद् गेहाद्भक्त्या परमया मया । आरादाराधितो देवो [1]विनतानन्दनो द्विधा ॥४२४॥ तुष्टो हाटककोटीः स सप्त मह्यमदा-
न्मुदा । उत्तुङ्गानां तुरङ्गाणां सहस्राणां च पञ्चकम् ॥ ४२५ ॥ सर्वमेतत्तवकृते मया रक्षितमक्षितम् । अनपत्यस्य यत्पुत्रः सत्यं
वत्स ! त्वमेव मे ॥ ४२६ ॥ इयं समग्रसामग्री [*............... । ....] स्वविक्रमात् ॥ ४२७ ॥ न
प्राहास्त्यखिलं तात ! मृगाङ्कासिमणिं विना । तत्प्रतीक्ष्य प्रतीक्षेऽहमागच्छन्तं तमेव हि ॥४२८॥ मृगाङ्कलेखया पाणिग्रहणं सोऽ
कारितः । श्रीदत्तः कालमत्येति सानन्दस्तत्र च स्थितः ॥ ४२९ ॥ अचिन्तयच्च स्वर्णाद्यं मयात्तं प्रियया समम् । सुहृदश्चासिरत्नं

१ गरुडः । २ *अस्माकं समीपमागतेषु सर्वेष्वप्यादर्शेषु इति [...] चिह्नाङ्कितो पाठः भ्रष्ट एव ।

मिलान्तु यदि वाञ्छम् ॥ ४३० ॥ सोऽन्यदा सादिसन्दोहपदातिपरिचारितः । आगाद्भद्रकभावेन प्रासादपतिभावितः ॥ ४३१ ॥
नन्दन्तिसिना तेन मित्रे व्याघ्रमहाबलौ । दृष्टौ कृतप्रणामौ तावाश्लिष्यैतेन भाषितौ ॥ ४३२ ॥ कुशलं सुहृदामस्ति ताभ्यामूचे
तदा मित्रे ! । बाहुशाली प्रहारार्तमित्रमङ्गमिकान्वितः ॥ ४३३ ॥ घातप्रतीकारकृते गतो हर्षवतीं पुरीम् । तव शुद्धिकृते भ्रान्ता-
वराभ्यामखिला त्विला ॥४३४॥ (युग्मम्) दृष्टः पुण्यवशाद्‌धाऽऽदिशा ऽऽवां किं विदध्महे । निजवैरप्रतीकारं त्वं विधेहि तथाऽऽधुना
॥४३५॥ स्वस्वरूपं सर्वमपि निवेद्याय तयोः पुरः । जिनेन्द्रमार्चयद्भक्त्या रोमाञ्चकञ्चुकाञ्चितः ॥४३६॥ ऊचे चाग्रे तयोरेष परमार्थेन
दैवता । तौ तत्र प्रतिपेदाने गताश्च स्वगृहं समम् ॥ ४३७ ॥ ततो विधाय सन्मानं स व्याघ्रबलमादिशत् । गत्वा मे कुशलं बाहु-
शल्यादीनां निवेदय ॥ ४३८ ॥ गते तस्मिन् रणसिंहेन श्रीदत्तो गदितो रहः । वत्सास्ति शूरसेनस्य राज्यश्रीर्नामतः सुता
॥ ४३९ ॥ सा च हर्षवतीनाथहरिषेणस्य भूभुजा । दत्तोद्वाहयितुं तां च प्रहितोऽहं तयोः सह ॥ ४४० ॥ तद्विवाहाय मे द्रव्यं
प्रभूत भूभुजार्पितम् । प्रहितः परिवारश्च बहुमाहात्म्यहेतवे ॥ ४४१ ॥ ममाशयस्त्वयं कन्यापाणिग्रहमहोत्सवः । चेत्त्वया कार्यते
वत्स ! गच्छ त्वं तया सह ॥ ४४२ ॥ जातानुरागामेतां च त्वमुद्वह कुलोद्वह ! । स प्राह तातस्यादेशः प्रमाणं मम सर्वथा ॥४४३॥
श्रीदत्तस्य समूपोऽथ राजादेशमदापयत् । ततश्च गुर्व्या सामग्र्या चचाल स तया सह ॥ ४४४ ॥ मार्गेऽथ सप्ताहोरात्रलङ्घेऽरण्येऽ-
न्यदा निशि । सुप्ते सैन्ये परिश्रान्तेऽपतत्पल्लीशगौप्तिकम् ॥ ४४५ ॥ ततो हत हतेत्युच्चैःस्वरप्रसरदुर्धरम् । प्रसृतस्फारविस्फार-
बधिरीकृतदिग्युगम् ॥ ४४६ ॥ कृतसंरम्भसुभटाऽऽस्फाल्यमानभुजारवम् । कातराणां सुदुःप्रेक्ष्यं महायुद्धमजायत ॥४४७॥ (युग्मम्)
श्रीदत्तस्य भटा योद्धुमक्षमाः शरणिश्रमान् । दूरं निग्रकृताश्चौरैः पौरग्राम्यजना इव ॥ ४४८ ॥ श्रीदत्तोऽथासिमादाय स्वयं

योद्धुं समुद्यतः । यतते स क्षयाम्भोद इव विद्युत्समन्वितः ॥४४९॥ तेन धाटीपतेः शीर्षं चिच्छिदेऽतुच्छलाघवात् । स्कन्धावारजनो यावत्करोति च जयध्वनिम् ॥ ४५० ॥ यावच्च जितमित्येष वलितः कलितो मुदा । तावद्द्वीयसा केनाप्यऽयं शक्त्या समाहतः ॥ ४५१ ॥ पतितश्च महीपृष्ठेऽजनि चैतन्यमन्दता । नेशुः सैन्याः परैरेत्य श्रीदत्तश्च नियन्त्रितः ॥ ४५२ ॥ तं च कन्यां च सर्वस्वं चादाय चरटा ययुः । पल्लीं पल्लीपतेः सर्वमखर्वं तदुपानयन् ॥ ४५३ ॥ तेन भट्टारिकाग्रे च श्रीदत्तः क्षेपितः क्षणात् । ऊचे च सुन्दरी वत्सेऽस्त्यानीतो ना सलक्षणः ॥४५४॥ सन्मान्य स्वजनांस्तत्त्वं सायं देवी! गृहे व्रज । वदेः स्वपुत्रजन्मे यन्मयोक्तमुपयाचितम् ॥ ४५५ ॥ तदयं पुरुषो देवि! दीयते ते सलक्षणः । पश्चात्तं हन्तुमादेशस्त्वया देयः प्रहारिणम् ॥ ४५६ ॥ तदङ्गीकृत्य सा त्वेषां दत्त्वाऽऽहारं चतुर्विधम् । सायं सुतयुता तत्र स्फारशृङ्गारधारिणी ॥ ४५७ ॥ मंडितस्वजनस्त्रीभिर्मंडिताऽबहुत्वभृत् । तं निहन्तुं गता गीतनृत्यवादित्रसङ्गता ॥ ४५८ ॥ (युग्मम्) श्रीदत्तोऽचिन्तयदयं निहन्तुं मामुपक्रमः । न वेद्मि पल्लिः सान्या वा यतः क्षिप्तोऽस्मि निश्यहम् ॥ ४५९ ॥ सुखकन्दा ममोत्खाताः सर्वे दुःखखनित्रतः । तस्यैव मुनियुग्मस्य पादास्त्राणं च सन्तु मे ॥ ४६० ॥ गर्भागारे प्रविश्याथ सुन्दरी दीपकान्विते । देवीमपूजयद्भक्त्या धूपोत्क्षेपं ततान च ॥ ४६१ ॥ महता धूपधूमेनाभिहता दीपकप्रभा । कृत्वा मालामथस्थूलां श्रीदत्तस्य गलेऽक्षिपत् ॥ ४६२ ॥ अध्यायच्च नरोऽयं मत्प्राणनाथस्य सन्निभः । परोऽपि दृश्यै यदियं सुन्दरीसदृशी वशा ॥ ४६३ ॥ चतुःसमं तु सा गोत्रे श्रीदत्तस्य विलेपनम् । कुर्वती गुर्वतीवाऽऽसीदिति चिन्तासमाकुला ॥ ४६४ ॥ सुधाररससमः स्पर्शोऽवश्यमेव प्रियस्य मे । सरात्रैति चकम्पे सा तद्विप्रियभयादिव ॥ ४६५ ॥ खिन्ना कण्टकिता

---

१ प्रलयकालस्य मेघः । २ देवताविशेषः ३ बहुशीघ्रतायुता इत्यर्थः । ४ लवङ्गादिचतुरोपधीभिः संस्कृतम् ।

मिलन्ति यदि तद्वरम् ॥ ४३० ॥ सोऽन्यदा सादिसन्दोहपदातिपरिचारितः। आगाद्भद्रकभावेन प्रासादपतिभावितः ॥ ४३१ ॥
तदन्तर्विशता तेन मित्रे व्याघ्रमहाबलौ। दृष्टौ कृतप्रणामौ तावाश्लिष्यैतेन भाषितौ ॥ ४३२ ॥ कुशलं सुहृदामस्ति ताभ्यामूचे
तदा विभो!। बाहुशाली प्रहारार्त्तमित्रसङ्गमिकान्वितः ॥ ४३३ ॥ घातप्रतीकारकृते गतो हर्षवतीं पुरीम्। तव शुद्धिकृते भ्रान्ता-
यकाभ्यामखिला त्विला ॥४३४॥ (युग्मम्) दृष्टः पुण्यवशादद्याऽऽदिशाऽऽवां किं विदध्वहे। निजवैरप्रतीकारं त्वं विधेहि तथाऽऽधुना
॥४३५॥ स्वस्वरूपं सर्वमपि निवेद्यायं तयोः पुरः। जिनेन्द्रमार्चयद्भक्त्या रोमाञ्चकवचाञ्चितः ॥३३६॥ ऊचे चाग्रे तयोरेष परमार्थेन
देवता। तौ तच्च प्रतिपेदाते गवाश्च स्वगृहं समम् ॥ ३३७ ॥ ततो विधाय सन्मानं स व्याघ्रबलमादिशत्। गत्वा मे कुशलं बाहु-
शाल्यादीनां निवेदय ॥ ४३८ ॥ गते तस्मिन् रणसिंहेन श्रीदत्तो गदितो रहः। वत्सास्ति शूरसेनस्य राज्यश्रीनामतः सुता
॥ ४३९ ॥ सा च हर्षवतीनाथहरिषेणस्य भूभुजा। दत्तोद्वाहयितुं तां च प्रहितोऽहं तयोः सह ॥ ४४० ॥ तद्विवाहाय मे द्रव्यं
प्रभूतं भूभुजार्पितम्। प्रहितः परिवारश्च बहुसाहाय्यहेतवे ॥ ४४१ ॥ ममाशयस्त्वयं कन्यापाणिग्रहमहोत्सवः। चेत्त्वया कार्यते
वत्स! गच्छ त्वं तत्तया सह ॥ ४४२ ॥ जातानुरागामेतां च त्वमुद्वह कुलोद्वह!। स प्राह तातस्यादेशः प्रमाणं मम सर्वथा ॥४४३॥
श्रीदत्तस्य चमूपोऽथ राज्ञादेशमदापयत्। ततश्च गुर्व्या सामग्र्या चचाल स तया सह ॥ ४४४ ॥ मार्गेऽथ ससाहोरात्रलङ्घेऽरण्येऽ-
न्यदा निशि। सुप्ते सैन्ये परिश्रान्तेऽपतत्पल्लीशसौप्तिकम् ॥ ४४५ ॥ ततो हत हतेत्युच्चैःस्वरप्रसरदुर्धरम्। प्रसृतस्फारविस्फार-
बधिरीकृतदिङ्मुखम् ॥ ४४६ ॥ कृतसंरम्भसुभटाऽऽस्फाल्यमानभुजारवम्। कातराणां सुदुःप्रेक्ष्यं महायुद्धमजायत ॥४४७॥ (युग्मम्)
श्रीदत्तस्य भटा योद्धुमक्षमाः सरणिश्रमात्। दूरं विप्रकृताश्चौरैः पौरैर्ग्राम्यजना इव ॥ ४४८ ॥ श्रीदत्तोऽथासिमादाय स्वयं

स्याद्देवता जैनं धर्मं तद्विद्धि सुन्दरि ! ॥४८४॥ सानन्दा सुन्दरी धर्मं मुन्दरं प्रतिपद्य तम् । सौरसेनाभिधं पुत्रं दर्शयामास तत्पुरः
॥ ४८५ ॥ स तेनालिङ्ग्य सर्वाङ्गं स्वक्रोडे क्रीडितश्चिरम् । आघ्रात उत्तमाङ्गे च लालितो बहुधा मुदा ॥ ४८६ ॥ सुन्दर्यानायित-
मथारुह्य जात्यं तुरङ्गमम् । श्रीदत्तस्तद्गृहं यातः प्रतिपत्तिः कृता बहुः ॥४८७॥ तच्च विज्ञाय सुन्दर्या मातुलः सम्भ्रमाकुलः । भद्र-
सेनाभिधोऽभ्येत्याश्लिष्य श्रीदत्तमाह सः ॥ ४८८ ॥ श्रीचन्द्रेनावसानेऽहमादिष्टः सकलान्वयः । राज्यश्रीर्मम दातव्या जामातुः
सुन्दरीपतेः ॥ ४८९ ॥ तन्मया त्वत्कृते राज्यमेतावन्तमनेहसम् । पालितं सम्प्रति त्वं तु प्रतिपालय पालकः ॥ ४९० ॥ यच्चास्म-
त्पुरुषैर्दोर्भ्यामानिन्ये तद्धनं तथा । समस्ति कोशविन्यस्तमिदं राज्यसुतायुतम् ॥ ४९१ ॥ श्रीदत्तस्तत्क्षणं शातकुम्भकुम्भपयोभरैः ।
तेनाभिषिक्तस्तद्राज्यं स च पात्युग्रशासनः ॥ ४९२ ॥ घातीन्र्यपेघव्यायं चाऽपालयन्धर्ममार्हतम् । राज्यश्रियमुपायंस्त रूपेणाधि-
समानसम् ॥ ४९३ ॥ मृगाङ्कलेखा चाऽऽनायि रणसिंहसमन्विता । पितृव्यस्तेन चक्रे च राजकार्येषु चिन्तकः ॥४९४॥ आनाय-
यत्प्रधानैश्च सर्वान् सहचरानयम् । अदात्तेषां समेतानां यथोचितपदानि च ॥ ४९५ ॥ न्यायधर्मवतः कीर्तिस्तस्य सर्वत्र विश्रुता ।
लीलाभिर्नव्यनव्याभिः कालमत्येति सोऽन्वहम् ॥ ४९६ ॥ इतो मृगाङ्कलेखायाः शुद्ध्याख्याता स लुब्धकः । श्रुत्वा प्रसिद्धि-
मायातः श्रीश्रीदत्तेन चेक्षितः ॥ ४९७ ॥ प्रत्यभिज्ञाय तं तस्योचितं सद्यः पदं ददे । प्रस्तरोत्कीर्णवर्णालिसमा हि महतां गिरः
॥ ४९८ ॥ स प्रैपीदन्यदा दूतं हर्षदेवस्य भूपतेः । शूरसेनस्य चाऽऽदिश्य तौ गत्वा तावथोचतुः ॥ ४९९ ॥ श्रीश्रीदत्तमहाराजः
सस्नेहं सन्दिशत्यदः । युष्माकं सुतया पाणिग्रहणं विहितं मया ॥ ५०० ॥ यूयं कुरुत जन्यं वा सौजन्यं वा मया समम् ।
ोऽस्म्यहमिहार्थे हि पक्षयोरुभयोरपि ॥ ५०१ ॥ हर्षदेवस्ततः प्राह किं जीवति सुता मम । दूतेनाऽथाऽपहारादिवृत्तान्तः

पाद करमुद्धर्तुमक्षमा । धृत वा कीलित वापि सा बभूव तदङ्गतः ॥ ४६६ ॥ सोऽपि दध्याववं सम्यक् सुन्दर्याः करपल्लवः । परमस्यामरस्याया वक्तु किंचिन्न शक्यते ॥ ४६७ ॥ [. . .. | . ...] ॥ ४६८ ॥
[ ]वेदीमो मम । सा मिल्वाऽऽह वियोगे ते सर्वं स्वामिनि तन्मयम् ॥४६९॥ स स्याचेत्तन्निरीक्ष्य त्वां न स्वं ज्ञाप-
यते कथम् । सुन्दर्याऽभाष्यथ हले! निपुणापि न वेत्सद' ॥ ४७० ॥ व्यसने पतिता न स्व ज्ञापयन्ति नरोत्तमाः । प्राणान्मुञ्चन्ति
नो मानमाणिक्य तु महाधनम् ॥ ४७१ ॥ किं चाय धूपधूमेन सम्यक् मे नेक्षते मुखम् । यद्वा समाभूत्तत्तुल्यो ध्यातो वध्यस्ततो
न नः ॥ ४७२ ॥ देवप्रीतिकृतेऽन्यार्प्याद्वधेऽस्य हि स हन्यते । तत्वं सम्यक् निरीक्ष्यैनं कथयाथ ममाग्रतः ॥ ४७३ ॥ गर्भागारे-
ऽथ सा गत्वाऽऽकृष्य धूपघटीं बहिः । प्रबोध्य दीप त पश्योपालक्षयदुवाच च ॥ ४७४ ॥ त्व श्रीदत्तो न वा भद्र! मां विजानासि
मोऽवदत् । श्रीदत्तोऽहं न वा किं वासि त्वं मोहनिद्रा न वा ॥४७५॥ इति प्रकटितेनाङ्ग किं कार्यं मम साम्प्रतम् । सप्रमोदाऽथ
सा गत्वा तत्सुन्दर्यै व्यजिज्ञपत् ॥ ४७६ ॥ सहसा प्राह सा कृत्यमहो कीदृगभूदिदम् । यदस्माकं नरैः प्राणनाथ एव कदर्थितः
॥४७७॥ प्रबुद्ध मम पुण्यैस्तु यद्भ्रान्तिरजनीदृशी । तदानय मृगाङ्कासिरत्नं बन्धान् च्छिनद्म्यहम् ॥ ४७८ ॥ तेनाथ परिणामेन
शुमेनेवासिना तथा । प्रच्छिद्य बन्धनानि श्रीदत्तो मोक्षमलभ्यत ॥४७९॥ स च प्रोवाच सानन्दः साधुस्मरणतो मया । उत्तीर्ण-
मेतद्व्यसनं चिन्तामणिसमा हि ते ॥ ४८० ॥ तत्पदप्रणतेरेवोत्तमाङ्गं कीर्त्यते शिरः । लोकद्वयसुखे मुक्तिः सात्तत्पादप्रसादतः
॥ ४८१ ॥ सात्तेषां दर्शनं येन कर्मण्यङ्कुरिते शुभे । पल्लवे तूपदेशः स्यात्तज्जिघृक्षा च पुष्पिते ॥४८२॥ फलिते तदुरीकारो भावि-
मद्दशरीरिणाम् । स एव देवता यर्हन् ते यमाप्या न्ति निर्ममाः ॥४८३॥ यस्मा वितीर्यते त्वीदृक् युष्माभिरुपपाचितम् । सो नः

च अपे त्वयाऽमाऽहं युध्यमानो यतो भवान् । भिल्लो भार्याप्रसादेनाविर्भूतविभवोऽपि च ॥५२१॥ यदादिशति देवो मे गदित्वेति-विनिर्गतः । दूतः सद्भूतमेवाह श्रीदत्तनृपतेः पुरः ॥ ५२२ ॥ श्रीदत्तेन ततः प्रोचे सरुषो परुषाक्षरम् । अलपन्नित्यवध्यत्वाद्दूतोऽसीति न वध्यसे ॥ ५२३ ॥ गत्वा क्षत्रियखेटस्य तस्याख्याहि हरिर्वने । स्थितोऽहं तव मातङ्गादास्ये मुक्तामयश्रियम् ॥ ५२४ ॥ अन्यच्च निजसौभाग्यलब्धश्रीः श्रीपतिः प्रभुः । भार्यावाप्तधनो दैत्यान्निहन्ति त्वामहं तथा ॥ ५२५ ॥

गते दूतेऽथ संवाहं श्रीश्रीदत्तो व्यधापयत् । जयढक्कानिनादेन मिलितं चाखिलं बलम् ॥ ५२६ ॥ गर्जद्गजव्रजं हेषाघोषहर्षि तुरङ्गमम् । प्रक्वणत्किंकिणीजालरथमालासमाकुलम् ॥ ५२७ ॥ धनुस्तोमरचक्रासिशूलशक्तिपुरःसरैः । विविधैरायुधैर्युक्तैः पदातिभिरनुवृतम् ॥ ५२८ ॥ (त्रिभिर्विशेषकम्) संसूचितजयः सर्वैः शकुनैः शुभशंसिभिः । श्रीदत्तभूपतिः प्राप द्विगुणोत्साहसाहसम् ॥ ५२९ ॥ ततस्ताडिततूर्यौघं पस्पृत्वरशरत्वरम् । उद्घुर्णमुद्गराघातसञ्चूरितमहारथम् ॥ ५३० ॥ शल्यशल्यि च मातंगविधूतारोहकव्रजम् । निस्त्रिंशभटनिस्त्रिंशघातपातितमस्तकम् ॥ ५३१ ॥ प्रक्षरक्षतजव्रातजातस्रोतस्विनीगणम् । उभयोः सैन्ययोर्जज्ञेऽदैन्ययोर्दारुणं रणम् ॥ ५३२ ॥ (त्रिभिर्विशेषकम्) श्रीदत्तक्ष्मापतिर्वीक्ष्य पक्षयोरुभयोः क्षयम् । सम्प्रेष्य मागधगणं जगाद पितृवैरिणम् ॥ ५३३ ॥ मुधा विधीयते कस्मात्संख्येऽसंख्यजनक्षयः । क्षमश्चेत्तर्हि युध्यस्व श्रीदत्तेन सह स्वयम् ॥ ५३४ ॥ मेने विक्रमशक्तिस्तन्निजविक्रमगर्वितः । अथ सिंधुरमारूढा उभावपि समेयतुः ॥ ५३५ ॥ श्रीदत्तः सम्प्रति प्राह प्रहर प्रथमं मयि । शस्त्रैः प्रहरतस्तस्य शस्त्राण्ययमखण्डयत् ॥ ५३६ ॥ प्रोचे विक्रमशक्तिस्तं भो पल्लीप ! तदा त्वया । उप्तो गङ्गातटे पूर्वं

१ सैन्यम् । २ अश्वसन्नाह.

श्यिनोऽगिलः ॥ ५०२ ॥ गहषीं हर्षदेवोऽथ तुष्टिदानप्रदानवान् । ऊचे सुतायाः क्षेमेण किं किमद्य न मेऽभवत् ॥ ५०३ ॥
किं चेति वाच्यः श्रीदत्तस्त्व प्रेमसदृशं त्वया । कार्यं कृतिन् ! यदनया सर्वं हित्वा स्वमाहृतः ॥ ५०४ ॥ इत्युक्त्वा हर्षदेवो
रद दुहितुर्दुहितुः पत्नेः । प्राहिणोदुन्नितान्युधैर्वस्त्राण्याभरणानि च ॥ ५०५ ॥ राजपश्रीजनकस्त्वाह विग्रहस्य निवर्तने । दीयते
शुश्रिषा राज्ञां तत्कृते योऽस्तु विग्रहः ॥ ५०६ ॥ कर्तव्य उपचारस्तु सम्प्रत्यस्य यथा तथा । उक्त्वेति दूतं सन्मान्य प्रैषीत्मा-
भृतसम्भृतम् ॥ ५०७ ॥ तमदूतमुखात् ज्ञात्वा श्रीदत्तनृपतिर्मुदा । द्वयोरपि तयोः पत्न्योः प्रसादं विदधेऽधिकम् ॥ ५०८ ॥
अथ विक्रमशक्तिं स समुच्छेत्तुं प्रयाणरम् । चक्रे श्वशुरयोश्चाकारणं साहाय्यहेतवे ॥ ५०९ ॥ तयोः समेतयोर्दूतं श्रीदत्तः
प्राहिणोद्रिपोः । स गत्वा च तं प्राह श्रीदत्तो नाम भूपतिः ॥५१०॥ हर्षदेवशूरसेनमहीशाभ्यां समन्वितः । एति दातुं कृतान्तस्यो-
पहारं शिरसा तव ॥ ५११ ॥ वैरिसिंहं निहत्यापि जीविष्यसि कियच्चिरम् । सम्प्रति प्राप्नुहि फलं स्वदुश्चेष्टितशासिनः ॥५१२॥
अथ विक्रमशक्तिस्तदारुण्योरुणलोचनः । रुद्रस्य मालाभरणं दूतकण्ठे न्यवीविशत् ॥ ५१३ ॥ ऊचे च तत्कृपाणेन मत्तं पल्लीपतिं
निजम् । पश्य पशुमिवाक्षेपाद्रूपानय ममाग्रतः ॥ ५१४ ॥ इत्युक्त्वा ताडयामास भेरीं तस्य विरावतः । तत्पुरः चतुरङ्गापि प्रगुणा
सहसाऽभवत् ॥ ५१५ ॥ स्वरयमानोऽप्यशकुनैर्वार्यमाणोऽपि मन्त्रिभिः । दुर्निमित्तं निमित्तज्ञैः श्राव्यमाणोऽपि भूरिशः ॥ ५१६ ॥
निर्गतो नगरादेष निःशेषपृतनायुतः । प्रापद्विषयसंधिं च मानसेऽमानमानभृत् ॥ ५१७ ॥ (युग्मम्) निवेश्य शिबिरं तत्र दूतमि-
त्यनुशिष्टवान् । गच्छ पल्लीपतेः पार्श्वं वद तं च ममाज्ञया ॥५१८॥ एष विक्रमशक्तीशदागतस्तस्य सम्मुखः । प्रधानेन धनेनाऽद्य
पर मा निधनं भज ॥ ५१९ ॥ कथं न कुरुषे राज्यमरण्ये मे प्रमादतः । कृतकोलाहलेष्वन्तर्नोहलेप्यवलेपभृत् ॥ ५२० ॥ किं

1 तैम्बपुज. 2 गंतेष्वनु.

वदान्योऽल्पकषायश्चासंयमो नृत्वबन्धकः ॥ ५५४ ॥ देवत्वबन्धको बालतपःसंयमयोगतः । सङ्घचैत्यार्हतां द्विष्टः स्याद्बोधिप्रतिबन्धकः ॥ ५५५ ॥ अथापृच्छन्नृपो भूयो भगवत्केन कर्मणा । प्राप्य दुःखं बहु प्रापे मया राज्यं प्रभुर्जगौ ॥ ५५६ ॥

विंध्याटव्यां पुरा पल्ली भीमपल्लीति नामतः । आसीत्तस्यामधीशत्वे भीमनामाऽभवद्भवान् ॥ ५५७ ॥ शूरस्य दानशीलस्य भोगिनश्च तव प्रिया । अभूद्भक्ताऽनुरक्ता च पत्रलेखेति नामतः ॥ ५५८ ॥ त्वं सौप्तिकप्रदानेन वर्त्मपातनतोऽपि च । जनं गृह्णासि बध्नासि मुष्णासि च विनिर्दयः ॥ ५५९ ॥ त्वमेकदा ससैन्योऽप्यवस्कन्दाय विनिर्गतः । कायोत्सर्गस्थितं शान्तं मुनिमेकमलोकथाः ॥ ५६० ॥ सिद्धिश्रीलिप्सयेवैतं शरीरेण कृशं भृशम् । तं वीक्ष्य भाविभद्रस्य तव भक्तिरजायत ॥ ५६१ ॥ तं प्रणम्य त्वयाध्यायि ध्रुवं दुष्करकारकः । महात्माऽनावृताङ्गोऽयं यतः शीते पतत्यपि ॥ ५६२ ॥ आवासान्दापयाम्यत्र पात्रस्यास्यान्नदानतः । कृतकृत्यो यथाऽहं स्यामित्याऽऽवासानदापयः ॥५६३॥ साधुः कृतोपवासस्तु तदा नावासमासदत् । भिक्षानिमित्तं सूर्यस्तु तदास्ताद्रिमुपेयिवान् ॥ ५६४ ॥ अथाप्रावरणप्राणहरे पतति दुस्तरे । तुहिने माघमासस्य त्वं प्रोक्तः पत्रलेखया ॥ ५६५ ॥ उपायः क्रियतां कोऽपि प्रिय! शीतस्य रक्षणे । मुनेर्महात्मनस्तस्य त्वयोचे स्मारितं वरम् ॥ ५६६ ॥ अथास्मुं परितो देवकुलाकारमकार्यत । कटकूटसकूटेन मनसा सहसा त्वया ॥५६७॥ निशान्तं चिन्तयातीत्य प्रातर्यातस्तमाऽऽवृतम् । अद्राक्षीत्कटकूटेन मकूटं निश्चलं तथा ॥५६८॥ नत्वा द्विगुणया भक्त्या ध्यायस्त्वं यदयं मुनिः । कर्ताद्य पारणं पुण्यकारणं मम वा न वा ॥ ५६९ ॥ तत्रापि वासरे तस्मिन्मुनावकृतपारणे । श्वः कर्तेति भवान् ध्यायन्बहुपापक्षयं व्यधात् ॥ ५७० ॥ निश्चिकाय च निर्ग्रंथं कारयित्वैव पारणम् । इतः प्रयाणकं कार्यं मयाब्दादपि नान्यथा ॥ ५७१ ॥ इति निश्चितचित्तस्य नित्यशस्तव पश्यतः । देहिनः स्खलतो नित्यवैरानपि सकौतुकम्

दुश्चेष्टितविषद्रुमः ॥ ५३७ ॥ मदत्तनृपकन्याया हरणेन च वर्धितः । तस्याद्य विरसं भुङ्क्ष्व फलं प्रोचेत्यमर्षणः ॥ ५३८ ॥ शक्ति
विक्रमशक्तिस्त प्रत्यमुश्चत्परः पुनः । उवाच खण्डयित्वेमामखण्डितपराक्रमः ॥५३९॥ अरे क्षत्रियखेट ! त्वं पाप विश्वस्तघातक ! ।
अप्रेक्ष्यमुख ! निर्लज्ज ! द्विधापि भ्रष्टशक्तिक ! ॥ ५४० ॥ देवतामेव तामिष्ट स्मर ते नास्ति जीवितम् । वदन्नित्यर्धचन्द्रेण
शिरस्तस्य चकर्त सः ॥५४१॥ जयलक्ष्मीं च तद्राज्यलक्ष्मीं चाभ्युपगम्य सः । आगत्य पाटलीपुत्रं पौरगौरवितोऽविशत् ॥ ५४२ ॥
अकारयच्च सर्वेष्वष्टाह्निकाः जिनवेश्मसु । प्रतिग्राम प्रतिपुर जीर्णान्यप्युद्दधार च ॥ ५४३ ॥ सुप्रभो रथयात्राश्च परितोऽपि
व्यधापयत् । परिचर्यां विधत्तेऽस्याचार्यवर्येषु सर्वदा ॥ ५४४ ॥

इत्थं विदधतस्तस्य सचलां राज्यसम्पदाम् । परिसर्पत्प्रतापस्य ययौ कालः कियानपि ॥ ५४५ ॥ अन्यदेत्य वनीपालोऽव-
निपालं व्यजिज्ञपत् । वर्धाप्यसेऽतमा देवोद्याने सूरिसमागमात् ॥ ५४६ ॥ सूरिः कुवलयश्चन्द्र उद्याने कुसुमाकरे । भव्यजीवकुवल-
यचन्द्रतुल्यः समागतः ॥ ५४७ ॥ निशम्य सम्यगित्येष पीयूषरसमश्रवत् । तुष्टिदानमदात्तस्मै श्रीदत्तोऽवनिनायकः ॥ ५४८ ॥
आगत्य मन्त्रिसामन्तपौरान्तःपुरसंयुतः । उद्यानमवतीर्णोऽथ कुञ्जराद्राजकुञ्जरः ॥ ५४९ ॥ नरवोचितप्रदेशे स निविश्य प्राञ्जलि-
र्जगौ । सातासाते कथं जीवा बध्नन्ति भगवन्निह ॥५५०॥ कथं च नारकाद्यायुर्बन्धो जीवस्य जायते । कथं मोक्षतरोर्बीजं बोधिर्जी-
वस्य नश्यति ॥ ५५१ ॥ प्रभुः प्राह दयादानगुरुभक्तिक्षमादिभिः । बध्नन्ति जन्तवः सातमसातं तत्प्रतीपतः ॥ ५५२ ॥ महापरि-
ग्रहारम्भो मांसाहारी कषायभृत् । पञ्चेन्द्रियविघाती च जन्तुर्नरकमृच्छति ॥ ५५३ ॥ उन्मार्गदेशको मायी मूढस्तिर्यक्त्वबन्धकः ।

१ बाणेन । २ तद्विरोधतः ।

सङ्घचैत्यार्हतां द्विष्टः स्याद्बोधिप्रति-
वदान्योऽल्पकषायश्चासंयमो नृत्वबन्धकः ॥ ५५४ ॥ देवत्वबन्धको बालतपःसंयमयोगतः । सङ्घचैत्यार्हतां द्विष्टः स्याद्बोधिप्रति-
बन्धकः ॥ ५५५ ॥ अथापृच्छन्नृपो भूयो भगवत्केन कर्मणा । प्राप्य दुःखं बहु प्रापे मया राज्यं प्रभुर्जगौ ॥ ५५६ ॥

विंध्याटव्यां पुरा पल्ली भीमपल्लीति नामतः । आसीत्तस्यामधीशत्वे भीमनामाऽभवद्भवान् ॥ ५५७ ॥ शूरस्य दानशीलस्य
भोगिनश्च तव प्रिया । अभूद्भक्ताऽनुरक्ता च पत्रलेखेति नामतः ॥ ५५८ ॥ त्वं सौप्तिकप्रदानेन वर्त्मपातनतोऽपि च । जनं गृह्णासि
बध्नासि मुष्णासि च विनिर्दयः ॥ ५५९ ॥ त्वमेकदा ससैन्योऽप्यवस्कन्दाय विनिर्गतः । कायोत्सर्गस्थितं शान्तं मुनिमेकमलोकथाः
॥ ५६० ॥ सिद्धिश्रीलिप्सयेवैतं शरीरेण कृशं भृशम् । तं वीक्ष्य भाविभद्रस्य तव भक्तिरजायत ॥ ५६१ ॥ तं प्रणम्य त्वयाध्यायि
ध्रुवं दुष्करकारकः । महात्माऽनावृताङ्गोऽयं यतः शीते पतत्यपि ॥ ५६२ ॥ आवासान्दापयाम्यत्र पात्रस्यास्यान्नदानतः । कृतकृत्यो
यथाऽहं स्यामित्याऽऽवासानदापयः ॥५६३॥ साधुः कृतोपवासस्तु तदा नावासमासदत् । भिक्षानिमित्तं सूर्यस्तु तदास्ताद्रिमुपेयिवान्
॥ ५६४ ॥ अथाप्रावरणप्राणहरे पतति दुस्तरे । तुहिने माघमासस्य त्वं प्रोक्तः पत्रलेखया ॥ ५६५ ॥ उपायः क्रियतां कोऽपि
प्रिय ! शीतस्य रक्षणे । मुनेर्महात्मनस्तस्य त्वयोचे सारितं वरम् ॥ ५६६ ॥ अथामुं परितो देवकुलाकारमकार्यत । कटकूटमकूटेन
मनसा सहसा त्वया ॥५६७॥ निशान्तं चिन्तयातीत्य प्रातर्यातस्तमाऽऽवृतम् । अद्राक्षीत्कटकूटेन मकूटं निश्चलं तथा ॥५६८॥ नत्वा
द्विगुणया भक्त्या ध्यायस्त्वं यदयं मुनिः । कर्ताद्य पारणं पुण्यकारणं मम वा न वा ॥ ५६९ ॥ तत्रापि वासरे तस्मिन्मुनावकृत-
पारणे । श्वः कर्तेति भवान् ध्यायन्बहुपापक्षयं न्यधात् ॥ ५७० ॥ निश्चिकाय च निर्ग्रंथं कारयित्वैव पारणम् । इतः प्रयाणकं
कार्यं मयान्दादपि नान्यथा ॥ ५७१ ॥ इति निश्चितचित्तस्य नित्यशस्तव पश्यतः । देहिनः क्लिश्यतो नित्यवैरानपि सकौतुकम्

॥ ५७२ ॥ पक्षद्वये व्यतिक्रान्ते महात्मा पारणाय सः । पुण्यादागस्त्वदागारमागदन्मासपारणी ॥ ५७३ ॥ धन्योऽहं कृतपुण्योऽहं
लब्धजन्मफलोऽस्मि च । ध्यायन्निति त्वं भावेन तं मुनिं प्रत्यलाभयत् ॥ ५७४ ॥ मन्यावस्थं विशुद्धं तदन्नदानं त्वया कृतम् ।
तदथ्या मानरेखाभूतपत्रलेखा त्वमोदयत् ॥ ५७५ ॥ कृतपारणकं साधुं तं गत्वा त्वमवन्दथाः । दयामयमयं धर्मं तवाख्यच्च महा-
मुनिः ॥ ५७६ ॥ निर्मन्तुजन्तुसंघातपातनावर्जनादयः । नियमाः शुद्धभावेन त्वया जगृहिरे तदा ॥ ५७७ ॥ तद्राजन्मुनिदानस्य
शिवसौख्यफलस्य ते । जातं बलं च रूपं च राज्यं चास्य प्रभावतः ॥ ५७८ ॥ राजन् मृगाङ्कलेखाख्या पत्रलेखा तु ते प्रिया ।
दुःखानि भूरिशोऽभूवन् दुष्कृतात्तु पुराकृतात् ॥ ५७९ ॥ इत्याख्याते स सञ्जातजातिस्मृतिरदोऽवदत् । भविष्यति कथं शुद्धिः
प्राकृतानां ममैनसाम् ॥ ५८० ॥ गुरुः प्राह महाराज ! परिव्रज्याविधानतः । सर्वदुष्कृतनाशस्ते भावी प्रसन्नेन चेतसा ॥ ५८१ ॥
श्रीदत्तस्तन्निशम्याह व्रतोत्साहपरो गुरुम् । वीरसेनं सुतं राज्ये न्यस्यादास्ये व्रतं विभो ! ॥५८२॥ मा विधाः प्रतिबन्धं त्वमिति प्रोक्तो
मुनीन्दुना । तं प्रणम्य गतः सौधं भवैराग्यरङ्गभृत् ॥ ५८३ ॥ शुद्धान्तविमनाः सर्वं शुद्धान्तमवबोध्य सः । आमन्त्र्य मन्त्रिणो
वीरसेनं राज्ये न्यवेशयत् ॥ ५८४ ॥ शिक्षां दत्त्वा नरेन्द्रस्य मन्त्रिणां च पवित्रधीः । अष्टाहिकामहानेष विदधे जिनधामसु ॥५८५॥
कारागारगतानेष मोचयित्वा कृतागसः । अभ्यर्च्य सङ्घमनघं दीनादीनां प्रदाय च ॥ ५८६ ॥ सहस्रवाह्यां शिबिकामारुह्यामान-
मानसः । वीरसेननरेशेनानीयमानो महामनाः ॥ ५८७ ॥ समागत्य वनं याप्ययानादुत्तीर्य चार्यधीः । धर्माचार्यपदौ नत्वा
श्रीश्रीदत्तो व्यजिज्ञपत् ॥५८८॥ विधाय कर्णधारत्वं प्रव्रज्यातरिदानतः । विभो ! भवमहाम्भोधेर्मां सद्गुणारयाऽऽत्तुरम् ॥५८९॥
ततः सूरिः समित्रस्य सप्रियस्य च भूपतेः । प्रव्रज्यायाः प्रदानेन मनोरथमपूरयत् ॥ ५९० ॥ नरेशो वीरसेनस्तु रसेन जनता-

पुनः। देशेभ्यो विरतो देशविरतिं जगृहेऽद्भुताम् ॥ ५९१ ॥ अथ श्रीदत्तराजर्षिः ग्रहणासेवनामयीम्। जग्राह द्विविधां शिक्षामथा-
ममतिधामतः ॥ ५९२ ॥ पश्चात्प्रसादितपसा संशोषितवपुर्लतः। द्रव्ये क्षेत्रे च कालेऽपि भावेऽप्यप्रतिबद्धधीः ॥ ५९३ ॥ विहृत्य
कृत्यविश्रान्ते विधायानशनं सुधीः। सहप्रियः समित्रश्च सहस्रारं समासदत् ॥ ५९४ ॥ श्रीदत्तदत्तमितिदानममानपात्रे शुद्ध्या
विशुद्धमवबुध्यसमृद्धिहेतु। निःश्रेयसः श्रियमपि क्रमशो ददानं तत्रैकतानमनसो विलसन्तु सन्तः ॥ ५९५ ॥ श्रीश्रेयांसजिनेश्वर इह
दानविधौ निदेशयामास। श्रीश्रीदत्तकथां कृतप्रथां पर्षदां मध्ये ॥ ५९६ ॥

इत्याचार्यश्रीमानतुङ्गसूरिविरचिते श्रेयांसचरिते महाकाव्ये भवत्रयनिबद्धे
दानवर्णनो नाम नवमः सर्गः ॥

दशमः सर्गः ।

अथ प्राह प्रभुर्दीनरूपयुक्तोपि मानवः । शीलसौभाग्यसंपन्नः सिद्धिलक्ष्म्या निषेव्यते ॥ १ ॥ तदधःकृतकल्पद्रुकामधेनुमहा-
निधि । शीलरत्नं जयत्येकमनेकसुखकारणम् ॥ २ ॥ जीवितं मरणं वापि श्लाघ्यं यस्य समागमात् । विगमान्निन्दनीयं तु तच्छीलं
स्तुमहे परम् ॥ ३ ॥ शीलरत्नं कथं नाम न चिन्तारत्नतोऽधिकम् । अत्र चामुत्र वापि स्याधन्महर्द्धिविधायकम् ॥ ४ ॥ जलज्वलन-
सिंहादिमहाद्विपसुराऽसुराः । क्रामन्ति क्रममप्येकं न शीलकलिताशयम् ॥ ५ ॥ मत्वेति धीमता शीलं शीलनीयमनारतम् । नन्द-
यन्ती जनं तत्र नन्दयन्तीनिदर्शनम् ॥ ६ ॥

पुर्यस्ति तामलीसीत्यऽन्वलिसिक्तालका । अनेकैर्धनदैः शश्वत्सम्प्रीणितवनीपका ॥ ७ ॥ तत्र सागरदत्ताख्यः सार्थवाहोऽस्ति
विश्रुतः । श्रीर्येन स्वगुणैर्बद्धा चलाप्यजनि निश्चला ॥ ८ ॥ तस्य शीलधनवती नाम्ना धनवतीप्रिया । तयोः समुद्रदत्ताख्योऽङ्गजो
मूर्तिजिताङ्गजः ॥ ९ ॥ नन्दयन्ती मनस्तस्य नन्दयतीति च प्रिया । समस्ति शीलमाणिक्या माणिक्यगिरिभूमिका ॥ १० ॥ परमं
मित्रमस्यास्ति वसुमित्रोऽभिधानतः । तस्य द्वैतीयकमिव हृदयं नर्म्मकर्म्मठः ॥ ११ ॥ समं तेनैव मित्रेण चैत्रेण साररूपभृत् । रत्येव च
तया पत्न्या धन्यंमन्यः समस्ति सः ॥ १२ ॥ विकीर्षुरन्यदा द्रव्यार्जनं निजभुजैरयम् । ध्यायति स कथं नाम क्रियतां द्रविणा-
र्जनम् ॥ १३ ॥ श्वानवृत्तिसमानत्वादयुक्तं नृपसेवनम् । व्यापारपरेऽवश्यं हि प्रत्यक्षा दुर्गतिर्नृणाम् ॥ १४ ॥ न युक्ता च कृषिर्भूरि-
पापाल्पफलदायिनी । अविगीतां ततः स्फीतां वृत्तिं कामपि संश्रये ॥ १५ ॥ चिन्तयन्नित्ययं सांयात्रिकैरागत्य भाषितः । चलिताः

१ याचका ।

सो वयं वार्द्धियात्रायां तत्त्वमापतः ॥ १६ ॥ श्रुत्वेति ध्यातवानेप वाणिज्यं युज्यते ह्यदः । अल्पप्रयाससाध्यं यत्प्रभूतफलदं तथा ॥ १७ ॥ तत्करोमि समुद्रस्य यात्रामिति विचिन्त्य सः । पित्रोरादेशमादत्त विक्रेयाण्युचितानि च ॥ १८ ॥ मौहूर्तिकसमादिष्टे सुमुहूर्ते ततोऽचलत् । प्रापत्प्रवहणाकीर्णं वेलाकूलञ्च वारिधेः ॥ १९ ॥ वसुमित्रोऽथ सानन्दस्तस्य पोतमदर्शयत् । सकर्णः कर्णधारं स तेनाकार्येत्यवोचत ॥ २० ॥ भद्र ! प्रह्वीकृतः पोतो भवता प्राह नाविकः । प्रक्षिप्तं पक्षपर्यन्तमिहेन्धः सलिलादिकम् ॥ २१ ॥ कूपयष्टिर्दृढं बद्धोर्ध्वीकृताश्च पताकिकाः । पूजिता यानदेव्यश्च स्फुटः सितपटः कृतः ॥ २२ ॥ वातो वात्यनुकूलोऽयं यानमारुह्यतां ततः । अद्यैव प्राप्यते द्वीपं वातेनानेन वाञ्छितम् ॥ २३ ॥ समुद्रदत्तः प्रोवाच सस्मितं प्रियया सह । सम्भोगसुन्दरा रात्रिस्तावदद्यातिवाह्यताम् ॥ २४ ॥ देयं दिनमुखे जाते यतोऽस्माभिः प्रयाणकम् । गतेऽथ नाविके प्राह वसुमित्रस्तमीदृशम् ॥ २५ ॥ नाद्यैव गम्यते कस्मात्परः प्राह निशम्यताम् । प्रातस्तातः समादिक्षदद्य मां वत्स ! गच्छ यत् ॥ २६ ॥ अस्मिन्मौहूर्तिकादिष्टे मुहूर्तेन पुनर्गृहे । आगम्यं जायते येनाक्षेमः प्रस्थानभङ्गतः ॥ २७ ॥ तदत्रैवातिवाह्यैतां निशां प्रातः प्रयाणकम् । कर्तव्यं वसुमित्रोऽपि प्राहैवं यदि तत्सखे ! ॥ २८ ॥ तातेन प्रतिपिद्धं च प्रवेशे दिनशेपकम् । अतिवाहयितुं योग्यं प्रीतिनोपवनेपु नौ ॥ २९ ॥ अनादरात्समुद्रेण भवत्वेवमितीरिते । वसुमित्रोऽवदत्पश्यान्तरिक्षे हंससंहतिम् ॥ ३० ॥ नीले शुभ्राश्मसोपानायमानामद्भुतावहाम् । तस्मिन्ननादरे दध्यौ परः शून्य इवासकौ ॥ ३१ ॥ अस्तु ध्यात्वा पुनः प्राह पश्य पश्य महाशय ! । चक्रयुग्मानि पुलिनं नयन्त्येतानि पिङ्गताम् ॥ ३२ ॥ अयं च चक्रवाकः स्वप्रेयसीमनुगच्छति । साभिलाषं परः प्राह धन्य एप रथाङ्गकः ॥ ३३ ॥ वसुमित्रोऽवदत्कास्य धन्यता मन्यतामिह । समुद्रदत्तः प्रोवाच यदयं प्रेयसीयुतः ॥ ३४ ॥ रमते पुलिने तल्पकल्पे विशदलानि च । प्रेयसर्योपभुक्तानि भुङ्क्ते प्रीतो

सम्भ्रमा ॥ ३५ ॥ मानिनि कुरुते चाटु दयितामनुयाति च । परः प्राह यदप्येवं किं त्वमुत्कः प्रियां प्रति ॥ ३६ ॥ तेन गाढमिति
प्रोक्ते वसुमित्रो हसन्नगात् । वाणिज्याय मनश्चित्तावष्टम्भस्ते महानहो ॥ ३७ ॥ परं गत्वाऽऽगमेष्युत्को यूथभ्रष्टकुरङ्गवत् । तस्याञ्ज-
लश्रियाश्चास्य मया दत्तो जलाञ्जलिः ॥ ३८ ॥ यानपात्रे यथैकत्र हंसदत्तः पुरा कृतः । वणिक्पुत्रो द्वितीयेऽपि तथा कोऽपि प्रहीय-
ताम् ॥ ३९ ॥ मेरं भ्रमार आसा तु पुष्पीयीषु रण्डवत् । समुद्रदत्तः प्रोवाच प्रवासात्तु विभेम्यहम् ॥ ४० ॥ अन्यत्तु कारणं प्राह
गुरुणन्ने निरेत्य । समुद्रः प्राह तर्हि त्वं सावधानोऽवधारय ॥ ४१ ॥ अलब्धमानस्ताताज्ञां नत्वाम्बां चलितोऽस्म्यहम् । न सा सम्भा-
षिता श्वशुरागारे सा रजनीचरा ॥ ४२ ॥ वसुदत्तोऽवदत्केन हेतुनाऽभाषिता परः । सोऽद्य पुष्पवतीत्यम्बा न्यषेधन्मम दर्शनम् ॥ ४३ ॥
गाभूदमङ्गलमिति ततोऽहं तां सुलोचनाम् । स्मारं स्मारं सानुतापो दह्ये निश्वासहेतिभिः ॥ ४४ ॥ पृष्टा न सा प्रवासाय न वा साश्वासि-
ता मया । सदाम्बाधी कुरङ्गाक्षी हतेन हहा ! मया ॥ ४५ ॥ वसुमित्रोऽवदत्किं न सा तेऽभूदयनाऽतिथिः । परः प्राहाऽभवत्किन्तु
नोक्ता गुरुजनान्तिके ॥ ४६ ॥ तथा पुनः सदाम्बाख्या निषिद्धो गमनादहम् । तया मुक्तः कटाक्षैपुर्मम शल्यायतेऽधिकम् ॥ ४७ ॥
गा मन्त्रइति नहा मेऽम्बेति कम्पाधिरा । स्तुत्यातेति रागश्च नोपगूढेऽतिशल्यति ॥ ४८ ॥ यत् कुद्धाराधिता पूर्वोपगता च वियो-
गिनी । मेरुप्सरसी च सी याः कामगमालया ॥ ४९ ॥ तदा तदङ्गलावण्यं स्मारं स्मारं मनो मम । स्मारविकारं न त्यक्तुं शक्तं
किं बहु कम्पते ॥५०॥ मानोन्मुखमसुं मत्वा वसुमित्रोऽवदत्सखे ! । अम्बाया सम्मतेनाहं नन्दयन्तीमिहानये ॥५१॥ त्वयि सम्पूर्ण
ध्याने च पुनस्य पत्तने । परः प्राहेति लज्जाकृत्यकरूपं गम्यते पुनः ॥ ५२ ॥ ध्यानभङ्गोऽद्यमायेति वाक्यं दूयते मनः । मौहूर्ति-

१ विभावरी-विकल्पितः ।

कोक्तं प्राहान्यस्तदुक्ते प्रत्ययोऽस्तु कः ॥ ५३ ॥ कृत्तिकाद्य विशाखाद्य भरण्यद्येति ते जनम् । वञ्चयन्ति ऋजुं चित्तोत्साहो ग्राह्यः प्रयाणके ॥ ५४ ॥ युक्तमेतदिति प्रोचे समुद्रेण परोऽवदत् । हृतोऽम्बरमणिः पश्य प्रतीच्या पश्यतामपि ॥ ५५ ॥ तरुष्वारोहतामेते कलापास्ते कलापिनाम् । सारयन्ति प्रियाकेशकलापं कुसुमाञ्चितम् ॥ ५६ ॥ जातस्तमोभरः कान्ताबाष्पजैः किल कज्जलैः । रोदितीवाब्जिनी भृङ्गारावै रविवियोगतः ॥ ५७ ॥

अथ रात्र्युचितं वेपं कृत्वा स सुहृदान्वितः । समुद्रः प्रस्थितः प्राह मित्रं त्वमसि वित्तमः ॥ ५८ ॥ नैवान्धतमसा मार्गो ज्ञायते तत्पुरो भव । यामिनी याति न स्थातुं क्षमस्तद्विरहासहः ॥ ५९ ॥ कर्कशोऽप्यस्म्यहं दुःखी सा मृदुर्भाविनी कथम् । तत्त्वरस्व ! परः प्राह को लाभस्त्वरणे मम ॥ ६० ॥ तत्रोत्तीर्णास्ति ते स्थाली परमान्नेन पूरिता । परः प्राहास्म्यहं दुःखी त्वं मर्म कुरुषे पुनः ॥ ६१ ॥ तत्सत्यं स्याद्व्रणो यस्य भवेत्तस्यैव वेदना । शून्यां प्रेक्ष्य परः प्राह सखे गृहमदस्तव ॥ ६२ ॥ स्थित्वाऽऽह नेदमद्यैवं निर्गतो न गृहं निजम् । ध्वान्ते विप्रः परः प्राह हसित्वा कुशलो भवान् ॥ ६३ ॥ मित्र स्वगृहमेवेदं राज्यसौख्यादनावृतम् । वसुमित्रस्ततः प्राह स एव प्रकटो निधिः ॥ ६४ ॥ मधुनिर्मक्षिकं चैतत्ततः प्रविश वेगतः । छन्नो दैववशात् स्वस्य गृहेप्यप्रतीयसे ॥ ६५ ॥ प्रविष्टौ द्वावपि प्राह वसुमित्र सखे ! पुरः । सुप्तोऽस्ति द्वारशालायां दासेरः शूरनामतः ॥ ६६ ॥ यद्येष प्रविशन्तौ नौ ज्ञास्यत्याख्यास्यते ततः । गत्वा तातस्य मत्वा स त्वयि कोपं विधास्यति ॥ ६७ ॥ समुद्रदत्तः प्रोवाच साशङ्कः सत्रपश्च तम् । मौनं कृत्वा विश प्राह परस्तू प्रविशाग्रतः ॥ ६८ ॥ समुद्रदत्तः प्रच्छन्नः प्रविष्टो हस्तसंज्ञया । मित्रमाह्वास्त साशङ्कस्तस्योपरि पपात सः ॥ ६९ ॥ निद्रामुद्रितनेत्रोऽथोत्थाय दासो जगाद कः । प्रविशत्येष गेहे नश्चौरगत्या शनैः शनैः ॥ ७० ॥ समुद्रः प्राह मित्र ! त्वं दासेरमनुकूलय । अन्यथा

एकनेऽनेन भविष्यति विशोपकः ॥ ७१ ॥ वसुमित्रोऽवदद्दास! किं न तिष्ठसि मौनभाक् । स प्राह त्वं विशस्यत्र वसुमित्र! कथं
निशि ॥ ७२ ॥ कुड्यान्ते संचरस्त्रोतुभीतोऽध्यक्ष इवोन्दुरः । वसुमित्रोऽवदद्दास ! किं न मौनेन तिष्ठसि ॥ ७३ ॥ अकालकलहं
ध्यायन् समुद्रः प्राह शूर रे ! । अहमासि ममायातो दासेरस्तं ततोऽवदत् ॥ ७४ ॥ गत्वाऽऽख्यास्यामि तातस्य वसुमित्रो ततोऽवदत् ।
किंचिदेमस्य लज्जायां समुद्रस्तं ततोऽवदत् ॥७५॥ शूर ! कार्यादुपेतोऽसि त्वया कस्यापि नो पुरः । तद्वाच्यं शपथो मेऽत्र लज्जायां
याऽङ्गुलीयकम् ॥७६॥ गृहाणेदमिति प्रोच्य करे तस्य तदार्पयत् । हृष्टचित्तोऽथ दासेरो दध्यौ लेभेऽङ्गुलीयकम् ॥ ७७ ॥ परं साग-
रदत्तेनाज्ञातोऽहं यत् त्वया प्रगे । लेख्यमादाय गन्तव्यमवश्यं मथुरापुरि ॥ ७८ ॥ मित्रस्य सार्थवाहस्य रत्नसेनस्य संनिधौ । समर्प्य
तदिदं कोशाप्यथहस्ते व्रजाम्यहम् ॥७९ ॥ ध्यात्वेति नत्वा सार्थेशसुतं दासीसुतोऽवदत् । प्रविशस्व गृहेऽशङ्कं वक्ष्ये कस्याऽपि नाग्रतः
॥ ८० ॥ छलकृमिसरोपोऽथ वसुमित्रोऽन्यतोऽचलत् । नन्दयन्त्याश्चतुःशालं दर्शयित्वा तदग्रतः ॥ ८१ ॥ परः क्व चलितोऽसीति
वदन्नेनं भुजेऽधरत् । स प्राह तातं नंस्यामि नाचारं लङ्घयाम्यहम् ॥ ८२ ॥ लीनः सदा सदाचारे त्वमसीत्यपरोऽवदत् ।
त्वं चरसि परः प्राह पूत्करिष्याम्यहं ननु ॥८३॥ हसन् समुद्रः प्रोवाच लज्जां दास्ये तयाऽपि हि । स्मित्वा प्राह परो प्राज्ञाः संकटे हि
मनात्मनः ॥ ८४ ॥ प्रतिशारमनः प्राह वसुमित्रोऽधुना ननु । तदनापृच्छ्य निर्यातः कथं तामाऽऽलपिष्यसि ॥ ८५ ॥ समुद्रः प्राह
नो मित्रात्यन्तमन्युमरार्दिताम् । त्वं प्रसीद प्रसीदेति वक्ष्याम्याश्लिष्यतां प्रियाम् ॥ ८६ ॥
एवं नन्दयन्ती माऽतिगाय कुङ्गनो दिनम् । निशि दध्यौ कथं नाथ! धृतिस्तत्र भविष्यति ॥८७॥ वनानि पश्यतो भीमान्यथवा

1 मृणकः ।

निष्ठुरः प्रियः । यन्मां प्राह पुराङ्कस्थां नाऽहं त्वद्विरहं सहे ॥ ८८ ॥ त्वां विना कुरुते नैव पृष्टपथ्यपि मे धृतिः । अधुना गच्छताऽध्वा
तु गिराप्याश्वासिता न हि ॥ ८९ ॥ पुरुषो निष्ठुरः प्रायः प्राणांस्त्वद्विरहे त्वहम् । धर्तुं नास्मि क्षमा देहं हित्वा स्यां निर्वृता ततः
॥ ९० ॥ दुःखं त्वदोऽनपत्यत्वे परलोको न सुन्दरः । यद्वा कृत्रिमपुत्रो मेऽशोको दाता जलाञ्जलिम् ॥ ९१ ॥ तदद्य तं विवाह्याऽहं
विहास्यामि निजानसून् । श्रुतं चेति मया नारी मण्डिता या मृता भवेत् ॥ ९२ ॥ सर्वाङ्गसुन्दरा सा स्यात्परलोके ततः स्वकम् ।
मण्डयिष्याम्यादरेण ध्यात्वेति प्राह हंसिकाम् ॥ ९३ ॥ सुतस्याऽशोकदत्तस्य कार्यं वीवाहमङ्गलम् । तद्गत्वोपवने योग्यैर्भूषणैस्तं विभूषय
॥ ९४ ॥ सोचे स्वामिनि! कः पुत्रोऽशोकदत्तोऽथ साऽवदत् । कृत्रिमस्तुकं हलेऽशोकः प्रियङ्गुलतया सह ॥ ९५ ॥ विवाह्योऽद्याऽदत्तनाम्नो
विवाहस्तु न युज्यते । तत्पित्राख्यैकदेशेनाशोकदत्तं वदामि तम् ॥ ९६ ॥ सा स्वामिनीत्थमेतेनोत्कण्ठां प्रियवियोगजाम् । अतिवाहय-
सीत्युक्तागाद्वास्यश्च सुहृत्प्रियः ॥ ९७ ॥ नन्दयन्ती तदोवाच चेटीं सागारिकाभिधाम् । वहलेन[1] हले! यावकेन[2] रञ्जय मे क्रमौ ॥९८॥
कर्णं दत्त्वा सुहृत्प्राह किञ्चिन्मित्राऽत्र मञ्यते । समुद्रदत्तः प्रोवाच श्रूयतेऽत्र स्थितैस्ततः ॥९९॥ चेट्यूचे कर्कशोऽयं ते पादयोग्यो न
यावकः । नन्दयन्त्याह कठिनोऽप्यस्तु वेगो विधीयताम् ॥ १०० ॥ सुहृत्प्राह पदालक्तकथेव श्रूयते सखे ! । समुद्रः प्राह यद्रागः
किमस्याः प्रोषिते मयि ॥ १०१ ॥ सुहृत्प्राह प्रवासाद्यदिने युक्तं हि मङ्गलम् । नन्दयन्ती ततः प्राह मुक्तास्रजमुपानय ॥ १०२ ॥
तातेन हरिषेणेन सेनान्या प्रहितास्ति या । तस्यां शिरसि बद्धायां प्राह सारसिका मुदा ॥ १०३ ॥ धम्मिल्ले ससुमे मुक्तापङ्क्तिकातीव
शोभते । समुद्रः प्राह धम्मिल्लबन्धनं न हि सुन्दरम् ॥ १०४ ॥ परा प्राह हले शुभ्रकुण्डले मे समानय । सोचे स्वामिनि यामिन्यां

१ बहुना । २ अलक्तेन ।

शोभते शुभ्रभूषणम् ॥ १०५ ॥ समुद्रः प्राह मित्रेष वेषोऽभिसरणोचितः । वसुमित्रोऽवदत्कार्श्यमस्या भाति गृहे सखे ॥ १०६ ॥ आचारो भूषणं प्रेयः प्रवासप्रथमे दिने । समुद्रः प्राहेदमपि घटतेऽथावदत्प्रियः ॥१०७॥ हले ! पयोधरे रागं तथा कृत्वाऽऽह चेटिका । शोभतेऽसौ जगौ चेटी स्वामिन्येष प्रियोचितः ॥ १०८ ॥ प्रियः प्राह वदन्तीति प्रसादस्योचिताऽसकौ । नन्दयन्त्याह पर्याप्तं सम्प्रति प्रियवार्तया ॥ १०९ ॥ चेट्यूचे स्वामिनि! कथं प्रियवार्त्तां निषेधसि । समुद्रो न्यगदन्मित्र पृष्टमिष्टं ममाऽनया ॥११०॥ नन्दयन्ती जगौ सम्प्रत्येतया चिन्तयाप्यलम् । समुद्रो प्राहमप्यस्याः प्रणयः प्रतिघोपिकः ॥१११॥ वसुमित्रोऽवददनापृच्छ्यैतां त्वं हि निर्गतः । समुद्रः प्राह न चिरादिदं व्यक्ती भविष्यति ॥ ११२ ॥

प्रिया प्राह हले ! हंसी किमद्यापि चिरायते । दध्यौ समुद्रः क स्थाने चेटिका प्रहितानया ॥ ११३ ॥ अथैत्य हंसी नत्वाह स्वामिन्युपवनेऽगमम् । परा प्राह हले ! द्रष्टोऽशोकदत्तस्त्वया न वा ॥ ११४ ॥ साह यौवनलावण्यरम्यो दृष्टः स ते प्रियः । भूपितश्च प्रिया प्राह सानन्दं तन्मनो मम ॥ ११५ ॥ विषण्णोऽथ प्रियः प्राह पुरुषान्तररागिणि । पापासौ मूढ एवाहं तदस्यामनुरागवान् ॥११६॥ मलयाद्रिजवल्लीयं वेष्टिता दुष्टभोगिना । वापी स्वच्छजला चेयं महामकरदुस्तरा ॥ ११७॥ किं वक्ष्यस्यधुना मित्र ! स प्राहाहं स्वयं त्रपे । जाने यदि भवेच्छिद्रं तद्विशामि रसातलम् ॥ ११८ ॥ समुद्रः प्राह बह्वस्ति श्रोतव्यं वेत्सि कः पुनः । अशोकदत्तः स प्राह वणिक्तुल्याभिधा सखौ ॥ ११९ ॥ पर कोऽप्ययमो लोकद्वयविद्विष्टचेष्टितः । चेट्यूचेऽशोकदत्तस्य नाम्नासि स्थिरलोचना ॥ १२० ॥ स्वामिनि त्वं तदाख्याहि प्रियः कस्तेऽनयोर्द्वयोः । प्रियः प्राह सखे ! पापकथा प्रावर्ततानयोः ॥ १२१ ॥ प्रिया प्राह हले ! स्नेहो योऽभूत्प्राणप्रिये मम । सोऽशोकदत्ते सङ्क्रान्तश्चेट्यूचे कारणात्कुतः ॥१२२॥ यदेतेनोपचर्याहं चिरकालं प्रियेण तु । एतावानेव सङ्गो

मे निश्वस्याऽथ प्रियोऽवदत् ॥ १२३ ॥ श्रुतं सखे श्रुतियुगे तप्तसूचीसमं वचः । इयं हताशा हस्तान्मे परहस्तं क्षणाद्गता ॥ १२४ ॥ स्वैरिण्याः सङ्गतोऽमुष्या दूषितं स्वं निहन्मि तत् । वसुमित्र ! विशुद्ध्यापि चन्द्रहासमुपानय ॥ १२५ ॥ सुहृदाह कुमार्यायाः क्रोनात्मा विनाश्यते । परः प्राह वने यामि तर्हि काषाय्यवस्त्रभृत् ॥१२६॥ वसुमित्रोऽवदन्मित्र ! नमा सन्तप मुधा बहु । पापस्याऽशोकदत्तस्याऽसिना च्छेत्स्यामि यच्छिरः ॥ १२७ ॥ परः प्राह स्वहस्तेन च्छित्वा यातास्म्यहं वनम् । निम्नगानां न नामापि यत्र स्त्रीणां निशम्यते ॥ १२८ ॥ याश्चला नयनैः सार्धं कठिनाश्च समं कुचैः । मलिनाः कुन्तलैश्चैमास्तास्त्याज्याः सर्वथा स्त्रियः ॥ १२९ ॥ वसुमित्रोऽवदच्चेत्त्वं तस्य छेत्स्यसि कन्धराम् । स्फोटयिष्याम्यहं दास्या लकुटेन ततः शिरः ॥ १३० ॥ परः प्राह प्रतीक्षस्वाऽद्यापि श्रव्यं यतो बहु । प्रिया प्रोचे हलेऽस्म्युत्का दर्शयोपवनाऽयनम् ॥ १३१ ॥ समुद्रदत्तः प्रोवाच त्वरते यत्स्वपांशुला । परः प्राहात्मनाशाय त्वरतेऽथ प्रिया मुदा ॥ १३२ ॥

नन्दयन्त्यथ निर्याना हंसिकादर्शिताऽध्वना । परावपि तयोः पृष्टे हंस्यथ स्वामिनीं जगौ ॥ १३३ ॥ मञ्जीरे त्वं विधेह्यूर्ध्वं यथा नादो न जायते । स सङ्गगादास्या दास्याः पश्य विनयकौशलम् ॥१३४॥ समुद्रः प्राह शीर्षेऽस्याः पातयिष्यामि कौशलम् । चेटी जगादोपवनमिदं स्वामिनि ! विश्यताम् ॥ १३५ ॥ सुहृत्प्राह त्वया बाढं धार्योऽसिरिह सङ्कटे । समुद्रः प्राह मा भैषीः सावधानोऽस्म्यहं सखे ! ॥ १३६ ॥ परा प्राह हलेऽशोकदत्तं दर्शय वेगतः । यथा सर्वेऽपि सफलीभवेयुर्मे मनोरथाः ॥ १३७ ॥ समुद्रः प्राह तीव्रास्याः कामाकाङ्क्षा परोऽवदत् । स्वामिन् ! स्वस्य विनाशेऽस्यास्तुच्छाया वाञ्छितं ह्यदः ॥ १३८ ॥ अस्तु स्थित्वा तमालस्य तले स तु विलोक्यते । दुष्टः पुमान् परः प्राह हीनास्यो न विलोक्यते ॥ १३९ ॥ चेटी प्राहाशोकदत्तस्तवायं कृत्रिमः सुतः । परा प्राह

हले! पुरोऽशोकस्तवोऽतिशोभते ॥१४०॥ विवाहयामि तदमुं प्रियङ्गुलतया सह । प्रिय प्राहाऽन्यथा ध्यातमिदं मज्ज्ञातमन्यथा ॥ १४१ ॥ यतोऽशोकः स एवायं योऽनया लालितोऽम्बुभिः । विनाहं दूरतस्त्वेतस्या रतिमत्येत्यसौ ततः ॥ १४२ ॥ कुविकल्पाद्विगाताभ्यां दूषिताऽसौ महासती । अमुकं पश्य कौसुम्भं लम्बमानमशोकगम् ॥ १४३ ॥ माला विलेपनं चापि तथ्यदसाद्विकल्पितम् । देवतायानदेवस्या दोषमङ्गीतनं कृतम् ॥ १४४ ॥ प्रायश्चित्तोचितं तेनात्मानं मन्यामहे अहो । पराऽशोकं प्रियङ्गुं च बद्ध्वा कुसुममालया ॥ १४५ ॥

ऊचे च पुत्र! चक्रे ते प्रियङ्गुलतया सह । विवाहस्त्वपि ते पित्राऽहं यथा त्यक्ताऽपमानिता ॥१४६॥ तथा त्वमपि मा त्याक्षीर्मा रंस्थाः प्रियङ्गुकाम् । समुद्रः प्राह युक्तोऽयमुपालम्भोऽनया ददे ॥ १४७ ॥ ततो दृढानुतापेन तप्यमानोऽथ मानतः । समुद्रदत्तस्तन्मत्वा गुणाभिक्त इवासरत् ॥१४८॥ सुहृत्प्राहोपगन्तुं ते साम्प्रतं देव! साम्प्रतम् । परः प्राह प्रियापार्श्वे सुखं तिष्ठति हंसिका ॥ १४९ ॥ यदि गतस्य मार्गपाति ततः सार्धेव सुन्दरम् । ततस्तं चिन्तयोपायं येन मा दूरतो भवेत् ॥ १५० ॥ स प्राहाहं वणिग्भार्यो वेश्यापापं तु न प्रभो! । परः प्राह परीहासं मुञ्चोपायं विचिन्तय ॥ १५१ ॥ स्वामिन्याह रहः पुत्रस्याहं कौतुकसंहतिम् । करिष्ये तद्द्रव त्वं द्रागहमेष्यामि पृष्ठतः ॥ १५२ ॥ सा गता सागरः प्राह कल्पवल्लीसमानया । प्रियया पूरिताशा मे वसुमित्रस्ततोऽवदत् ॥ १५३ ॥ अशोपगम्यते प्राह परः कौतुकसंहतिः । दृश्यतेऽत्र! स्थितैरेव नन्दयन्ती ततोऽवदत् ॥ १५४ ॥ दीनवत्स! मया गान्धर्वविवाहो विहितस्तव । रत्नप्रिया च मत्वं देहमिदं हास्यामि दुर्भगम् ॥ १५५ ॥ तदनया तात! वर्षासुखपङ्कजकरैर्मम । ददतां

१ दरवनवाणम् ।

त्वीदृशं वाच्यं यन्मातुरुपतिष्ठति ॥ १५६ ॥ अन्यच्च जनकः स्वस्य प्रवासादागतोऽक्रुपः । वाच्यो ममाऽम्बया प्रापि मृत्युस्तत्र वियो-
गतः ॥ १५७ ॥ समुद्रः प्राह पश्यास्याः सतीत्वमनुरागिताम् । नन्दयन्त्याह कतरे तरौ बध्नामि पाशकम् ॥ १५८ ॥ आम्रः पूतो
हि दौर्भाग्यवपुषा कश्मलोऽभवत् । पाशं बध्नामि तत्कर्णिकारे प्रियमनःखरे ॥ १५९ ॥ दध्यौ समुद्रः प्रियया कठिनोऽहमुदी-
रितः । नन्दयन्ती पुनः कण्ठे लतापाशकमार्पयत् ॥ १६० ॥ वसुमित्रोऽवदन्नारीरत्नमेतद्विनश्यति । परः प्राह ततः पाशं गत्वा
छिन्धिहि वेगतः ॥ १६१ ॥ स्यात् क्षुरिकया तेन छिन्ने पाशे पराऽवदत् । मरणाध्यवसायां मां कः शक्तोऽयं निषेधितुम् ॥ १६२ ॥
स्वामिन्यहं न शक्तोऽस्मि भक्तोऽस्मि सुहृदः पुनः । तेनेत्युक्ते परा सहीर्वीक्ष्याहास्ति प्रियोऽप्यनु ॥ १६३ ॥ समुद्रः प्राह दयिते !
महासति ससाहसे । त्वया किमिदमारब्धं मत्प्राणहरणक्षमम् ॥ १६४ ॥ शीलेऽनर्घ्यस्त्वया स्वात्मा सत्येऽनर्घ्यतरः कृतः । प्रिये !
प्रसीदेदानीं मे भव देहस्य रक्षिका ॥ १६५ ॥ न यथा मान्मथा बाणा बाधन्ते हृदयं मम । उत्क्षेप्याश्लिष्यदथ साऽवोचन्नाथ !
विमुञ्च माम् ॥ १६६ ॥ तवाप्रियेण सङ्गेनानेन यन्न प्रयोजनम् । मुञ्च मानिनि ! मानं त्वमित्यस्याः सोऽपतत्पदोः ॥ १६७ ॥
सहर्षह्रीरथो नार्थं स्वमुत्थापयति स सा । सुहृत्प्राह निशाल्पा तत्क्वाप्यश्मनि निविश्यताम् ॥ १६८ ॥ समुद्रः प्राह सुमुखि !
सुहृदो वचनं श्रुतम् । स्मित्वा प्राह प्रिया मित्रवचोऽवश्यं विधीयते ॥ १६९ ॥ शिलातले स्फाटिके तौ निविष्टौ मित्रदर्शिते । समुद्रः
प्राह दयिते ! स्वोक्तं स्मरति ते वचः ॥ १७० ॥ आर्यपुत्रेण सार्धं यदेतावानेव सङ्गमः । तयाऽथ समुदाऽपृच्छ्य जानात्येव कदा
प्रिय ! ॥ १७१ ॥ स प्राह दयितेऽशोकदत्तसङ्क्रान्तचित्तया । सा दध्यौ सर्वमप्यार्यपुत्रेणाकर्णितं वचः ॥ १७२ ॥ ध्यात्वेत्याह
तदा नाथ ! यन्मया विरहाशयात् । विलोममनुलोमं वा प्रोक्तं तत्क्षम्यतां मम ॥ १७३ ॥ उक्त्वेति प्रणतानन्दादुत्थाप्यालिङ्गि-

तामुना । प्रोक्ता गाढं समालिङ्ग्य हृदा पीनपयोधरौ ॥ १७४ ॥ वियोगाग्निर्यथा याति शमं प्राह सुहृत्तदा । निष्पन्नशालिवत्:
नतशीर्षौ युवां मिथः ॥ १७५ ॥ पदधाटीं विना मन्तुं न किंचिदपरं फलम् । भद्रापार्श्वे न मे युक्तमिति कृत्रिमकुप्यया ॥ १७
परः प्राहाऽस्तु वर्षाणां शतं ते पुनरागमः । स प्राहेति न विस्मयं स्वदिमि क्वापि सम्प्रति ॥१७७॥ नन्दयन्त्यवलम्ब्यांसेऽपृच्छन्न
कथं त्वया । निर्वाहितं दिनाशेषं स प्राह शृणु सुन्दरि ! ॥ १७८ ॥ पश्यता चक्रयुग्मानि त्वदेकायत्तचेतसा । कालोऽतिवाहि
साह पाथोधिर्नाथ ! कीदृशः ॥ १७९ ॥ स प्राह फेनवानब्धिः सतारकनभोनिभः । मृगाङ्कमुखी ! सा प्राह किं धिष्ण्यं ? शशि
न्तिके ॥ १८० ॥ पुनर्वसू इमौ मुग्धे ! तेनोक्ते प्राह तत्प्रिया । चेत्पुनर्वसुभं नाथ ! तन्नौ सङ्गः पुनर्भवेत् ॥ १८१ ॥ नत्वा स
दत्तोऽथ प्राह साहसमीदृशम् । न मयि प्रोषिते कार्यं नन्दयन्ती ततोऽवदत् ॥ १८२ ॥ प्राणेश ! यदनापृच्छ्य निरपेक्षो भ
गतः । तन्मयेदं व्यवसितं प्राणनाथाऽधुना पुनः ॥ १८३ ॥ दूरमाश्वासिता दूरं किं नामाऽकृत्यमीदृशम् । करिष्येऽहं प्रियः
शपामि वपुषा मम ॥ १८४ ॥ मदीयाऽऽगमनं क्वापि न प्रकाश्यं त्वया प्रिये ! । सोचे तुच्छेदृशी ज्ञाताऽऽर्यपुत्रेण कथं त्वहम् ॥१८
स प्राह सत्कुलस्यानुरूपं तव वचः प्रिये ! । प्रबुद्धो वसुमित्रोऽप्यागत्येति प्राह दूरतः ॥ १८६ ॥ पीत्वा सुधारसं त्यक्त्वा सुधां
कथं निशा । पतत्यस्ताचले लग्नकलङ्कालिकुला किल ॥१८७॥ सविषादः समुद्रोऽथ प्राह प्राणप्रियेऽधुना । गमने समयोऽस्माकं
प्राहाऽऽर्यपुत्र ! तत् ॥१८८॥ त्वया सहाऽहमेष्यामि स प्राह विषमोऽम्बुधिः । नन्दयन्त्याह किं नाथ ! त्वदीयविरहादपि ॥१८
स प्राह जलधौ ग्राहादिकं बहु भयंकरम् । तत्सत्त्वमवलम्ब्य त्वमिहैवात्येद्यनेहसम् ॥१९०॥ संस्थाप्येत्थं प्रियतमां पश्यन् चलि
घरम् । अगात्समुद्रयात्रायां समुद्रः सुहृदा सह ॥ १९१ ॥ यान्तं सापि प्रियं वीक्ष्य क्षणं रणरणान्विता । निजमेव चतुःशाल

गतो ददर्श सङ्क्रान्ताङ्गरागं तच्छिलातले ॥ १९३ ॥ मृद्ग-
गमन्निभृतक्रमम् ॥ १९२ ॥ प्रातः सागरदत्तोऽथ कुलदेव्यर्चनाकृते । आदिशच्च त्वया सायमेतद्दासीं
न्मालाकुलं त्यक्तताम्बूलं परितस्ततः । नन्दयन्त्यां सशङ्कोऽयं धनवत्याः समाख्यत ॥ १९४ ॥ देवीपूजादिकं
विनिर्गमः । आगन्तुको मम स्वोऽपि त्रातव्यो यततः प्रिये ! ॥ १९५ ॥ बद्ध्वा द्वारेषु तालानि स्थातव्यं चाऽप्रमत्तया । अनर्थसार्थः सार्थेपी नन्दयन्त्या भविष्यति
कार्यं गत्वा तूपवने स्वयं ॥ १९६ ॥ यदि दास्यसि दासीनामादेशमिह तन्महान् । सार्थेशस्य गृहि-
॥ १९७ ॥ सार्थेशादेशमखिलं विदधे धनवत्यथ । मासि तृतीये गर्भोऽगान्नन्दयन्त्याः प्रकाश्यताम् ॥ १९८ ॥ कल-
ण्याथ सार्थेशस्य निवेदिते । स प्राहैतदविनयशङ्काऽद्य स्फुटतां गता ॥ १९९ ॥ एवं सति मया किं तु विधेयं पापयाऽनया । बहु-
ङ्कितं हहा वंशयामलं स्फटिकामलम् ॥ २०० ॥ धिक् स्त्रीजनं न यो वश्यो रूपेण विभवेन वा । न गुणैर्नापि च प्रेम्णा ॥ २०२ ॥
मानेन वा भवेत् ॥ २०१ ॥ जीवितं जन्म चास्माकमपि हन्त कलङ्कितम् । दर्शनीयं मुखं सौधमध्येऽसाध्वधुना कथम् कुलद्वय-
ध्यात्वेति सुचिरं बालमित्रं निष्करुणाभिधम् । आकार्य तत्पुरस्तस्यास्तत्स्वरूपं निवेद्य च ॥ २०३ ॥ उवाच तद्वधूमेनां शून्ये
कलङ्कदाम् । प्रहितासि कुलगृहं गुरुभ्यामिति दम्भतः ॥ २०४ ॥ योजयित्वा जवनाश्वं रथमारोप्य तां द्रुतम् । परित्यज्य वने प्रचचाल
समेहि वचसा मम ॥ २०५ ॥ (त्रिभिर्विशेषकम्) तस्या अग्रे भणिष्यामः कुपतिः कुपितोऽस्ति नः । प्रतिपद्य तमीयामे पश्चिमे वीक्ष्य
सः ॥ २०६ ॥ रथस्यास्य च तस्याथ रविरूर्ध्वकरोऽभवत् । पूत्कर्तुमिव नो युक्तं नो युक्तमिति संज्ञया ॥२०७॥ अथ तस्या मुखं सेरं भूपाल
दध्यौ स चेतसि । सार्थेशेनाहमादिष्टः कर्म्मणि श्वपचोचिते ॥ २०८ ॥ किं करोमि मया बोध्यमानोऽपि न स बुद्धवान् । जनापवाद ॥ २१० ॥
भीत्याऽऽदिष्टोऽस्मि तत्क्षणम् ॥२०९॥ मया च ग्रासलुब्धेन शुनेवाचमतं न तत् । सो तु नापद्रतिर्दिने तृतीयेऽरण्यमासदत्

दध्यौ चो समेतोऽस्मि स्वाम्याज्ञां किं करोमि तत् । इद लोकद्वयद्विष्ट करिष्यामि न दारुणम् ॥ २११ ॥ किं च मे साम्प्रतं मृत्यु-
समये समुपस्थिते । कर्तुं न दुर्गतेर्मूलं युज्यते कर्तुमीदृशम् ॥ २१२ ॥ तदेतदीयतातस्य सार्थेशः काशिवासिनः । विमुच्यैनां गृह-
तत्राऽऽयु. श्च गमयाम्यहम् ॥२१३॥ श्रुत चैतन्मया कादपा याति सार्थः समीपतः । चिन्तयन्नित्ययं गच्छन्नन्दयन्त्येत्यपृच्छयत
॥ २१४ ॥ तात ! राजकुलेऽस्माकं सर्वस्वहरण कृत' । स प्राह मम नादिष्टं सार्थेशेनेति किञ्चन ॥ २१५ ॥ कुतो ज्ञातिकुलेऽह च
ग्रहिता निष्परिच्छदा । स प्रोवाचा विनीतत्वात्प्रहितासऽपरिच्छदा ॥ २१६ ॥ सा दध्यौ को मयाऽकार्यविनयोऽथ च गर्भतः ।
मन्यते मां गुरुजनोऽसतीं तत्कथयामि किम् ॥२१७॥ उपवनव्यतिकरं पुत्रस्याथ नृपास्रम् । शपथाश्च प्रियस्यात्र कथनेऽप्रत्ययोऽ-
पि न ॥ २१८ ॥ गर्भं पाति प्रियस्यैवागमन पालयाम्यहम् । स एवायात एतेषां विधाता प्रत्ययं स्वयम् ॥ २१९ ॥ ध्यात्वेत्यु-
वाच किं तात ! वाच्य ज्ञातिगृहेऽधुना । अह नदव [ ]॥२२०॥ वत्से ! देशो व्यतिक्रान्तोऽरण्यमेतत्तु दारुणम् । पूरित परितो
व्याघ्रसिंहादिश्वापदापददम् ॥२२१॥ अथाऽऽय सिंहमायान्तं वीक्ष्य दध्यावयं मम । इहापि फलित रक्ष्या कथ त्वेषा तपस्विनी ॥२२२॥
नन्दयन्त्यवदत्तात ! सिंहतो रक्ष रक्ष माम् । उत्पथेन रथो नि.ये रथ्यैरथ हरेर्भयात् ॥ २२३ ॥ श्वभ्रपुटेऽथ विपर्यस्ते रथे तौ पतितौ
क्षितिं । मूर्च्छिता नन्दयन्ती च व्यलपीदपरः पुनः ॥२२४॥ हा ! कष्ट रमणीरत्न विनष्टं दैव ! किं त्वया । पूर्वं नाहं हतः शुद्धिः
कथं मम भविष्यति ॥ २२५ ॥ भग्ना रथस्य धूरेषा वधूरेषा त्वचेतना । सिंहः समेति पापोऽहं किं करोमीह सङ्कटम् ॥ २२६ ॥
नास्मापि क्रियया वाऽपि सत्यो निष्करुणोऽस्म्यहम् । ईदृशोऽपि यदादेशः स्वामिनोऽङ्गीकृतो मया ॥२२७॥ स प्राह मृगराज ! रक्ष
मम मां रक्ष घातिरामृ । श्रुत्वेति चलितः सिंहो बालाशीलप्रभावतः ॥ २२८ ॥ दध्यौ निष्करुणश्चित्रं चक्रे नोपद्रव हरिः ।

१ कथं । २ विषमे स्थले ।

यद्वाहमुज्झितपापो हरिणा हरिणा यथा ॥ २२९ ॥ किं करोम्यधुना हन्मि स्वमेतां जीवयामि वा । इति चिन्तातुरेऽस्मिन् सा स्वयं
जज्ञे सचेतना ॥ २३० ॥ ऊचे च तात ! यातः क्व स सिंहो मुदितोऽथ सः । जीवितेयमिति ध्यात्वाऽकथयत्सिंहसंकथाम् ॥२३१॥
निर्भयाऽथाऽवदत्तात ! पुरतः किं न गम्यते । स प्राह वत्से ! भग्नैका रथधुः किं न पश्यसि ॥२३२॥ तयोचे तां किं कार्यमधुना स
जगावथ । दैवस्य शोचनं वत्से ! यन्न केनापि लङ्घ्यते ॥ २३३ ॥ सोचे तात ! कुरूपायमिह सिंहागमः पुनः । स प्राह त्वं प्रतीक्षस्व
ग्रामादक्षं यथाऽऽनये ॥ २३४ ॥ सा बभाषेऽटवी भीमा तद्बिभेम्यहमेकका । स प्राह भव धीरा त्वमहमागत एव यत् ॥ २३५ ॥
स्तोकं गत्वा स दध्यौ हा कष्टमेषा तपस्विनी । सगर्भका विमुक्ता चेच्छून्यारण्ये विनश्यते ॥ २३६ ॥ ततो मे स्थानकं नैव
नरकेऽपि भविष्यति । तत्पटान्तरितः प्रेक्षे मां विना किं करोत्यसौ ॥ २३७ ॥

साऽथ व्यलापीत् हा तात ! किं त्वया निर्जने वने । त्यक्त्वाऽहं शरणं कस्य प्रयास्याम्यधुना वद ॥ २३८ ॥ हा तदोपवने नाथ !
हसितं क्रीडितं च यत् । तदनाख्यानतोऽलीकाऽसतीत्वं गुरु ह्यभूत् ॥ २४९ ॥ दुःखं ममैतद्यद्गर्भो मम मृत्यौ विपत्स्यते । निज-
कानहमुज्झामि प्राणांस्तृणवदन्यथा ॥ २४० ॥ गुरुभिस्त्याजिताऽरण्ये छद्मना पितृसद्मनः । अहो गुरूणां व्यामोहो विपर्यासोऽपे-
क्षकता ॥ २४१ ॥ गुरूणां नाथवा दोषः कार्येवाऽत्रापराध्यति । अहो विषयवैरस्यमिहापि फलितं मम ॥ २४२ ॥ श्लाघ्यास्त एव
ये नैव दूषिता विषयैरिमैः । सुपक्वकासवन्मूले सरसैर्विरसैः पुरः ॥ २४३ ॥ सर्वसाधारणात् मृत्योर्न बिभेमि त्वहं पुनः । समुज्ज्वले
निजकुले जाताऽलीककलङ्कतः ॥ २४४ ॥ प्राणेश ! हृदयस्थोऽपि किं न त्राणं तनोषि मे । न युक्तं विषमावस्थापतितः स्व उपे-
क्ष्यते ॥ २४५ ॥ दूरेत्वन्यो नरश्चित्ते मया नाधारि नार्यपि । सुभगेन त्वया तस्याः सङ्गो मास्त्विति त्रुद्रितः ॥ २४६ ॥ भग्नताऽ-

दध्यौ रने गमेतोऽस्मि स्वाम्याज्ञां किं करोमि तत्। इदं लोकद्वयद्विष्टं करिष्यामि न दारुणम् ॥ २११ ॥ किं च मे साम्प्रतं मृत्यु-
समये समुपस्थिते। स्तुं न दुर्गतेर्मूलं युज्यते कर्तुमीदृशम् ॥ २१२ ॥ तदेतदीयतातस्य सार्थेशः काशिवासिनः। विमुच्यैनां गृहे-
तत्राऽऽयुः शेष गमयाम्यहम् ॥ २१३ ॥ श्रुतं चैतन्मया काश्यां याति सार्थः समीपतः। चिन्तयन्नित्ययं गच्छन्नन्दयन्त्येत्यपृच्छयत
॥ २१४ ॥ तात! राजकुलेऽस्माकं सर्वस्वहरण कुतः। स प्राह मम नादिष्टं सार्थेशेनेति किञ्चन ॥ २१५ ॥ कुतो ज्ञातिकुलेऽहं च
ग्रहिता निष्परिच्छदा। स प्रोवाच विनीतत्वात्प्रहितासऽपरिच्छदा ॥ २१६ ॥ सा दध्यौ को मयाऽकार्यविनयोथ च गर्भतः।
मन्यते मां गुरुजनोऽसतीं तत्कथयामि किम् ॥ २१७ ॥ उपवनव्यतिकरं पुत्रस्याथ प्रपाकरम्। ज्ञपथाश्च प्रियस्यात्र कथनेऽत्रत्ययोऽ-
पि न ॥ २१८ ॥ गर्भं पाति प्रियसंगमनं पालयाम्यहम्। स एवायात एतेषां विधाता प्रत्ययं स्वयम् ॥ २१९ ॥ ध्यात्वेत्यु-
वाच किं तात! वाच्यं भ्रातिगृहेऽधुना। अहं नदव [..... ...] ॥२२०॥ वत्से! देशो व्यतिक्रान्तोऽरण्यमेतत्तु दारुणम्। पूरितं परितो
ध्यापर्गिहादिश्वापदापदम् ॥२२१॥ अथाऽयं सिंहमायान्तं वीक्ष्य दध्याववं मम। इहापि फलितं रक्ष्या कथं त्वेषा तपस्विनी ॥२२२॥
नन्दयन्त्यवदत्तात! सिंहतो रक्ष रक्ष माम्। उत्पथेन रथो निन्ये रथ्यैरथ हरेर्भयात् ॥ २२३ ॥ रथपुटेऽथ विपर्यस्ते रथे वी पतितौ
भुवि। मूर्च्छिता नन्दयन्ती च व्यलापीदपरः पुनः ॥२२४॥ हा! कष्टं रमणीरत्नं निनष्टं दैव! किं त्वया। पूर्वं नाहं हतः शुद्धिः
कथं मम भविष्यति ॥ २२५ ॥ मया रथस्य धूरेषा वधूरेषा त्वचेतना। सिंहः समेति पापोऽहं किं करोमीह सङ्कटम् ॥ २२६ ॥
नाम्नापि क्रियया याऽपि सत्यो निष्करुणोऽस्म्यहम्। ईदृशोऽपि यदादेशः स्वामिनोऽङ्गीकृतो मया ॥२२७॥ स प्राह मृगराज! त्वं
मद्य मां रक्ष पालिताम्। श्रुत्वेति चलितः सिंहो बालाशीलप्रभावतः ॥ २२८ ॥ दध्यौ निष्करुणश्चित्रं चक्रे नोपद्रवं हरिः।

१ अधेः। २ विरमे स्थल।

वृद्धोऽहं बालिका चासौ प्रक्षिप्तौ येन संकटे ॥ २६३॥ प्रोचे पुनरनुचरः आर्ये! मा भैरयं हि नः। सेनानीर्वत्सलो दीने परनारी-सहोदरः ॥ २६४ ॥ तन्मे कथय काऽसि त्वं केन रोदिषि हेतुना। सोचे विनयदत्तस्य सार्थेशः काशिवासिनः ॥ २६५ ॥ तनया ताम्रलिप्तस्थसार्थेशस्य स्नुषापि च। नाम्ना सागरदत्तस्य तदीयस्याङ्गजस्य तु ॥ २६६ ॥ पत्नी समुद्रदत्तस्य सोऽब्धियात्रामगात्प्रियः। सर्वस्वहरणं राज्ञाऽऽज्ञप्तं केनापि हेतुना ॥ २६७ ॥ ततो निष्करुणाख्येन पुंसा वृद्धेन यानगा। यान्त्येकाऽऽनेतुमारब्धा वने भीमेत्र चाऽऽगता ॥ २६८ ॥ यानस्य चास्य पञ्चास्यभीपरित्रस्तवाजिनः। भग्ना धूरथ स क्वापि मां परित्यज्य यातवान् ॥ २७९ ॥ (पञ्चभिः कुलकम्) भ्रातस्तद्रक्ष रक्ष त्वमेकामशरणां च माम्। अबलां स्वजनत्यक्तां म्रियमाणामिहाटवौ ॥ २७० ॥ स्वसस्तावत् प्रतीक्षस्व गत्वा यावदहं पुनः। आख्यामि स्वामिनः स्वस्य स प्रोच्येति तमागमत् ॥ २७१ ॥ आख्यच्च सर्ववृत्तान्तं स प्रोचे काशि-वास्ययम्। सार्थेशो विनयदत्तः परमः स सुहृन्मम ॥ २७२ ॥ धाटिदानापरोधेन क्षिप्तोऽहं वैरकेतुना। नृपेण चारके तेन मोचितः स्वर्णदानतः ॥ २७३ ॥ तत्स मे परमो बन्धुस्तदा जीवितदायकः। तस्य प्रत्युपकारः स्याज्जीवितेनापि नो ततः ॥ २७४ ॥ पुत्री यदत्र कान्तारे तस्याप्यद्य समागता। मन्येऽलसानां मध्येन सेयं सिद्धतरङ्गिणि ॥ २७५॥ मेरौ कल्पतरू रोरगृहे कनकवर्षणम्। तुष्टा लक्ष्मीरनाराद्धा विद्या सिद्धीमुपागता ॥ २७६ ॥ मनुष्यमात्रमप्यस्य मम गौरवभाजनम्। उच्यते किं पुनः पुत्री जीवितादपि वल्लभा ॥ २७७ ॥ न वेत्त्यसौ वराकी यत्तत्स्योपरतेरभूत्। मासस्तृतीयोऽपुत्रत्वाद्धनमादायि भूभुजा ॥ २७८॥ तद्वत्सायाः मया सर्वं विधेयमधुनाऽधिकम्। उक्त्वेत्यागत्य तामाह वत्से! मन्मित्रपुत्र्यसि ॥ २७९ ॥ तत्त्वं स्वगृह एवागाः प्रत्यभिज्ञाय सावदत्। तात! त्वया भालमुक्तापटिका प्रहिता मम ॥ २८० ॥

पमताया मे हृदये स्फुटिते सति । त्वं नामदुस्थितो भावी तद्रक्षेदं मम प्रिय ! ॥ २४७ ॥ विश्रम्भवचसां तेषां सरस्य ! जित-
स्मर ! । निर्दयानां रताना च हसितानां च तादृशाम् ॥ २४८ ॥ समीपस्थोऽपि वज्रेण घटितोऽसि ध्रुवं प्रिय ! । यदेवं विलपन्त्या
मे निःश्वासयसि नोत्तरम् ॥ २४९ ॥ (युग्मम्) अहो धिक्कर्मवैचित्र्यं समग्रं क्षणनश्वरम् । क्व विमानममानं तद्गृहमेषाऽटवी क्व ! च
॥ २५० ॥ हहा तात ! निष्करुण ! देहि प्रतिवचो मम । भगवत्यो वनदेव्यो हहा रक्षत रक्षत ॥ २५१ ॥

विलप्येति तयाऽरोदीत्यथ पशुगणोऽपि हि । अथ निष्करुणस्तत्तदाकर्ण्येति व्यचिन्तयत् ॥२५२॥ वराका कृतपापासौ दुःखाब्धौ
पातिता मया । महाकुलप्रसूता यन्न चलत्येव शीलतः ॥ २५३ ॥ मन्ये सिंहः समेतोऽपि निवृत्तोऽस्याः प्रभावतः । प्रदक्षिणात्रयं
दत्त्वा किं न स्याच्छीलशालिनाम् ॥ २५४ ॥ अस्या गुरूणां शुद्धत्वान्मन्ये जज्ञे विपर्ययः । तेन निर्मलशीलापि मूढेरेण कल-
ङ्किता ॥ २५५ ॥ मत्स्यगा कामधुक् मन्दपुण्यैस्तैर्निजमन्दिरात् । निर्वासिता हहा नैनामहं त्यक्ष्यामि सर्वथा ॥ २५६ ॥

इत्थं विचिन्तयत्यस्मिन्मृगव्यव्यग्रमानसः । कोऽप्याजगाम सेनानीः स प्रोक्तोऽनुचरेण च ॥ २५७ ॥ देवाऽत्र करुणः शब्दः
श्रूयते मैन्यपप्लवः । आकर्ण्य तत्राह युवतिः समस्ता सा द्विधापि च ॥ २५८ ॥ उवाचाऽनुचरः स्वामिन्निदं विज्ञायते कथम् ।
सभूपः प्राह किं मेयं न स्फुटा पदपद्धतिः ॥ २५९ ॥ शरीरकोमलत्वेन सरश्च कुररीनिभः । विषमश्वाससुक्तश्च तद्गुर्वी युवतिर्ध्रु-
वम् ॥ २६० ॥ तदेवं नायका कापि परस्त्रीः प्रेक्षिता मया । तत्त्वं जानीहि वृत्तान्तं केयं कस्माच्च रोदिति ॥ २६१ ॥ स गत्वा-
शोकदार्ये ! मा त्वातिशादकम्पत । दध्यौ निष्करुणश्चौरसारथ्यासौ करोमि किम् ॥ २६२ ॥ अहो निर्दयता सार्थपतेरीदृशि दुस्तरे ।

१ निर्दयता । २. हसन्त० । ३. पशुगामरता ।

वृद्धोऽहं बालिका चासौ प्रक्षिप्तौ येन संकटे ॥ २६३ ॥ प्रोचे पुनरनुचरः आर्ये ! मा भैरयं हि नः । सेनानीर्वत्सली दीने परनारी-
सहोदरः ॥ २६४ ॥ तन्मे कथय काऽसि त्वं केन रोदिषि हेतुना । सोचे विनयदत्तस्य सार्थेशः काशिवासिनः ॥ २६५ ॥ तनया
तामलिप्तस्थसार्थेशस्य स्नुषापि च । नाम्ना सागरदत्तस्य तदीयस्याङ्गजस्य तु ॥ २६६ ॥ पत्नी समुद्रदत्तस्य सोऽब्धियात्रामगात्प्रियः ।
सर्वस्वहरणं राज्ञाऽऽज्ञप्तं केनापि हेतुना ॥ २६७ ॥ ततो निष्करुणाख्येन पुंसा वृद्धेन यानगा । यान्त्येकाऽऽनेतुमारब्धा वने भीमेत्र
चाऽऽगता ॥ २६८ ॥ यानस्य चास्य पञ्चास्यभीपरित्रस्तवाजिनः । भग्ना धूरथ स क्वापि मां परित्यज्य यातवान् ॥ २७९ ॥
(पञ्चभिः कुलकम्) भ्रातस्तद्रक्ष रक्ष त्वमेकामशरणां च माम् । अबलां स्वजनत्यक्तां म्रियमाणामिहाटवौ ॥ २७० ॥ स्वसस्तावत्
प्रतीक्षस्व गत्वा यावदहं पुनः । आख्यामि स्वामिनः स्वस्य स प्रोच्येति तमागमत् ॥ २७१ ॥ आख्यच्च सर्ववृत्तान्तं स प्रोचे काशि-
वास्ययम् । सार्थेशो विनयदत्तः परमः स सुहृन्मम ॥ २७२ ॥ धाटिदानापरोधेन क्षिप्तोऽहं वैरकेतुना । नृपेण चारके तेन मोचितः
स्वर्णदानतः ॥ २७३ ॥ तत्स मे परमो बन्धुस्तदा जीवितदायकः । तस्य प्रत्युपकारः स्याज्जीवितेनापि नो ततः ॥ २७४ ॥ पुत्री
यदत्र कान्तारे तस्याप्यद्य समागता । मन्येऽलसानां मध्येन सेयं सिद्धतरङ्गिणि ॥ २७५ ॥ मेरौ कल्पतरू रोरगृहे कनकवर्षणम् ।
तुष्टा लक्ष्मीरनाराद्धा विद्या सिद्धीमुपागता ॥ २७६ ॥ मनुष्यमात्रमप्यस्य मम गौरवभाजनम् । उच्यते किं पुनः पुत्री जीवितादपि
वल्लभा ॥ २७७ ॥ न वेत्त्यसौ वराकी यत्तत्स्योपरतेरभूत् । मासस्तृतीयोऽपुत्रत्वाद्धनमादायि भूभुजा ॥ २७८ ॥ तद्वत्साया मया
सर्वं विधेयमधुनाऽधिकम् । उक्त्वेत्यागत्य तामाह वत्से ! मन्मित्रपुत्र्यसि ॥ २७९ ॥ तत्त्वं स्वगृह एवागाः प्रत्यभिज्ञाय सावदत् ।
तात ! त्वया भालमुक्तापटिका प्रहिता मम ॥ २८० ॥

अथ निष्करुणो दध्यावसौ केनापि साधुना । आश्वासितोपगत्याथ स सेनान्यै नमोऽकरोत् ॥ २८१ ॥ नन्दयन्त्याः पुमानेष मत्वोचे च चमूपतिः । वत्स ! परिच्छदः शेषः क्वास्ति निःकरुणोऽवदत् ॥ २८२ ॥ नास्ति प्रोवाच सेनानीः किमेषा निष्परिच्छदा । प्रहिता गुरुभिः सैषोऽकथयत्तस्य तत्श्रुतौ ॥ २८३ ॥ सेनानीः प्राह गुरवोऽसमीक्षितविधायिनः । प्रतिपच्चन्द्रलेखायाः कदाचिल्लाञ्छनं भवेत् ॥ २८४ ॥ अथ प्रह्वे रथे बालां तामारोप्य चमूपतिः । चचाल मञ्जुलवनसन्निवेशं निजं प्रति ॥ २८५ ॥ तदा च सफले वृक्षे वायसोऽरौदथाऽवदत् । सेनानीस्ते सुतो भावी वत्से ! भर्ता तदैष्यति ॥ २८६ ॥ सा बद्ध्वा शकुनग्रन्थिं प्राह ताताऽस्तु वचः । अथैत्य तिलकवतीं स्वकान्तां सैन्यपोऽवदत् ॥ २८७ ॥ पालयैतां नन्दयन्तीं सुतावज्जीवितव्यवत् । मनसा वचसाप्यनोत्पाद्यमसुखं त्वया ॥ २८८ ॥ उक्तः परिजनः शेषो योऽस्याः कोऽपि कथञ्चन । करिष्यति प्रतिकूलं निग्रहीष्यामि तं स्वयम् ॥ २८९ ॥ कारिता दानशाला च तयाथिव्याप्रतेः कृते । स्वयं च कुरुते चिन्तां तस्याः शय्यासभादिषु ॥ २९० ॥ कारयत्युचितान्यस्या[1]णानि नवानि च । देवतेवाराध्यैव सदा परिजनेन सा ॥ २९१ ॥ शीलालङ्कृतया रूपसम्पदा जनमानसे । वितन्वती चमत्कारं दानकृत्यास्ति सा ॥ २९२ ॥ स्मरन्ती पतिपादानां पाति गर्भे कृतादरा । विनयेनेव वर्धमाना कालं गमयते सुखम् ॥ २९३ ॥ सागरदत्तस्य धनवत्या समं दिनाः । प्रयान्ति पुत्रविरहस्नुषालाञ्छनदुःखिनः ॥ २९४ ॥ चित्ते च चिन्तयत्येषो नैति निष्करुणः कथम् । न नाम कोऽपि तस्यापि स्यादनर्थो वनान्तरा ॥ २९५ ॥ समुद्रो यत्समुद्रस्य यात्रायां प्रहितो मया । एकं दुःखं तच्च कुरव्याविद्दीकृतम् ॥ २९६ ॥ हहा विनयदत्तस्य सुताप्येषा स्नुषा च नः । भूत्वा कीदृगकार्षीत्कुहनं स्त्रीचरित्र

---

1 कारागारे

॥ २९७ ॥ इति दुःखजुषस्तस्य हरिण्यभिधचेटिका । नत्वोचे स्वामिन्यस्माकं स्वामिन्विज्ञपयत्यदः ॥ २९८ ॥ कापि
निष्करुणस्यास्ति क्षेमवार्ता न वा प्रभो ! । स प्राह दह्यमानोऽसि भद्रेऽहं चिन्तयैतया ॥ २९९ ॥ स्वामिनी ! तेऽधुना क्वास्ति
सोचे सम्पूज्य देवताम् । भोजयित्वा परिजनं प्रविवेश लतागृहम् ॥ ३०० ॥ न सुन्दरमिदं ध्यात्वा स प्राहाऽऽहूयतामिह ।
गत्वाऽऽहूता तया प्राह परा किं कारणं वदः ॥ ३०१ ॥ सावदद्वेश्मि तं नैव सा दध्यौ हा सुषा कथम् । भाविन्येकाकिनी
शून्ये कान्तारे चापदाकुले ॥ ३०२ ॥ हा पुत्रि ! त्वद्वियोगे यदारब्धं मरणं मया । दैवेन विघ्नितं तन्मे सार्थेशाह्वान-
तोऽधुना ॥ ३०३ ॥ चिन्तयन्तीति सार्थेशः चतुःशालं समेत्य सा । बद्धाञ्जलिं निविश्याथोचितस्थाने जगाद च ॥ ३०४ ॥ क्वापि
निष्करुणस्यास्ति क्षेमवार्ताह सागरः । न क्वापि दहनत्रय्या देहो मे दह्यते ततः ॥ ३०५ ॥ एकं वियोगः पुत्रस्य परं वध्वाः कुशी-
लता । अन्यन्निष्करुणाशुद्धिस्तन्मे जीवितसंशयः ॥ ३०६ ॥ कुतोऽहमधुनाहूता त्वयेत्युक्तेऽपि मौनिनि । सार्थेशे गद्गदं प्रोचे सा
सार्थेश ! निवेद्यताम् ॥ ३०७ ॥ स प्राह चञ्चला लक्ष्मीः कुलं वध्वा कलङ्कितम् । तदिच्छामि वने गन्तुं सोचे स्यात्तत्र किं
सुखम् ॥ ३०८ ॥ स प्राह तत्र नैव स्याद्येन स्वजनचिन्तनम् । न स्यातां हर्षशोकौ च वनवासस्ततः सुखम् ॥ ३०९ ॥ पत्नी प्रोवाच
यद्येवं सहैष्यामि ततोऽहकम् । सार्थेशः प्राह तत्रापि कथमावां समागमः ॥ ३१० ॥ पराऽधोवदना प्राह किं सर्वा अपि तादृशः ।
स प्राह नैवं स्युः काश्चित्पावना नाममात्रतः ॥३११॥ साऽवादीदयि ! किं सत्यं वने यूयं प्रयास्यत । स प्राह सत्यमेवोचे तया तद-
नुयाम्यहम् ॥ ३१२ ॥ सागरः प्राह नैवानुगन्तव्योऽहं मनागपि । पराह किमहं त्यक्ता स प्राह सुतरामिति ॥३१३॥ हा कीदृ-
क् वक्ति सार्थेश इति सा मूर्छितापतत् । हरिण्या सादरकृतोपचाराऽभूत्सचेतना ॥ ३१४ ॥ वीक्ष्य स्वस्वामिनोरास्यं बाष्पश्यामं हरि-

ण्यय । शारिमूर्त्तास्मानेतुमधोभूमीमुपागमत् ॥ ३१५ ॥ लेगहम्मन्दा शूरो द्वारि दृष्टस्तया पतन् । गत्वारण्याते च सार्थेशः प्राह
शीघ्रं प्रवेशय ॥ ३१६ ॥ मानतीयान्तदच्छूर ! स्वागतं तत्र मोऽवदत् । सार्थेशस्य प्रसादेन स चाऽस्ति कुशली प्रभुः ॥ ३१७ ॥ साथ
दीर्घान्निःश्वासोटीरला भूत्वा पराङ्मुखी । अरोदीदवदच्छूरो मूढे ! रोदिषि वल्गुजः ॥ ३१८ ॥ सोचे शूर ! किमनेन तव ज्ञातेन
यत्प्रभुः । वरास्त्युक्तो व्रज त्वं तस्य दध्यौ वनितागसि ॥ ३१९ ॥ कुट्टिना सादसौ वरिकमनया मे विचिन्त्य सः । नत्वा तौ दम्पती
तास्यां गस्भाषित उपाविशत् ॥ ३२० ॥ सार्थेशः प्राह कुशलं मद्वयस्यस्य सोऽवदत् । वह्नेश एष इत्युक्त्वार्पयदन्यस्तत्साचयत् ॥ ३२१ ॥
स्वस्ति श्रीमथामहितस्थां गुणमाणिक्यसागरम् । मित्रं सागरदत्ताख्यं सार्थवाहधुरंधरम् ॥ ३२२ ॥ श्रीमथूपवतो रत्नसेनसार्थपतिस्तदा ।
सस्नेहं गाढमालिङ्ग्य प्रमोदयति कौशलात् ॥ ३२३ ॥ केयं च जिनदत्तसार्थवाहस्य नन्दना । नन्दयन्ती स्वजनानां नन्दयन्ती सतां
मनः ॥ ३२४ ॥ तस्याः समुद्रदत्तस्तु यत्समुद्रस्य वर्त्मनि । प्रहितो भवता मित्र ! तन्मनो मे धिनोति न ॥ ३२५ ॥ व्यूढा समुद्र-
दत्तेन तव प्रणमति क्रमौ । इति मे ज्ञापितं तेनानन्दितोऽतितरां हृदि ॥३२६॥ यतोऽद्य भीममालोक्य गच्छेन्मूर्च्छां कदापि सः ।
प्रतिद्वन्द्वयो दैवं स्फोटयेधानपात्रम् ॥ ३२७ ॥ तस्य पत्नीवियोगेन दौर्मनस्यं दधाति चा । पृथिव्यां तत्समेनास्ति सुकठोरमना
इति ॥ ३२८ ॥ वाचयित्वेति स प्राह कठोरहृदयोऽस्म्यहम् । यद्यापि हि जीवामि शूरोऽप्यासाश्रुरोऽवदत् ॥ ३२९ ॥ सार्थेशः
प्राह चस्मात्त्वं विरस इव दृश्यसे । स प्राहाऽहं समागच्छन् प्रविष्टोऽस्मि वराणसीम् ॥ ३३० ॥ तत्र श्रुतं मया प्राह सार्थेशो मौन-
मातनु । शूरः प्राह कथं स्वामिन् ! युष्माभिः प्रागिदं श्रुतम् ॥ ३३१ ॥ पृच्छत्ययं श्रुतमिति सार्थेशो दयितां जगौ । धनवत्याह
कथय किं शूर ! भवता श्रुतम् ॥३३२॥ स प्राह जिनदत्तः सार्थनाथो दिवं गतः । तदप्येवमभूदित्थं वदन्ती साथ मूर्च्छिता ॥३३३॥

सार्थेशः प्राह जानन्तं प्रियमेतत्परोऽवदत् । किं प्रियं स्वजनस्य स्यान्मरणं सागरोऽवदत् ॥३३४॥ स जीवति मृतोऽहं तु केन दृष्टो न च श्रुतः । कलङ्कं स्वकुले कीर्तिवपुषा तत्स जीवति ॥ ३३५ ॥ अथाह शूरः सन्तुष्टो भवद्भ्याः प्रणामतः । सार्थेशः प्राहिणोच्चूडा मणिमालां वधूचिताम् ॥ ३३६ ॥ सागरः प्राह सा तेऽस्तु स प्रोचे नोचितोऽस्म्यहम् । नन्दयन्तीं विना नाऽस्या योग्या भवति नार्यपि ॥३३७॥ अन्यच्च तेन तद्योग्या मैपि गृण्हाम्यहं कथम् । सागरः प्राह सा नास्ति स प्राहोपरता कथम् ॥ ३३८ ॥ सार्थेश प्राह नैव स्यात् शोच्या यदि मृता भवेत् । स प्राह वक्रोल्लापानां परमार्थं न वेद्म्यहम् ॥ ३४९ ॥

अथ सार्थेशनिर्देशात् हरिणी शूरकर्णयोः । तमलीकमलीभावं तप्तशूची समं न्यधात् ॥ ३४० ॥ शूरोऽथ विलपन् हाहा स्वच्छे स्वजनवत्सले । नन्दयन्ती कुलवधूः छिन्ना कल्पलता हहा ॥ ३४१ ॥ ध्वान्तेनार्कप्रभा ध्वस्ता लिप्ता मष्या शशिप्रभा । हहा गङ्गा-तरङ्गाणामावली कलुषीकृता ॥ ३४२ ॥ सार्थवाहः कथं चक्रे कर्मेदमपरीक्षितम् । एवंविधं महाघोरं सन्मर्यादाविसर्जनात् ॥ ३४३ ॥ सार्थेशः प्राह किं शूर ! दोपेऽध्यक्षे परीक्ष्यते । स प्राह वेद्म्यहं सर्वं वारिधेः कर्णधारवत् ॥ ३४४ ॥ ततः सकौतुकः प्राह सार्थेशः कथयस्व तत् । स प्रोचे श्रूयतां स्वामिन् युष्मदीयनिदेशतः ॥ ३४५ ॥

नन्दन्ती गृहद्वारि यावत् सुप्तोसि तावता । समुद्रदत्तो मित्रेण सहितः प्राविशद्गृहम् ॥ ३४६ ॥ चौराभिशङ्कया चोच्चैर्वदंस्ते-नासि भापितः । आह समुद्रदत्तोऽसि शूर ! मोच्चैःस्वरं वद ॥३४७॥ तदागमः किं न कथित इति स्वामिप्रभापिते । स प्राह दत्त्वा लञ्चायां मुद्रिकां मुद्रितोऽस्म्यहम् ॥ ३४८ ॥ सार्थेशः प्राह तत्तां मे दर्शय प्राह शूरकः । आनीय दर्शयिष्यामि स्वाम्याह स्थान-कात् कुतः ॥ ३५९ ॥ स प्राह युष्मदादेशाद्वियासुर्मधुरां पुरीम् । कोशाध्यक्षः वनपालस्यार्पयं सागरस्ततः ॥ ३५० ॥

यावत्तो हरिणीं प्रेक्ष्य तामानाय्य विलोकयन्। मूर्च्छितो जातचैतन्यो विललाप स्वपापतः ॥ ३५१ ॥ हा वत्से! निजवंशस्य
वैजयन्ति! महामति!। हा नन्दयन्ति! पुत्रि! त्वं विशुद्धासत्कुलीयतः ॥३५२॥ विशुद्धिर्मम चण्डालाचारस्य तु कथं भवेत्। सत्य-
मेव जनो वक्ति वृद्धत्वे धीविपर्ययः ॥ ३५३ ॥ किमद्यापि वनं गन्तुं मनः प्रह्वं न जायते। शूर! पापमिदं सर्वं त्वयैवाहं विधा-
पितः ॥ ३५४ ॥ शूरः प्राह मया तत्र विशन्ती प्रैक्षि हंसिका। ततोऽध्यायि विभोः सर्वमसौ विज्ञपयिष्यति ॥ ३५५ ॥
मार्थनाथेन निर्दिष्टा तामाह्वातुं हिरण्यथ। हंसिका तु स्वयं तत्र समैच्छुरसमागमात् ॥ ३५६ ॥ नन्दयन्तीक्षेमवार्तां ज्ञातुं नत्वा
च सागरम्। स्मिता तेनोदिता भद्रे! तत्र सरति वा न वा ॥ ३५७ ॥ समुद्रदत्तप्रस्थानदिनं किञ्चित्सराम्यहम्। तदुक्ते सागरः
प्राह निशि क त्वं गतेति वा ॥ ३५८ ॥ सा प्राहोपवनेऽशोकः प्रियङ्गुलतया सह। विवाहितस्तया नन्दयन्त्याहं प्रहिता ततः
॥ ३५९ ॥ उक्तं च तत्र पृष्टेऽहमागतैर तत: कथम्। स्वामिनी चिरयतीति पुनस्तत्र गतास्म्यहम् ॥ ३६० ॥ विशाम्युपवन-
स्यान्तर्यावदित्यूर्द्धमापिते। ह्रिया मौनवती प्रोक्ता सार्थेशेन त्वपाऽत्र का ॥ ३६१ ॥ यदानादीदथाऽद्राक्षं समुद्रं मित्रसंयुतम्।
सागरः प्राह हा पापे! विश्रंसं न तदा कथम् ॥३६२॥ सा प्राह तात! शप्ताऽहं नन्दयन्त्यात्मजीविताज्। वाच्यमेतन्न कस्याप्य-
पुनागत्यातं तु यः प्रभो! ॥३६३॥ (युग्मम्) श्रुत्वेत्युच्चैः स्वरं सर्वं रुदिते हंसिकाऽनदत्। ताताम्बे! शूरः किमिदं भूयोभूयोपि साश्रुदृक्
॥ ३६४ ॥ मार्थेशादेशतः शूरस्तस्याः कर्णे तदाख्यत। व्यलपत्सा स्वामिनि! हाहा परीवारवत्सले ॥ ३६५ ॥ इह गुणगणस्या-
स्थे! पुण्यहीनाहकं कथम्। सनाथा त्वां विना देवि! भविष्याम्यधुना वद ॥ ३६६ ॥ सार्थवाह! कथं कार्यमविचार्यकृतं हहा।
ईदृशं सागरः प्राह दैवेन छलितोऽस्म्यहम् ॥ ३६७॥ तत्पश्यामि गृहं प्राह गृहिणी मनता प्रिय!। किमारब्धमिदं प्राह सार्थवाहः

प्रिये ! न तु ॥ ३६८ ॥ कुर्वन्ति यज्ञनाः किञ्चिदसमीक्षितकारिणः । सा प्राहाऽऽयातु यात्रायाः पुत्रः प्रोवाच सार्थपः ॥ ३६९ ॥
पृच्छतस्तस्य पापोऽहं प्रिये ! दास्ये किमुत्तरम् । सा प्राह सह युष्माभिर्वनमेष्याम्यहं ततः ॥३७०॥ पतिः प्राह गृहिणी ! मां किं
दुनोपि पुनः पुनः । तयोचे किं मया कार्यं पश्चादिह गृहस्थया ॥ ३७१ ॥ तेनोचेऽर्चय देवार्चा दानं देहि तपः कुरु । गुरून्पू-
जय कल्याणं यथा किमपि जायते ॥ ३७२ ॥ शूरः वाच्यस्त्वयायातः समुद्रस्तु समुद्रतः । मद्वाक्यं यत्क्रुधं वत्स ! सुविनीत-
शिरोमणे ! ॥३७३॥ मुञ्च प्रियायाः पापेनाकृत्यमेतत् कृतं मया । धीरो भूत्वा विधेयं तद्विधेहि समयोचितम् ॥ ३७४ ॥ किं च
किञ्चन पुण्यं यदस्ति मे तद्भवे भवे । युक्तियुक्तो विनीतात्मा त्वमेव तनयो भवेः ॥३७५॥ अन्यच्च यादृशोऽभूवमसमीक्षितकारकः ।
अहं क्रूरः क्रुधान्धश्च मा भूस्त्वं पुत्र ! तादृशः ॥३७६॥ शूरः प्रोवाच विजयो भवतां क्व भविष्यति । प्रोवाच सागरो गम्यं भिक्षुवेष-
भृता मया ॥ ३७७ ॥ पुरग्रामाकरसरिद्व्रजकुञ्जगृहादिषु । विशुद्धशीलः वसतिं यावद्द्रक्ष्यामि तां स्नुषाम् ॥ ३७८ ॥ स्त्रीहत्या-
भ्रूणहत्याभ्यां मलिनं देहमन्यथा । त्यक्ष्यामीति समाख्याय वार्यमाणोऽपि निर्ययौ ॥ ३७९ ॥ सार्थवाहस्ततोऽनाथवदेकाकी
परिभ्रमन् । जनं पप्रच्छ सर्वत्र नन्दयन्तीजनश्रुतिम् ॥ ३८० ॥ नन्दयन्ती तु सञ्जातसलक्षणधराङ्गजा । निःशृङ्गारा सदाचारा पति-
स्मृतिपरायणा ॥ ३८१ ॥ स्मृत्वा स्वमटवीदुःखमटवीपतिते जने । दानं ददाना दीने साऽगमयत्समयं सुखम् ॥ ३८२ ॥ स्तन्यो-
त्तीर्णेऽन्यदा पुत्रे नन्दयन्ती कृताष्टमा । चेटीमूचेऽतिथीन् भृत्यैर्भोजनाय निमन्त्रय ॥ ३८३ ॥ तैश्चेटी प्रहितैरेको वृद्धः प्रापि
युवाऽपरः । तृतीयो वसुमित्रश्चानीतास्तत्र त्रयोऽपि ते ॥३८४॥ निविष्टाश्चोचिते स्थाने वसुमित्रो व्यचिन्तयत् । दिष्ट्याद्य पञ्चमाद्-
घस्रात्प्राप्यप्रार्थितभोजनम् ॥ ३८५ ॥ वसुमित्रं युवा वीक्ष्य वृद्धं प्राह नरोऽसकौ । वाचालो वीक्ष्यते कर्ताऽनर्थं राजकुले गतः ॥३८६॥

तथा कथञ्चन यथा न नौ भोज्यं भविष्यति । वृद्धः प्रोवाच भवता सत्यमेतद्विकल्पितम् ॥३८७॥ नन्दयन्त्याः पुरश्चेटी प्राक्षांस्त्रीन्
पुरुगान् जगौ । नन्दयन्त्यवदत्पृच्छ कः स्थानात्कुत आगतः ॥३८८॥ सा पृष्ट्वा तान्समानैषीत् जय त्वं भर्तृदारिके ! । द्वाभ्यामूचे
वसुमित्रः पुनर्मौनयुतः स्थितः ॥ ३८९ ॥ चेटी प्राह नरो वृद्धो मथुरायाः समागतः । सोचे पूज्यजनावासो मथुरेति स पूजितः
॥ ३९० ॥ शाम्बीपुर्याः समेतोऽयं चेट्युक्ते स्वामिनी जगौ । सा सर्वपूर्वेरित्युक्त्वा कुसुमैः सोऽपि पूजितः ॥ ३९१ ॥ स्वामिन्य-
भ्यागतोऽसौ तु तामरिप्याः पराऽवदत् । सहर्षलज्जमायातोऽयं मम श्वसुरौकसः ॥ ३९२ ॥ विशेषतस्तदेष स्यात्पूज्य इत्थं वद-
न्त्यमो आचन्दनपुष्पार्घ्यां मुखं यावन्निरीक्षते ॥ ३९३ ॥ तावत्सखेदमुद्ध्यौ वसुमित्रसमो ह्यसौ । इति तस्या विपन्नाया हस्तात्
मरु गहमाऽपतत् ॥ ३९४ ॥ दण्डकाष्टं च पतितं वसुमित्रस्य हस्ततः । तेनोचे च विजयतां सुचिरं भर्तृदारिके ॥ ३९५ ॥ सा
दध्यौ वसुमित्रस्य स्वरोऽपि प्रतिरूपकः । वसुमित्रः पुनर्दध्यौ निश्चितं नन्दयन्त्यसौ ॥ ३९६ ॥ भ्रस्तशीला यदि ततो न कार्यं
भोजनेन मे । वृद्धं प्राह पुरानेनारब्धं कपटनाटकम् ॥ ३९७ ॥ वसुमित्रः पुनर्दध्यौ तपः कृशशरीरका । प्रोपितभर्तृका चैषा
तथा तेनालपाम्यहम् ॥ ३९८ ॥ ध्यात्वेत्युपेत्य प्राह नन्दयन्त्यसि सावदत् । वसुमित्रोऽसि मन्ये तदार्यपुत्रः स्मृतेः पथि ॥३९९॥
मति तस्मिन्नमुष्य स्यादवस्था कथमीदृशी । ध्यायन्तीति मूमूर्च्छेयं युवा वृद्धमथाऽवदत् ॥ ४०० ॥ पश्यैतेन कृतोऽनर्थोऽस्माकं
विमश भोजने । पापोऽहं तादृगेवास्मि वसुमित्रो व्यचिन्तयत् ॥ ४०१ ॥ सचेतनाथ साक्रन्दद्विधेऽहं विदधे कुतः । उदूढा तादृशि
युक्ते ततः स्थिता दवे कथम् ॥ ४०२ ॥ क्रन्दन्तीति पुनर्मूर्च्छां गताथ स्थविरोऽवदत् । दर्शयित्वा निधिं नेत्रे हृते सत्यमभूदिदम्
॥ ४०३ ॥ तदेऽन्यत्र कुत्रापि यावो भोजनहेतवे । तावुभावपि रोषेण रक्तनेत्रौ विनिर्गतौ ॥ ४०४ ॥ तां बालां वीक्ष्य मूर्च्छा-

लां चेटी भृत्यानभापत । सेनानीः कथ्यतामेपता मूर्छिताऽतिथिदर्शनात् ॥ ४०५ ॥ तद्यूयं शीघ्रमायात सोऽथ निष्करुणान्वितः । एत्य शीतोपचारैस्तां कथञ्चित् सुस्थितां व्यधात् ॥ ४०६ ॥ प्राह निष्करुणो चेटीं कथयस्व स कोऽतिथिः । तया प्रदर्शिते दध्यौ वसुमित्रोऽयमागतः ॥४०७॥ वत्सः समुद्रदत्तस्तन्नास्ति यत्तं विनाऽसकौ । दध्यौ परः सुशीलेयमस्ति निष्करुणोऽपि यत् ॥४०८॥ पृष्टो निष्करुणेनायं क्षेमोऽस्ति सुहृदस्तव । स प्राह वाढं कुपिता नन्दयन्ती ततोऽवदत् ॥ ४०९ ॥ युक्तं च सदृशं चैतदार्यपुत्रेण संयुतः । गतस्त्वागत एकाकी तत्सत्यं वद नन्दति ॥ ४१० ॥ स प्राह तव पादानां शपे जीवति मे सुहृत् । सेनान्यूचे निष्करुण ! क एप पुरुषोऽतिथिः ॥ ४११ ॥ स प्राहात्माद्वितीयोऽयं जीवितालम्बनं परम् । स्वामिन् समुद्रदत्तस्य ततः प्राह चमूपतिः ॥ ४१२ ॥ स धन्यो यस्य विपमदशायां मित्रमिदृशम् । नन्दयन्त्यवदत् किं ते सति तत्रेदृशी दशा ॥ ४१३ ॥ स प्राह पुर्या निर्गत्य स्तोकैरपि दिनैर्गतः । रत्नद्वीपं भृतं रत्नैर्वाहनं चलितास्ततः ॥ ४१४ ॥ छन्नमागच्छतां मेघैर्नभो गर्जितमूर्जितम् । विद्युद्-द्युतदम्भोधिः कल्लोलोल्लोलतामगात् ॥४१५ ॥ सहयानस्थचेतोभिर्यानं दोलायते स्म च । जना प्रोचुः स्वस्वकुलदेवीनामुपयाचितम् ॥ ४१६ ॥ अथास्फाल्यगिरितटे प्रचण्डपवनेरितम् । भग्नं प्रवहणं वस्तुजातं यातं रसातलम् ॥ ४१७ ॥

नन्दयन्ती ततः प्राह भो भो रक्षत रक्षत । स्फुटितं यानपात्रं तदार्यपुत्रो विपद्यते ॥४१८॥ मूर्च्छितेति वदन्ती सा कृतशीतोपचारतः । सुस्था प्रोवाच सेनान्या वत्से ! वीतमिदं ननु ॥ ४१९॥ नन्दयन्त्यवदत्तात ! मयाऽज्ञायि महोदधौ । तस्यामेवावस्थायां वसुमित्रोऽवदत्ततः ॥ ४२० ॥ जनः सर्वोऽपि हि ग्राहैरारब्धो भक्षितुं ततः । कुलदेवीं सरंस्तीरमहं पुनरुपागतः ॥ ४२१ ॥ दध्यौ सुहृदुपरतस्तं विना जीवितेन किम् । कुलदेव्या यदि पुनः सोऽपि स्यादनुकम्पितः ॥ ४२२ ॥ इति बुद्ध्या भ्रमन् मित्रमपश्यं

तथा कथञ्चन यथा न नौ भोज्य भविष्यति। वृद्धः प्रोवाच भवता सत्यमेतद्विकल्पितम् ॥३८७॥ नन्दयन्त्याः पुरश्चेटी प्राप्तांस्त्रीन्
पुरुषान् जगौ। नन्दयन्त्यवदत्पृच्छ कः स्थानात्कुत आगतः ॥३८८॥ सा पृष्ट्वा तान्समानैषीत् जय त्वं भर्तृदारिके!। द्वाभ्यामूचे
वसुमित्रः पुनर्मानयुतः स्थितः ॥ ३८९ ॥ चेटी प्राह नरो वृद्धो मथुरायाः समागतः। सोचे पूज्यजनावासो मथुरेति स पूजितः
॥ ३९० ॥ काश्चीपुर्याः समेतोऽयं चेत्युक्ते स्वामिनी जगौ। सा सर्वपूर्वैरित्युक्त्वा कुसुमैः सोऽपि पूजितः ॥ ३९१ ॥ स्वामिन्य-
स्यागतोऽसौ तु तामलिप्याः पराऽवदत्। सहर्षलजमायातोऽयं मम श्वसुरौकसः ॥ ३९२ ॥ विशेषतस्तदेष स्यात्पूज्य इत्थं वद-
न्त्यमो आननन्दनपुष्पार्घा मुखं यावन्निरीक्षते ॥ ३९३ ॥ तावत्सखेदमुद्ध्यौ वसुमित्रसमो ह्यसौ। इति तस्या विषण्णाया हस्तात्
मरु महसाऽपतत् ॥ ३९४ ॥ दण्डकाष्टं च पतितं वसुमित्रस्य हस्ततः। तेनोचे च विजयतां सुचिरं भर्तृदारिके ॥ ३९५ ॥ सा
दध्यौ वसुमित्रस्य स्वरोऽपि प्रतिरूपकः। वसुमित्रः पुनर्दध्यौ निश्चितं नन्दयन्त्यसौ ॥ ३९६ ॥ श्रस्तशीला यदि ततो न कार्यं
भोजनेन मे। वृद्धं प्राह युवानेनारब्धं कपटनाटकम् ॥ ३९७ ॥ वसुमित्रः पुनर्दध्यौ तपः कृशशरीरका। प्रोषितभर्तृका चैषा
गया तेनालपाम्यहम् ॥ ३९८ ॥ ध्यात्वेत्युपेत्य प्राह नन्दयन्त्यसि सावदत्। वसुमित्रोऽसि मन्ये तदार्यपुत्रः स्मृतेः पथि ॥३९९॥
गति वसित्समुप्य स्यादवस्था कथमीदृशी। ध्यायन्तीति मूमूर्च्छेयं मुधा वृद्धमथाऽवदत् ॥ ४०० ॥ पश्यैतेन कृतोऽनर्थोऽस्माकं
स्तिश्च भोजने। पापोऽहं तादृगेवास्मि वसुमित्रो व्यचिन्तयत् ॥ ४०१ ॥ सचेतनाथ साक्रन्दद्विधेऽहं विदधे कुतः। उद्दूर तादृशि
हन्ते ततः चिन्ता दवे कथम् ॥ ४०२ ॥ क्रन्दन्तीति पुनर्मूर्च्छां गताथ स्थविरोऽवदत्। दर्शयित्वा निधिं नेत्रे हते सत्यमभूदिदम्
॥ ४०३ ॥ तदेवमन्यत्र कुत्रापि यावो भोजनहेतवे। तावुभावपि रोषेण रक्तनेत्रौ विनिर्गतौ ॥ ४०४ ॥ तां बालां वीक्ष्य मूर्च्छा-

लां चेटी भृत्यानभाषत । सेनानीः कथ्यतामेपता मूर्छिताऽतिथिदर्शनात् ॥ ४०५ ॥ तद्यूयं शीघ्रमायात सोऽथ निष्करुणान्वितः ।
एत्य शीतोपचारैस्तां कथञ्चित् सुस्थितां व्यधात् ॥ ४०६ ॥ प्राह निष्करुणो चेटीं कथयस्व स कोऽतिथिः । तया प्रदर्शिते दध्यौ
वसुमित्रोऽयमागतः ॥४०७॥ वत्सः समुद्रदत्तस्तन्नास्ति यत्तं विनाऽसकौ । दध्यौ परः सुशीलेयमस्ति निष्करुणोऽपि यत् ॥४०८॥
पृष्टो निष्करुणेनायं क्षेमोऽस्ति सुहृदस्तव । स प्राह वाढं कुपिता नन्दयन्ती ततोऽवदत् ॥ ४०९ ॥ युक्तं च सदृशं चैतदार्यपुत्रेण
संयुतः । गतस्त्वागत एकाकी तत्सत्यं वद नन्दति ॥ ४१० ॥ स प्राह तव पादानां शपे जीवति मे सुहृत् । सेनान्यूचे निष्करुण !
क एप पुरुषोऽतिथिः ॥ ४११ ॥ स प्राहात्माद्वितीयोऽयं जीवितालम्बनं परम् । स्वामिन् समुद्रदत्तस्य ततः प्राह चमूपतिः
॥ ४१२ ॥ स धन्यो यस्य विपमदशायां मित्रमिदृशम् । नन्दयन्त्यवदत् किं ते सति तत्रेदृशी दशा ॥ ४१३ ॥ स प्राह पुर्या
निर्गत्य स्तोकैरपि दिनैर्गतः । रत्नद्वीपं भृतं रत्नैर्वाहनं चलितास्ततः ॥ ४१४ ॥ छन्नमागच्छतां मेघैर्नभो गर्जितमूर्जितम् । विद्युद-
द्युतदम्भोधिः कल्लोलोल्लोलतामगात् ॥४१५ ॥ सहयानस्थचेतोभिर्यानं दोलायते स च । जना प्रोचुः स्वस्वकुलदेवीनामुपयाचितम्
॥ ४१६ ॥ अथास्फाल्यगिरितटे प्रचण्डपवनेरितम् । भग्नं प्रवहणं वस्तुजातं यातं रसातलम् ॥ ४१७ ॥
नन्दयन्ती ततः प्राह भो भो रक्षत रक्षत । स्फुटितं यानपात्रं तदार्यपुत्रो विपद्यते ॥४१८॥ मूर्च्छितेति वदन्ती सा कृतशीतो-
पचारतः । सुस्था प्रोवाच सेनान्या वत्से ! वीतमिदं ननु ॥ ४१९॥ नन्दयन्त्यवदत्तात ! मयाऽज्ञायि महोदधौ । तस्यामेवावस्थायां
वसुमित्रोऽवदत्ततः ॥ ४२० ॥ जनः सर्वोऽपि हि ग्राहैरारब्धो भक्षितुं ततः । कुलदेवीं स्मरंस्तीरमहं पुनरुपागतः ॥ ४२१ ॥
दध्यौ सुहृदुपरतस्तं विना जीवितेन किम् । कुलदेव्या यदि पुनः सोऽपि स्यादनुकम्पितः ॥ ४२२ ॥ इति बुद्ध्या भ्रमन् मित्रमपश्यं

परिरभ्य गम् । विधेर्विलसितं चिन्तयन्तावावां प्रचेलिव ॥४२३॥ दृष्टः पुलिन्दकग्रामे सार्थस्तेन सहावयोः । व्रजतोः सिन्धुरो मत्तः
मार्गमध्यं व्यगाहत ॥४२४॥ तदाहं भिन्नतो भ्रष्टोऽनिष्टशंकी पलायितः । ईदृशं पुरुषं वीक्ष्य युष्माभिः कथ्यमीदृशम् ॥ ४२५ ॥
धेनी गमुद्रदपोऽस्मि पुरोयान् त्वमनुव्रज । ततोऽहमनुयान् विन्ध्याटव्यां भ्रष्टोऽसि चागतः ॥४२६॥ पञ्चमं दिनमद्याभूदेवार-
त्रिदिनैरयम् । ग्रामलिप्सां गतो मारी नन्दयन्ती ततोऽवदत् ॥ ४२७ ॥ आर्यपुत्रो व्यतिक्रान्तो मत्तादम्बुनिधेर्गजात् । मम पुण्यै-
निष्करुणः प्राह देवास्ति नन्दनः ॥ ४२८ ॥ सेनानीः प्राह विहितोपवासत्रितया सुता । वसुमित्र ! भवान् श्रान्तस्ततः कुरुत
भोजनम् ॥ ४२९ ॥

स प्राह कथ्यतां नन्दयन्ती कथमिहागता । आख्यन् निष्करुणः कर्णे वसुमित्रस्ततोऽवदत् ॥ ४३० ॥ दृश्यतां सार्थवाहस्य
कीदृशोऽभून्मतिभ्रमः । ततः स मोचितः पार्श्वे स्थापितश्च तयात्मनः ॥ ४३१ ॥

नन्दयन्त्यन्यदा दध्यौ स्तुतिशेषो ध्रुवं प्रियः । इदमाश्वासनं मात्रं वसुमित्रवचः पुनः ॥ ४३२ ॥ कृतार्था च बभूवाहं पुत्र-
लाभस्य दर्शनात् । तदापुमाद्रिशिरसाद्विमुञ्चामि स्वमङ्गमा ॥ ४३३ ॥

निशि निर्गत्य गोष्ठिप्रस्थी दिशमजानती । पर्यटदटवीमध्ये विषण्णमुखपङ्कजा ॥ ४३४ ॥ यान्ति विश्रम्य विश्रम्य प्रिय
मोहविमोहिता । भिल्लरूपेन पापेन पार्श्वं द्रुतं वेष्टिता ॥ ४३५ ॥

तत्राति नन्दयन्त्येषा हरिणेनस्य शुरिका । धन्यारावां गतः प्राणाऽप्रका चैकाकिनी वने ॥४३६॥ तदियं सुज्यते दध्यौ तयोरेको
निरम्पशुम् । यथा भवेन्ममैवेयं प्यात्वेति प्राहरत्परम् ॥ ४३७ ॥ परेण म्रियमाणेन स हृदया निहतस्ततः । उभावपि मृतावंक-

काराविव विभोः पुरः ॥ ४३८॥ भयत्रस्ताऽथ सा यान्ती शैलारोहाय हस्तिना। प्राप्ता प्राह विधेर्हन्तं दुःखानां मम सिन्धुर ! ॥४३९॥ तदासन्नः समेतोऽयं तामादातुमशक्नुवन् । दत्त्वा प्रदक्षिणास्तिस्रो नत्वा स्वर्गेऽभवद्गतः ॥ ४४० ॥ सा दध्यौ मे विधिर्नाभो बहुदुःखं प्रदास्यति । अथ क्षुत्तृट्श्रमाक्रान्ता शैलमारोढुमुद्यता ॥ ४४१ ॥

इतः समुद्रदत्तोऽप्यरण्ये तत्र परिभ्रमन् । पदप्रतिकृतिं प्रेक्ष्य दध्यौ किमिदमद्भुतम् ॥४४२॥ पदपद्धतिरेषा यत्सरेखा मत्प्रियामिव । यान्तामाख्याति किमिदं कथं साऽत्र समागमत् ॥ ४४३ ॥ हा दैव ! भवता दुःखं किं ममैव कृते धृतम् । यद्दर्शयति हा दुःखं ! दुःखोपरि सुदुस्सहम् ॥४४४॥ वार्द्धियात्रा यानभङ्गो धनानां विगमस्ततः । समुद्रतरणं मित्रविरहश्च सुदुस्सहः ॥ ४४५ ॥ कान्तारे पतनं तत्र प्रियाया पदपद्धतिः । तदिदं दुःखमेकैकं यच्छोषयति सागरम् ॥ ४४६ ॥ तथापि दुस्त्यजाः प्राणा यत्कृते विधृता मया । सापि दूरीकृता तां मे विना शून्या दिशोऽखिलाः ॥ ४४७ ॥ तत्प्रेक्षे पदधोरण्याः पर्यन्तमिति सोऽचलत् । शिवाऽरौत्सम्मुखार्कान्धो वामे च मधुरं पिकः ॥ ४४८ ॥ स दध्यौ शकुनः ख्याति विप्रियं प्राक् ततः प्रियम् । भीतः प्रमुदितो गच्छन् भिल्लाभ्यां वीक्ष्य भाषितः ॥ ४४९ ॥ रे धृष्ट ! कथय क्वास्ति कनकं गोपितं त्वया । स प्राह नास्ति मे किञ्चिदेकः प्राहैष बध्यताम् ॥ ४५० ॥ बुद्धोऽथ प्राह स व्यर्थं कदर्थयत मां कथम् । तावूचतुरयं धृष्टो नाख्याता बन्धनं विना ॥ ४५१ ॥ नीत्वैकान्ते ततः क्वापि बध्यतेऽथ तरोस्तले । तं नियन्त्र्य गतौ नद्यां पयः पातुं पुलिन्द्रकौ ॥ ४५२ ॥ अपरः शबरस्तत्रागतः स करुणापरः । तद्बन्धानच्छिनत्प्रोक्तः समुद्रेण च सादरम् ॥४५३॥ महोपकारी त्वं मेऽसि महाभाग ! ततोऽधुना । किं कुर्वे निर्धनोऽहं ते तद्भवेरतिथिर्मम ॥ ४५४ ॥ नाम्ना समुद्रदत्तस्य तामलिप्तीनिवासिनः । इत्युक्त्वा स्वं पुनर्जातं मन्यमानः पलायत ॥ ४५५ ॥ पुनः

ममेत्य स स्थानं मँक्षु्मः पदपद्धतौ। तन्नेत्रबिन्दुभिः सिक्तां भुवं पश्यन् पदे पदे
युगं मिथः। युक्ता मृतं वीक्ष्य दध्यौ प्रियाऽनर्थोऽत्र नाऽभवत् ॥ ४५६ ॥ प्रियास्थानेषु विश्रम्य व्रजन् भिल्ल-
दश्रेणि वीक्ष्य दध्यौ पुनः समीः ॥ ४५७ ॥ कुशलं कथयत्यस्या निर्यान्ती पदपद्धतिः। व्रजन्निभप-
गतः ॥४५८॥ नष्टेऽश्मसु पदे वीक्ष्य त्रस्तं तत्पदकण्डकम्। मम प्राणप्रिया नोपहृता स्याद्वनहस्तिना। पदपङ्क्तिं पुनर्वीक्ष्य यावदद्रितलं
पदमौ शब्दः प्रियस सदृशो ह्यसौ। ततो व्रजन् व्यधाच्छब्दं नन्दयन्ति! प्रिये! प्रिये! ॥४६०॥ श्रुत्वाऽन्या-
माङ्कुरादयः। वहुप्रपञ्चो वा जीवलोकः क्वात्र मम प्रियः ॥ ४६१ ॥ पुनः शब्दश्रुतौ तस्याः कम्परो-
तां वीक्ष्य हृष्टो दध्यौ करोमि किम् ॥ ४६३ ॥ वामनेत्राधरस्फूर्त्यादयो भावाश्च जज्ञिरे ॥ ४६२ ॥ प्रियमश्रद्दधाना सा सानुमेकमथाऽऽप च। परो दूरेऽपि
युग्मम् ॥ ४६४ ॥ मया न प्रापि सुचिरमधुना विरहो मम। तस्याः सोऽन्तरितस्तस्थौ बद्धा परिकरं परा। उवाच सिन्धुदत्त! त्वन्मुखालोकनजं
दध्यौ दुष्टशीलेयं सिन्धुदत्ताय ताम्यति। त्वं पर्वशर्वरीचन्द्रतुल्यास्य! भविता कथम् ॥४६५॥ (युग्मम्) स
परम्। हतोऽभूनं यधुदधिनन्येमश्वरैरपि ॥ ४६७ ॥ तेनाऽस्मा चलिता तस्माद्भ्रष्टाऽरण्ये पपात च ॥ ४६६ ॥ धिक् स्त्रीजनस्वभावं यच्चंचलं तदहं
गम् ॥४६८॥ ततोऽहं त्वांद्विषे! नान्यत्प्रार्थये पततो मम। इदं तु दुःसहतमं यदिष्टं मानुषं निजम्। अत्यन्तमनुरक्तं च दृश्यते परहस्त-
वीक्ष्ये तावत्प्रतीक्ष्यताम्। हा पुत्र! सिन्धुदत्ताऽदां तदाहं निजजीवितम्। पर्वतात् कुरु साहाय्यं प्रार्थनाऽस्ति प्रतिक्षणम् ॥४६९॥ यावत्पर्यन्तमेतस्या
तु मे जीवलोको मृत्युरुपस्थितः ॥ ४७१ ॥ ॥४७०॥ समं समुद्रदत्तेन पित्रा नन्द चिरं ततः। इयानेव
मम् ॥ ४७२ ॥ पितुः समुद्रदत्तस्य मिलितस्य विधेर्वशात्। एक एवानुतापो मे वसुमित्रकरे न यत्। अर्पितं भूर्जलिखितं विशाखा पुत्रजन्म-
तत्कथं प्रत्ययो भावी यदेष मम नन्दनः ॥ ४७३ ॥ चिन्त्यया किं

तया चाथ वेत्ति निष्करुणो यतः । तन्नक्षत्रं तदाकर्ण्य सुधया सोऽभ्यषिच्यत ॥ ४७४ ॥ दध्यौ चेयं सुचरित्राऽनया शीलप्रभा-
वतः । जीवितोऽहं ममाख्यातं कुशलं पुत्रमित्रयोः ॥ ४७५ ॥ मम प्रस्थानदिवसे यदभूतां पुनर्वसू । विशाखा दशमं तस्मात्तदिदं
ज्योतिषोचितम् ॥ ४७६ ॥ सा प्राहाथ वनदेव्यः शीलस्य विमलस्य चेत् । फलमस्ति ततो भर्ता समुद्रोऽस्तु भवे भवे ॥ ४७७ ॥
इत्युक्त्वा यावदपरस्तां धर्तुमभिधावति । तावज्झम्पामदादेषा । सहसा सोऽपि तामनु ॥ ४७८ ॥

अथ तौ शीलमाहात्म्याद्वनदेवतया कृते । अशोकाधःस्थपल्यङ्के स्वं निषण्णमपश्यताम् ॥ ४७९ ॥ नन्दयन्ती पतिं प्रेक्ष्य रोमा-
ञ्चकवचाञ्चिता । त्रुट्यत्कञ्चुकसन्धिश्च प्रफुल्लमुखपङ्कजा ॥ ४८० ॥ विलग्य प्रेयसः कण्ठे तथा तारं रुरोद सा । हृदयं गद्गदं तस्य
यथा स्नेहादजायत ॥ ४८१ ॥ सा तेनाश्वासिता वाक्यैः सुधारससहोदरैः । गाढमालिङ्गिता भामा प्रेमपूरितचेतसा ॥४८२॥ तयोः
सुखं दृढं जातं सम्परीरम्भसम्भवम् । तदभूद्विस्मृतं येन प्राच्यं दुःखमशेषकम् ॥४८३॥ पृष्टयाऽथ तया सर्वो वृत्तान्तः स्वो निवेदितः ।
स प्राह दैवे विमुखे सर्वं विघटते प्रिये ! ॥४८४॥ अनुकूले तु तन्नास्ति यन्न सङ्घटते नृणाम् । प्रस्तावेऽत्र कथं नामान्यथा स्यात्स-
ङ्गमस्त्वया ॥ ४८५ ॥ प्रियापृष्टेन तेनापि स्ववृत्तान्तो निवेदितः । निहितं च प्रियांह्रौ तत्कण्डकं पतितं तदा ॥ ४८६ ॥ अथानीयं
जलं धौतमुखी सा पायिता जलम् । तां कृत्वा च पुरोऽचालीत् स मञ्जुलवनं प्रति ॥ ४८७ ॥ इतः सागरदत्तोऽपि पृथिव्यन्तः
परिभ्रमन् । निष्कलङ्कवधूनिर्वासनान्निन्दन् स्वजीवितम् ॥४८८॥ तस्याभूत्सम्मुखस्य पदयोस्तनुजोऽपतत् । सस्नुषस्तेन विज्ञायोपगूढो
गाढमादरात् ॥ ४८९ ॥ वीक्षिता च स्नुषा साश्रुचक्षुषा विस्मयोन्मुदा । पृष्टं समुद्रदत्तेन किं वस्तातेदृशी दशा ॥ ४९० ॥ पिता
प्राहाऽविवेकद्रोरनुभूतमिदं फलम् । यत्कुलीना सुशीला च विनीता मृदुभाषिणी ॥४९१॥ कुलस्य वृद्धिहेतुश्च जीवितालम्बनं तव ।

निर्दोषापि मयाऽरण्ये त्याजिता मूढचेतसा (युग्मम्) ॥ ४९२ ॥ तन्न तेऽहं पिता किन्तु वैरी प्राह ततः सुतः । तात! दोषो न वः किन्तु पूर्वोपार्जितकर्मणाम् ॥४९३॥ तन्मा ताम्यत डिम्भेषु निजकेषु प्रसीदत । सागरोऽचिन्तयदहो सुतस्य सुविनीतता ॥४९४॥

इतः सेनाधिपो नन्दयन्त्याः शुद्धिमनाशुनन् । वसुमित्रनिष्करुणसुतोऽभ्राम्यद्वनान्तरे ॥ ४९५ ॥ अपृच्छयच्च भृत्यैः सोर्जनं प्रतिजनं शुचा । दृष्टा स्त्री कापि शबरः प्राह दृष्टः पुमान्मया ॥ ४९६ ॥ यद्वत्तस्य मया वन्याच्छिन्नाः करुणया स्यात् । तेनोक्तश्च महाभाग! त्वं ममात्युपकारकः ॥ ४९७ ॥ तन्मे समुद्रदत्तस्य वामलिप्यतिथिर्भवेः । वसुमित्रोऽप्यददहो अहो विमुखता विधेः ॥ ४९८ ॥ तस्य शुद्धिरभूदार्ये! नन्दयन्त्या सुदुर्लभा । कुटुम्बं भूते चलितत् प्रक्षिप्तं पदय वेधसा ॥ ४९९ ॥ चमूपस्तु पुरो गच्छन्नागच्छन्मातुराश्रयम् । निरीक्ष्य नन्दयन्तीं चोपलक्ष्य मुदितोऽभवत् ॥ ५०० ॥ समुद्रसागरं ज्ञात्वा प्रतिपत्तिः कृतोचिता । गर्भाणि साधुनेत्राणि सञ्जातानि तदा मुदा ॥ ५०१ ॥ तानि नीतानि सेनान्या समुदा स्थानकं निजम् । नत्वारं सागरं पुत्रनिभं वीक्ष्य मुदाऽवदत् ॥ ५०२ ॥ वत्स! त्वं मम जीर्णद्रोरेकधारस्य पल्लवः । अभूरद्य कृतार्थं मे जन्मजीवितलोचनम् ॥ ५०३ ॥ पुण्यैः प्रबुद्धमेवावेत्रमो मे समुद्रतः । अद्य श्रीर्यत्स्तुषा दृष्टा सवत्सा कामधेनुवत् ॥५०४॥ उपलाल्य चिरं पुत्रापार्पयत्तनोरयम् । स्पर्शे रोमाश्चितोऽपश्यन्निर्निमेषविलोचनः ॥ ५०५ ॥ परानन्दजुषां तेषामतनोत्पृतनापतिः । भोज्यभूषणवस्त्राद्यैरुपचारमुदारधीः ॥ ५०६ ॥ सागरः प्राह तनयं वत्सायं ते चमूपतिः । पिता बन्धुः परं मित्रं येनैषा जीविता स्नुषा ॥५०७॥ तद्दूरतोऽस्तु विषादि प्राणा अप्यस्य नो वशाः । सुतः प्राहोपकारोऽस्य वचनानामगोचरः ॥५०८॥ चिन्तेयं मे पुनः प्रत्युपकर्तुं यस्य शक्यते । जीवितेनापि न कथं करिष्ये तस्य निष्क्रयम् ॥५०९॥ परः प्राह परगुणलेकहृतमानसाः । अलं मां सुप्रियैर्वाक्यैरतिमात्रं निपीडि-

तम् ॥५१०॥ अहो वियुज्य दैवेन कुटुम्बमखिलं पुनः । सुसन्धिघटितं दृश्यमिन्द्रजालमिदं महत् ॥५११॥ स्थित्वा कत्यप्यहान्ये-तान्यत्यन्तधृतसम्मदम् । तामलिप्त्यां ययुः सर्वे स्वजनेऽजनि सम्मदः ॥५१२॥ प्राप मध्येजनं नन्दयन्ती कीर्तिमनुत्तराम् । आराद्यते देवतेव च स्वजनेन सा ॥५१३॥ शङ्खदत्तवणिक्पुत्रस्वामिकं यानमागतम् सहस्रगुणसञ्जातं। मूलवित्तं प्रमोदकृत् ॥५१४॥

इति तेषां सहर्षाणां गते काले कियत्यपि। पित्रोः प्रमीतयोः स्वामी धनस्याजनि नन्दनः ॥ ५१५ ॥ उपकुर्वन् स लोकस्य प्रीतिं प्रापदकृत्रिमाम् । सह सुश्राद्धसार्थेशजिनदत्तेन निर्मलाम् ॥५१६॥ समुद्रदत्तं सोऽन्यैपीन्नन्दयन्त्या सहान्यदा। रत्नाकराख्य-सूरीणां पार्श्वेऽश्रौषीच्च देशनाम् ॥ ५१७ ॥ समुद्रदत्तः सम्यक्त्वं नन्दयन्त्या सहाऽऽदधे । धन्यंमन्यौ निधत्तस्तौ साधुसाधर्मिके धनम् ॥ ५१८ ॥ बन्धच्छेदेन सन्तुष्टवन्धुरो वन्धुरञ्जकः । तमेतं शबरं वन्धुं विदधे धनदोपमम् ॥५१९॥ सप्तक्षेत्र्यां धनं न्यस्य सिन्धुदत्तं गृहाधिपम् । कृत्वा च सप्रियोऽप्यादाद्रत्नाकरगुरोर्व्रतम् ॥ ५२० ॥ क्रमात्समुद्रदत्तर्षिर्बभूव श्रुतकेवली । एकादशाङ्गभृ-दभूत्साध्वी सा नन्दयन्त्यपि ॥ ५२१ ॥ प्रपाल्य तौ व्रतं मासानशनं संविधाय च। अभूतामच्युतश्रीकाच्युते परमायुषौ ॥५२२॥ तच्च्युतौ यास्यतः सिद्धिमिति मत्वा महाद्भुतम् । प्रभावं शीलरत्नस्य तत्र यत्यं सदा बुधैः ॥५२३॥ शीलेन विश्वामपि नन्दयन्त्या बुधैश्चरित्रं शुचि नन्दयन्त्याः । विबुध्य कामेषु निमीलनीयं सदैव शीलं परिशीलनीयम् ॥ ५२४ ॥ इह शीलमहिमकरकरनिकर-सहोदरं सरङ्गायाम् । संसदि शशंस जिनपतिरवतंससमं समवसरणे ॥ ५२५ ॥

इति श्रीजिनेश्वरसूरिसन्ताने श्रीरत्नप्रभसूरिशिष्यश्रीमानतुङ्गसूरिविरचिते श्रीश्रेयांसनाथचरित्रे महाकाव्ये भवत्रयनिबद्धे नन्दयन्तीशीलवर्णनो नाम दशमः सर्गः समाप्तः ॥

एकादशः सर्गः ।

अथोदितेऽपि श्रीनन्दी तपस्तेजो यदि स्फुरेत् । तपसः पुरतो नश्येत्तथा न स्यात्पुनर्यथा ॥ १ ॥ नास्ति किञ्चित्तपस्तुल्यं
मयेपूर्वप्रभावत । आमर्शौषधिप्रमुखा लब्धयो दुर्लभा अपि ॥ २ ॥ मानयन्ति सुखात्तुष्टाः सुरासुरनरेश्वराः । यत्प्रसिद्धि तपो-
वृक्षस्यागम कुसुमोपमम् ॥ ३ ॥ किं तस्य तपसो ब्रूमः प्रभाव यस्य तेजसा । निकाचितान्यपि चिरं स्फुटं कर्माणि भस्मसात् ॥ ४ ॥
यो गुणोऽनुगुणो नाम तपसोऽस्यानुगण्यते । जिनैरपि यदाचीर्णं क्षयायाजीर्णकर्मणाम् ॥ ५ ॥ दृष्टान्तोऽत्र तपःकर्मतुष्टया शास-
नश्रिया । देव्या निहितमाहात्म्या कमला विमलाशया ॥ ६ ॥

यस्यास्ति नगरी नागपुरीसौभाग्यशोभिनी । सतीवच परनरपरिष्वङ्गविवर्जिता ॥ ७ ॥ तां पालयति भूपालोऽभिधयापि
महापद्मः । श्रियया च द्विषद्वर्गतूलकूलमहानलः ॥ ८ ॥ समस्ति तस्य चान्यार्थाख्यः पुत्रः कमलाकरः । त्यागी भोगी च शूरश्च
राज्यधुर्धारणक्षमः ॥ ९ ॥ नृपस्य तस्य मन्त्र्यस्ति मतिसारो महामतिः । तत्र न्यस्तभरो भूमिपतिर्ललति लीलया ॥ १० ॥ अन्यदा
पुष्पगन्धमालामागात्त्रये । वसन्तर्तुः कर्तुमिव साहाय्यं पुष्पधन्विनः ॥ ११ ॥ नृपोऽगच्छदथोद्यानं पुरोदन्तःपुरान्वितः ।
तत्र क्रीडन् कुतोऽप्येत्य दष्टो दुष्टेन भोगिना ॥ १२ ॥ पश्यन्तीनां पुरोऽन्यासां धरणिं धरणीधरः । आश्लिष्टलग्नभूपासामितीया-
क्रन्दितं महत् ॥ १३ ॥ नरेन्द्रस्य प्रतीकारे नरेन्द्रैर्बहुभिर्युतो । अमात्यश्च कुमारश्चागच्छतां त्वरितक्रमम् ॥ १४ ॥ तदेवं
दन्दशूकस्य दीक्ष्योर्मुग्धरादिनः । नानिलेनेन दंशेन म्रियतां तथोचितम् ॥ १५ ॥ अलग्नाम्य विधायोर्ध्वदेहिकं कमलाकरः ।
अलशोकः स्थितो लोकनायकम्भेन मन्त्रिणा ॥ १६ ॥

कियत्यपि गते काले स सेवकजनं निजम् । पदेषु न्यस्तकमलगुप्ताख्यं मन्त्रिणं व्यधात् ॥ १७ ॥ स युवा ललनालोलो यां यां पश्यति कन्यकाम् । रम्यामुद्यौवनां तां तां मार्गयित्वोपयच्छते ॥ १८ ॥ तेनान्यदा गवाक्षस्था स्फारशृङ्गारधारिणी । सर्वाङ्गसुन्दरा बिम्बाधरा चारुविलोचना ॥ १९ ॥ ददती निजरूपेणामरनारीविरूपताम् । तनया मतिसारस्य कमलाख्या निरैक्ष्यत ॥ २० ॥ (युग्मम्) सानुरागोऽनुगानेपोऽपृच्छत्केयं गवाक्षगा । कमलाऽसाविति प्रोक्ते तैः स प्राह सविस्मयः॥ २१ ॥ किं मन्त्रिमन्दिरे लक्ष्मीः सशरीरा वसत्यसौ । स्मित्वाहुस्ते न हि स्वामिन्! लक्ष्मीः पुत्री तु मन्त्रिणः ॥ २२ ॥ स ज्ञात्वेति तदायत्तचित्तो गत्वा गृहं निजम् । तां याचितुं नरान् प्रैषीत्तैर्गत्वा मन्त्रययाच्यत ॥ २३ ॥ पृच्छिता मन्त्रिणा पुत्री प्राह तात! हितोऽसि चेत् । तन्मिथ्यात्वे सपत्नीषु चाहं क्षेप्या न हि त्वया ॥ २४ ॥ अयं मिथ्यात्वमूढश्च बहूढश्चेति तद्वचः । श्रुत्वा मन्त्री तदाकूतं चरकाणां पुरोऽवदत् ॥ २५ ॥ ते तेन कृतसन्माना विलक्षवदना ययुः । आख्यंश्च न प्रदत्ते स स्वकन्यां भवतामिति ॥ २६ ॥ स वज्राहतवन्मूर्छां प्राप्तः शीतोपचारतः । हृतमूर्च्छः सनिश्वासमवदत्तत्केन हेतुना ॥ २७ ॥ ते प्राहुर्भिन्नधर्मोऽसि बहुप्रियतमोऽसि च । निषिद्धोऽपि कतिपयैः दिनैः पुनरयाचत ॥ २८ ॥ निषिद्धो मतिसारेण स दूतीं कमलान्तिके । प्रेष्याऽवोचन्मदीयोऽयं सर्वोऽपि विभवस्तव ॥ २९ ॥ अहमस्मि तवादेशकरः किङ्करवत्सदा । अङ्गीकुरुष्व तत्पाणिग्रहं सद्यः प्रसद्य मे ॥ ३० ॥ कमला प्राह ह्रियते त्वद्भक्तैरपरो जनः । नत्वहं सेति गत्वाख्यत्क्रुद्धोऽध्यायदथापरः ॥ ३१ ॥

मतिसारो मयाऽनर्थे पात्यस्तस्य सुता तथा । सापत्न्ये भिन्नधर्म्मे च पात्या रूपेण गर्विता ॥ ३२ ॥ विचिन्त्येत्यपहर्तुं तं स भूपालं व्यजिज्ञपत् । यद्देव! त्वदरेः पार्श्वे रणकेतोर्निजान्नरान् ॥३३॥ सम्प्रेष्य मतिसारेण ख्यापितं साम्प्रतं यदि । सभेपि तत्ते सप्ता-

क्रमट गजवृषानये ॥ ३४ ॥ ततस्तेन बहुद्रव्यं दत्तमस्य तदागमः । नोपेक्षां युज्यते कर्तुमथ क्रुद्धो नृपोऽवदत् ॥ ३५ ॥ (विशेषकम्) धन सर्वं ममादाय तक प्रक्षिप चारके । शीघ्रं तथा कृते तेन जज्ञे हाहारवो महान् ॥ ३६ ॥ तस्य दुश्चेष्टितं जानन्नपि मन्त्री तु धर्मधीः । दध्यौ लक्ष्मीश्चला कस्य याति कालः सदा सुखम् ॥ ३७ ॥ तस्यैवं मतिसारस्य धर्म्मसारस्य तस्थुषः । दिनैः कतिपयैरेत्य प्रोचे नूतनमन्त्रिणा ॥ ३८ ॥ प्रतिकूले मयि प्राप्ता दशेयं भवता ततः । इत्यत्यपि गते काले वाक्यं कुरु परोऽवदत् ॥ ३९ ॥ धुन्वन्नपि यद्वाति किं मेरुः कम्पते तिलैः । स विलक्षो जगाम स्वं सदनं तदनन्तरम् ॥ ४० ॥

रत्नध रत्नमालाख्यमात्रा प्रोक्तो नृपः सुत ! । न त्वया रुचिरं चक्रे मतिसारापमाननात् ॥ ४१ ॥ यदेकान्तहितस्तात-तुल्योऽयं ते समागतः । तन्मोचयैन मा स्वर्णे कुरुष्व खलिनीवचः ॥ ४२ ॥ यतस्तस्य भयात् सीमां न विपक्षो विलङ्घते । किं बहुनेन मोक्तव्यं मयाद्यास्मिन्विमोचिते ॥ ४३ ॥ स मोचितो नृपेणागाद्गृहे नास्ति तु भोजनम् । दुःस्थं परिजनं पश्यन् सदा-ऽप्यनशनोऽस्मि तु ॥ ४४ ॥

अथ कमलगुप्तेन निशि निश्रम्य भूपतिः । रत्नमुत्पद्यते यत्तदेवस्यैव भवेदिति ॥ ४५ ॥ यदस्ति मतिसारस्य कमलानामतः सुता । हंसनसामुद्रतायां मत्वं स्यात्कमलाकरः ॥ ४६ ॥ स तथाऽवर्णयत्तस्या रूपं भूपस्य पश्यतः । उत्कण्ठया त्रियामापि शत-यामाऽभवत्तदा ॥ ४७ ॥ प्रातर्नृपः यदा तेन राजपाट्यां विनिर्गतः । पठतीं पुस्तिकाहस्तां तामैक्षत गवाक्षगाम् ॥४८॥ तां वीक्ष्य नृपतिर्दध्यावहो सौन्दर्यमद्भुतम् । मन्ये प्रासादसौ कामराजधानीव जङ्गमा ॥४९॥ नाप्राप्तानुजतां हन्त शेषि तन्मुखचन्द्रयोः । स्वरेण गिरिशः किं नु फलदृष्टो यतं यशः ॥५०॥ इति तद्गतचित्तोऽयं विदधे राजपाटिकाम् । अन्तःशोषं समेतश्च व्यसृजत्सेवकव्रजम्

॥ ५१ ॥ कमला तु निजं रूपं पितुर्धनविनाशकम् । विदन्ती विदधत्युच्चैस्तपो दीक्षां जिघृक्षति ॥ ५२ ॥ पिता तु वल्लभत्वेन व्रते तां नानुमन्यते । निर्धनत्वादिमामुद्वाहयितुं न क्षमो भवेत् ॥ ५३ ॥

अथाकस्मान्नृपो मुद्रामादाय नवमन्त्रितः । मतिसारगृहे प्रैषीच्छय्यापालकहस्तगाम् ॥५४॥ मतिसारोऽवदत्कार्यं नानया मे नृपो निजे । पार्श्वे दधातु स्वस्यैव प्रासादं स च जग्मिवान् ॥५५॥ आख्यचाथ नृपः स्वेन कमलादर्शनोत्सुकः । अनुनेतुं मतिसारमागादल्पानुगैर्युतः ॥५६॥ प्रतिपत्तिस्तदुचिता मतिसारेण निर्मिता । अनुनीय नृपेणैष मुद्रां तु परिधापितः ॥५७॥ ऊचे च राज्यकार्याणि प्राग्वत्त्वं कुरु मन्त्रिप ! । महाबलस्य तातस्य स्थाने त्वमसि मे यतः ॥५८॥ उपरोधवशाद्राजवचोऽमन्यत मन्त्रिणा । नृपस्तु कमलालावण्याम्भः पिबति लोचनैः ॥५९॥ पश्यता च नृपेणैक्षि भारतीमूर्तिरद्भुता । पृष्टं च किमिदं प्राह मन्त्री स्वामिन् ! सरस्वती ॥ ६० ॥ पश्यता कमलां राज्ञोत्तार्य हारं स्वकण्ठतः । साकूतमूचे हारेण ब्राह्मीपादौ प्रपूजय ॥६१॥ ततः शेपेति हारोऽयं कमलायाः समर्प्यताम् । अस्ति वास्याः सरस्वत्याः किमप्याभरणं न वा ॥ ६२ ॥ स प्राहाभूत्परं सर्वं देव ! राजकुले गतम् । नृपः प्राह निजं द्रव्यं सर्वं संसार्य गृह्यताम् ॥६३॥ ययौ सौधं नृपस्तस्य साधुवादो जनेऽभवत् । मन्त्रिणः स्वपदप्राप्त्या जनः प्रमुदितोऽखिलः ॥६४॥ जनन्योक्ते च भूपेनाकस्मान्मुद्रा ततोऽर्पिता ॥ परे प्राहुर्मतिर्यस्मान्मतिसारस्य सुन्दरा ॥ ६५ ॥

दध्यौ कमलगुप्तस्तु दह्यमानः स्वदुष्कृतैः । न स्थिरा जायते लक्ष्मीः परव्यसनकारिणाम् ॥६६॥ ध्यात्वेति मन्त्रिणं गत्वा शर्वान्यास्थत्पदोः पुरः । ऊचे च नाथ ! यथोग्यं तन्मे कुरु कृतागसः ॥ ६७ ॥ पृष्टे हस्तं ददौ तस्य मन्त्री प्रणतवत्सलः । नृपस्तु कमलाध्यानपरो रङ्क इवाभवत् ॥ ६८ ॥ सन्मान्य मन्त्रिणं चोच्चैः कमलायाचनं व्यधात् । स प्राह युक्तमेवेदं देवायत्तं च यद्यपि

॥६९॥ मयापि परिभाव्याह तस्याभ्यय नृपोऽवदत् । किं चिन्त्यं तत्र स्त्रीरत्नं मान्यस्तावच्छमेव तत् ॥७०॥ स प्राह देव ! मे पुत्र्या
मयादानमनोरथः । नृपोऽवदत्कथ तस्मा महते न कथ्यथाम् ॥ ७१ ॥ अन्यच्च कथमादाता सा ममारुचितं व्रतम् । दध्यौ मन्त्री
गुणाढ्यो मत्रार्थापायसत्नृपः ॥ ७२ ॥ मन्त्री गत्वाय तत्पुत्र्याः कथयामास सावदत् । मिथ्यादृशा न मे राज्ञा कार्यं राज्यं न
दुर्लभम् ॥ ७३ ॥ दुर्लभो जिनधर्मस्तु न हार्योऽयं कुसङ्गतः । भयाद्दित्सति चेन्मां तद्वाच्यं प्रागपि वत्पुरः ॥७४॥ कृतपाणिग्रहा-
पेशा जिनधर्मं विधास्यति । पठिष्यत्यार्यिकापार्श्वे शुद्धान्तान्तःस्थितापि च ॥ ७५ ॥ यदिदं मन्यते राजा ततस्तातो ददातु माम् ।
नयं गृष्याकमादेनान्मापव्यं तु मया मरम् ॥७६॥ मत्र्याह वत्से ! त्वां मुक्त्वा कः परो वेत्त्यदस्ततः । विवेकेनामुना सत्यं त्वं
दिया नन्दनासि मे ॥ ७७ ॥ मन्त्रिणाय महर्षेणाख्यातेऽभिप्राह भूपतिः । हस्त्यश्वराण्यहं मन्त्रिन्नर्थे दापयामि वः ॥७८॥ गत्वा
दृष्ट मयूरीं तु मा कार्षीद्धृतीपरम् । धर्मं निजं तु तं कर्तुं मम दास्यति वा न वा ॥ ७९ ॥ इत्थं नृपस्य प्रणयालापांस्तातनिवे-
दितान् । आकर्ण्य सानुरागाभूत्कमला कमलाकरे ॥ ८० ॥ मथितस्य समुद्रस्य पुराय कमलासुताम् । लग्ने वलिग्रहे युक्तमुद्वहेद्वर-
दीपाः ॥ ८१ ॥ अन्यन्नं यत्समा मम जने निजगुणैश्च सा । राज्यश्रियं तयैव स्वां मन्यते सफलां नृपः ॥ ८२ ॥ अपरासां तु
दर्शनो शर्मापि न पृच्छति । कमला पङ्क्ति किं देव ! सम्भावयसि नापराः ॥ ८३ ॥ यथा यथा वदत्येवं राजश्चित्तं तथा तथा ।
हिपतेऽस्या गुणैर्गाढं निर्मग्नस्य गुणैः ॥ ८४ ॥ प्रयाति च नृपो जैनसदने तदनुरागतः । कमलाकारिपूजाविलोकनकृते कृती
॥ ८५ ॥ कमलायामनुपमं प्रसादं वीक्ष्य भूपतेः । दृश्यन्तीर्ष्यां विषादं या परा नृपतियोषितः ॥ ८६ ॥ ताः सकोपाः परिव्राजि-
कोरसेन पुरतम् । कमलाशपिदस्यार्थं दत्त्वा तूर्णं न्यवेशयन् ॥ ८७ ॥ ततो राजा रतिं कापि नाप्नोति स्मरते वपुः । क्षुधि-

द्रेण गुणः कोऽपि चिकित्सायां न जायते ॥ ८८ ॥ कमलाप्रमुखो लोकः सर्वोऽप्यजनि दुःखितः । देव्यः पराः पुनः पापा
बाढमानन्दिता हृदि ॥ ८९ ॥ महादेव्यान्यदा भूपो विज्ञप्तो विजयाख्यया । देवार्यिकोपदेशेन विन्यस्तो दर्भपुत्रकः ॥ ९० ॥
पुनः पुनस्तदाकर्ण्य तूलिकोत्कीलने नृपः । पुत्रकं प्रेक्ष्य पप्रच्छ कमलां किमिदं ननु ॥ ९१ ॥ शपेहं देवपादानामिदं दुर्जनचेष्टि-
तम् । इत्युक्तोऽर्थितया राजा न विरूपं वचोऽवदत् ॥ ९२ ॥ निषिद्धाश्चार्यिका बाढं विरक्तो जिनशासने । कमलायां न विश्वासं
धत्ते गहनवृत्ततः ॥ ९३ ॥ अपस्नेहं कमलायां विज्ञाय नृपमन्यदा । विजया विजने प्राह किमप्यस्त्यपरं पुनः ॥ ९४ ॥ परं
गिरा यदाख्यातुं देवस्याग्रे न शक्यते । यन्नाधमकुलेऽपि स्यात्तत्करोति तव प्रिया ॥ ९५ ॥ न श्रद्धाति देवोऽपि यदस्याम-
नुरागवान् । तथापि हि निजस्वामिपादान्विज्ञपयाम्यहम् ॥ ९६ ॥ योऽस्या मनोरमाख्योऽस्ति लघुभ्राता समेति सः । आलिङ्गति
चिरं कालं तमेषाऽवरजच्छलात् ॥ ९७ ॥ नृपः सप्रत्यया चेटीमादिक्षत्तन्निरीक्षणे । सा प्राहाम्बासुतसमो व्यवहारस्तयोः प्रभो !
॥ ९८ ॥ उदिता विजया राज्ञा न किञ्चिदशुभं तयोः । तयोचे सप्रपञ्चा सा प्राणेश ! सरलो भवान् ॥ ९९ ॥ ततस्तेन सशङ्केन
पुनश्चेटी नियोजिता । भ्रातागादन्यदा स्वर्णपुष्पोपायनसंयुतः ॥ १०० ॥ आसन्नानुचरी नासींदिति तस्य करेण सा । धम्मिल्लेऽ-
न्वयत् स्वर्णपुष्पजातीसुमानि च ॥ १०१ ॥ तद्वीक्ष्य चेट्या कथिते नृपो दध्यौ रहस्सदः । यथा तथापरमपि यदत्ते विजयाननः
॥ १०२ ॥ ध्यात्वेत्यन्धो रुषा तस्या धम्मिल्लमनुजन्मनः । करौ चाच्छेदयद्राजा कस्य मित्रं धराधिपः ॥ १०३ ॥ छिन्नं वीक्ष्य
स्वधम्मिल्लं श्रुत्वाऽनुजकरच्छिदम् । मूर्च्छिता सा कथमपि शैत्यतः प्राप चेतनाम् ॥ १०४ ॥
अथाश्रुमिश्रनेत्रा सा सनिःश्वासा व्यचिन्तयत् । मया प्राक् तत्कृतं पापं येन प्राप्ता विडम्बना ॥ १०५ ॥ अहं च पितृव-

न्भूनामपि दुःखप्रदायिनी । कथं जाता कुलेऽमुष्मिन् धिग्मां पापस्य मन्दिरम् ॥१०६॥ सर्वज्ञं शासनं चापि कुलं चापि मयाऽमलं कलङ्कितं ततो नास्ति शुद्धिं विनात्र जन्मनि ॥ १०७ ॥ पूजयित्वा च सर्वज्ञं ध्यात्वा शासनदेवताम् । तस्थौ स्मरन्ती सा पञ्चपरमेष्ठिनमस्क्रियाम् ॥ १०८ ॥ सप्तमेऽथोपवासेऽस्या वश्या शासनदेवता । प्रत्यक्षमवदद्वत्से ! याचस्व स्वसमीहितम् ॥ १०९ ॥ सोचे मातर्विधेहि स्वशासनस्य समुन्नतिम् । बन्धौ करौ कलङ्कस्य शुद्धिं च मम वेगतः ॥ ११० ॥ सर्वं भव्यं करिष्यामीत्युक्त्वा सागात् पराङ्मुपत् । अथ प्रातः प्रबुद्धो राट् दृग्भ्यां किञ्चिन्न पश्यति ॥ १११ ॥ अवोचच्चाधुनास्तं मे जीवलोकोऽखिलो गतः । राजलोकोऽथ मिलितः समभूच्चातिदुःखितः ॥ ११२ ॥ आहूताः परितो वैद्या गणका मन्त्रवादिनः । नौपधैर्न ग्रहार्चाभिर्न मन्त्रैश्च किमप्यभूत् ॥ ११३ ॥

अथाभवन्नभोवाणी या सुशीला तव प्रिया । मनसा वचसा कायेनास्ति विश्वहिते रता ॥११४ ॥ तस्या मज्जननीरेण धूते ते निर्मले दृशौ । मनोरमकरौ चापि भव्यौ नव्यौ भविष्यतः ॥ ११५ ॥ स्नाताथ विजया देवी धौते नेत्रे तदम्बुना । नृपः प्रत्युत पीडायां दध्यौ नास्याः सुशीलता ॥११६॥ एवं परीक्षिताः सर्वा दुःशीलत्वं च निश्चितम् । नृपो निराशचित्तोऽथ प्रधानैरिति भाषितः ॥ ११७ ॥ अद्यापि देव ! नानीतं कमलास्नानजं जलम् । नृपः प्राह स्म मौनेन तच्छीलं कलितं पुरा ॥ ११८ ॥ ते प्राहुर्देव ! मायावादीरित्थं वैरिति भाषितः । भूपः पीडार्दितः प्राह तदप्यानीयतामिति ॥ ११९ ॥ महासत्यथ सा स्नानकृते यावदुपाविशत् । तावत्केशकलापो द्रागुद्बभूव विशेषतः ॥ १२० ॥ पुष्पगन्धोदकैर्वृष्टिरभूद्दुन्दुभिरध्वनत् । तन्मज्जनजलं स्वर्णकलशेऽथ निवेशितम् ॥ १२१ ॥ द्रुठद्भिश्चामरैर्व्योम्नि स्वयं लोके च पश्यति । सविस्मयं सपत्नीषु दह्यमानासु चेर्ष्यया ॥ १२२ ॥ सज्जनेषु प्रहृष्टेषु

प्रधानप्रतिचारिका । शिरस्थकलसाऽभ्यागान्नेत्रे धौते च भूभुजा ॥ १२३ ॥ अयं तत्क्षणमद्राक्षीन्मनोरमभुजावथ । सिक्तौ तेना-
म्भसा जातावभ्युद्यत्करपल्लवौ ॥ १२४ ॥ देवतास्नानवन्नीरं ततस्तद्वन्दितं जनैः । क्षिप्तं शिरसि च प्राह देवताथ नभःस्थिता
॥ १२५ ॥ सर्वज्ञशासनं जीयात्कमला च महासती । जनश्च स्वजनश्चापि श्रुत्वेति मुमुदे हृदि ॥ १२६ ॥ सानुतापोऽथ भूमीशः
प्राह पापेन हा मया । विजयावचसा सेयमेकपत्नी कलङ्किता ॥ १२७ ॥ पराभूता च भूतानि भूतेनेव दुरात्मना । तदितः शरणं
मेऽसौ धर्म्मश्चास्या मनोमतः ॥१२८॥ ततोऽभिषिक्ता पट्टे सा कारितश्च महोत्सवः । विमला कमलायाश्च कीर्तिः सर्वत्र विस्तृता
॥ १२९ ॥ तया प्रबोधितो भूपश्चिद्रूपः शासनोन्नतिम् । विधत्ते चैत्यविम्बादि त्रिसन्ध्यं पूजयत्यपि ॥ १३० ॥ इत्थं देवी नृपश्चा-
पि कमलाकमलाकरौ । धर्मं विदधतौ जैनं क्रमात्सिद्धिमवाप्स्यतः ॥ १३१ ॥ यत्तपःपवनकम्पितपीठा जैनशासनसुरी सहसैत्य ।
निर्ममे महिमतां कमलायाः सम्प्रधार्य तपसि प्रयतध्वम् ॥१३२॥ इह विष्णुराजतनयो जिनराजः सत्तपःप्रभावभृतम् । मन्त्रीसुता-
कमलायाः कथानकं प्रकथयामास ॥ १३३ ॥

इत्याचार्यश्रीमानतुङ्गसूरिविरचिते श्रेयांसचरिते महाकाव्ये तपःप्रभाववर्णनो
नाम एकादशमः सर्गः समाप्तः ॥

द्वादशः सर्गः ।

दानशीलतपश्चात्र सर्वं भवति सार्थकम् । जन्तूनां निःस्पृहं चित्तं यदि स्फुरति भावना ॥ १ ॥ यथा फलं विना वृष्टिं बीजं सिद्धरसं विना । स्वर्णं न साधया लोहं तथा भावं विना शिवम् ॥ २ ॥ दुःसाध्यसाधनोपायो नास्ति भावं विनापरः । यस्मात्प्राप गृहस्थोऽपि भरतः केवलश्रियम् ॥ ३ ॥ ततो भावाम्भसा सर्वं भवतन्वापशान्तये । स्वात्मा धनावहेनेव ऽऽसेचनीयो विवेकिना ॥ ४ ॥

समस्ति नगरी काशी काञ्चीव क्षितियोषितः । चैत्यध्वजव्रजभ्राजी प्रक्वणत्किङ्किणीगणा ॥ ५ ॥ यस्यां जनः समुद्रोऽस्ति न पुनः प्रियनिम्नगः । फलितोऽपि समुभत्याऽऽनतो गुरुमण्डले ॥६॥ तत्रास्ति श्रावकः श्रेष्ठी धनपालोऽभिधानतः । यः सम्पूर्णाभिलाषोऽपि साभिलाषोऽर्हतां गिरि ॥ ७ ॥ यो गम्भीरश्च धीरश्च दयालुः सरलाशयः । त्यागी परोपकारी च कृतज्ञश्च विवेकवान् ॥ ८ ॥ नाम्ना धनावहस्तस्यानुजः प्राणप्रियोऽस्ति च । सदाचारो विनीतश्च जिनधर्मैकवत्सलः ॥ ९ ॥ तयोः शरीरमात्रेण भिन्नयोरेकचित्तयोः । कलत्रे स्तो धनवती धनश्रीनामतः क्रमात् ॥ १० ॥

गच्छे क्रियमाणेऽपि तयोर्व्ययादिकेऽखिले । उक्तो धनश्रियैकान्ते निजकान्तो धनावहः ॥ ११ ॥ अयि मूढ ! न जानासि स्वस्यं निजवेश्मनः । पृथङ् मिथो विनश्यथ यथेतासि तवाग्रजः ॥ १२ ॥ ददात्यानीय भार्यायाः प्रच्छन्नं भूषणादिकम् । सा ग्रन्थिं कुरुते शौर्दा दत्ते च निजबन्धुषु ॥ १३ ॥ स्वयं शाम्यति कालेन स प्राहार्यः कदापि माम् । न पश्यति मातेव वत्सला च प्रजावती ॥ १४ ॥ सास्यान्मौनेन वेलायां पुनरुक्तः स मौनतः । तस्यावप्यनया० प्रोक्तो रक्तस्त्वमनयोररिं ॥ १५ ॥ स्वयं ज्येष्ठोऽस्ति राजेव

त्वां प्रक्षिपति कर्म्मसु । भार्यास्य घटदासीवन्मां वाहयति सर्वदा ॥ १६ ॥ ग्राम्यस्य तव पादे तु वद्धा सर्वे सहाम्यहम् । न
वेद्मि योग्यं यद्धि स्यात्तव न प्रभवामि नु ॥ १७ ॥
इत्थं तयोक्तः स प्राहाग्रजं भागं प्रदेहि मे । तेनोचे किमिदं वत्स! वक्षि सर्वमिदं तव ॥ १८ ॥ न ते मम च कोऽप्यन्यो
न नौ किञ्चन विप्रियम् । यद्वास्यसि तदादास्ये त्वन्मुखप्रेक्षकोऽस्म्यहम् ॥ १९ ॥ इत्यग्रजगिराऽतिष्ठत्तयोक्तः पुनरेव सः । वेद्म्यहं
ज्येष्ठवाक्यानि त्वं न वेत्सि तु मूढधीः ॥ २० ॥ मृदु वक्ति खरं विध्यत्यसौ धूर्त्तधुरन्धरः । कुरु त्वं कर्मकारत्वं भग्ना दासत्वतस्त्वहम्
॥ २१ ॥ सा वक्ति परवन्मुक्तो मया त्वं तत्पितुर्गृहम् । यास्याम्यहं न मे कार्यं प्रासः प्रान्तो यतस्तव ॥ २२ ॥ स्थिरा भवेति तां
प्रोच्य पुनर्भागं ययाच सः । बन्धुना बोधितो दोलारूढचित्त इवाभवत् ॥ २३ ॥ भ्रातृजायान्यदा भ्रातृजायाः प्रददती मुदा ।
मुद्रिकां दर्शिता पश्य गृहमेवं विलुप्यते ॥ २४ ॥ क्रुद्धे दुर्भापके तस्मिन् धनपालो व्यचिन्तयत् । भार्यया भ्रमितो भूरि भक्तियु-
क्तोऽप्ययं हहा! ॥ २५ ॥ यावन्न महिलाप्रेमकर्म्मकार्म्मणितो भवेत् । तावदेव ध्रुवं बन्धुजनं बन्धुषु रज्यते ॥ २६ ॥ ध्यात्वेति
सहसा हित्वा सदनं सधनं जवात् । वस्त्रद्वयावृतो गेहाद्धनपालो विनिर्गतः ॥ २७ ॥
नभःस्था कुलदेव्याह त्वं धनावह! माग्रजात् । भिन्नो भव धनं यस्माद्धनपालेन पाल्यते ॥ २८ ॥ तदभावे तु भावी ते
भोजनस्यापि संशयः । तद्दैववशतस्तेनावमतं देवतावचः ॥ २९ ॥ अभूदुर्व्वीतले गुर्व्वी ततः श्लाघाग्रजन्मनः । धनश्रीर्वक्ति किं
श्लाघ्यो ग्रन्थिमादाय निर्गतः ॥ ३० ॥ कियत्यपि गते काले स्तेनवह्न्याद्युपद्रवैः । अनश्यदनुजस्य श्रीः साग्रजस्य त्ववर्द्धत
॥ ३१ ॥ बभ्रामाथ लघुभ्राता पुरतोऽप्याप न श्रियम् । अन्यदा त्वद्रिमारूढो देवतागृहमैक्षत ॥ ३२ ॥

तत्र सत्यगिरो देव्याः पुरोऽपश्यद्धनं जनम् । लङ्घनानि प्रकुर्वाणं धनारोग्यसुतेच्छया ॥ ३३ ॥ सोऽपि तस्याः पुरस्तस्थौ चतुराहारवर्जकः । धनकाङ्क्षायुतः पश्चात्प्रत्यक्षाभूच्च देवता ॥ ३४ ॥ तयोचे धनयोग्यत्वं तव नास्ति तथाप्यदः । रत्नपञ्चकमादाय महामूल्यं गृहं व्रज ॥ ३५ ॥ तत्तेजः संयुतं वीक्ष्य सतेजाः सोऽप्यजायत । अचलाच्चाचलत्तस्मादुत्कण्ठावान्प्रियां प्रति ॥ ३६ ॥ विधायोपत्यकाग्रामसम्बलं सबलं वपुः । कुर्वंस्तदन्तर्विन्यस्तपञ्चरत्नः स जग्मिवान् ॥ ३७ ॥ निशीथे सहसार्थेनागात्काञ्चीबद्धगोपुरम् । वप्रपार्श्वप्रपामध्ये सुप्तश्चेति व्यचिन्तयत् ॥ ३८ ॥ क्षेमेणाहं समेतोऽस्मि स्वपुर्यां पञ्चरत्नभृत् । विक्रीयैकं ततः कोऽपि व्यवहारः करिष्यते ॥ ३९ ॥ परेण कोटिमूल्येनाभरणं च धनश्रियः । एकेन चोन्नतं चारु चैत्यं शिवपदप्रदम् ॥ ४० ॥ द्वे नु रत्ने धरिष्यामि योग्यः कस्यापि नो यथा । कार्येषु स्वामिति ध्यायन् श्रमान्निद्रामवाप सः ॥ ४१ ॥

तदीयसम्बलग्रन्थिमथोपादाय कुक्कुरः । खालप्रणालमध्येन धनपालगृहं गतः ॥४२॥ गृहैकान्तप्रदेशे स सम्बलं तदभक्षयत् । प्रभाते सम्बलग्रन्थिमपश्यन् मूर्च्छितः परः ॥ ४३ ॥ स्वयं सचेतनो दध्यौ हहा निष्पुण्यकोऽहकम् । तीर्त्वाब्धिं गोष्पदे मग्नस्तत्सत्यं देवतावचः ॥ ४४ ॥ तत्किं करोमि याम्यद्रौ पुनर्देशान्तरेऽथवा । तावन्मिलामि प्रेयस्या ध्यात्वेति स गृहं गतः ॥ ४५ ॥ सबाष्पवदनस्तस्याः स्ववृत्तान्तं न्यवेदयत् । विषण्णा साप्युभाभ्यां तत् विज्ञातं पुण्यमात्मनः ॥ ४६ ॥

धनपालः पुनः प्रातरुत्थितः शयनात् स्मरन् । परमेष्ठिनमस्कारं गृहैकान्तेऽगमच्च सः ॥ ४७ ॥ लघुनीतिकृतेऽपश्यत्पञ्चरत्नानि तानि च । उद्द्योतयन्ति दिक्चक्रममूल्यानि स्वपुण्यवत् ॥ ४८ ॥ दध्यौ च कुलदेव्या मे दत्तान्येतैरहं ततः । कारयिष्ये महाचैत्यमिति कोशे न्यवेशयत् ॥ ४९ ॥ धनावहः पुनः स्थित्वा गुप्तोऽह्नानि कियन्त्यपि । सभार्यो निर्ययौ पुर्याः किञ्चिदादाय

सम्बलम् ॥ ५० ॥ तयोरंह्रिविहारेण गच्छतोः पथिकाः पथि । दिव्यां धनश्रिया रूपश्रियं पश्यन्ति विस्मिताः ॥ ५१ ॥ धनाव-
होऽन्यदा गच्छन्नश्रौषीत् तुमुलं निशि । चौरभीत्या ततोऽस्थातां निलीय विकटे तटे ॥५२॥ तस्करा अपि तत्रैव व्यभैजन् भूषणानि ते ।
लोभाद्धनावहः प्राह भागो देयो ममापि यत् ॥ ५३ ॥ तमसा तमपश्यन्तो यक्षो वा राक्षसोऽपि वा । वदत्येष विचिन्त्येति धनं
हित्वाथ तेऽनशन् ॥५४॥ हसित्वाथ चिरं पत्न्या सममाभरणानि सः । हृष्टोऽग्रहीदनायासाल्लब्धानीति जगाद च ॥ ५५ ॥ तद्गम्यतेऽ-
धुना पुर्यां स्वस्यामपचर्यां निशाम् । तत्रातीत्याचलत्प्रातर्द्विधा युक्तो धनश्रिया ॥ ५६ ॥ मध्याह्ने नगरस्यैकस्यारामे सारणीजलैः ।
मृष्ट्वा कराङ्घ्रिं कँकिल्लिच्छायास्थः प्राह वल्लभाम् ॥ ५७ ॥ तिष्ठ प्रिये! त्वमत्रैव यावत्कान्दविकापणात् । आनये भोजनं किञ्चित्सा
प्रोवाचैवमस्त्विति ॥ ५८ ॥

अथाभिराममारामं कुहूकुण्ठीकुहूरवम् । पश्यन्ती शृण्वती चेयमभूत्कामवशंवदा ॥५९॥ तदा च काकलीगीते सञ्जाते श्रुतिगोचरे ।
एकमुन्मथितान्यच्च केकिकेकेत्यभूद्रतम् ॥६०॥ स्तोकभूमिं गताऽपश्यत्तरुणं चारुघट्टिकम् । दोधकान् ददतं गीतान्तरे शृङ्गारसङ्गतान्
॥ ६१ ॥ अचिन्तयच्च माधुर्यं सञ्चरेऽपि स्वरेऽपि च । गुणप्रतीपं कर्मैकमस्य प्राक्कर्मयोगतः ॥६२॥ मनोहरैरपि परैः सुखैः किं यत्र
नो भवेत् । संसारासारतासारं स्फीतं गीतं तदीदृशम् ॥ ६३ ॥ श्लाघे मृगेभ्यो दुष्प्रापं गीतसातकृतेऽत्र ये । न जन्मान्तरसुप्रापम-
पेक्षन्तेऽपि जीवितम् ॥ ६४ ॥ दृष्ट्वा ससम्भ्रमं सोऽपि रोपितां देवतामिव । निश्चलाङ्गीं चिरं दध्यौ वनदेवीभ्रमं हृदि ॥ ६५ ॥
सनिमेषां पुनर्वीक्ष्य तदन्तिकमुपागतः । साभिलाषामिवोद्वीक्ष्य सोऽवगन्तिकतां गतः ॥ ६६ ॥ सत्रपेव च सा स्रस्तमुत्तरीय-
जगाद तव दर्शनात् ॥६७॥ स प्राह सुन्दर्यादेशं देहि मे किं करोम्यहम् । तयोचे तव गीतेन

रञ्जितास्मि वशंवदा ॥ ६८ ॥ पतिर्मेऽस्ति पुरस्तान्तर्भोज्यानयनहेतवे । गतोऽस्यागतिवेला चाऽनर्थस्तद्दर्शने द्वयोः ॥ ६९ ॥ तस्मिन् सति च निर्विघ्नं न सुखं भवितावयोः । मुक्त्वामुं चाधमं दूर सहाऽऽयास्याम्यहं त्वया ॥७०॥ पृष्ठलग्नः पथि यतः क्वापि त्यक्ष्याम्यहं पतिम्। ततोऽशङ्कं त्वयाऽऽगम्य चिन्ता कार्या न सम्बले ॥७१॥ भूरिभूयस्त्वदः पृष्ठस्थेनागम्यं तदावयोः । प्रातश्चलितयोश्छद्मपथेत्थं स व्यचिन्तयत् ॥ ७२ ॥ अनुशयी विनाप्यर्थमसावनर्थयुवा पुनः । विमुच्यैषा न कथमपि दुर्व्यवसायं तु का कथा ॥७३॥ ध्यात्वेति निर्विवेकोऽयं तद्वचः प्रत्यपद्यत । ऊरे च कस्य नोत्कण्ठा सलावण्ये नवे जने ॥ ७४ ॥ इति सा कृतसङ्केता साकं तेन सुशङ्किता । पत्युरेत्य तलेऽशोकस्यास्थाच्छोकपरेव सा ॥ ७५ ॥

अथागच्छन् पतिर्दूरात्तां दुर्मनसमैक्षत । चिन्ताशून्यदृशं यूथभ्रष्टां च करिणीमिव ॥७६॥ उपेत्य तत्पुरः खण्डमण्डकादि विमुच्य सः। प्राह प्रिये! प्रतिपन्नपोणमार्गेव दृश्यसे ॥७७॥ ससम्भ्रममथोत्थाय सोचे नाथ! चिरायितम्। त्वयाहं दुःखिता तेन स प्रत्यैत्सरलाशयः ॥७८॥ सा तेनाश्वासिता सोऽथ कृतदेवगुरुस्मृतिः । प्रथमं बुभुजे सा तु पश्चाद्रसमा जानती ॥ ७९ ॥ लतागृहेऽथ विश्रम्य नतार्के सोऽवदत्पुरः। गम्यते प्राह सा नाहमस्मि गन्तुं श्रमात्क्षमा ॥८०॥ प्रोचे धनावहो मुग्धेऽनर्थो ह्यर्थोऽसकौ ततः। गन्तुं युक्तं लघु स्थानेऽनिच्छत्यपि ततोऽचलत् ॥८१॥ सोऽथारघट्टिकोस्त्वागाद्दूरस्थः स्वपतेः पुनः। सा ध्यायत्युज्झनोपायं जल्पमाना न जल्पति ॥ ८२ ॥ तेनानुपाल्यमाना सा रूक्षाक्षमपि नेक्षते । तेन पृष्टा कुतोऽद्य त्वं जाता सुमुखि! दुर्मुखा ॥ ८३ ॥ सरोषं प्राह मा वेत्सि न पराचिं मनागपि । श्रान्तास्म्यहमिति वचोऽश्रमत निष्कृप! त्वया ॥ ८४ ॥ स प्राहैकमिमं मन्तुं क्षमस्व मम वल्लभे!। तदेवाहं विधास्यामि यत्त्वं वक्ष्यसि ततः परम् ॥८५॥ तयाम्बुदर्भसंच्छन्नमुखमालोक्य कूपकम्। दूरस्थनीर स प्रोक्तः दृष्ट्वा

क्रियतां रज्जुर्वटपत्रपुटौ तथा ॥ ८७ ॥ तेन रज्जु-
पायय मां पयः ॥ ८६ ॥ स प्राह कृष्यते नीरं कथमस्मात्पराऽवदत् । कुशेन क्रियतां रज्जुर्वटपत्रपुटौ तथा ॥ ८७ ॥ तेन रज्जु-
निवहेनैकेनाकृष्य जलं क्षिप । द्वितीयस्मिन् पुटे स्पष्टं यथा प्रिय ! पिबाम्यहम् ॥८८॥ स तथाकर्तुमारेभे किं न कुर्वन्ति वा नराः ।
स्त्रीगिरा पश्य देहार्धं दुर्गाया प्रददौ हरः ॥ ८९ ॥ तेनाकृष्याम्बु साऽपायि कर्षन् स्वस्य कृतेऽथ सः । पातितः पातकिन्या द्राक्
पृष्ठे प्रेर्याम्बुमध्यतः ॥ ९० ॥ भवितव्यवशादङ्गेऽलग्नघातः पपात सः । जानुदघ्ने जलेऽस्थाच्च कायोत्सर्ग इवोर्ध्वगः ॥ ९१ ॥
दध्यौ च कीदृगनयाऽपनयाम्यदयाकृतम् । दुष्कराणां कृतानां मे निर्लज्जा लज्जितापि न ॥ ९२ ॥ तस्यास्तु वचसा बन्धुः सकुटुम्बो
मयोज्झितः । कुलदेवीवचश्चावज्ञातं भ्रान्तं च सर्वतः ॥ ९३ ॥ आराद्धा देवताद्रौ च पुरी त्यक्ता सुखं पथि । पत्रपुटौ च दर्भेण
कृता रज्जुश्च दुष्करा ॥ ९४ ॥ कष्टात्पुटेन कृष्ट्वा च पायिता प्रथमं जलम् । पर्यन्ते निष्क्रयश्चक्रे तयातिक्रूरयेदृशः ॥ ९५ ॥ मन्ये
कस्यापि सङ्केतादारामे तत्र तादृशी । अभूदाभरणैः सार्धं गन्ता तं गहनं ध्रुवः ॥९६॥ कूट कूटभृतां स्त्रीणां मध्यं को लभते नरः ।
प्रहसन्त्येकया दृष्ट्या रुदन्त्यपरया पुनः ॥९७॥ तत्कालोत्पन्नया मत्या विजयन्तेऽपि पण्डितान् । उन्मादजनकत्वेन जयन्ति मदिरा-
मपि ॥९८॥ सर्वसंसारदुःखानां मूलमेताः स्त्रियोऽधिकम् । त एव सुखिनः स्युर्ये मतिमन्तस्त्यजन्ति ताः ॥ ९९ ॥ त्रिविधं त्रिविधे-
नेयं धनमन्यच्च तन्मया । सावद्यं सकलं त्यक्तं शरणं मे नमस्कृतिः ॥ १०० ॥ लोकद्वयेऽपि यत्पापं यया किञ्चिद्विनिर्मितम् ।
तन्निन्दामि च गर्हामि समक्षं सिद्धपद्धतेः ॥ १०१ ॥ ये केचन मया जीवाः सुचिरं भ्रमता भवे । दूना वा निहता वापि तानहं
क्षमयेऽखिलान् ॥ १०२ ॥ बहु दुःखं त्वया सोढं प्राक्चतुर्गतिके भवे । तदिदानीं सहस्वाल्पं मन्तुं स्वकर्मणामम् ॥ १०३ ॥
ननु ते स्वादात्मानं हित्वा नान्यत् सुहृद् सुहृद् । यदीच्छसि शिवसुखं समचित्तस्ततो भव ॥ १०४ ॥ मुञ्च द्वेषं च रागं च सर्वथा

सर्वरस्तु। धर्म एव निजो येन संसारे वस्तु नापरम् ॥ १०५ ॥ अत एव परित्यज्य चक्रित्वमपि केचन । आचरन्ति व्रतं घोरं नित्यसौख्यपदार्थिनः ॥ १०६ ॥ तच्चिन्तारत्नवज्जैनं धर्मं लब्ध्वापि दुर्लभम्। संसारसागरे तच्च मा हारय मुधा बुध! ॥ १०७ ॥ त्रैलोक्यमपि मित्रं ते यदि मित्रं भविष्यसि । खलश्चेत्तत्खलः सर्वस्तवोऽपि भविता जनः ॥ १०८ ॥ इत्यन्तरङ्गया दृष्ट्या जय कर्मरिपुं निजम् । यथा संसारदुःखेभ्यो दूरं दूरं विमुच्यसे ॥ १०९ ॥

इति भावाम्भसा तेन तदात्मा निर्मलीकृतः । यथाऽभूत्केवलज्ञानं ज्योतिषा द्योतिताखिलम् ॥ ११० ॥ ततो देवतयाऽऽकृष्टो बहिः कूपात् स्वशक्तितः । किं चित्रं तत्र सञ्जातो भवकूपाद्बहिस्स हि ॥ १११ ॥ समर्प्य वेषं नत्वा च कृत्वा महिमानमद्भुतम् । दिव्यगात्रस्स महात्मा तु विजहार महीतले ॥११२॥ काञ्च्यामप्यागमदथ धनपालो रथस्थितः । तत्पञ्चरत्नमूल्येन कारिते जिनमन्दिरे ॥ ११३ ॥ नन्तुमर्चितुमागच्छत् जिनं तद्वारि तं मुनिम् । रक्ताशोकतलेऽद्राक्षीद्ध्यानस्थं मुमुदे च सः ॥११४॥ चन्दनाभिमुखे तस्मिन् देवताकृतपङ्कजम् । तत्रासीनो मुनिस्तेन ववन्दे च स केवली ॥११५॥ पप्रच्छ धनपालस्तं मुनीन्द्रं भवता कदा । कथं वाप चरित्रश्रीरुद्दा सोऽखिलं जगौ ॥११६॥ ऊचे च तेषां रत्नानां पञ्चानां स्थानके त्वया। विनियोगः कृतोऽर्थस्य फलमादायि निर्मलम् ॥ ११७ ॥ पिहितं दुर्गतिद्वारं परलोकश्च साधितः। स्वर्गापवर्गसौख्यानि कृतानि करगोचरे ॥ ११८ ॥ केवलज्ञानिनं नत्वा धनपालो धनावहम् । पुरीलोकोऽखिलोचेति नत्वा पप्रच्छ विस्मयात् ॥ ११९ ॥

धनश्रीः क्वाधुना सास्ति केवली प्राह सा तदा । तेनोपपतिना सार्धं निशि ग्राममुपागमत् ॥ १२० ॥ सा श्रान्ता निद्रया शेते सानन्दाऽचिन्तयत्परः। याऽनिष्टं विदधे पत्युः सा किं मम हिता भवेत् ॥१२१॥ यया रक्तोऽपि कान्तोऽपि चिरं परिचितोऽपि च।

ध्यात्वेति सुप्तां तां मुक्त्वा गृहीत्वाभरणानि च । सोऽनश्यदपरा प्रात-
त्यक्तः कान्तस्तद्विलोमे तस्याः का गणना मयि ॥ १२२ ॥ आरण्यचौरैर्हतो भर्त्ता मुक्ता नारीत्यहं पुनः ॥ १२४ ॥
रपश्यन्ती रुरोद च ॥ १२३ ॥ परिदेव्य चिरं सानुतापा पितृगृहं गता । आख्यचौरैर्हतो भर्त्ता मुक्ता नारीत्यहं पुनः ॥ १२४ ॥
इत्थं निजव्यतिकराख्यानदेशनया मुनिः । तदा प्रबोधयामास वहून् मिथ्यादृशोऽपि हि ॥ १२५ ॥
विहृत्याथ चिरं पृथ्व्यां भव्यलोकं प्रबोध्य च । स मासानशनीस्थानमनन्तसुखमासदत् ॥ १२६ ॥ श्रावको धनपालोऽपि
ब्रह्मलोके सुरोऽभवत् । धनश्रीस्तु तृतीयायां पृथिव्यां नारकोऽजनि ॥ १२७ ॥ सुखसाध्यस्य भावस्य विज्ञायेत्यतुलं फलम् । स
एव शरणः कार्यो विषमेऽपि समेऽपि च ॥ १२८ ॥ तथाहि तत्कदा भावि दिनं यस्मिन्नहं कदा । गृहवासं परित्यज्य ग्रहीष्यामि
व्रतं गुरोः ॥१२९॥ विहृत्य गुरुभिः सार्धं निःसङ्गतपसा कृशः । प्रविचार्य धनं कर्ता परमार्थस्य निश्चलम् ॥१३०॥ (युग्मम्)॥ इत्थं
धनावहकथाप्रथनेन विज्ञा ! विज्ञाय भावजनितं फलमुज्ज्वलं तत् । सद्दानशीलतपसां सफलत्वहेतौ भावे भवद्भिपि मनः सततं निधत्त
॥ १३१ ॥ इह विश्रामे शुभभावधर्मफलं सुप्रदर्शितं जिनेन्द्रेण । विशदधनावहकेवलिचरितस्याख्यानतो भविनाम् ॥ १३२ ॥

इत्याचार्यश्रीमानतुङ्गविरचिते श्रीश्रेयांसचरिते महाकाव्ये भवत्रयनिबद्धे भावनावर्णनो
नाम द्वादशः सर्गः ॥

देवेन्द्रसूरिकृतमुपमितिसारोद्धारमादधे शुद्धम् । आमूलचूलमपि यस्तं प्रद्युम्नं नमामि विभुम् ॥ छ ॥

त्रयोदशः सर्गः ।

श्रुत्वेति देशनां क्षत्रकुलजाः कौस्तुभादयः । षट्सप्ततिमिताः स्वस्वशतसंख्यैर्नरैर्युताः ॥ १ ॥ प्रतिबुद्धाः प्रभोः हस्तपद्मेन जगृहुर्व्रतम् । धारिणीप्रमुखाश्चापि कुलीना बहवः स्त्रियः ॥ २ ॥ तिर्यक्सुरासुराः सम्यग्दर्शनं तु नृपस्त्रियः । जगृहुर्देशविरतिमिति सङ्घश्चतुर्विधः ॥ ३ ॥ आद्यश्रीसमवसरणे श्रीश्रेयांसविभोरभूत् । अनन्तगुणरत्नानां रत्नाकर इवापरः ॥ ४ ॥ स्वाम्यथो कौस्तुभादीनां भविष्यद्गणधारिणाम् । उत्पादविगमध्रौव्यपदत्रितयमादिशत् ॥ ५ ॥ प्रतिभातिशयेनाथ द्वादशाङ्गीमथ्नन्थयन् । गणधारिपदं तेभ्यो दातुं च प्रगुणे प्रभौ ॥ ६ ॥ उपातिष्ठद्वासपूर्णमणिस्थालकरो हरिः । उत्थायासनतश्चूर्णमुष्टिं सम्पूर्णमग्रहीत् ॥ ७ ॥ अथ सूत्रतदर्थैः सद्द्रव्यगुणपर्ययैः । अनुज्ञातोऽनुयोगोऽपि गणोऽपि च वदन्निति ॥८॥ विनम्रशिरसां तेषां वासान् प्रथममक्षिपत् । विभुः सुरासुराः सर्वे ततः प्रमोदमेदुराः ॥ ९ ॥ वाद्यमानेषु तूर्येषु भावनामासुरैः सुरैः । प्रवर्तिनीपदे न्यास्थात् धारिणीं गुणधारिणीं ॥ १० ॥ (त्रिभिर्विशेषकम्) कौस्तुभाद्या गणभृतः षट्सप्ततिमिताः प्रभोः । किं वर्ण्या यद्गुणेयत्तां न वेत्ति धिषणोऽपि हि ॥ ११ ॥ किमेतद्वर्ण्यते तेषां ये त्रिभिर्गोपदैरपि । निजप्रतिभया पारे श्रुताकूपारमादधुः ॥ १२ ॥

ततो धर्मश्चतुर्यामो दिशासु चतसृष्वपि । उत्थापना विरहितोऽस्फुरन्मिथ्यात्वघातकः ॥ १३ ॥ यूथेनैरावण इव मेरुः कल्पद्रुमैरिव । मुक्ताभिरिव पाथोधिः स्वामी सङ्घयुतोऽशुभत् ॥ १४ ॥ पूर्णायामथ पौरुष्यां काञ्चनस्थालसंस्थितः । चतुःप्रस्थमितो गन्धशालितः शालिजो बलिः ॥ १५ ॥ अक्षतो दुन्दुभिध्वानधवलध्वनिबन्धुरः । आनाय्य सोमचन्द्रेण पूर्वद्वारा प्रवेशितः ॥१६॥ (युग्मम्) व्योमक्षिप्तस्य तस्यार्धं सुराः शेषार्धमर्धितम् । जनेशाश्च जनाश्चापि जगृहुर्बहुमानिनः ॥ १७ ॥ बलेस्तस्य प्रभावेण

नश्यन्ति प्राक्तना रुजः । षण्मासांश्च नवा न स्युरिति सर्वोऽग्रहीज्जनः ॥१८॥ निर्गत्योत्तरया द्वारा स्वाम्यथ त्रिदशैर्वृतः । ईशान-
दिग्गते देवच्छन्दे विश्राममादधे ॥ १९ ॥ ततश्च पादपीठस्थः कौस्तुभो गणभृद्वरः । व्यधाद्द्वितीयपौरुष्यां देशनां क्लेशनाशिनीम्
॥ २० ॥ तद्देशनाया विश्रामे विभुं नत्वा सुरासुराः । स्थानं निजं निजं जग्मुः प्रमोदभरभासुराः ॥ २१ ॥ श्रीश्रेयांसार्हतस्तीर्थे
यक्षोऽभूदीश्वराभिधः । चतुर्भुजस्त्रिनेत्रश्च शुभ्रो वृषभवाहनः ॥२२॥ गदां च बीजपूरं च दोर्णोर्दक्षिणयोर्द्वयोः । दधानो वामयोर-
क्षमालां च नकुलं तथा ॥२३॥ तत्तीर्थे मानवीनाम्नोत्पन्ना शासनदेवता । दधाना दक्षिणौ पाणी वरमुद्गरशालिनौ ॥ २४ ॥
कलशाङ्कुशयुक्तौ च वामौ वामत्वरक्षकौ । गोकर्णा च समारूढा सिंहं दुष्टेभनाशिनी ॥ २५॥ श्रीश्रेयांसविभुस्ताभ्यां सर्वदा कृतस-
न्निधिः । निषेव्यते स सततं कोटिसङ्ख्यैः सुरासुरैः ॥ २६ ॥

इति भव्यजनं सिंहपुरे कत्यपि वासरान् । प्रतिबोध्य विभुः पृथ्वीं विहर्तुमुपचक्रमे ॥ २७ ॥ कण्टकेषु न्यग्रमुखेष्ववतीर्णे
ऋतुमण्डले । दुर्भिक्षं डम्बरंमारीमीतिमप्यपसारयन् ॥ २८ ॥ महिम्ना त्रिजगल्लक्ष्मीमेकत्र मिलितामिव । दर्शयन्नाशयन्मिथ्याद-
र्शनं धर्मकर्शनम् ॥२९॥ ग्रामाकरपुरपुष्टां क्रमेण विहरन् महीम् । पोतनं पत्तनं प्राप श्रीश्रेयांसः श्रियांनिधिः ॥ ३० ॥ सुरैः समवसरणे
तत्रैशान्यां विनिर्मिते । सिंहासनं मणिमयं श्रेयांसः प्रभुराश्रयत् ॥ ३१ ॥ यथास्थानं निषण्णासु पर्षत्सु द्वादशस्वपि । उद्यानपालो
गत्वाऽऽख्यत्त्रिपृष्ठायार्धचक्रिणे ॥३२॥ सार्धां द्वादशरूप्यस्य तस्मै कोटीं प्रदाय सः । कर्तुं समग्रसामग्रीं प्रधानजनमादिशत् ॥ ३३ ॥
ततो वारणमारूढो विधूतातपवारणः । द्विधापि कलितः काममवलेन वलेन च ॥३४॥ द्वात्रिंशता सहस्रैश्चान्तःपुरीणां सम-
न्वितः । चतुःषष्ट्या पुनर्वारवनितानां ससम्भ्रमैः ॥ ३५ ॥ नरेन्द्राणां षोडशभिः सहस्रैरुपशोभितः । रथाश्वहस्तिनां लक्षैर्द्विचत्वारिं-

शा गुतः ॥ ३६ ॥ फरितः पौरलोकैश्च चलितः स्वामिनो नतेः । विवेश देशनास्त्र नीतिप्रभृतवासनः ॥ ३७ ॥ (चतुर्भिः कलापकम्) दत्त्वा प्रदक्षिणास्तिस्रः पश्चाद्विहितानतिः । वदन् जय जयेत्युच्चैर्नेनीति स्म नवैर्नवैः ॥ ३८ ॥ अथोपेन्द्रपेन्द्रोऽपि निविष्टो जगतीपतिः । प्रारेभे देशनां सर्वभाषानुगतया गिरा ॥ ३९ ॥ तथाहि घोरसंसारसागरे मज्जतां सताम् । भवत्यसुमतां धर्मस्तारणे तरणीनिभः ॥ ४० ॥ स साधुश्राद्धभेदाभ्यां द्विधाद्यो दशधा मतः । तत्र क्षमा क्रोधजयो मार्दवं मानमर्दनम् ॥ ४१ ॥ आर्जवं वैतरत्यागो शुक्तिर्निर्लोभता मता । तपो द्वादशधा ज्ञेयं संयमः प्राणिरक्षणम् ॥ ४२ ॥ हितं प्रियवचः सत्यं शौच परधनास्तेनम् । स्त्रीसङ्गवर्जनं ब्रह्माकिञ्चन्यं निष्परिग्रहः ॥४३॥ धर्मोऽयं यतिनां श्राद्धधर्मो द्वादशधा पुनः । अणुव्रतानि पञ्च स्युः सप्त शिक्षाव्रतानि च ॥४४॥ देशतो विरतिः प्राणातिपातासत्यभाषणम् । अदत्ताब्रह्मपरिग्रहाणुव्रतपञ्चकम् ॥ ४५ ॥ दिग्भोगानर्थदण्डाख्याः साम्यं देशावकाशिकम् । पौषधोऽतिथिदानं च सप्त शिक्षाव्रती मता ॥ ४६ ॥ साधुधर्ममथ श्राद्धधर्मं तदवलम्बत । यथा भवा नो भव्या ! विकटेऽत्र भवावटे ॥ ४७ ॥ श्रुत्वेति विरतिं केऽपि सर्वतो देशतोऽपरे । जगृहुः श्रीत्रिपृष्टस्तु सम्यक्त्वं केवलं लले ॥४८॥ अपृच्छच्च कथं नाह विरामपरिणामवान् । प्रभुः प्राह निदानं प्राक् व्यधास्त्वं शृणु तद्यथा ॥ ४९ ॥

समस्ति नगरं राजगृहं निजगृहं श्रियः । तत्रास्ति विश्वनन्दीति नृपतिर्द्युपतिप्रभः ॥ ५० ॥ तस्य पट्टमहादेवी प्रियङ्गुर्नामतः प्रिया । विशाखभूतिनामास्ति युवराजोऽनुजोऽपि च ॥ ५१ ॥ तस्यास्ति धारणीदेवी शीलालङ्कारधारिणी । तयोश्च समयो याति पञ्चगोचरचर्यया ॥ ५२ ॥ त्वमन्यदा नयसारभवतः षोडशे भवे । जातोऽसि धारणीकुक्षौ विश्वभूत्यभिधः सुतः ॥ ५३ ॥ राज्ञः प्रिया प्रियङ्गुश्च सुषुवे सुतमन्यदा । विशाखनन्दिनामा तौ प्राप्तौ द्वावपि यौवनम् ॥५४॥ पितृभ्यां नृपपुत्रीभ्यां कारितौ करपीडनम् ।

अन्यदा च वसन्तर्तुः स्मरमित्रमुपागमत् ॥ ५५ ॥ तदा च खेलितुं विश्वभूतिरन्तःपुरीवृतः । सर्वर्तुफलमुद्यानमगात्पुष्पकरण्डकम्
॥ ५६ ॥ स तत्र पुष्पावचयजलकेल्यादिकेलिभिः । अन्तःपुरयुतोऽक्रीडद्दोगुन्दक इवामरः ॥ ५७ ॥
नन्दनप्रतिमे तस्मिन् युवराजस्य नन्दने । क्रीडति प्रहिता देव्या दास्यः पुष्पार्थमाययुः ॥ ५८ ॥ तं क्रीडन्तं निरीक्ष्यैता
महिष्यग्रे न्यवेदयन् । विशाखनन्दिनो योग्ये वने क्रीडति किं परः ॥ ५९ ॥ स्त्रीस्वभावस्य तुच्छत्वात्प्रविष्टा कोपसद्म सा । प्रसा-
दयितुमेतां च नृपस्तत्रागतोऽवदत् ॥ ६० ॥ किं निमित्तमिदं देवि ! क्रोधपस्त्यमलङ्कृतम् । सोचे यन्नो वनं विश्वभूतिना समल-
ङ्कृतम् ॥ ६१ ॥ विशाखनन्दी तत्र प्रक्रीडतु प्राह भूपतिः । नायं कुलक्रमः सत्येकस्मिन् क्रीडति यत्परः ॥ ६२ ॥ सा प्राह प्राणा-
नुज्झिष्याम्यहमस्मात्पराभवात् । नृपोऽथ मन्त्रिणामाख्यद्बोधिता तैर्न चाबुधत् ॥ ६३ ॥ विज्ञाय राज्ञीनिर्बन्धं विज्ञो राजाज्ञया ततः ।
ताडयित्वा महाभेरीं चक्रेऽलीकप्रयाणकम् ॥ ६४ ॥ भेरीस्वरं समाकर्ण्य विश्वभूतिः ससम्भ्रमः । हित्वा वनमुपागच्छत्पुनः पप्रच्छ
भूभुजम् ॥ ६५ ॥ राज्ञोचे वत्स ! वेत्सि त्वं राज्ञामाज्ञा हि जीवितम् । तां मे पुरुषसिंहाख्यः सामन्तो हन्तुमुद्यतः ॥ ६६ ॥ कुमारः
प्राह तताहमात्मजस्ते निदेशकृत् । मृगे महामृगारातेः संरम्भः शरभस्य कः ॥ ६७ ॥ इत्युक्त्वा दैन्यसैन्योऽयं गतः प्राभृतपाणिना ।
तेनानतः समागत्य नृपायार्पयदामिषम् ॥ ६८ ॥ स्वावासे प्रहितो राज्ञा गतः पुष्पकरण्डकम् । तत्र च प्रविशन् द्वारि प्रतीहारेण
वारितः ॥ ६९ ॥ विशाखनन्दी मध्येऽस्ति क्रीडन्निति निशम्य सः । दध्यौ मामाकृपत्तातः छद्मनोद्यानसद्मनः ॥ ७० ॥ सुरयोऽपि
हि कुर्वन्ति हाकुकुटिमिति क्रुधा । मुष्ट्याऽऽहत्य कपित्थद्रोः फलान्ययमपातयत् ॥ ७१ ॥ अवोचद्रक्षकाश्चैवमरे ! रुष्यामि यद्यहम् ।
कपित्थानीव युष्माकं तच्छिरांस्यपि पातये ॥ ७२ ॥ गुरुभक्तिं तु नोल्लङ्घे मर्यादामिव वारिधिः । इत्युदीर्यार्यसम्भूतपार्श्वे गत्वाऽग्र-

हीद्व्रतम् ॥ ७३ ॥ अनुनेतुं कुमारार्पं तदागमदिलापतिः । ऊचे च वत्स ! विलस मुदा पुष्पकरण्डके ॥ ७४ ॥ स प्राह प्राप्तमधुना व्रतं फलकरण्डकम् । ततो लगति चित्ते न मम पुष्पकरण्डकम् ॥ ७५ ॥ मा ताम्यतातिमात्रं तद्युक्तमेव मया कृतम् । उद्यतो यज्जनः सर्वो निजं कार्याणि साधितुम् ॥ ७६ ॥ वस्तुतः कोऽपि कस्यापि न निजो नाऽनिजोऽपि वा । तदात्मविहितद्रोहं मोहं मुञ्चत निष्फलम् ॥ ७७ ॥

ययावथ नृपो विश्वभूतिस्तु श्लाघितो जनैः । प्रतिपन्नस्य निर्वाहो महतां हि व्रतं महत् ॥ ७८ ॥ गीतार्थो गुर्वनुज्ञातश्चैकाकी विहरन्नयम् । तपःकृशशरीरः सन् मथुरामन्यदा ययौ ॥ ७९ ॥ सुतां तन्नगरीस्वामिपट्टराज्ञ्याः पितृष्वसुः । विशाखनन्दी तत्रास्ति परिणेतुं समागतः ॥८०॥ विश्वभूतिस्तु भिक्षायां मासक्षपणपारणे । तदावासान्तिके गच्छन् धृषेणोद्धृष्य पातितः ॥८१॥ विशाखनन्दिना तत्र तं निरीक्ष्य तथास्थितम् । समस्तपरिवारेण चक्रे कोलाहलो महान् ॥ ८२ ॥ विशाखनन्दिनं वीक्ष्य क्रुद्धो मुनिर्वृषो वृषम् । विधृत्य शृङ्गयोः शीर्षे त्रिरभ्रमयदम्बरे ॥ ८३ ॥ तमुवाच च रे पापाः ! किं कोपयत मां मुधा । तत्कपित्थफलध्वंसि बलं किं क्वापि मे गतम् ? ॥ ८४ ॥ इत्युक्त्वा स गतः स्थानं विधायानशनं व्यधात् । निदानबन्धं सिद्धान्तनिषिद्धं दुःखकारणम् ॥ ८५ ॥ यद्यस्ति फलमेतस्य व्रतस्य तपसोऽपि च । ततोऽतुलबलो भूत्वा भूयासमपरे भवे ॥ ८६ ॥ इत्थं कृतनिदानस्त्वमायुःप्रान्ते सुरोऽभवः । महाशुक्रे ततश्च्युत्वार्धचक्री च महाबलः ॥८७॥ विरतेः परिणामो न तव तेन प्रजायते । श्रीवर्धमाननामार्हंश्चतुर्विंशो भविष्यति ॥ ८८ ॥ निशम्य सम्यगित्येष विशेषप्रमदोऽभवत् । श्रीश्रेयांसजिनं नत्वा जगाम निजधाम च ॥८९॥ विश्रामार्थमथ स्वामी देवच्छन्दमुपागमत् । देशनां पादपीठस्थः कौस्तुभो गणभृद्व्यधात् ॥ ९० ॥ सत्पथे स्थापयित्वेति

भव्यलोकं जिनेश्वरः । विजहार भवाम्भोधिपोतः पोतनपत्तनात् ॥ ९१ ॥ शत्रुञ्जयमहातीर्थमागात्प्रागदशभिर्जिनैः । सिद्धिक्षेत्रं
समेत्य स्वैः पादपद्मैः पवित्रितम् ॥ ९२ ॥ युगादिजिनचैत्येन प्रत्तशैत्येन सद्दृशाम् । यः स्फुरच्चुलिकः सनन्दनो भाति सुमेरुवत्
॥ ९३ ॥ असङ्कल्पितकल्पद्रुर्युगादिजगदीशिता । यत्रालोकितमात्रोऽपि दत्ते लोकोत्तरं फलम् ॥ ९४ ॥

देवैः समवसरणं विदधे तत्र पर्वते । तत्र क्षेत्रविशेषेण बोधोऽजनि जनेऽधिकम् ॥९५॥ पुरुषोत्तमहृद्भासकौस्तुभः कौस्तुभः प्रभुम् ।
पप्रच्छ नाथ! केनेह तेनेऽर्हद्गृहमुद्धरम् ॥९६॥ श्रीश्रेयांसप्रभुः प्राह श्रीनाभेयजिनेशितुः । सुतोऽभूद्भरताभिख्यो भरताधिप आदिमः
॥ ९७ ॥ पुण्डरीकः कुलवने पुण्डरीकस्तदङ्गजः । आदिमस्य जिनेशस्य योऽभूद्गणभृदादिमः ॥ ९८ ॥ स नाभेयजिनेन्द्रस्य
गिराविह गिरा गुरोः । मुनिकोटिपरीवार आहारपरिहारवान् ॥९९॥ उत्पाद्य केवलज्ञानमप्रापत् मुक्तसम्पदम् । स निर्वृतिपुरीं भेजे
तैः स्वैर्मुनिभिरन्वितः ॥ १०० ॥ तन्मुक्तियुक्तिमध्येऽसिन्नेत्य श्रीभरतः स्वयम् । निजश्रीभरतश्चक्री चैत्यमेतदकारयत् ॥ १०१ ॥
तदादि मुनयोऽनेके निर्यान्ति स्मात्र पर्वते । उद्धुरां दुर्धरां धृत्वा धुरां चारुचरित्रजाम् ॥ १०२ ॥ यास्यन्त्यन्येऽपि निर्वाणं मुनयो
विनयोज्वलाः । इह स्रक्ष्यन्ति चार्हन्तः परेऽप्येतं महीधरम् ॥ १०३ ॥ दग्धरज्जुप्रभाभासकर्म्मलेशोपशान्तये । कैवल्येऽपि
सरन्त्युच्चैः क्षेत्रं शत्रुञ्जयं जिनाः ॥ १०४ ॥ तीर्थेषु प्रथमं तीर्थं पृथिव्यां प्रथितं ततः । इदं विदम्भनिर्ग्रन्थनिर्वाणक्षेत्रमादिमम्
॥१०५॥ रागद्वेषादिशत्रूणां जयः क्षेत्रप्रभावतः । जायतेऽत्र मुनीन्द्राणां तेन शत्रुञ्जयो ह्ययम् ॥१०६॥ प्रायः परासवोऽमुत्र पवत्रोऽ-
प्यमलां गतिम् । यान्तीति कथ्यते विज्ञैरयं च विमलाचलः ॥ १०७ ॥ श्रुत्वेति सिद्धिसम्बन्धबन्धुरे तत्र भूवरे । अनेके मुनयः
कृत्वाऽनशनं निर्वृत्तिं ययुः ॥ १०८ ॥

चतुर्भिः सहजैरेवातिशयैः परिशोभितः । एकादशजिनश्चैकादशभिः कर्मघातजैः ॥ १०९ ॥ राजन्नेकोनविंशत्या सुधाशनविनिर्मितैः । विजहार महीपृष्ठःस्थलहारस्त्रिकालवित् ॥ ११० ॥ साधुसहस्राश्चतुरशीतिर्लक्षत्रयं पुनः । साध्वीनां तदशीत्या च सहस्रैरधिकं मतम् ॥ १११ ॥ द्वे श्राद्धलक्षे एकोनाशीतिसहस्रसंयुते । चतुर्लक्षाष्टचत्वारिंशत्सहस्राण्युपासिकाः ॥ ११२ ॥ त्रयोदशशतीपूर्वभृतामवधिशालिनाम् । षट्सहस्री षट्सहस्री मनःपर्यायिणामपि ॥ ११३ ॥ केवलज्ञानिनां सैव पुनः पञ्चशताधिका । एकादशसहस्राणि वैक्रियप्राप्तिशालिनाम् ॥ ११४ ॥ वादलब्धिमतां पञ्चसहस्राण्यभवन् विभोः । परिच्छदो जगद्भर्तुरित्यभूत्सर्वसङ्ख्यया ॥ ११५ ॥ एकविंशत्यब्दलक्षीं कौमारे द्विगुणां च ताम् । नृपत्वे तावतीमेव व्रते निर्वाह्य जीवितम् ॥ ११६ ॥ चतुःसमाधिकाशीतिवर्षलक्षमिति प्रभुः । ततः समेतः सम्मेतशैलं श्रेयांसतीर्थकृत् ॥ ११७ ॥ योऽजितादिजिनैः शीतलान्तैर्नवभिराश्रितः । मुक्त्यर्थं प्रागनेनैव गर्वेणाभवदुद्धुरः ॥ ११८ ॥ सञ्जातानेककल्याणोऽष्टापदं कुसुमैः सितैः । जातैकर्षभनिर्वाणकल्याणं हसतीव यः ॥ ११९ ॥

सार्धं साधुसहस्रेण मासानशनमाददे । श्रीश्रेयांसेऽर्हतीन्द्राणामासनानि चकम्पिरे ॥ १२० ॥ ते विज्ञायावधिज्ञानान्निर्वाणसमयं विभोः । समकालं समागत्य नत्वा नाथमुपाविशन् ॥ १२१ ॥ ततश्च श्रावणश्यामतृतीयायां निशाकरे । धनिष्ठास्थे विभुः काययोगं बादरमाश्रितः ॥ १२२ ॥ निरुध्य चित्तयोगं च वाग्योगं चापि बादरम् । सूक्ष्मेण काययोगेन बादरं तं रुरोध च ॥ १२३ ॥ तेनैव सूक्ष्मौ वाक्चित्तयोगावपि निरुध्य सः । सूक्ष्मं सूक्ष्मेण तेनैव काययोगं ततोऽरुधत् ॥ १२४ ॥ ध्यानमध्यापदित्थं स स्वामी सूक्ष्मक्रियाभिधम् । तृतीयमथ वोच्छिन्नक्रियं तुर्यमसाधयत् ॥ १२५ ॥ पञ्चह्रस्वाक्षरोच्चारमात्रं ध्यायन्निदं विभुः ॥ क्षणं ददन्मुदं नारकाणामप्यगमच्छिवम् ॥ १२६ ॥ प्रपन्नानशनास्तेऽपि सहस्रं यतिभूभुजः । तदात्वादेव देवाधिदेवचक्रिर्वृतिं ययुः ॥ १२७ ॥

स्नपयित्वा विभोर्गात्रं गोशीर्षेण विलिप्य च। दिव्यं निवेश्य नेपथ्यं पूजयामास वासवः ॥ १२८ ॥ ततस्त्रिविष्टपाधीशस्त्रि-
विष्टपपतेर्वपुः। मुञ्चानोऽजस्रमश्रूणि शिविकायां न्यवेशयत् ॥ १२९ ॥ अन्यसाधुशरीराणि स्नानादिविधिपूर्वकम्। मुञ्चन्तोऽश्रूणि
गीर्वाणाः किंकुर्वाणा इव न्यधुः ॥ १३० ॥ देवदेवीगणे गीतनृत्यवाद्यानि तन्वति। जिनस्य जनयत्युच्चैः सिद्धिसङ्गमहामहम्
॥१३१॥ मार्गेण दिव्यगन्धाम्बुपुष्पप्रकरशोभिना। अमरेन्द्रो जिनेशस्य शिविकामनयच्चितिम् ॥ १३२ ॥ मुनीनां निन्यिरेऽन्येषां
शिविकां नाकवासिनः। चितान्यस्तासु प्रक्षिप्तो वह्निर्वह्निकुमारकैः ॥ १३३ ॥ दग्धेष्वस्थिविहीनेषु स्वामिनः सर्वधातुषु।
निर्वापयंश्चितां गन्धाम्भोभिर्मेघकुमारकाः ॥ १३४ ॥ दक्षिणो दक्षिणां दंष्ट्रामादात् सौधर्मवासवः। ऊर्ध्वस्थितामथैशानो दंष्ट्रां
वामामवामधीः ॥ १३५ ॥ चमरेन्द्रो बलीन्द्रश्चाधःस्थिते दक्षिणेतरे। परे त्वाददिरे दन्ता निन्द्राविद्रावितांहसः ॥ १३६ ॥
विभोर्विभज्यास्थीन्यन्ये जगृहुः स्वर्गवासिनः। भूभुजो भक्तिसम्भारभाजो भस्म पुनश्चितेः ॥ १३७ ॥
चितोर्व्यां रचितो रत्नमयः स्तूपः सुपर्वभिः। बभौ सम्मेतशैलस्य रत्नशृङ्गमिवापरम् ॥ १३८ ॥ श्रीश्रेयांसविभोर्नामोदकिरल्लक्षणानि च। वज्री वज्रेण
निर्वाणशिलापीठे प्रशस्तिवत् ॥ १३९ ॥
कृत्वेति कृत्यं तीर्थेशमहोदयमहोऽन्वितम्। नन्दीश्वरवरद्वीपमगमन्नाकिनायकाः ॥ १४० ॥ अष्टाहीकामहं तत्र ते कृत्वा
शाश्वतार्हताम्। मन्दीभूतशुचः स्वर्गमगमन्नगभिद्गणाः ॥१४१॥ स्तम्भे माणवके न्यस्य तीर्थेशदशनानि ते। दिव्यैः सुरभिभिर्द्रव्यैः
पूजयामासुराश्रुतात् ॥ १४२ ॥ तत्र ते स्वप्रभावर्धिप्रभावर्द्धिष्णुसम्पदः। असमं स्वर्गसाम्राज्यं कुर्वते मङ्गलालयाः ॥ १४३ ॥
इत्थं मन्दधिया मया नवतरो नाऽर्थः समुत्पादितः शब्दानामपि तादृशी न घटनाऽलङ्कारसारा कृता। किन्त्वेकादशतीर्थनाथ-

चरितं किञ्चित्कृतं संस्कृतं स्वस्याभ्यासकृते तनोतु सुकृतेष्विच्छामतुच्छामिति ॥ १४४ ॥ शिष्यः श्रीकनकप्रभस्य सुकविः श्रीबालचन्द्रानुजो ज्यायान् श्रीजयसिंहतः प्रतिभया श्रीवस्तुपालस्तुतः । अस्माद्गोत्रमहत्तरः कविगुरुः प्रद्युम्नसूरिप्रभुर्विद्वद्वृन्दकवित्वशोधनधनो ग्रन्थं मुदाऽशोधयत् ॥ १४५ ॥

इतिश्री राजगच्छे भालिजेत्यश्रीजिनेश्वरसूरिशिष्यश्रीमानतुङ्गविरचिते श्रीश्रेयांसचरिते महाकाव्ये भवत्रयनिबद्धे श्रीश्रेयांसमुक्तिगमनवर्णनो नाम त्रयोदशमः सर्गः समाप्तः छ ॥ छ ॥

ग्रन्थकर्तुः प्रशस्तिः ।

श्रीमद्वीरजिनेशन-
पदवीजत्रयमूला स्मरणमात्रेण दुरितार्तिततिहन्त्री । जयति नवतत्त्वयोनिर्जैना शक्तिः परा त्रिपुरा ॥ १ ॥ श्रीमद्वीरजिनेशन-
न्दनवने श्रीकोटिकोऽभूद्गणः कल्पद्रुप्रतिमस्ततः समुदिता श्रीवैरिशाखा नवा । तस्यां गच्छचतुष्टयी सुमसमाऽमुष्या यदेकं
सुमं जातं चन्द्रकुलं तदत्र मधुपः श्रीशिलभद्रोऽभवत् ॥ २ ॥ श्रीचन्द्रसूरिर्भरतेश्वरोऽथ सूरिर्धनेशोऽथ च सर्वदेवः ।
श्रीधर्मघोषेण समं च पञ्च शिष्यास्तदीया उदिता इमेऽत्र ॥३॥ श्रीधर्मघोषः सकलेषु तेषु गच्छाधिपत्यं बिभरांबभूव । योऽध्यैष्ट
शास्त्रं द्विघटीत्रिकेन वादी शिशुत्वे शतपञ्चमानम् ॥ ४ ॥ भालिजे श्रीमहावीरचैत्ये व्याख्याक्षणे गुरोः । सर्वदेवस्य दोरार्यां देवी
वज्रमरक्षयत् ॥५॥ तस्य चन्द्रप्रभः सूरिः शिष्यो यस्योपवासतः । देवः स्तम्भनकाधिष्ठायकः प्रत्यक्षतामगात् ॥६॥ तस्माज्जिने-
श्वरः सूरिश्चतुर्विद्याचतुर्मुखः । शश्वद्विरोधिजन्तूनामपि प्रद्वेषरक्षकः ॥ ७ ॥ ब्रह्मस्थानोच्छसत्तेजःपुञ्जादस्ततमस्ततेः । कलाकलापगेहस्य
तस्य कः स्तवने क्षमः ॥ ८ ॥ किं स्तुवे तस्य शिष्यं श्रीरत्नप्रभमुनीश्वरम् । जिनेश्वरो गुरुर्यस्य कलावपि किलाऽभवत् ॥ ९ ॥
तत्पादाम्बुजभृङ्गत्वं दधानस्त्रैपुरागमात् । उद्धृत्य तस्य स्वोपज्ञसूत्रवृत्तिं चकार यः ॥ १० ॥ तेन श्रीमानतुङ्गेन मतितुङ्गेन
लीलया । श्रेयांसचरितं नाम महाकाव्यं विनिर्मितम् ॥ ११ ॥ वर्षे द्वित्रित्रिकौ माघश्यामायां पञ्चमीतिथौ । शास्त्रं त्रिपुरवा-
ग्ब्रह्मप्रसादादाशु निर्मितम् ॥१२॥ यावद्भव्यजनस्य कर्मजवने दुःखौघदूर्वावनम् खादन् जैनवृषः सुपोषितवपुः सम्प्रापयेन्निर्वृतिम् ।
श्रीश्रेयांसजिनेश्वरस्य चरितं तावन्मुनीन्दुव्रजे व्याख्यानोद्धतनिस्वनेन तनुतात्तद्गर्जितस्फूर्जितम् ॥ १३ ॥

श्रीमानतुङ्गसूरीणां कृतिः सम्पूर्णमिदं श्रीश्रेयांसचरितं काव्यमिति ग्रन्थाग्रम् ॥ ५१२४ ॥

श्रेयांसनाथचरित्रं समाप्तम्